बिन घन परत फुहार

भगवान श्री रजनीश

जब भी आकाश में बादल होते हैं, तभी फुहार पड़ती है।
बिन घन परत फुहार ?
आकाश में बादल न हों तो फुहार कैसे पड़ेगी ?
लेकिन ऐसी भी फुहार है; जो बिना बादलों के पड़ती है।
इसका मतलब हुआ, संसार में कार्य और कारण की शृंखला चलती है—बादल होते हैं तो पानी बरसता है।
और भीतर एक परम लोक भी है, चैतन्य का।
वहाँ बिना बादल के भी फुहार पड़ती है। वहाँ बिना कारण के भी कार्य घटित होता है। वहाँ अकारण भी घटनाएँ घटती हैं।
तो बाहर के जगत में तो हर चीज का कार्य-कारण है।
भीतर के जगत में सब कुछ अकारण है।
जिस दिन तुम अकारण में प्रवेश करोगे उसी दिन तुम परमात्मा में प्रवेश करोगे।

बड़े अछूते प्रतीक सहजो ने लिए हैं। कुँवारे प्रतीक हैं। पिटे-पिटाये नहीं हैं। उसने अपने जानने से ही लिए होंगे। वो कोई कवि नहीं है; रहस्यवादिनी है। वो कोई कविता नहीं कर रही है, वो स्वयं कविता है। शब्दों से उसे कुछ लेना नहीं है। वो जो मौन में और शून्य में जाना है, उसे शब्दों के सहारे थोड़ा तैरा देना है ताकि तुम तक पहुँच जाए। शब्द तो कागज की नाव हैं। उसने उसमें शून्य के अनुभव को रख के भेजा है तुम तक।

—भगवान श्री रजनीश

जब भी आकाश में बादल होते हैं, तभी फुहार पड़ती है।

बिन घन परत फुहार?

आकाश में बादल न हों तो फुहार कैसे पड़ेगी?

लेकिन ऐसी भी फुहार है; जो बिना बादलों के पड़ती है।

इसका मतलब हुआ, संसार में कार्य और कारण की शृंखला चलती है—बादल होते हैं तो पानी बरसता है।

और भीतर एक परम लोक भी है, चैतन्य का।

वहाँ बिना बादल के भी फुहार पड़ती है। वहाँ बिना कारण के भी कार्य घटित होता है। वहाँ अकारण भी घटनाएँ घटती हैं।

तो बाहर के जगत में तो हर चीज का कार्य-कारण है।

भीतर के जगत में सब कुछ अकारण है।

जिस दिन तुम अकारण में प्रवेश करोगे उसी दिन तुम परमात्मा में प्रवेश करोगे।

बड़े अछूते प्रतीक सहजो ने लिए हैं। कुँवारे प्रतीक हैं। पिटे-पिटाये नहीं हैं। उसने अपने जानने से ही लिए होंगे। वो कोई कवि नहीं है; रहस्यवादिनी है। वो कोई कविता नहीं कर रही है, वो स्वयं कविता है। शब्दों से उसे कुछ लेना नहीं है। वो जो मौन में और शून्य में जाना है, उसे शब्दों के सहारे थोड़ा तैरा देना है ताकि तुम तक पहुँच जाए। शब्द तो कागज की नाव हैं। उसने उसमें शून्य के अनुभव को रख के भेजा है तुम तक।

—भगवान श्री रजनीश

बिन घन परत फुहार

बिन घन परत फुहार

परमसंत सहजोबाई के वचनों व तत्संबंधित प्रश्नों पर दिनांक १ से १० अक्तूबर १९७५ तक भगवान श्री रजनीश द्वारा दिये गये दस अमृत प्रवचन ।

बिन घन परत फुहार

भगवान श्री रजनीश

संकलन-संपादन
स्वामी योग प्रताप भारती

आवरण-सज्जा
स्वामी आनंद अर्हंत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम, १७ कोरेगाँव पार्क
पूना–४११ ००१

प्रथम संस्करण : २१ मार्च १९७६
प्रतियाँ : ३०००

मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक
नारायण मु. उस्कैकर
श्री रजनीश आश्रम प्रेस
पूना–४११ ००१

पूर्वभाव

भगवान अब तक हमें मुक्तपुरुषों की धारा में नहलाते रहे थे, पहली बार उन्होंने एक मुक्तनारी की धारा में डुबाने की कोशिश की है।

हाँ, नारी के साथ तो डूबने से कम में न चलेगा।

क्यों? क्यों डूबने का भाव नारी के साथ जोड़ा जा रहा है?

इसलिए कि डूबना होता है निकट में। डूबना हो तो अभी डूबा जा सकता है। डूबना हो तो यहीं डूबा जा सकता है। उसमें स्थगन की, समय की जरूरत नहीं होती। नारी भी जीती है निकट में। सुदूर में उसकी उत्सुकता नहीं। अभी और यहीं के अधिक निकट है वह पुरुष के बजाय। नारी होकर डूबना सरल। और डूबना — खो जाना — ही हो जाने का राज है। अमृत का अनुभव चाहिए, मिटना होगा। अन्यथा कोई राह नहीं। अलग कोई उपाय नहीं।

असत के मिटे बिना सत की कोई अनुभूति नहीं।

मुक्तनारी की धारा डूबने की संभावनाओं को प्रगाढ़ करती है। उसके प्रत्येक कल-कल निनाद में डूबने का अमोघ आह्वान्!

इसीलिए संभवत: भगवान ने सहजो पर बोलना स्वीकार किया। भगवान ने स्वयं कहा है कि सहजो पर बोलकर हमारे लिए वे एक नयी ही यात्रा, एक नये ही आयाम में द्वार खोल रहे हैं।

इन प्रवचनों में प्रवेश कर आप स्वयं इस तथ्य का अनुभव कर सकेंगे।

सहजो याने समर्पण की प्रतीक!

सहजो याने गुरुचरणों में समग्र समर्पण की प्रतीक!!

तभी तो ज्ञानवती सहजो कह पाती है —

> 'चरनदास पर तन-मन वारूँ।
> गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ॥'

गुरुचरणों के प्रेम में जो हरि को भी न्योछावर करने का साहस जुटा सका, वही तो हरि में प्रवेश कर गया।

सहजो गुरुप्रेम की जीती-जागती अप्रतिम प्रतिमा। बेजोड़!

उसके एक-एक वचन आपको परमात्मा में डुबाएँगे, गुरुचरणों में पिघलाएँगे।

प्रेम से जाना कितना सरल!

समर्पण से पहुँचना कितना सहज!!

सहजोबाई पर बोलकर परमकारुणिक भगवान ने बेहिसाब दया की है।

उनके ही श्रीचरणों में यह ग्रंथ समर्पित है।

— स्वामी योग प्रताप भारती
श्री रजनीश आश्रम,
१७, कोरेगाँव पार्क,
पूना.

२१ मार्च, १९७६

अनुक्रम

प्रवचन	पृष्ठ

रस बरसै मैं भीजूँ

प्रवचन १, प्रातः, दिनांक १-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ ।
गुरु को सम हरि को न निहारूँ ।।

हरि ने जनम दियो जग माहीं ।
गुरु ने आवागमन छुटाहीं ।।

हरि ने पाँच चोर दिये साथा ।
गुरु ने लई छुटाय अनाथा ।।

हरि ने कुटुंब जाल में गेरी ।
गुरु ने काटी ममता बेरी ।।

हरि ने रोग भोग उरझायौ ।
गुरु जोगी कर सबै छुटायौ ।।

हरि ने कर्म भर्म भरमायौ ।
गुरु ने आतम रूप लखायौ ।।

हरि ने मोसूँ आप छिपायौ ।
गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ।।

फिर हरि बंधि मुक्ति गति लाये ।
गुरु ने सबही भर्म मिटाये ।।

चरनदास पर तन मन वारूँ ।
गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ ।।

'बिन घन परत फुहार'—यह वार्तामाला एक नयी ही यात्रा होगी। मैं अब तक मुक्तपुरुषों पर बोला हूँ। पहली बार एक मुक्तनारी पर चर्चा शुरू करता हूँ। मुक्तपुरुषों पर बोलना आसान था। उन्हें मैं समझ सकता हूँ—वे सजातीय हैं। मुक्तनारी पर बोलना थोड़ा कठिन होगा—वह थोड़ा अजनबी रास्ता है। ऐसे तो पुरुष और नारी अंतरतम में एक हैं, लेकिन उनकी अभिव्यक्तियाँ बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। उनके होने का ढंग, उनके दिखायी पड़ने की व्यवस्था, उनका वक्तव्य, उनके सोचने की प्रक्रिया, न केवल भिन्न है बल्कि विपरीत है।

अब तक किसी मुक्तनारी पर नहीं बोला। तुम थोड़ा मुक्तपुरुषों को समझ लो, तुम थोड़ा मुक्ति का स्वाद चख लो, तो शायद मुक्तनारी को समझना भी आसान हो जाए।

जैसे सूरज की किरण तो सफेद है, पर प्रिज़्म से गुजर कर सात रंगों में टूट जाती है। हरा रंग लाल रंग नहीं है, और न लाल रंग हरा रंग है; यद्यपि दोनों एक ही किरण से टूटकर बने हैं, और दोनों अंततः मिलकर पुनः एक किरण हो जाएँगे। टूटने के पहले एक थे, मिलने के बाद फिर एक हो जाएँगे, पर बीच में बड़ा फासला है; और फासला बड़ा प्रीतिकर है। बड़ा भेद है बीच में, और भेद मिटना नहीं चाहिए। भेद सदा बना रहे, क्योंकि उसी भेद में जीवन का रस है। लाल लाल हो, हरा हरा हो। तभी तो, हरे वृक्षों पर लाल फूल लग जाते हैं। हरे वृक्षों पर हरे फूल बड़ी शोभा न देंगे। लाल वृक्षों पर लाल फूल फूल जैसे न लगेंगे।

परमात्मा में तो स्त्री और पुरुष एक हैं। वहाँ तो किरण सफेद हो जाती है। लेकिन अस्तित्व में, प्रकट लोक में, अभिव्यक्ति में बड़े भिन्न हैं; और उनकी भिन्नता बड़ी प्रीतिकर है। उनके भेद को मिटाना नहीं है, उनके भेद को सजाना है। उनके भेद को नष्ट नहीं करना है, उनके भीतर छिपे अभेद को देखना है। स्त्री और पुरुष में एक ही स्वर दिखायी पड़ने लगे—बिना भेद को मिटाये—तो तुम्हारे पास आँख है।

वीणावादक वीणा के तारों को छेड़ता है, बहुत स्वर पैदा होते हैं। उंगलियाँ वही हैं, तार भी वही हैं, छेड़खानी का थोड़ा सा भेद है; पर बड़े भिन्न स्वर पैदा होते हैं। सौभाग्य है कि भिन्न स्वर पैदा होते हैं, नहीं तो संगीत का कोई उपाय न था। अगर एक ही स्वर होता तो बड़ा बेसुरा हो गया होता, बड़ी ऊब पैदा होती।

संसार सुंदर है, क्योंकि भेद में अभेद है। सारे स्वरों के बीच वही उंगलियों का स्पर्श है, उन्हीं तारों की ध्वनि है। संगीतज्ञ एक है, संगीत का माध्यम एक है, पर संगीत की तरंगों में बड़े भेद हैं।

पुरुष बड़ी अलग तरंग है, स्त्री बड़ी अलग तरंग है। अलग ही नहीं, मैं कहता हूँ बड़ी विपरीत, एक दूसरे के प्रतिकूल जाती हुई तरंगें हैं; और इसीलिए तो स्त्री-पुरुष के बीच इतना आकर्षण है। एक-दूसरे से भिन्न हैं, इसलिए एक-दूसरे को जानने, उघाड़ने, एक-दूसरे के रहस्य को पहचानने की तीव्र आकांक्षा है।

मैं कबीर पर बोला, फरीद पर बोला, नानक पर बोला, बुद्ध, महावीर और सैकड़ों मुक्तपुरुषों पर बोला, वह बात एकसुरी थी। आज दूसरे स्वर को जोड़ता हूँ। इस दूसरे स्वर को समझने के लिए, उस पहले स्वर ने तुम्हें तैयार किया है। क्योंकि एक बड़ी अनूठी घटना घटती है : पुरुष भी जब मुक्ति के आखिरी सोपान पर पहुँचता है, तो स्त्री जैसा हो जाता है, स्त्रीवत् हो जाता है। यही तो दादू ने कहा, कि 'आशिक माशूक हो गया।' जो प्रेमी था, अब प्रेयसी हो गया। और फरीद अपने से ही कहता है कि बहन, अगर तू ऐसा कर कि उस एक सच्चे की ही आस तुझमें रह जाए, तो प्यारा बहुत दूर नहीं है।

अगर तुम बुद्ध के जीवन को समझो, तो तुम बुद्ध के जीवन में वैसी स्त्रैणता पाओगे जैसी श्रेष्ठतम स्त्री में कभी-कभी उपलब्ध होती है--वही सुकोमल भाव पाओगे। कहो उसे करुणा, लेकिन अगर गहरे में झाँक कर देखोगे तो पाओगे, वह करुणा बुद्ध के भीतर जनम रही नयी स्त्री का अनुसंग है, छाया है। महावीर में तुम उसे अहिंसा की तरह पाओगे। लेकिन जब भी कोई पुरुष मुक्त होगा, तो अचानक तुम पाओगे उसके जीवन में बड़ा स्त्रैण माधुर्य आ गया। ये सभी गुण जिनकी फरीद ने चर्चा की--धीरज, शील--ये सभी गुण स्त्रैण हैं। शील स्त्रैण गुण है, बहुत सुकोमल है। और धीरज--धैर्य--स्त्रैण गुण है।

पुरुष में धैर्य नहीं है। पुरुष बड़ा अधीर है, सदा जल्दी में है। अगर पुरुष को बच्चे पालने पड़ें, तो संसार में बच्चे नहीं बचेंगे--उतना धैर्य नहीं है। अगर पुरुष को गर्भ सँभालना पड़े, तो गर्भपात ही गर्भपात हो जाएँगे संसार में; कोई पुरुष गर्भ सँभालने को राजी न होगा--नौ महीने की प्रतीक्षा किसे हो सकती है? पुरुष

जल्दी में है, तेजी में है। समय का उसे बड़ा बोध है।

स्त्री अनंत में जीती है, पुरुष समय में जीता है।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान था। हम दोपहर के विश्राम के बाद बैठकर गपशप कर रहे थे--बिस्तर पर ही बैठे हुए थे--कि पत्नी ने झाँका और उसने कहा कि 'सुनो जी, बच्चों को सँभालना, मैं थोड़ा डॉक्टर के पास जाती हूँ, दाँत निकलवा आऊँ।' मुल्ला उछलकर खड़ा हो गया, कोट में हाथ डाल लिया और बोला, 'ठहरो फज़्लू की माँ, तुम्हीं बच्चों को सँभालो, दाँत मैं निकलवा आता हूँ।' बच्चों को सँभालना ऐसा उपद्रव है! उतना धैर्य पुरुष के पास नहीं। बच्चे को बड़ा करना तो बहुत मुश्किल होगा--बीस-पच्चीस वर्ष लगते हैं, तब कहीं कोई बच्चा अपने पैरों पर खड़ा हो पाता है।

धैर्य स्त्री के लिए सुगम है, पुरुष के लिए साधना है। इसीलिए फरीद कहते हैं, 'धैर्य साधो।' स्त्री-मन को लगेगा, इसमें साधने जैसा क्या है? यह मैं तुम्हें फर्क समझा रहा हूँ। स्त्री-मन को लगेगा, धैर्य में साधने जैसा क्या है? धैर्य तो है ही। फरीद कहते हैं, 'शील साधो'। स्त्री को लगता है, शील न हो तो बात ही क्या हुई! शील तो स्वभाव है।

स्त्री को अगर साधना हो, तो शील को तोड़ना साधना पड़ता है। शील उसे सहज आता है। जैसे वृक्षों में पत्ते आते हैं, ऐसे स्त्री में शील आता है। शीलवान पुरुष खोजना जरा मुश्किल होता है। शीलहीन स्त्री भी खोजनी ज़रा मुश्किल होती है। स्त्रियाँ अगर शील खोती हैं, तो पुरुषों के प्रभाव में खो देती हैं, और पुरुष अगर शील को उपलब्ध होते हैं, तो स्त्रियों के प्रभाव में उपलब्ध होते हैं। जो पुरुष के लिए बड़ी तपश्चर्या से मिलता है, वह स्त्री को जनम से मिलता है। कुछ और बातें हैं जो पुरुष को जनम से मिलती हैं, स्त्री को नहीं मिलतीं।

अगर स्त्री को सैनिक बनना हो, तो बड़ी तपश्चर्या से गुजरना पड़ेगा; लेकिन साधु बनने के लिए किसी तपश्चर्या से नहीं गुजरना पड़ेगा। अगर स्त्री को युद्ध के मैदान पर जाना हो तो बड़ी तैयारी करनी होगी, बड़े प्रशिक्षण से गुजरना होगा; लेकिन अगर मंदिर में जाकर प्रार्थना करनी हो, पूजा करनी हो, अर्चना करनी हो, तो उसे किसीसे भी सीखने की जरूरत नहीं है। तुम छोटी सी बच्ची को मंदिर ले जाओ, और जैसे वह जनम से जानती है कि मंदिर में कैसे झुकना। और तुम लड़के को ले जाओ, तुम उसकी गर्दन झुकाओ, वह खड़ा हो-हो जाता है। झुकना उसे आता नहीं। झुकना बात जँचती नहीं। झुकाना चाहेगा, झुकना न चाहेगा।

पुरुष के लिए संघर्ष स्वाभाविक है, युद्ध स्वाभाविक है।

पुरुष जीतने का एक ही रास्ता जानता है--संघर्ष।

स्त्री जीतने का एक दूसरा रास्ता जानती है--समर्पण।

पुरुष जीत कर भी हार जाता है, स्त्री हार कर भी जीत जाती है : ऐसा उनका भेद है, और सुंदर है। विपरीत भी जाते हैं, फिर भी उनमें एक गहरा तालमेल है। क्योंकि पुरुष जीत कर हारता है, स्त्री हार कर जीतती है, इसलिए दोनों में तालमेल भी हो जाता है--विरोध मिल जाते हैं, दोनों एक-दूसरे के साथ बैठ जाते हैं।

पुरुष भी जब मुक्ति के करीब पहुंचता है, तो उसमें स्त्रैण फूल खिलते हैं। और स्त्री जब मुक्ति के करीब पहुंचती है तब उसमें पुरुष जैसे फूल खिलते हैं।

इसे तुम थोड़ा समझ लो।

मैंने पहले भी कहा है, मैं फिर कहूँ, जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में एक स्त्री है। उसका नाम है मल्लीबाई। लेकिन दिगंबर जैन उसके नाम को मल्लीनाथ कर दिये, क्योंकि वे यह स्वीकार नहीं कर पाते कि कोई स्त्री मुक्त हो सकती है। स्त्री-पर्याय से मुक्ति है ही नहीं। तो, वे मानते ही नहीं कि मल्लीबाई मल्लीबाई थी, वे तो कहते हैं मल्लीनाथ। उनकी बात में भी थोड़ा अर्थ है। अर्थ यही है. कि जब कोई स्त्री मुक्ति के करीब पहुँचेगी, तो उसमें पुरुष जैसे फूल खिलेंगे। और जब कोई पुरुष मुक्ति के करीब पहुँचेगा, तो उसमें स्त्री जैसे फूल खिलेंगे।

ऐसा क्यों होता है ?

इसे जानने को थोड़ा मनुष्य के मन में प्रवेश करना पड़ेगा।

प्रत्येक के भीतर दोनों हैं। पुरुष के भीतर स्त्री छिपी है, स्त्री के भीतर पुरुष छिपा है। ऐसा होगा ही, क्योंकि प्रत्येक दोनों से पैदा होता है। तुममें तुम्हारी माँ ने भी आधा दान दिया है, तुम्हारे पिता ने भी आधा दान दिया है। तुम स्त्री नहीं हो सकते अकेले, तुम अकेले पुरुष भी नहीं हो सकते। स्त्री और पुरुष के संगम हो तुम। वहाँ दोनों आकर मिल गये हैं, उससे तुम्हारा निर्माण हुआ है। तो तुममें आधी स्त्री होगी, आधा पुरुष होगा।

फर्क क्या होगा फिर पुरुष और स्त्री में ?

फर्क इतना ही होगा : पुरुष में पुरुष ऊपर होगा, स्त्री भीतर छिपी होगी। स्त्री गहरे में होगी, पुरुष परिधि पर होगा। स्त्री में फर्क यह होगा, कि स्त्री में स्त्री ऊपर होगी, पुरुष नीचे दबा होगा। और जब तुम मुक्त होओगे, जब तुम्हारी चेतना अपने शांत केंद्र की तरफ वापस लौटेगी, तो जो छिपा है वह प्रकट होगा। जो प्रकट था वह तो था ही, अब तक जो छिपा रहा था वह भी प्रकट होगा। इसलिए पुरुष दादू कहता है : 'आशिक माशूक हो जाते हैं।' उस आखिरी घड़ी में

अचानक तुम पाते हो कि पुरुष तो मैं था, लेकिन अब कुछ नया घट रहा है; भीतर एक नया द्वार खुल रहा है जो अब तक बंद पड़ा था।

और स्वभावतः, जो अब तक प्रकट न हुआ था उसकी ताज़गी बड़ी होती है। जो अब तक प्रकट रहा, उस पर तो धूल जम गयी होती है। वह तो तुम जी लिए इतने दिन तक, वह तुम्हारे अनुभव का हिस्सा हो गया, उसका नावीन्य खो गया। जब छिपा हुआ अचानक प्रकट होता है, पुरुष में जब स्त्री प्रकट होती है--मुक्ति के क्षण के करीब, आत्मकेंद्र के करीब--तब पुरुष को बिलकुल आच्छादित कर लेती है। इसलिए बुद्ध पुरुष स्त्रैण हो जाते हैं; उनको ढाँक लेती है। बुद्धत्व को उपलब्ध स्त्रियों में बड़े पुरुष का भाव पैदा होता है। छिपा हुआ पुरुष एकदम प्रकट हो जाता है।

यह केंद्र के करीब की घटना है--करीब-करीब जब तुम बस आखिरी कदम के करीब हो। यह केंद्र की घटना नहीं है। अभी केंद्र से एक कदम का फासला है। परिधि पर नहीं हो अब, केंद्र पर भी नहीं पहुँचे हो--बस केंद्र के करीब आ गये, परिधि छोड़ दी। जो बीच में छिपा था वह प्रकट हो गया। अंतिम कदम में तो तुम न पुरुष रह जाओगे न स्त्री। केंद्र पर तो दोनों खो जाएँगे। वहाँ तो तुम्हारा रंग एक ही रह जाएगा : शुभ्र, सफेद। न तुम लाल होओगे, न तुम हरे होओगे--वहाँ इंद्रधनुष खो जाएगा।

जहाँ इंद्रधनुष खोता है, वहीं संसार खो जाता है।

फिर एक बचता है। उस एक को हमने एक भी नहीं कहा, क्योंकि एक कहने से भी दो का खयाल आता है। हमने उसे अद्वैत कहा। हमने इतना ही कहा, कि वह दो नहीं है। वहाँ फिर न कोई स्त्री है न पुरुष है।

हिंदुओं ने बड़ी हिम्मत की है। ब्रह्म को नपुंसकलिंग में रखा है--न स्त्री, न पुरुष; क्योंकि वहाँ तो दोनों ही खो जाएँगे। जीसस के वचनों में एक अजीब बात है; ईसाइयों को बड़ी कठिनाई होती है। जीसस बार-बार अपने शिष्यों से कहते हैं--'क्या तुम परमात्मा के लिए नपुंसक होना चाहोगे?' ईसाइयों को बड़ी कठिनाई होती है, यह भी क्या बात हुई! पर जीसस ठीक कह रहे हैं। आखिरी घड़ी में तो यही होगा, तुम दोनों न रह जाओगे। तुम दोनों के पार हो जाओगे, तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे।

मैं गयी रात, यहूदियों का एक शास्त्र 'मिदरेस' पढ़ रहा था। उसमें एक वचन आता है। वचन है : 'दॅ तोरा हैज़ टू पाथ्स'--धर्म के दो मार्ग हैं; 'वन इज़ ऑफ सनलाइट, एनॉदर इज़ ऑफ दॅ स्नो'--सूर्य का उत्तप्त और दूसरा है बर्फ का शीतल;

'इफ यू विल फॉलो दें फर्स्ट, यू विल डाइ ऑफ सन'——अगर तुम पहले मार्ग पर गये तो तुम सूर्य के ताप से मरोगे; 'इफ यू फॉलो दें सेकिंड, यू विल डाई ऑफ स्नो'——अगर दूसरे मार्ग से गये तो तुम बर्फ की ठंढक में मर जाओगे।

'व्हेंट टु डू'——तब करें क्या ?

तो 'मिदरेस' कहती है, 'वॉक बिटवीन दें टू'——दोनों के बीच चलो। वह बीच न पुरुष है, न स्त्री। अगर तुम पुरुष के मार्ग से गये तो तुम ताप से मरोगे; अगर तुम स्त्री के मार्ग से गये, तुम ठंढक से मर जाओगे। तब करें क्या ? दोनों के बीच चलें। पर वह घटना तो घटती है आखिरी बिंदु पर। जहाँ व्यक्ति केंद्र पर पहुँचता है वहाँ दोनों से मुक्त हो जाता है। सूर्य की किरण फिर सूर्य की किरण हो गयी, इंद्रधनुष आये और गये, संसार बना और मिटा; तुम फिर मूल पर वापस आ गये, उद्गम उपलब्ध हुआ।

स्त्रैण चित्त की थोड़ी सी बातें समझ लें फिर सहजो-वाणी को समझना आसान हो जाएगा।

पहली बात; स्त्रैण चित्त की अभिव्यक्ति ध्यान की नहीं है, प्रेम की है। उसे ध्यान प्रेम से ही उपलब्ध होता है। उसने ध्यान को भी प्रेम से ही जाना है। वह प्रेम से ही तरोबोर है। उसके लिए ध्यान का नाम प्रार्थना है।

पुरुष अकेला जी सकता है। वस्तुतः, पुरुष अकेला ही होना चाहता है। अहंकार संबंधित नहीं होना चाहता, क्योंकि संबंधित होने में झुकना पड़ता है, थोड़ी अकड़ छोड़नी पड़ती है, दूसरे के तल पर आना पड़ता है। मैत्री का अर्थ ही यही है, कि हम दूसरे को अपने समान मानें; और प्रेम का तो अर्थ यह है कि दूसरे को हम अपने से ऊपर मानें। तो युद्धशील पुरुष का मन मैत्री के लिए तैयार नहीं होता——प्रेम के लिए तो बहुत कठिनाई है——प्रार्थना तो असंभव है। प्रार्थना का तो अर्थ है, हम दूसरे के चरणों में सिर रख दें। पुरुष रखता भी है तो पूरे भाव से नहीं रखता, मजबूरी में रखता है। कोई और उपाय नहीं देखता, तो रखता है। असहाय हो जाता है, तो रखता है। बल से नहीं रखता, निर्बलता से रखता है। जीता हुआ नहीं रखता, हार जाता है तो रखता है। सौभाग्य नहीं मानता सिर झुकाने में। भीतर तो ऐसा ही लगता है कि कैसा अभागा क्षण आया !

पश्चिम की भाषाओं में समर्पण के लिए जो शब्द है उसमें वह भाव नहीं है जो पूर्व की भाषाओं में है। 'सरेंडर'——उससे खबर मिलती है कि तुम हार गये। पश्चिम में 'सरेंडर' का अर्थ होता है——किसी ने तुम्हें हरा दिया और झुका दिया। पूर्व में अर्थ होता है 'समर्पण' का——तुम हारे और झुके, किसी ने झुकाया नहीं।

पश्चिम की भाषाएँ पुरुष से प्रभावित हैं, बहुत ज्यादा। पूर्व की भाषाएँ, स्त्री से बहुत प्रभावित हैं। इसलिए पूर्व की भाषाओं में जितना महत्वपूर्ण है वह तुम सब स्त्रैण पाओगे। ममता, करुणा, अहिंसा, दया, प्रार्थना, पूजा, अर्चना सब स्त्रैण शब्द हैं। जो भी सुकोमल है, माधुर्य से भरा है, उसे हमने स्त्रैण शब्द दिया है; उसमें कुछ स्त्रीका गुण है।

पुरुष योद्धा है, स्त्री समर्पिता।

पुरुष के लिए ध्यान, तप, साधन, योग आसान है; स्त्री के लिए प्रेम, प्रार्थना, पूजा, अर्चना।

पुरुष 'ऐब्स्ट्रैक्ट' शब्दों को बड़ा मूल्य देता है–आकाशी शब्द–यथार्थ नहीं, जिन्हें छुआ जा सके, जिन्हें हाथ में पकड़ा जा सके। नहीं, वह दूर की बातें करता है, आकाश की बातें करता है। स्त्री बहुत यथार्थवादी है, वह निकट की बात करती है, पड़ोस की बात करती है। तुम स्त्रियों की बात सुनो: पड़ोस में क्या हो रहा है, इसकी चर्चा होगी। तुम पुरुषों की बात सुनो——वियतनाम में क्या हो रहा है, इज़राइल में क्या हो रहा है! स्त्री को यह बात जँचती नहीं। इतने दूर की भी क्या बात! इससे लेना-देना नहीं कुछ। पुरुष को यह बात नहीं जँचती, कि पड़ोस की स्त्री किसी के साथ भाग गयी; इसमें इतना क्या है? इसमें क्या रखा है, चलता रहता है पड़ोस में यह सब! असली घटनाएँ इज़राइल में घट रही हैं, अमेरिका में घट रही हैं, वियतनाम में घट रही हैं——सारी दुनिया पड़ी है, इतनी बड़ी पृथ्वी पड़ी है। और पुरुष का मन इससे भी नहीं भरता, वह कहता है चाँद पर जाना है, मंगल पर जाना है। स्त्री सदा सोचती है कि करोगे क्या चाँद पर, मंगल पर जाकर! ज्यादा अच्छा हो, थोड़े घर के बगीचे को सुधार लो, लॉन की घास बढ़ गयी है उसे काट लो, घर गंदा है इसकी सफाई कर लो, चाँद पर जाके क्या करोगे? दूर, जो बहुत दूर है——सुदूर है, वह स्त्री को नहीं भाता। उसे निकट चाहिए——वह माँ है, वह पत्नी है और पृथ्वी है! उसे निकट, और करीब, और यथार्थ!

मनुष्य-मनुष्य में यहाँ बड़ा भेद है। स्त्री-पुरुष में यहाँ बड़ा भेद है। पुरुष कहेगा——मातृभूमि, स्त्री कहेगी——अपना घर! पुरुष कहेगा——मनुष्यता, मानवता; स्त्री कहेगी——मेरा बेटा, मेरा पति, मेरा भाई! स्त्री की सीमा परिवार पर पूरी हो जाती है। स्त्री छोटे दीये की तरह है, जो अपने चारों तरफ थोड़ी सी दूर तक प्रकाश डालता है। उस प्रकाश का परिवार है। पुरुष टार्च की तरह है। अपने आसपास कुछ प्रकाश नहीं डालता, लेकिन बड़ी दूर तक उसकी किरण ...., दूर की चीज़ देखने की उत्सुकता है।

पुरुष दूरदृष्टि है, स्त्री निकटदृष्टि है।

इसका यह अर्थ हुआ कि पुरुष जब परमात्मा की बात करता है, तब गुरु की बात करती है स्त्री; क्योंकि परमात्मा तो बहुत दूर, गुरु बहुत पास। परमात्मा तो हो सकता है सिर्फ एक प्रत्यय, एक धारणा, एक शब्द हो! किसने जाना, किसने देखा? लेकिन गुरु बहुत यथार्थ है, उसके चरण हाथ से पकड़े जा सकते हैं। परमात्मा के चरण कहाँ पकड़ोगे? स्त्री के लिए गुरु ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, परमात्मा से भी।

सहजो का वचन बड़े नास्तिक का मालूम पड़ता है--'राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ'। परमात्मा को छोड़ सकती हूँ, मुझे कुछ अड़चन नहीं है राम के त्यागने में, लेकिन गुरु को छोड़ना असंभव है। पुरुष को यह कहने में थोड़ी सी हिचक होगी। वह कहेगा कि गुरु को तो छोड़ना ही है, परमात्मा को ही पाना है; एक दिन तो गुरु को छोड़ना ही पड़ेगा, और परमात्मा से मिलन करना होगा। स्त्री कहेगी, अगर परमात्मा को ही मिलना है तो गुरु में ही आ जाए; और इसे छोड़ने का कोई उपाय नहीं है।

गुरु को छोड़कर परमात्मा नहीं पाना है, गुरु में ही परमात्मा पाना है। यह यथार्थ की पकड़ है, क्योंकि गुरु करीब है, वास्तविक है। तुम्हारी जैसी उसकी देह है, तुम्हारे जैसी उसकी वाणी है, तुम्हारी जैसी उसकी आँख है। तुमसे वह ज्यादा है, लेकिन तुम जैसा तो है ही। वह 'प्लस' भी है, उसमें कुछ धन भी है, तुमसे कुछ ज्यादा भी है, लेकिन तुम जैसा तो निश्चित है।

परमात्मा बिलकुल तुम जैसा नहीं है। वह कितना ही ज्यादा हो, लेकिन उस पर कोई पकड़ नहीं बैठती, उसको छूने का कोई उपाय नहीं है। अगर तुम पुरुषों की वाणी सुनो, तो वे कहेंगे--'अव्यक्त, निराकार, निर्गुण।' न कभी किसी ने देखा, न कभी किसी ने सुना, न कभी किसी ने छुआ। वहाँ से शब्द लौट आते हैं, हाथ के पहुँचने का तो सवाल क्या! आँख उसे देख नहीं सकती--वह कोई वस्तु नहीं है, पदार्थ नहीं है, उसका कोई रूप नहीं है। वह निराकार, निर्गुण अस्तित्व है। कहाँ है, मत पूछो! सब कहीं है।

स्त्री को ये बातें कोरी मालूम पड़ती हैं, ये शब्द मालूम पड़ते हैं बड़े-बड़े। इनके भीतर सचाई नहीं मालूम पड़ती। स्त्री कहती है, वह सगुण हो तो ही भरोसे के योग्य है। उसमें आकार हो, तो ही हमें भरोसा बैठेगा। क्योंकि स्त्री प्रेम करना चाहती है, ध्यान नहीं।

इस फर्क को समझो।

जिस पर ध्यान करना हो वह निराकार हो तो भी चलेगा। अगर आकार हो उसका, तो ध्यान में बाधा पड़ेगी। लेकिन जिसे प्रेम करना हो उसका आकार न हो, कैसे प्रेम करोगे? गले कैसे लगाओगे उसको? कैसे पुकारोगे उसे अपने हृदय के पास? वह निराकार है। यह निराकार शब्द बिलकुल कोरा मालूम पड़ेगा। इससे कोई भक्ति तो उठेगी नहीं, इससे कोई प्रेम का आविर्भाव न होगा। यह इतना बड़ा है कि इस पर पकड़ छूट जाती है। इसमें डूब सकते हो, लेकिन इसे प्रेम कैसे करोगे? इसमें मिट सकते हो, मर सकते हो, लेकिन इसके साथ जियोगे कैसे? भक्त कहता है: नहीं, सगुण है। सभी गुण उसके हैं, वह कहता है। आकार है उसका। सभी आकार उसके हैं। फूल में, पत्ते में, पहाड़ में, झरने में उसने ही आकार लिए हैं। स्त्रैण चित्त आकार के पार जाना नहीं चाहता, जाने की जरूरत भी नहीं है। पुरुष-चित्त को आकार में बंधन लगता है।

इसे तुम समझना--

पुरुष को प्रेम में भी बंधन लगता है, स्त्री को प्रेम में मुक्ति लगती है। पुरुष प्रेम में भी पड़ता है तो सोचता है, कहाँ बंधन में पड़ रहा है! स्त्री प्रेम में पड़ती है तो वह कहती है, ये बंधन प्यारे हैं, क्योंकि इन्हीं ने मुझे मुक्त किया। अब यह भाषा, बड़ी दुनिया अलग-अलग है इन दो भाषाओं की।

स्त्री के लिए प्रेम मुक्ति, पुरुष के लिए प्रेम बंधन।

पुरुषों ने ही गढ़े होंगे बहुत से शब्द। मेरे पास निमंत्रण आ जाते हैं, किसी पिता का निमंत्रण आता है, कि 'मेरा बेटा प्रणय-बंधन में बँध रहा है'। काहे के लिए बँध रहा है प्रणय-बंधन में! 'विवाह-बंधन में बँध रहा है, आपका आशीर्वाद चाहिए!' बंधन में बँधने के लिए किसके लिए आशीर्वाद की जरूरत है! कारागृह में जा रहा है, न जाए तो अच्छा। लेकिन पुरुष की भाषा में विवाह बंधन है! और वह हमेशा सोचता है--भागो, भागो, घर छोड़ो! हिमालय जाओ!! गृहस्थी छोड़ो!!! रहता भी है, तो भी बेमन से रहता है। ऐसा कि मजबूरी, क्या करे! जा नहीं सकते--बच्चे हैं, पत्नी है, बड़ा बंधन है, उत्तरदायित्व है। स्त्रियों ने कभी इस तरह के संन्यास की बात नहीं की: कि छोड़ो, भागो, हिमालय जाओ। स्त्री ने जहाँ है वहीं, आसपास अपने, परमात्मा को खोजने की कोशिश की है। निकट में उसे पाने की कोशिश की है।

उपनिषद् कहते हैं--'परमात्मा दूर से भी दूर, पास से भी पास है।'

इसमें मैं जोड़ देना चाहूँगा: 'पुरुष के लिए दूर से दूर, स्त्री के लिए पास से पास है।'

इसलिए पुरुष को हँसी आती है : कृष्ण की मूर्ति लिए बैठी है स्त्री । सजाती है, गहने पहनाती है, मुकुट लगाती है, मोर-मुकुट बाँधती है, मोर-पंख लगाती है । आँख से आँसू बहते हैं, आनंदविभोर होकर नाचती है । पुरुष हँसता है : पागलपन है । पुरुष जंगल जाता है, सब छोड़कर भाग जाता है, धूनी रमाता है, आग जलाता है, वृक्षों के नीचे अकड़कर बैठा रहता है । स्त्री को लगता है : दिमाग खराब हो गया । यह बिलकुल स्वाभाविक है दोनों का लगना । दोनों के ढंग-आयाम अलग हैं । इसलिए मैंने कहा एक नयी यात्रा शुरू होती है ।

सहजो अकेली स्त्री नहीं होगी जिस पर मैं बोलूँगा, पर शुरुआत उससे होती है क्योंकि उसमें स्त्री बड़े परिशुद्ध रूप में प्रकट हुई है । यह भी तुम से कह दूँ इसके पहले उसके वचनों में हम उतरें, कि जैसे मैंने कहा : पुरुष मुक्त होकर भी जब स्त्रैणभाव से भरते हैं, और जब स्त्रैणभाव की चर्चा भी करते हैं; तब भी वह जो चर्चा पूरी नहीं हो पाती, अधूरी ही रहती है--आखिर फरीद फरीद है, लाख कहे बहन ! जब फरीद बहन कह रहा है तब भी भीतर भाई है । वह जानता तो है कि भाई है । अगर अचानक तुम फरीद से आकर कह दो कि बहन क्या कर रहो हो, तो वह भी नाराज हो जाएगा, 'कि आप ...., दिखायी नहीं पड़ता ?' वह खुद कह रहा है, चलता है ! तुम मत कहना । कितनी ही कोशिश फरीद करे, लेकिन पुरुष पुरुष है । उसे जब स्त्रैणभाव आता है तब वह भी उसे बाहर से घेरता है, ऐसा लगता है जैसे बादलों ने घेर लिया । घिर जाता है, झुक जाता है; लेकिन फिर भी गहरे में तुम उसे पाओगे कि पुरुष पुरुष है । उसके झुकने में भी तुम एक तरह की अकड़ पाओगे । रस्सी जल भी जाती है तो भी अकड़ थोड़ी मिट जाती है । राख हो जाती है तो वह राख में भी अकड़ के निशान बने रहते हैं । यह स्वाभाविक है, ऐसा होगा ही ।

बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हो गये, फिर भी वह स्त्रियों को दीक्षित नहीं करना चाहते थे । ज्ञान को उपलब्ध हो गये—कोई कमी न रही; उन्होंने यह भी जान लिया कि न कोई स्त्री है, न कोई पुरुष है--फिर भी भेद रहा, फिर भी बाहर के लिए फर्क रहा । स्त्रियों ने जब आज्ञा चाही--कि हमें भी दीक्षित करें, तो वे झिझके । यह झिझक उस रस्सी की है, जो जल गयी, अब बची नहीं है; लेकिन फिर भी पुरानी रूप-रेखा बची है । एक क्षण को झिझक गये, कि स्त्रियों को दीक्षा देने से उपद्रव होगा । यह उपद्रव का खयाल ही बुद्ध को आया—इसीलिए आया—कि उन्हें अपने पुरुष होने की स्मृति है, अभी भी । रस्सी जल गयी है, निशान रह गये हैं । वे जानते हैं कि स्त्रियों को दीक्षा देने से स्त्रियाँ और पुरुष साथ-साथ होंगे—

उपद्रव होगा । आकर्षण बढ़ेगा, पुरुष स्त्री के प्रेम में पड़ेंगे; और पुरुष अगर अपने को बचायें भी तो भी मुश्किल होगी, क्योंकि स्त्रियाँ प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकतीं । पुरुष भागेंगे भी तो बहुत अर्थ न होगा । और स्त्री के जीतने के ढंग ऐसे हैं, वह इतनी कुशलता से—बिना शोर-शराबा किये, बिना हथियार, अस्त्र-शस्त्र उठाये—इस तरह हरा देती है कि कठिन होगा । कभी कोई भिक्षु बीमार होगा तो स्त्री उसका सिर दबा देगी, उसका पैर दबा देगी । लेकिन उसके सिर दबाने और पैर दबाने में प्रेम का, राग का एक स्वर उठने लगेगा । शायद स्त्री ने यह जानकर दबाया भी न था सिर, कि इससे कोई राग पैदा होगा । सोचा भी न था, यह भाव में भी न था; पर यह सवाल नहीं है, होगा । यह भिक्षु इस स्त्री के प्रति कोमल हो जाएगा । इस भिक्षु के स्वप्नों में यह स्त्री उतरने लगेगी । कभी-कभी यह भिक्षु ऐसे ही लेट जाएगा, सिर में दर्द न होगा तो भी, कि उस स्त्री के कोमल हाथ इसे छू दें । धीरे-धीरे यह आकांक्षा गहरी हो जाएगी ।

तो बुद्ध डरे । वह डरा कौन ? वह पुरुष—जो जा चुका है, जिसकी राख रह गयी है—वह डरा । लेकिन जब बहुत आग्रह किया गया, तो बुद्ध झुके । उन्होंने कहा ठीक है, लेकिन बड़े बेमन से झुके । उन्होंने कहा कि मेरा धर्म हजारों वर्ष रहता, अब पाँच सौ वर्ष से ज्यादा न रह सकेगा । क्योंकि जहाँ स्त्री-पुरुष पास-पास होंगे वहाँ घर बसेगा ।

और बुद्ध का संन्यास तो पुरुष का संन्यास है--वह घर के विपरीत है । वह भिक्षु का संन्यास है, वह जंगल जानेवाले का संन्यास है--वह परिवार के विपरीत है । उन्होंने कहा कि जहाँ स्त्री होगी, वहाँ जल्दी ही वह परिवार बसाना शुरू कर देगी ।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर दुनिया में पुरुष की चलती तो घर नहीं होते--टेन्ट, तम्बू ज्यादा से ज्यादा । लोग अपना तम्बू लेकर, जैसे कि खानाबदोश घूमते हैं, ऐसे घूमते ।

घर बसाना पुरुष को जँचता ही नहीं । वह एक जगह बसना भी नहीं चाहता, उसका चित्त बड़ा चंचल है । वह कहता है, देखो दुनिया को--जाओ यहाँ, जाओ वहाँ । स्त्री की समझ में नहीं आता, कि कहाँ जा रहे हो ! किसलिए जा रहे हो !! घर में आनंद है--शांति से बैठो । उसको चैन नहीं है । वे चले लायंस-क्लब, रोटरी-क्लब, पूना-क्लब--वे भागे । घर लौटे हैं दिनभर के थके-माँदे, वे कहते हैं, अब विश्राम के लिए क्लब जा रहे हैं । दुकान से नहीं छूटे तो क्लब, क्लब से नहीं छूटे तो पार्टी, पार्टी से नहीं छूटे तो राजनीति, राजनीति से नहीं

छूटे तो कुछ ....। कुछ न कुछ चाहिए उपद्रव ! स्त्री को समझ में नहीं आता कि शांति से आदमी घर में क्यों नहीं बैठ सकता ! वह पुरुष का गुण नहीं है, घर स्त्रियों ने बसाये हैं। इसीलिए हिंदी में, ठीक ही है, कि हम स्त्री को घरवाली कहते हैं। पुरुष को कोई घरवाला नहीं कहता, वह है भी नहीं। वह शब्द उनके लिए मौजूं नहीं है। घर तो स्त्री है, उस खूंटे से पुरुष बँध जाता है। प्रेम के कारण रुक जाता है; अन्यथा वह भागा-भागा रहेगा।

सारी सभ्यता स्त्री के आधार पर बनी है। क्योंकि घर ही न हों तो नगर न होंगे, नगर न हों तो सभ्यता खो जाएगी। पुरुष खानाबदोश हो सकता है--बलूची --बस उस तरह का खानाबदोश हो सकता है। इसलिए, तुमने गौर किया कि बलूचियों की स्त्रियों में पुरुष-गुण आ गये हैं। बलूची की स्त्री से तुम्हारा पुरुष भी न लड़ पाएगा। बलूची की स्त्री तुम्हारे पुरुष से भी ज्यादा मजबूत है। वह अगर हाथ पकड़ लेगी तो तुम हाथ न छुड़ा पाओगे। स्वाभाविक है कि उसमें पुरुष-गुण आ गये, क्योंकि वह पुरुष के साथ चल रही है खानाबदोश बनकर। डेरा-डंगल रोज बदल लेता है। आज यहाँ, कल वहाँ, परसों वहाँ। इस संघर्ष में गुजरने के कारण बलूची की स्त्री मजबूत हो गयी है। तुम्हारे घर में बँध जाने के कारण तुम्हारा पुरुष कमजोर हो गया है। वह स्त्रियों जैसा हो गया है, बलूची की स्त्री पुरुषों जैसी हो गयी है। जीवन का जो ढंग होता है वह प्रभावित करता है। वह संस्कारित करता है।

पुरुष और स्त्री दो आयाम हैं। और दोनों के भेद को बारीकी से पहचान लोगे तो सहजोबाई के पद स्पष्ट हो जाएँगे। तुम पुरुष के ढंग से उन्हें मत समझने की कोशिश करना। तुम भूल ही जाना कि तुम कौन हो, अन्यथा तुम्हारी धारणा बीच में बाधा देगी।

'राम तजूं पै गुरु न बिसारूँ।' यह सिर्फ स्त्री ही कह सकती है। क्योंकि राम तो दूर की धारणा है, कौन जाने हो, न हो ? किसने देखा ? राम वहाँ आकाश में है भी या नहीं ? तो राम को हम छोड़ सकते हैं, निराकार को छोड़ सकते हैं, पर गुरु को नहीं छोड़ सकते हैं। गुरु तो आकार में है, यहाँ मौजूद है--छुआ जा सकता है, देखा जा सकता है, उसके शरीर की गंध मिलती है, उसकी आँख से आँख में झाँका जा सकता है, उसके हाथ को हाथ में लिया जा सकता है, उसके पैर दबाये जा सकते हैं--उससे हमारा कोई सेतु है, वह यथार्थ है। 'राम तजूं पै गुरु न बिसारूँ'--बड़ी हिम्मत की बात है, सिर्फ स्त्री कह सकती है। फरीद भी थोड़े कँपेंगे, कबीर भी थोड़े डरेंगे; वे कहेंगे 'राम तजूं'? अगर इस बात को भी

कहेंगे, तो किसी और ढंग से कहेंगे, सीधा न कह सकेंगे। स्त्री दो-टूक है। वह ज्यादा लंबे-चौड़े वक्तव्यों में, और गोल-गोल वक्तव्यों में नहीं उलझती। वह सीधी बात कह देती है। तर्क का वहाँ जाल नहीं है, वहाँ हृदय की सीधी अभिव्यक्ति है; फिर राम को बुरा लगेगा या नहीं, यह भी सवाल नहीं है।

'राम तजूं पै गुरु न बिसारूँ, गुरु को सम हरि को न निहारूँ।' न, गुरु के मुकाबले अब हरि को न निहार सकूँगी। गजब की बात है ! परमात्मा को भी, सहजो कह रही है, कि मैं गुरु के मुकाबिले न रख सकूँगी, इसी सिंहासन पर तुम्हें न बिठा सकूँगी। तुम होओगे भले, तुम होओगे सुंदर, तुम्हीं ने बनाया होगा संसार, माना। लेकिन गुरु के मुकाबिले तुम्हें न बिठा सकूँगी। गुरु परमात्मा के ऊपर। पुरुषों ने भी हिम्मत की है, तो ज्यादा से ज्यादा गुरु को परमात्मा के करीब ला सके हैं, उससे ऊपर नहीं ले जा सके। कबीर ने कहा है : गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पायँ !' सवाल उठ गया है, किसके पैर छुऊँ, दोनों सामने खड़े हैं ! 'बलिहारी गुरु आपकी, गोबिंद दियो बताय'—तो मैं गुरु के ही पैर लगता हूँ। लेकिन कारण क्या है पैर लगने का ? क्योंकि, तुम्हारी बलिहारी तुमने गोबिंद को बता दिया। असली बात तो गोबिंद है। पैर गुरु के लग रहे हैं वे, लेकिन बताने का...। पैर लगने का कारण क्या है ? कारण यह है, कि तुमने गोबिंद बता दिया, तुम्हारे बिना गोबिंद का पता न चलता, इसलिए तुम्हारे पैर छूते हैं--तुम साधन हो। गोबिंद साध्य है। ऐसे उन्होंने पैर तो गुरु के ही छुए, लेकिन इशारा साफ कर दिया कि गोबिंद गुरु के ऊपर है। बड़ी होशियारी की कबीर ने। बड़ी राजनीति की। दोनों को राजी कर लिया। गुरु के पैर लग गये, और कह दिया, कि तूने गोबिंद को बताया इसलिए तेरे पैर लगते हैं। तो पैर लगकर गुरु को राजी कर लिया, गोबिंद को भी नाराज नहीं किया, बल्कि गोबिंद को भी प्रसन्न कर लिया—कि 'लगता तो मेरे ही कारण है पैर'। सहजो जो कह सकती है वह कबीर न कह सके।

'गुरु को सम हरि को न निहारूँ'। न, तुम्हें रख सकती हूँ पूजा में, लेकिन गुरु के समान नहीं रख सकती। तुम्हें उसी सिंहासन पर न बैठा सकूँगी। जहाँ भी स्त्री ने प्रेम देखा, वहीं परमात्मा है। फिर और कोई परमात्मा को उससे ऊपर नहीं रख सकती, असंभव है--क्योंकि प्रेम से ऊपर कुछ भी नहीं रखा जा सकता।

कारण वह देती है, कारण बड़े प्रीतिकर हैं :

'हरि ने जनम दियो जग माहीं।' समझना; कबीर ने भी कारण बताया कि मैं गुरु के पैर क्यों लग रहा हूँ : क्योंकि तुमने 'गोबिंद बताया।' सहजो भी कारण

दे रही है, कि तुम्हें मैं गुरु के समान न रख सकूँगी, यह साफ कहे देती हूँ। कारण यह है : 'हरि ने जनम दियो जग माहीं'––तुमने मुझे संसार में भेजा। इसके लिए कोई बड़ा आभार प्रकट करने की जरूरत नहीं है। 'गुरु ने आवागमन छुटाहीं'–– और गुरु ने मेरा संसार छुड़ा दिया। अब धन्यवाद किसको दूँ? तुम्हें या गुरु को? तुमने किया क्या? मुझे इस अंधकारपूर्ण पथ पर अकेला भेज दिया; इस अनजान, बेबूझ राह पर पटक दिया––यही तुमने किया। गुरु ने क्या किया? उसने मुझे फिर से प्रकाश की राह पर लगाया, उसने फिर मुझे हाथ का सहारा दिया, जहाँ मैं अकेली थी वहाँ अकेले न रहने दिया। तुमने मुझे अकेला जंगलों में छोड़ दिया, वह मुझे वापस राजपथों पर लाया। तुम किस मुँह से सोचते हो कि तुम्हें मैं गुरु के ऊपर रखूँ। नहीं, 'राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु को सम हरि को न निहारूँ'। 'हरि ने जनम दियो जग माहीं'––ठीक है, यह स्वीकार है कि तुम्हीं जन्मदाता हो। लेकिन जन्म में पाया क्या? इस जीवन में मिला क्या? इस जीवन में सिवाय दुःख के, संताप के, पीड़ा के और कुछ तो उपलब्धि न हुई। इस दुःखों के बोझ के लिए तुम्हें धन्यवाद दूँ? स्त्री सुस्पष्ट है, पुरुष गोल-गोल जाता है। 'गुरु ने आवागमन छुटाहीं'।

'हरि ने पाँच चोर दिये साथा, गुरु ने लई छुटाय अनाथा'। तुमने पाँच चोर साथ लगा दिये थे, वही तुम्हारी कृपा है। अगर उसे कृपा कहें! पाँच इंद्रियाँ पीछे लगा दीं, वासनाओं का जाल लगा दिया, छूट-छूट के मुश्किल हो गयी, छूटना मुश्किल हुआ। तुमने बंधन में डाला, तुमने मुक्त नहीं किया। और तुमने अनाथ बना दिया था। तुम कहीं दूर छिटक गये, कौन मालिक है कुछ खबर न रही––इंद्रियों को ही मालिक समझ लिया, उनके ही पीछे दौड़ती रही, भागती रही। मृगमरीचिका में तुमने डाला। कितने मरुस्थलों में भटकाया। किस कारण, तुम सोचते हो कि तुम्हें गुरु से ऊपर रखूँ? गुरु ने मुझे छुड़ाया, मेरी अनाथ स्थिति से मुझे छुड़ाया, फिर मुझे सनाथ बनाया।

'हरि ने कुटुंब जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी'। तुमने तो मुझे फेंक दिया जाल में। ये बड़े प्रेमपूर्ण उलाहने हैं, यह परमात्मा से सीधी-सीधी बात है, इसमें कुछ दाँवपेंच नहीं है। यही कठिनाई है, स्त्री-पुरुष के बीच जब भी बातचीत होती है, तो बातचीत हो नहीं पाती। पुरुष दाँवपेंच से बात करता है, स्त्री सीधी बात करती है, संवाद भी नहीं हो पाता। क्योंकि पुरुष समझ नहीं पाता कि इतने सीधे कोई बात कैसे कही जा सकती है, और स्त्री समझ नहीं पाती कि इतना घुमाने की क्या जरूरत है––बात सीधी कहो! स्त्री की बात संक्षिप्त में पूरी हो

जाती है। पुरुष हजार ढंग से, जो कहना है उसे छिपाता है, और जो नहीं कहना है उसमें ढाँकता है।

'गुरु ने काटी ममता बेरी।' यह कोई बहुत बड़ा काव्य नहीं है। कबीर का काव्य, बात और है! फरीद के गीत की बात और है! सहजोबाई के ये वक्तव्य कोई बड़े काव्य नहीं हैं, इनमें कोई बड़ी कविता नहीं है। पर इसमें सीधी चोट है। इसमें कोई बड़ी लफ्फाजी नहीं है, कोई कला नहीं है। यह सीधी-सीधी बात है–– एक साधारण, शुद्ध हृदय स्त्री की बात है। 'हरि ने कुटुंब जाल में गेरी।' तुमने कुटुंब का जाल बनाया, परिवार बसाया, संसार दिया, और सब तरफ से मुझे घेर दिया था––उसमें मैं तड़पती थी, उसमें कहीं कोई शरण न थी। उसमें कहीं कोई छाया न मिलती थी, सिर्फ धूप ही धूप थी, तड़पन ही तड़पन थी। 'गुरु ने काटी ममता बेरी।' गुरु ने, ममता के वे जो झाड़-झंखाड़ तुमने खड़े किये थे, उन सबको काट दिया। नहीं, तुम मुझसे यह मत कहो कि मैं तुम्हें गुरु से ऊपर रख लूँ! 'गुरु को सम हरि को न निहारूँ।' वह मैं न कर सकूँगी, वह असंभव है मुझसे होना। मैं तुम्हें समान न निहार पाऊँगी। तुम नाराज़ मत होना––नाराजगी का कोई कारण नहीं है––क्योंकि यह सीधा-साधा जीवन का तर्क है।

'हरि ने रोग भोग उरझायौ, गुरु जोगी कर सबै छुटायौ।'

'गुरु ने काटी ममता बेरी'––ममता को हम थोड़ा समझ लें। यहीं तुम्हें फर्क धीरे-धीरे समझ में आने शुरू हो जाएंगे। पुरुष जब भी कहेगा, अगर वह परमात्मा से प्रार्थना भी करेगा, तो वह यही कहेगा : मुझे अहंकार से छुड़ाओ। क्योंकि पुरुष में अहंकार ही उसकी पीड़ा है। जब स्त्री कहेगी, तो वह कहेगी : मुझे ममता से छुड़ाओ. अहंकार स्त्री की पीड़ा नहीं है, ममत्व उसकी पीड़ा है––मेरा बेटा, मेरा पति, मेरा मकान, मेरी साड़ी, मेरा गहना––वह जो मेरा-भाव है। स्त्री के लिए अहंकार असली बीमारी नहीं है, मेरा-भाव––ममत्व––बीमारी है। पुरुष के लिए 'मैं', और स्त्री के लिए 'मेरा'। स्त्री का 'मेरा' कट जाए तो उसका मैं गिर जाता है, पुरुष का 'मैं' गिर जाए तो उसका मेरा कट जाता है। इसलिए पुरुष जब तक अहंकार से मुक्त न हो, तब तक ममत्व से मुक्त नहीं होता; स्त्री जब तक ममत्व से मुक्त न हो, तब तक अहंकार से मुक्त नहीं होती। इसलिए बात तो बड़ी सीधी और साफ है––'गुरु ने काटी ममता बेरी।' गुरु ने धीरे-धीरे समझाया, जगाया कि कोई मेरा नहीं है––मेरा झूठ है, मेरा एक सपना है, मेरा केवल मन में उठी तरंगें हैं––असलियत नहीं है। जन्म के साथ हम अकेले आते हैं––कोई 'मेरा' साथ नहीं होता। मृत्यु के साथ हम अकेले जाते हैं––कोई 'मेरा' साथ नहीं होता। मेरे की

बात ही संसार है। 'गुरु ने काटी ममता बेरी।'

'हरि ने रोग भोग उरझायौ।'

तीन शब्द समझ लें—रोग, भोग, योग। रोग ऐसी दशा का नाम है, आध्यात्मिक अर्थों में, जब व्यक्ति परमात्मा से बिलकुल टूट जाता है। इसलिए हम रोग का अर्थ अस्वास्थ्य करते हैं। अस्वास्थ्य शब्द को ठीक से समझोगे तो रोग का अर्थ समझ में आ जाएगा। अस्वास्थ्य का अर्थ है—जो स्वयं में स्थित न रहा। स्वस्थ का अर्थ होता है, 'स्व' में स्थिति, जो अपने में है, जो अपने स्वभाव में है—वह स्वस्थ। जहाँ तुम स्वभाव के बाहर गये—अस्वस्थ। अस्वास्थ्य रोग है।

रोग का अर्थ है : परमात्मा से सर्वाधिक दूरी।

यह तीन शब्द दूरी के मापदंड हैं—रोग : परमात्मा से अनंत दूरी; योग : परमात्मा से कोई दूरी नहीं—एकता; भोग : मध्य में है। रोग और योग के बीच में जो यात्रा है, वह भोग की है। कभी-कभी क्षण भर को परमात्मा से मिलन होता है—क्षण भर को मिलन होता है, वर्षों को छूटना हो जाता है—इसीको तुमने भोग कहा है। भोग का अर्थ होता है, भोजन किया, एक क्षण भर को स्वाद की झलक आयी, उस स्वाद में बड़ी तृप्ति लगी, उस तृप्ति के क्षण में तुम स्वभाव के करीब आए, तुम परमात्मा के करीब आए।

इसलिए तो उपनिषद् कहते हैं—'अन्नं ब्रह्म।' जब ऋषि भोजन करता है, तो परमात्मा के करीब ही आता है—अन्न के करीब नहीं। अन्न के द्वारा ब्रह्म को ही जानता है—'अन्नं ब्रह्म।'

तंत्र कहता है—'संभोग भी समाधि के करीब है।' तंत्र के शास्त्र कहते हैं—'विषयानंद ब्रह्मानंद सहोदर।' वह जो शरीर का संभोग है, वह भी ब्रह्मानंद का भाई है, सहोदर है, एक ही उदर से पैदा हुआ है। पर क्षण भर को—क्षण भर को, संभोग की किसी गहन अवस्था में, जब चित्त के विचार खो गये होते हैं, जब तुम्हारा नियंत्रण भी खो गया होता है; जब परमात्मा तुम्हें पकड़ लेता है, और तुम उसके ही हाथों में कँपते और डोलते हो—जैसे तूफान में उलझे हुए वृक्षों की पत्तियाँ डोलती हैं—जब तुम न तो मालिक होते हो, न नियंत्रक होते हो, न कर्ता होते हो : तुम संभोग के एक क्षण में, क्षण से भी छोटे क्षण में, डूब गये होते हो, खो गये होते हो—उस क्षण जो विषयानंद है, वह ब्रह्मानंद का सहोदर है। पर यह क्षण भर को होगा, फिर अनेक दिनों के लिए दूरी हो जाएगी। तो भोग करीब-करीब योग के आता है, फिर छटक कर रोग बन जाता है।

भोग क्षणभंगुर योग है, और फिर सदा के लिए रोग है।

सहजो कहती है, 'हरि ने रोग भोग उरझायौ।' तुमने या तो रोग दिया, ज्यादा से ज्यादा भोग दिया—इससे ज्यादा मैं तुम्हें न कह सकूँगी, कि तुमने कुछ और दिया। हाँ, कभी-कभी तुमने झलक दी। उस झलक से भी कुछ सुख न पाया, उससे दुःख और घना हो गया। घड़ी भर को सुख पाया, और बहुत घड़ियों के लिए दुःख पाया। तुमने भोग दिया, रोग दिया, इसमें कुछ बड़ी महिमा मत समझो।

गुरु ने, 'गुरु जोगी कर सबै छुटायो।' गुरु ने योग दिया—रोग और भोग से छुटकारा दिया। जिसको योग मिल गया, उसके मन से शरीर के भोग तो अपने आप खो जाते हैं। क्योंकि जब श्रेष्ठतर मिल जाए तो निकृष्ट अपने आप गिर जाता है। जब सार हाथ में आ जाए, तो असार को कौन पकड़ता है? जब हीरे-जवाहरात मिल जाएँ, तो कंकड़-पत्थर कौन बीनता है? योग को जिसने पा लिया, उसका भोग तो विदा हो जाता है। और जिसका भोग विदा हो गया, उसे परमात्मा से दूर जाने का कोई उपाय नहीं रह जाता। वही उपाय था, जो रोग तक ले जाता था। भोग वाहन था, वही रोग तक ले जाता था। भोग के विसर्जित होते ही रोग भी विसर्जित हो जाता है।

इससे यह मत समझ लेना, कि संतपुरुष कभी रोगी नहीं होते। संत पुरुषों को रोग पकड़ता है, लेकिन संत पुरुष कभी रोगी नहीं होते। रामकृष्ण कैंसर से मरे तो अनेकों के मन में संदेह उठता है! रमण महर्षि भी कैंसर से मरे। महावीर की मृत्यु गहरी पेट की बीमारी—पेचिश—से हुई। बुद्ध विषाक्त भोजन करने के कारण शरीर में विष फैल गया, उससे मरे। महावीर मरने के छः महीने तक पेचिश से बीमार रहे।

सवाल यह है, कि जो योग को उपलब्ध हो गये, क्या उनको भी रोग होता है? उन्हें तो रोग नहीं होता, लेकिन शरीर बड़ी अलग बात है। महावीर अलग, शरीर अलग। तुम्हें शरीर बहुत एक मालूम होता है तुम्हारे साथ। महावीर का शरीर से उतना ही फासला हो गया है, जितना रोग से। क्योंकि शरीर से जो भी संबंध था, वह भी भोग का ही संबंध था। जिस दिन योग को उपलब्ध हुए, वह संबंध भी टूट गया—शरीर अलग, आत्मा अलग—बीच के सब सेतु गिर गये। और इन सेतुओं के गिर जाने के कारण ही, कभी-कभी योगी पुरुषों का शरीर इतना रोग-ग्रस्त होता है, जितना साधारण भोगियों का नहीं होता। क्योंकि शरीर को जीवन की ऊष्मा मिलनी बंद हो जाती है। वह जो प्राणों का सहारा मिलता था, वह बंद हो जाता है। वह जो तुम्हारा साथ मिलता था शरीर को, वह मिलना बंद हो जाता है। अब शरीर अपने ही बल चलता है, आत्मा का कोई बल उसे नहीं

मिलता। बहुत लड़खड़ा जाता है। तो योगी पुरुष अक्सर बड़े रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। मगर वह तुम्हें दिखता है कि वे रोगों से ग्रस्त हैं, उन्हें नहीं दिखता। वे तो बिल्कुल रोगमुक्त हैं।

रमण को केंसर था। डॉक्टर कहते थे, महापीड़ा का कारण होना चाहिए। उन्हें किसी ने कभी उदास नहीं देखा। वे वैसे ही प्रसन्न रहे, उनका फूल वैसा ही खिला रहा—उसमें कोई भेद न पड़ा। उनके पास की गंध वैसी ही बनी रही, जैसे कुछ भी न हुआ है। चिकित्सक—बड़े-बड़े चिकित्सक—पास आते, वे कहते कि इस घड़ी में तो महान पीड़ा होती है—मॉर्फिया के इंजेक्शन देने पड़ें तो ही आदमी पीड़ा से बच सकता है। लेकिन इनको क्या है? ये परिपूर्ण होश में हैं, कहीं कोई भेद नहीं पड़ा है! जैसे केंसर कहीं दूर घट रहा है, अपने से कुछ लेना नहीं! जैसे किसी और को हुआ है!

रामकृष्ण के कंठ में केंसर था, भोजन जाना बंद हो गया था। पानी भी न पी सकते थे। एक दिन विवेकानंद ने पैर पकड़कर कहा, कि परमहंसदेव! पीड़ा हमसे नहीं देखी जाती। आपको नहीं है पीड़ा, हमें पता है। लेकिन हमसे नहीं देखी जाती—हम अज्ञानी हैं। आप हमारे लिए इतना करो कि माँ से प्रार्थना करो, तुम्हारे लिए नहीं कहते, हमारे लिए करो कि—'हमें पीड़ा न हो।' उन्होंने कहा, 'तो ठीक'। आँख बंद की, फिर खिलखिला कर हँसने लगे। उन्होंने कहा, कहा मैंने माँ को, लेकिन माँ ने कहा कि, 'इस शरीर से तो तू बहुत पानी पी चुका, और बहुत भोजन कर चुका। अब बाकी शरीरों से पानी पी और बाकी शरीरों से भोजन कर।' तब विवेकानंद, अब जब तू भोजन करेगा मैं तुझसे भोजन करूँगा, तेरे कंठ से पानी पियूँगा।

जिसका अपने शरीर से संबंध टूट गया, उसका सबकी आत्मा से संबंध जुड़ गया—वह ब्रह्म के साथ एक हो गया। उस एक होने का नाम 'योग' है। योग का अर्थ होता है: जुड़ जाना, एक हो जाना। जहाँ दो मिट जाते हैं और अद्वैत पैदा हो जाता है, वहाँ रोग तो असंभव है—भीतर का रोग। शरीर के रोग बहुत सभव हैं, थोड़े ज़रूरत से ज्यादा ही संभव हैं, क्योंकि शरीर बड़ा बेसहारा छूट जाता है। जीवन की आकांक्षा तो समाप्त हो गयी, जीने की कोई इच्छा न रही, जीने का कोई भाव न रहा। योगी तो ऐसे जीता है, कि ठीक है, जीना पड़ता है इसलिए जीता है। जबतक जीता है, जीता है; जिस क्षण साँस टूटेगी, तैयार है—अपनी तरफ से तो साँस लेनी छोड़ ही दी है—अब तो परमात्मा को ही लेनी हो तो लेता रहे। अब तो शरीर यंत्रवत् चलता है। शरीर के सहारे मिट जाते हैं,

और भीतर एक तरह की लापरवाही आ जाती है शरीर के प्रति, एक उपेक्षा आ जाती है, एक शून्यभाव पैदा हो जाता है—ममता टूट जाती है। तो कभी-कभी बड़े रोग पैदा हो जाते हैं। लेकिन भीतर तो रोग असंभव हो जाता है। भीतर तो रोग तभी तक संभव है, जब तक भोग संभव है। भोग की छाया है रोग, भोग का अनुगमन है रोग, भोग के पीछे छिपा आता है रोग।

कहती हैं सहजो, 'हरि ने रोग भोग उरझायौ, गुरु जोगी कर सबै छुटायौ।' नहीं, तुझे हम गुरु के साथ न रख सकेंगे।

'हरि ने कर्म भर्म भरमायौ।' सपने तूने दिये, कर्म का भाव दिया, कर्म की वासना दी, कर्ता का पागलपन दिया—नमालूम कितने भ्रमों में भरमाया, कितने जन्मों तक भटकाया। 'हरि ने कर्म भर्म भरमायौ, गुरु ने आतम रूप लखायौ।' गुरु ने जगाया, और कहा कि कर्म तू नहीं है, कर्ता तू नहीं है; कहा, तू तो मात्र अस्तित्व है। गुरु ने अपने प्रति जगाया, तूने दूसरी चीजों के प्रति वासना से भरा—कभी धन, कभी पद, कभी प्रतिष्ठा। तूने दौड़ाया—नमालूम कितने लक्ष्यों की ओर, गुरु ने सब लक्ष्य काट दिये, तीर को भीतर की तरफ मोड़ दिया। कहा, जाग और अपने को जान—'गुरु ने आतम रूप लखायौ।' नहीं, 'गुरु को सम हरि को न निहारूँ, राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ।'

'हरि ने मोसूँ आप छिपायौ'—और हद कर दी तूने! संसार में भटकाया, अपने को भी मुझसे छिपा लिया! 'हरि ने मोसूँ आप छिपायौ, गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ'—और गुरु ने दीया दिया: ध्यान का, प्रार्थना का, समाधि का। तेरे पर्दे हटाये। तू अंधेरे में छिपा था, रोशनी दी। गुरु ने तुझे प्रगट किया, गुरु ने तुझे आमने-सामने किया। 'हरि ने मोसूँ आप छिपायौ, गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ।' 'फिर हरि बंधि मुक्ति गति लाये।' तुमने ही संसार में बंधन और मुक्ति पैदा किये, तुमने ही बाँधने-छोड़ने का उपद्रव उठाया, जन्म और मरण दिये। 'गुरु ने सबही भर्म मिटाये।' यह वचन बहुत क्रांतिकारी है, इसे थोड़ा बारीकी से समझने की कोशिश करें। साधारणतः लोग सोचते हैं, जब बंधन मिट जाते हैं तो आदमी मुक्त हो जाता है। लेकिन जब बंधन मिट जाते हैं, तो वस्तुतः मुक्ति भी मिट जाती है; क्योंकि मुक्ति तो बंधनों का ही हिस्सा है। जहाँ जंजीरें गिर गयीं वहीं स्वतंत्रता भी गिर जाती है। स्वतंत्रता का खयाल तो जंजीरों के कारण पैदा होता है।

एक आदमी कारागृह में बंद है तो वह सोचता है, मुक्त कब हो जाऊँगा? तुमने कभी सोचा है कारागृह के बाहर, कि 'धन्यवाद परमात्मा कि हम मुक्त हैं!'

तुम कभी सोचते नहीं मुक्ति की बात, कारागृह में बँधा हुआ आदमी सोचता है : 'मुक्त कब हो जाऊँ?' बाहर था तब उसने भी न सोचा था--'मुक्त हूँ, बड़ा धन्यभागी हूँ।' बंधन से मुक्ति का भाव पैदा होता है। तो बंधन और मुक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

'फिर हरि बंधि मुक्ति गति लाये।' तुम ही बंधन और मुक्ति दोनों को लाये। 'गुरु ने सबही भर्म मिटाये।' गुरु ने सभी बंधन तो तोड़े ही, मुक्ति भी तोड़ डाली। वह भी एक भ्रम था। गुरु ने संसार से ही मुक्त न किया, मोक्ष से भी मुक्त कर दिया--गुरु ने परममुक्त कर दिया। अब कोई मोक्ष भी नहीं है।

साधारणतः, मनुष्य का मन द्वंद्व में सोचता है। तुम सोचते हो, संसार बंधन है, तो मोक्ष कहीं होगा; जब संसार छोड़ दोगे, तो मोक्ष की उपलब्धि होगी। लेकिन जिस दिन संसार छूट जाता है, उसी दिन मोक्ष भी छूट जाता है--और जब तक मोक्ष भी न छूट जाए, तब तक तुम मोक्ष को उपलब्ध ही न हुए। तुमने कभी खयाल किया, जब तुम बीमार पड़ते हो, तो स्वास्थ्य की कामना पैदा होती है। जब तुम स्वस्थ रहते हो, तब न तो बीमारी का पता चलता, और न स्वास्थ्य का। स्वास्थ्य का क्या कोई पता चलता है? सिर में दर्द होता है, तो सिर का पता चलता है। जब सिर में दर्द नहीं होता, तब तुम्हें सिर का पता चलता है? तुम्हें कभी पता चलता है कि सिर बिलकुल स्वस्थ है? जब सिर बिलकुल स्वस्थ होता है, तो सिर का पता ही नहीं चलता। स्वास्थ्य का पता कैसे चलेगा?

संस्कृत में दुःख के लिए जो शब्द है, वह 'वेदना' है। 'वेदना' बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है। उसके दो अर्थ होते हैं। उसका एक अर्थ होता है दुःख, और एक अर्थ होता है ज्ञान। उसी शब्द से तो वेद बना है, विद्--विद्वान--बना है। वेदना का अर्थ है ज्ञान, और वेदना का अर्थ है दुःख। सिर्फ दुःख का ही ज्ञान होता है। सुख का कोई ज्ञान होता है? इसलिए यह शब्द बड़ा कीमती है। तुम्हें जब सिर में दर्द होता है, तो सिर का पता चलता है। पैर में काँटा गड़ता है, तो पैर का पता चलता है। जीवन में पीड़ा होती है, तो जीवन का पता चलता है। अगर सब पीड़ा मिट जाए, कोई दुःख न हो, तो तुम्हें क्या पता चलेगा?

शरीर की परिपूर्ण स्वस्थ अवस्था 'विदेह' होगी--देह का भी पता न चलेगा। छोटे-बच्चों को देह का पता नहीं चलता, उन्हें पता ही नहीं होता कि देह भी है। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे मुसीबतें आती हैं, देह का पता चलना शुरू होता है। बूढ़े आदमी को पता चलता है देह का--उसको देह का ही पता चलता है--उठता है तो पता चलता है, बैठता है तो पता चलता है, भोजन करता है तो पता चलता

है, स्नान करता है तो पता चलता है, साँस लेता है तो पता चलता है। कोई बात करता है तो पता चलता है, क्योंकि कान ठीक से सुनते नहीं। कोई सामने आता है तो पता चलता है, क्योंकि आँख ठीक से देखती नहीं। वृद्ध को शरीर ही शरीर का पता चलता है। बच्चे को शरीर का कोई पता नहीं चलता। स्वास्थ्य का कोई ज्ञान नहीं होता। ज्ञान भी एक तरह की बीमारी है, बोध भी बीमारी का हिस्सा है। वेदना और वेद, दोनों एक ही चीज़ के दो पहलू हैं।

हरि ने तो मुक्ति दी, बंधन दिये; संसार दिया, मोक्ष दिया। 'गुरु ने सब ही भर्म मिटाये'--उसने संसार से तो छुड़ाया ही, मोक्ष से भी छुड़ाया।

'चरनदास पर तन मन वारूँ।'

सहजोबाई चरनदास की भक्त थी। चरनदास एक अद्भुत फकीर हुए, कभी उनकी भी बात करेंगे। 'चरनदास पर तन मन वारूँ, गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ'। परमात्मा ही मिल गये हैं गुरु के चरणों में। 'चरनदास पर तन मन वारूँ'--सब उन पर न्योछावर है। 'गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ'--जैसे चरन-दास में सारा परमात्मा साकार हो उठा है। और गुरु में जब तक सारा परमात्मा साकार न हो उठे, तब तक गुरु-भाव पैदा ही नहीं होता, तब तक तुम गुरु में गुरु को देख ही न पाओगे। अगर तुम्हें गुरु में पूरा परमात्मा न दिखे, तो उतनी ही तुम्हारी श्रद्धा की कमी रह जाएगी। पर असंभव है, पुरुष के लिए बहुत असंभव है; बड़ी साधना से संभव है। स्त्री के लिए बिलकुल सुगम है।

इसलिए एक घटना घटी है मनुष्य के इतिहास में। पुरुषों जैसे गुरु नहीं हुए। स्त्रियों जैसे शिष्य नहीं हुए। महावीर, बुद्ध--इन जैसे गुरु खोजना मुश्किल है--या चरनदास, फरीद, कबीर...। सहजो, मीरा, दया, राबिया, थैरेसा--इन जैसी शिष्याएँ खोजना मुश्किल है।

मुझसे लोग अनेक बार पूछते हैं, कि दुनिया में इतने सद्गुरु हुए, लेकिन स्त्रियों में कोई ऐसा सद्गुरु नहीं हुआ--ऐसा ख्यातिलब्ध! इतने पुरुषों ने धर्म स्थापित किये, स्त्रियों ने कोई धर्म स्थापित नहीं किया! इतने शास्त्र हैं--कुरान, बाईबिल, गीता--सब पुरुषों के उच्चारण हैं, किसी स्त्री ने उच्चारण न किया! प्रश्न संगत है। आश्चर्य होता है क्यों ऐसा हुआ! लेकिन हुआ है, तो पीछे कोई गहरा कारण है। पुरुष गुरु हो सकता है आसानी से, शिष्य होना उसे कठिन है--क्योंकि शिष्य होने के लिए झुकना पड़ता है। झुकना उसे कठिन है। बड़ी मुश्किल है उसे झुकने में। वह ध्यान कर सकता है, प्रार्थना करना मुश्किल है। ध्यान करते-करते, ध्यान करते-करते वह अहंकार को झुकाता नहीं है, अहंकार को मिटा डालता है। इस

फर्क को समझ लेना। अहंकार को झुकाना पुरुष के लिए कठिन है, मिटाना कठिन नहीं है—वह कहता है, मिटा डालेंगे। इसलिए पुरुष कहता है, मिट जाएँगे पर झुकेंगे नहीं, टूट जाएँगे पर झुकेंगे नहीं। अहंकार को मिटा डालता है, ध्यान की आग को जलाकर अहंकार को जला देता है, लेकिन किसी के चरणों में झुकाने नहीं जाता। न महावीर, न बुद्ध। मिटा डालते हैं, जला डालते हैं, रक्त दग्ध कर देते हैं, और निरहंकारी हो जाते हैं।

तो निरहंकार के भी दो रूप हैं। एक तो है, अहंकार को जला देना। वह निरहंकार पैदा होता है बुद्ध, महावीर का निरहंकार—पुरुष की निरहंकारिता। और एक है, अहंकार को झुका देना; तब सहजो, दया, मीरा, उनकी निरहंकारिता पैदा होती है। और ध्यान रखना, पुरुष की निरहंकारिता शून्य होगी, स्त्री की निरहंकारिता बड़ी भरी होगी। पुरुष की गागर खाली होगी जब वह निरहंकार होता है, स्त्री की गागर पूरी भरी होगी जब वह निरहंकार होती है, क्योंकि उसने मिटाया तो कुछ नहीं है, अहंकार का भी उपयोग कर लिया; अहंकार को भी झुकाया है, मिटाया नहीं है—उसका भी उपयोग कर लिया, उसको भी साधन बना लिया।

स्त्री झुकने में कुशल है, इसलिए स्त्रियों में परम भक्त हुए, परम शिष्य हुए। शिष्यत्व की जो आखिरी ऊँचाई है वह स्त्रियों ने पायी। लेकिन गुरुत्व की आखिरी ऊँचाई उन्हें संभव नहीं है। इसलिए तुम समझने की कोशिश करो, महावीर के चालीस हज़ार संन्यासी थे, उसमें तीस हज़ार स्त्रियाँ थीं। और यही अनुपात सदा से रहा है। मेरे पास भी चार व्यक्ति आते हैं, तो तीन स्त्रियाँ और एक पुरुष। यही अनुपात सदा से रहा है। जब मेरे पास स्त्रियाँ आती हैं, तो मैं पाता हूँ, तत्क्षण उनके और मेरे बीच कोई ताल बैठ जाता है—तत्क्षण। पुरुष और मेरे बीच ताल बैठने में थोड़ा समय लगता है, थोड़ी देर होती है, थोड़ी खींच-घसीट होती है। थोड़ा वह चेष्टा करता है न झुके, थोड़ी अकड़ रखता है, हृदय खोलता नहीं—बचाने की कोशिश करता है।

मेरे पास पुरुष आते हैं, अगर उनको अपना भी प्रश्न कहना हो तो वे कहते हैं, 'मेरे एक मित्र हैं, उनके चित्त में बड़ा तनाव रहता है, रात नींद नहीं आती; कोई उपाय है?' मैं उनसे कहता हूँ, तुम अपने मित्र को ही भेज देते और वे पूछ लेते, कि 'मेरे एक मित्र हैं जिनको बड़ा तनाव रहता है, चित्त में बेचैनी रहती है, रात नींद नहीं आती', तो कहीं ज्यादा सच होता। पुरुष अपनी भी बीमारी कहने में डरता है, क्योंकि झुकने में—यह कहना कि मुझे नींद नहीं आती, आप से कुछ सीखने आया हूँ—अड़चन होती है।

स्त्रियाँ आती हैं, इतना भी नहीं कहतीं कि अड़चन है, बेचैनी है; उनकी आँख से आँसू झरने लगते हैं, उनका सारा शरीर कँपने लगता है—कहने की भी जरूरत नहीं होती; बेचैनी है, वह प्रगट हो जाती है।

मुहम्मद पर कुरान अवतरित हुई तो वह पहाड़ पर, एकांत में थे। उनको आवाज सुनायी पड़ी। आवाज थी: 'पढ़।' तो वे घबड़ा गये, उन्होंने कहा, 'मैं पढ़ना नहीं जानता।' फिर आवाज आयी: 'तू फिक्र मत कर, तू पढ़।' उन्होंने कहा, 'आप भी कैसी बात कर रहे हैं, और आप कौन हैं, मुझे डराएँ मत! और मुझे पढ़ना आता ही नहीं है।' फिर आवाज़ आयी, कि 'जब मैं कहता हूँ तो आ जाएगा, तू पढ़।'

कुरान शब्द का अर्थ होता है: पढ़ना। तो मुहम्मद ने पढ़ा; आँख बंद की और पढ़ना शुरू किया; कोई अदृश्य किताब आँखों के सामने थी, वे दोहराने लगे। यही कुरान की पहली आयतें उतरीं। वे इतना घबरा गये कि यह क्या हो रहा है उन्हें भरोसा न आया; उन्हें अपने पर भरोसा न आया। उन्हें अपने पर भरोसा न आया, जो घटना घटी उस पर भरोसा न आया। कोई परमात्मा है, कोई उघाड़ रहा है जीवन के सत्य, इस पर भरोसा न आया। वह भागे हुए घर आए, उन्हें बुखार आ गया। वे दुलाई में दबकर पड़ रहे। उनकी पत्नी ने—ख़ादिजा ने—पूछा कि क्या हुआ है, तो उन्होंने सारी घटना बतायी। वह पत्नी उनकी पहली शिष्य बनी, वह फौरन उनके चरणों में झुक गयी। उसने कहा कि इसमें अविश्वास का सवाल नहीं। यह तो महान घटना घटी, तुम घबराओ मत! उसकी श्रद्धा ने मुहम्मद में श्रद्धा लायी। उसने पैर छू लिए, वह उसी क्षण शिष्य हो गयी।

मुहम्मद की पहली शिष्य स्त्री थी, पुरुष नहीं; और मुहम्मद को खुद भी भरोसा नहीं आया था, एक स्त्री ने भरोसा किया, उसके सहारे उनको भरोसा आया, हिम्मत बढ़ी। उनकी स्त्री ने उन्हें धीरे-धीरे राजी किया कि तुम डरो मत, लोगों से कहो—जो हुआ है वह अपूर्व है—उसे छिपाकर नहीं रखना है: परमात्मा ने तुम्हें पैगंबर की तरह चुना है। पहली मुसलमान उनकी पत्नी थी, मुहम्मद पहले मुसलमान नहीं हैं।

यही जीसस के साथ हुआ। जब जीसस को सूली लगी, सब पुरुष भाग गये—क्योंकि मौत के क्षण में तो केवल प्रेम ही साथ रह सकता है, ज्ञान भी ठिठक जाता है। मौत जब सामने आती है, तो जिनका लगाव हृदय का था वही रुक सकते है; जिनका लगाव मस्तिष्क का था वे कहेंगे, अब क्या मतलब रहा! भागो, अपनी जान बचाओ! अपने ही हित के लिए जीसस के साथ थे, जब अपनी ही मौत आने

लगी तो अब साथ रहने का क्या अर्थ है? पुरुष तो सब भाग गये, स्त्रियाँ बचीं।

तुमने अगर जीसस को सूली से उतारते हुए चित्र देखे हों, तो तीन स्त्रियाँ सूली से उतार रही हैं, पुरुष कोई भी नहीं है। उनमें एक वेश्या थी—मेरी मेग्दॅलीन। पंडित भाग गये, वेश्या न भागी। इसलिए तो मैं कहता हूँ, कभी-कभी पापी भी पहुँच जाते हैं, और पंडित नहीं पहुँच पाते। पंडितों के पास तो कुछ खोने को भी था, वेश्या के पास कुछ भी खोने को न था—वह डरे भी क्या?

फिर, तीन दिन बाद जब जीसस का अवतरण हुआ—पुनरुज्जीवन—वे फिर जागे, और कब्र खाली पायी गयी, तो पुरुषों ने सोचा—जीसस के शिष्यों ने—कि कोई जंगली जानवर लाश को ले गया। लेकिन, मेरी मेग्दॅलीन ने सोचा कि जीसस ने कहा था कि तीन दिन बाद मैं फिर आऊँगा, वे जरूर लौट आये—वह अँधेरी रातों में उन्हें खोजने लगी। वह जंगल-पहाड़ों में खोजने लगी। वह पहली थी, जिसे जीसस दिखायी पड़े। शिष्यत्व हो तो ही गुरु दिखायी पड़ता है। उसका नया रूप, मृत्यु के पार अमृत-रूप, उसका पुनरुज्जीवन दिखायी पड़ता है।

जीसस को देखकर वह आनंद-विह्वल गाँव में भागी आयी। उसने जीसस के शिष्यों को जाकर कहा; वे सब बैठे हिसाब लगा रहे थे कि अब कैसे प्रचार करना, अब जीसस की वाणी को कैसे संग्रहीत करना, लोगों तक कैसे खबर पहुँचानी, मठ-मंदिर कैसे बनाने; वे सब हिसाब-किताब में लगे थे। जीसस तो गये अब जिम्मेवारी उनपर पड़ गयी थी। वे दूकान को फैलाने की सोच रहे थे... चर्च बनाना...। इस स्त्री ने आकर, भागकर कहा कि तुम क्या कर रहे हो बैठे यहाँ? जीसस पुनरुज्जीवित हुए हैं। मैंने अपनी इन आँखों से उन्हें देखा है, मैंने अपने इन हाथों से उन्हें छुआ है, मैं भूल नहीं कर सकती! तुम आओ, मेरे पीछे! उन्होंने कहा, पागल औरत! पागलपन अपना अपने पास रख। हमारे पास समय खोने को नहीं है। जो मर गया वह मर गया। अगर चमत्कार होना था तो उसी दिन हो जाता, कुछ नहीं हुआ; वह बात समाप्त हो गयी, जीसस अब नहीं हैं। अब तो हमें पीछे क्या करना है उसका हिसाब करने दो, व्यर्थ की बातों में मत पड़ो।

किसी ने उसकी सुनी नहीं, और कहानी बड़ी अद्भुत है। जीसस यह देखकर कि कोई मानने को भी राजी नहीं, खुद उनकी तलाश में निकले। दो शिष्य एक रास्ते पर मिल गये, वे उनके साथ हो लिए। उन्होंने उनसे पूछा कि 'कहाँ जा रहे हो?' उन्होंने कहा कि 'हम पास के गाँव में जा रहे हैं, हम जीसस के भक्त हैं; उनकी मृत्यु हो गयी—सूली दे दी गयी—हम उनका प्रचार करने जा रहे हैं।' और जीसस साथ हैं.... और उनमें से कोई उन्हें पहचान नहीं पा रहा है....। और जीसस ने कहा, 'पूरी कहानी सुनाओ, क्या हुआ?' तो उन्होंने पूरी कहानी सुनायी। लेकिन फिर भी, इतने देर साथ रहने के बाद वे उन्हें पहचाने नहीं।

वे गाँव में पहुँच गये। दोनों मित्र भोजन करने एक भोजनालय में गये, तो उन्होंने जीसस को भी बुलाया। जीसस उनके साथ बैठे; और जब उन्होंने रोटी तोड़ी, जैसी कि जीसस की सदा से आदत थी—कि वे रोटी तोड़ते और अपने मित्रों को बाँटते—जब उन्होंने रोटी तोड़ी और उनको बाँटी, तब उनको थोड़ा सा शक हुआ कि इस आदमी का ढंग तो ऐसा मालूम पड़ता है जैसे जीसस रोटी तोड़ते थे और बाँटते थे। फिर भी उन्हें भरोसा न आया; उन्होंने अपने मन के भाव को भीतर ही छिपा लिया। और जीसस ने कहा, नासमझो! तुम्हारे भीतर श्रद्धा भी पैदा होती है तो तुम उसे दबा देते हो, तुम्हारे भीतर भाव भी पहचान का उठता है तो तुम भरोसा नहीं करते। तुम से तो मेरी मेग्दॅलीन अच्छी! उसने देखा और भरोसा कर लिया। देखने में और भरोसा करने में क्षण भर की देर न हुई—युगपत हो गया। दर्शन श्रद्धा हो गयी।

जैन-शास्त्र श्रद्धा शब्द का उपयोग नहीं करते। श्रद्धा की जगह वे सम्यक्-दर्शन शब्द का उपयोग करते हैं। ठीक करते हैं। क्योंकि दर्शन होते ही जो श्रद्धा न हो जाए, वह भी क्या कोई श्रद्धा है! देखा और हो जाए, तो ही श्रद्धा है। देखा, फिर संदेह उठे, प्रमाण खोजे जाएँ, तब हो, तब तर्कनिष्ठ निष्कर्ष है—श्रद्धा नहीं। देखने के बाद विचार करना पड़े फिर श्रद्धा हो, पुरुष में ऐसा ही होता है, क्योंकि उसका संबंध बुद्धि से है। स्त्री देखती है, हृदय में एक ऊर्मि उठती है, एक लहर दौड़ती है—वह लहर काफी भरोसा है, वह लहर स्वतः प्रमाण है।

'चरनदास पर तन मन वारूँ।' और कोई परमात्मा नहीं है अब सहजो को। यह गुरु मिल गया इस पर सब लुटा दूं! 'गुरु न तजूं हरि को तज डारूँ'—परमात्मा को छोड़ भी सकती हूँ, गुरु को नहीं छोड़ सकती हूँ। स्त्रियाँ परम भक्त, परम शिष्य हो पायीं, वह उनके लिए सहज है। इससे तुम यह मत समझना कि पुरुष में कुछ विशेषता है, इसलिए गुरु हो पाया। शिष्य होना भी उतना ही महान है जितना गुरु होना। पूर्ण रूप से शिष्य हो जाना उसी ऊँचाई पर पहुँच जाना है जिस पर पूर्ण गुरु हो कर कोई पहुँचता है। गुरु वे व्यक्ति बन पाते हैं जिन्होंने ध्यान से उपलब्धि की है। भक्त, शिष्य वे व्यक्ति बन पाते हैं जो प्रेम के मार्ग से चले हैं। गुरु का मतलब है जो दूसरे को रास्ता बता सके, दूसरे को रास्ता सिखा सके।

इसे थोड़ा समझ लो।

प्रेम तो सिखाया नहीं जा सकता किसी को, ध्यान सिखाया जा सकता है। तो

जिसने ध्यान से पाया है वह सिखा सकता है, कि यह रास्ता है। ऐसे-ऐसे काटो, ऐसे-ऐसे, धीरे-धीरे अहंकार गिर जाएगा—तुम मुक्त हो जाओगे। ध्यान का तो शास्त्र बन सकता है, ध्यान विधि है। प्रेम का कोई शास्त्र नहीं बन सकता, प्रेम कोई विधि थोड़े है? प्रेम तो हो जाए तो हो जाए, न हो तो न हो। किये से क्या होगा?

इसलिए अगर तुम्हारे भीतर प्रेम की उठती हो किरण, तो दबाना मत। फिर ध्यान की कोई जरूरत नहीं है, प्रेम ही सब सँभाल लेगा। अगर न उठती हो प्रेम की किरण और तुम एक रूखे मरुस्थल हो, जहाँ प्रेम का कोई बीज नहीं टूटता, कोई अंकुर नहीं आता, तो फिर तुम ध्यान सँभालना—फिर ध्यान के अतिरिक्त तुम्हारा कोई छुटकारा नहीं है।

ध्यान से जो गये हैं वे तो गुरु बन सकते हैं, प्रेम से जो गये हैं उन्होंने शिष्यत्व में ही सब कुछ पा लिया। और प्रेम से जो गये हैं, वे दूसरे को सिखा नहीं सकते, सिखाने का मामला नहीं है, सिखाने की बात नहीं है। प्रेम कोई कला थोड़े ही है! प्रेम तो जीवन का अंतरतम भाव है। साहसी पहुँच जाते हैं क्षण में! सीखने का सवाल नहीं है, डूबने का सवाल है। जैसे कि नदी में कोई तैरता हो तो तैरना तो सिखाया जा सकता है; तुम किसी को डूबना सिखा सकते हो? डूबना सिखाने की क्या जरूरत है? जिसको डूबना है वह डूब सकता है, अभी। तुम यह थोड़े ही कहोगे कि पहले साल भर डूबना सीखेंगे, तब डूबेंगे। अगर साल भर डूबना सीखा, तो फिर कभी डूबोगे ही नहीं। क्योंकि डूबना सीखने में तो तुम तैरना सीख जाओगे! डूबना तो अभी हो सकता है। हाँ, तैरना साल भर सीखने में होगा।

ध्यान तैरने जैसा है—सीखना पड़ेगा, प्रेम डूबने जैसा है।

अहंकार को मिटाना है—समय लगेगा, अहंकार को झुकाना है—अभी झुका सकते हो। अहंकार मौजूद है, सिर्फ झुकाने की बात है। स्त्रैण चित्त सरलता से झुक जाता है। स्त्रियाँ ऐसे हैं जैसे वृक्षों पर चढ़ी हुई लताएँ, झुकाव आसान है। वृक्ष को झुकना मुश्किल है, लता को झुकने में क्या लगता है?

इसलिए सहजोबाई का पहला सूत्र ठीक से समझ लो। वह सूत्र है: प्रेम का। और यह मत सोचना—नहीं तो गलती हो जाएगी—कि वह ईश्वर के विपरीत बोल रही है। भूल हो जाएगी। वह बड़े प्रेम से बात कर रही है। वह यह कह रही है, 'तुमने दिया भी क्या है? अब तुम नाहक बड़े सिंहासन पर विराजमान होने की कोशिश मत करो।' यह बड़े प्रेम का उलाहना है। 'अब तुम थोड़े नीचे ही बैठो गुरु से।' यह बड़े प्रेम की वार्ता है।

कबीर के मन में तो थोड़ा सा डर भी होगा, कि ऐसी बात कहें या न कहें। लेकिन प्रेम कहीं डरता है? इसलिए हिम्मत से सहजो कहती है: 'राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु को सम हरि को न निहारूँ।' तुम यह मत सोचना कि वह कोई नास्तिक है। उस जैसा परम आस्तिक खोजना मुश्किल है। यह तो आस्तिक ही कह सकता है, नास्तिक क्या खाक कहेगा! उसकी इतनी हिम्मत कहाँ होगी। यह तो वही कह सकता है जो जानता है हृदय की गहराई में, कि गुरु में उसने परमात्मा को पा ही लिया है; जो जानता है कि परमात्मा उपलब्ध ही हो गया है, वह ऐसी मीठी वार्ता कर सकता है, उलाहने की।

यह तो भक्त का और भगवान का रूठने का खेल है। वह यह कह रही है, कि 'छोड़ो भी, ज्यादा मत अकड़ो! तुमने कुछ दिया नहीं है ऐसा! संसार दिया, बंधन दिये, वासनाएँ दीं; अनाथ कर दिया, अँधेरे में फेंक दिया—गुरु ने उठाया है। अब मुझसे यह न होगा कि तुमको ऊपर बैठा लूँ, तुम नीचे ही बैठो।' और, मैं मानता हूँ कि अगर परमात्मा सहजो के सामने उपस्थित होगा, तो वह सहजो का आदर करेगा—गुरु से थोड़ा नीचे बैठेगा। इसलिए नहीं कि वह नीचा है। इसलिए कि वह जानता है, उसके नीचे होने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए नहीं कि वह नाराज़ होगा, बल्कि वह जानता है कि बड़े प्रेम से कही गयी बात है—एक झिड़की है, प्रेम का उलाहना है—और सहजो उसे नीचे बिठालने को नहीं कह रही है। सहजो उसे कैसे नीचे बिठालेगी, थोड़ा सोचो! जो अपने गुरु को परमात्मा से नीचे नहीं बिठाल सकती, वह परमात्मा को गुरु से नीचे बिठाल सकेगी? असंभव। पर प्रेमियों की बात को तुम तर्क से मत तौलना। प्रेमी कहते कुछ हैं, कहना कुछ और चाहते हैं। प्रेमी कहते कुछ और हैं, कह कुछ और देते हैं—प्रेमियों का वार्तालाप बड़ा परोक्ष है।

सहजो को अगर संक्षिप्त में हम कर लें, तो वह यह कह रही है कि तुम मेरे गुरु में विराजमान ही हो गये हो, अब और गुरु से अतिरिक्त और पृथक तुम्हें देखने का कोई उपाय नहीं है। या तो गुरु परमात्मा हो गया है, या परमात्मा गुरु हो गया है।

आज इतना ही।

★ ★ ★

बहना स्वधर्म में

प्रवचन २, प्रातः, दिनांक २-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्न : आपने कहा, कि भक्ति के मार्ग पर जीवन की किसी भी बात का इनकार नहीं। शरीर, इंद्रियाँ, परिवार सब स्वीकार है। सब में ही भगवान की झलकें मिलती हैं। फिर क्योंकर सहजोबाई शरीर, इंद्रियों एवम् घर-परिवार को बंधन, प्रपंच, परमात्मा से विपरीत मानती है ?

यह प्रश्न थोड़ा जटिल है। समझना चाहोगे तो ही समझ में आ सकेगा। सर्व-स्वीकार का अर्थ है : अस्वीकार भी स्वीकृत है। सर्व में अस्वीकार भी सम्मिलित है। परिवार तो सम्मिलित है ही, संन्यास भी सम्मिलित है। घर-द्वार तो सम्मिलित है ही, निर्जन एकांत भी स्वीकृत है।

सर्व-स्वीकार का अर्थ तुम यह मत समझना, कि सिर्फ संसारी स्वीकृत है और संन्यासी नहीं स्वीकृत है। मौज की बात है परमात्मा किसमें क्या रूप लेगा। किसी को गृहस्थ बनाएगा, किसीको ब्रह्मचारी रखेगा। अगर ब्रह्मचर्य का अस्वीकार हो जाए तो वह कैसा स्वीकार हुआ! सर्व-स्वीकार न हुआ। वह तो तरकीब हो गयी, मन की चालाकी हो गयी।

सहजो संन्यासिनी थी, ब्रह्मचारिणी थी। उसने घर-गृहस्थी जानी नहीं, संसार उसे भाया नहीं। उसने तो गुरु-चरणों में सब छोड़ दिया। वही चरण उसके घर थे, वही चरण उसके परिवार थे। परमात्मा की परम स्वीकृति में यह भी सम्मिलित है।

और, जब मैं तुमसे कहता हूँ, संसार से भागने की कोई जरूरत नहीं, तुम यह मत समझना, कि मैं कह रहा हूँ कि संसार को पकड़ने की जरूरत है। भागने की जरूरत नहीं है, अगर संसार में रहकर ही तुम्हें परमात्मा मिल सकता हो। अगर संसार में रह कर तुम्हें परमात्मा की कोई संभावना ही न दिखायी पड़ती हो, तो परमात्मा को पाने का सवाल है, संसार को पकड़े रहने का सवाल नहीं है : छोड़ देना। अपने भीतर के तार कहाँ मेल खाते हैं, कहाँ तुम्हारी वीणा में संगीत पैदा होता है, उसकी तलाश करना।

संन्यासी को दूकान पर बिठा दो, परेशान होगा। दूकानदार को मंदिर में बिठा दो, वहीं दूकान खोल देगा, या बेचैन होगा।

इसलिए कृष्ण ने गीता में अर्जुन को कहा, तू भाग मत। वह तेरा ढंग नहीं, तेरा स्वभाव नहीं, तेरा स्वधर्म नहीं। लड़ना तेरे रोएँ-रोएँ में छिपा है; तेरे खून की बूंद-बूंद में क्षत्रिय है। तू जंगल में भी भाग कर संन्यासी हो न सकेगा। बिना

धनुष के, बिना तेरे गांडीव के, तेरी आत्मा ही खो जाएगी; तेरा व्यक्तित्व उससे बना है। तेरा होने का ढंग तेरी तलवार की धार में है; वह तलवार छूटते ही तुझपर जंग खा जाएगी। तू तलवार नहीं खोएगा अपने को खो देगा; तेरे व्यक्तित्व की निजता नष्ट हो जाएगी।

तू स्वधर्म से मत भाग।

पहले अपना स्वधर्म ठीक से पहचान ले, फिर उसी पहचान के माध्यम से, परमात्मा जो तेरे स्वधर्म से करवाना चाहे उसे होने दे। फिर तू निमित्त हो जा। अगर अर्जुन में कृष्ण ने जरा भी संन्यास की संभावना देखी होती, वह उससे कहते, तू जा; युद्ध तेरे लिए नहीं है। कृष्ण भी रोक नहीं पाते। रोकने का कारण भी न होता। और कृष्ण रोकते भी, अगर अर्जुन के भीतर संन्यास की ही संभावना होती, अर्जुन रुकता नहीं। सारी बात सुनता, धन्यवाद देता, कहता आपने इतना श्रम किया! फिर भी मैं पहचानता हूँ कि मेरा स्वधर्म मुझे वहीं ले जा रहा है। आपकी ही मान रहा हूँ—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' और मेरा स्वधर्म मुझे जंगल ले जा रहा है। तो मैं जाता हूँ।

तुम किसी ढाँचे में अपने को बिठाने की कोशिश मत करना, अन्यथा बेचैनी होगी। तुम्हारा जिस तरफ सहज प्रवाह हो, उसको ही तुम जीवन की दिशा बना लेना। बहुत लोग हैं जो बाजार में बैठकर परमात्मा को न पा सकेंगे, उनके स्वभाव से मेल नहीं खाता—

मेरे परिवार में मेरे बड़े काका हैं, दूकानदार की उनमें कोई वृत्ति नहीं। जन्म से कवि हैं। जब विश्वविद्यालय से पढ़कर वापस लौटे, तो कविता से तो कोई धन मिलता नहीं, न कविता से पेट भरता है; और पूरा परिवार तो व्यवसाय में डूबा है, तो उन्हें भी व्यवसाय में ही डुबाने की कोशिश की गयी। नौकरी में भी उनका कोई रस नहीं है, तो कोई उपाय न था, तो उनको दूकान पर ही बिठाया। मैं छोटा था तब से मैं उनका निरीक्षण करता रहा हूँ: अगर कोई घर का मौजूद न हो और ग्राहक दूकान पर आ जाए, तो वे उसे चुपचाप हाथ से इशारा कर देते कि—'आगे।'

अब ऐसे व्यक्ति से तो दूकान चलेगी नहीं—ग्राहक कोई भिखारी तो नहीं है। ऐसा ग्राहक को 'आगे' का इशारा करना! वह भी चुपचाप, कि कोई सुन न ले! क्योंकि कोई सुन ले तो घर के लोग नाराज हों, कि तुम्हें दूकान चलाने को बिठाया है या बिगाड़ने को बिठाया है। और जिस ग्राहक को वे ऐसा इशारा कर दें वह दुबारा दूकान पर भी न आए, कि इस तरह की दूकान पर क्या जाना जहाँ भिख-

मंगे की तरह व्यवहार किया जाता हो! और वह इतने दुःख और इतनी नाराज़गी से देखें ग्राहक को...! ऐसे तो दूकान नहीं चल सकती।

ग्राहक न आए तो वे बड़े प्रसन्न हों। दिन खाली चला जाए, तो उनके आनंद का कोई अंत नहीं। तो वे दो पंक्तियाँ कविता की जोड़ लें, या एक गीत बना लें। दूकान के खाते-बही में भी उन्होंने कविताएँ लिख दीं। उनके स्वभाव के यह अनुकूल न था, जबरदस्ती उन्हें दूकानदार होना पड़े। तो प्राण कुंठित होंगे!

ऐसे ही तुम दूकानदार को जबरदस्ती कविता करने बिठा दो, तो भी मुसीबत होगी। वह कविता में भी दूकान को ही बसाएगा। उसकी कविता के स्वप्न में भी दूकान का ही विस्तार हो जाएगा।

न तो दूकान बुरी है, और न भली है। न कविता बुरी है, न कविता भली है। बुरा-भला कुछ भी नहीं है। तुमसे जिसका मेल खा जाए, जो तुम्हारे स्वधर्म के अनुकूल आ जाए। फिर उसके लिए चाहे सब कुछ छोड़ना पड़े तो छोड़ देना, लेकिन स्वधर्म को मत छोड़ना।

स्वधर्म छोड़कर सारा संसार भी मिलता हो तो मत लेना, क्योंकि आखिर में तुम पाओगे कि वह मिलना नहीं था, धोखा हो गया।

अंततः तो स्वधर्म ही हाथ में रह जाता है, शेष सब खो जाता है। इस जगत में हम स्वधर्म को लेकर ही आते हैं, और स्वधर्म को लेकर विदा होते हैं। बाकी तो सब बीच की कहानी है—बनती है, मिटती है, बिखर जाती है।

तो, जब मैं कहता हूँ सर्व-स्वीकार, तो तुम ध्यान रखना, उसका मेरा मतलब यह नहीं है कि संन्यासी, जीवन को त्यागकर जानेवाला, हिमालय की गुफाओं में विराजमान: वह अस्वीकृत है। नहीं, वह भी स्वीकृत है।

अगर किसी को हिमालय में ही गीत फूटता है, और वहीं उसके जीवन में नृत्य आता है, तो मैं कौन हूँ, या कोई भी कौन है जो उसे रोके बाजार में? उसे वहीं होना चाहिए।

लेकिन, ऐसा मत सोचना कि हिमालय के कारण गीत पैदा होता है; अन्यथा भूल से दूकानदार भी वहाँ पहुँच जाएगा—सोचेगा कि हिमालय में गीत पैदा होता है, नृत्य होता है—तो मैं भी छोड़ूँ और मैं भी हिमालय चला जाऊँ। वह वहाँ सिर्फ दुःखी होगा, उदास होगा, पीड़ित होगा।

न तो हिमालय में गीत है, न बाजार में। गीत तुममें है—गीत तुम्हारे स्वभाव में है। तुम्हारे और तुम्हारे अस्तित्व में जब मेल पड़ता है, तब गीत का जनम होता है।

गीत तुमसे बाहर नहीं हैं।

तो तुम्हारे स्वभाव और तुम्हारी परिस्थिति में मेल बने : इस तरह की चिंतना करना, इस तरह का जीवन-आचरण निर्मित करना, कि तुम्हारे जीवन और तुम्हारे भीतर की धारा में विरोध न हो; संगति हो, तालमेल हो, लयबद्धता हो। तुम्हारा भीतर का जीवन, और तुम्हारा बाहर का जीवन पैर मिलाकर चल सके। भीतर तुम जा रहे हो पश्चिम और बाहर तुम जा रहे हो पूरब, तो तुम्हारे जीवन में तनाव होगा, परेशानी होगी, चिंता होगी, संताप होगा; और अंततः संताप के अतिरिक्त कभी कुछ हाथ में न आएगा। समाधिस्थ तुम न हो पाओगे।

समाधि उस दशा का नाम है, जब तुम्हारे बाहर और भीतर में ऐसा मेल हो जाता है--ऐसा मेल, कि बाहर बाहर नहीं मालूम पड़ता, भीतर भीतर नहीं मालूम पड़ता--बाहर भीतर हो जाता है, भीतर बाहर हो जाता है। ऐसा मेल हो जाता है कि सीमा-रेखा खींचनी मुश्किल हो जाती है--कहाँ मेरा भीतर है, कहाँ मेरा बाहर है। बस उसी क्षण, उसी संयोग, संवाद, संगीत के क्षण में परमात्मा तुममें उतर आता है। जितना होगा तनाव, उतना ही परमात्मा का अवतरण असंभव है; जितनी होगी संवाद की अंतर्दशा, उतना ही द्वार खुल जाता है।

तो सहजोबाई को मैं न कहूँगा, कि वह घर-गृहस्थी बसाये, पत्नी बने, माँ बने; मैं न कहूँगा। मुझसे आकर पूछती तो मैं कहता, कि 'जो तुझे ठीक लगता है। जबरदस्ती मत करना अपने साथ; तेरा ब्रह्मचर्य आरोपित न हो।' वह आरोपित नहीं था। क्योंकि कभी सहजो को किसी ने दुःखी न देखा। वह सदा प्रफुल्लित थी, वह सदा फूल सी खिली थी। किसी ने कोई कारण न पाया कि उसने जीवन की जो धारा चुनी है इससे अन्यथा धारा भी हो सकती थी। वही उसकी धारा थी।

तो अंततः कौन निर्णायक है?

कहते हैं, फल प्रमाण है वृक्ष का। तो जीवन की उपलब्धि प्रमाण है जीवन की। अगर सहजो ने अपने जीवन में परम आनंद पाया, तो जैसा उसने जीवन जिया वही उसके जीने योग्य था। अगर वह प्रफुल्लित हो सकी, खिल सकी, उसका कमल खिल सका, तो वही सबूत है कि उसने जैसा जीवन जिया वह ठीक था; अन्यथा फूल न खिलता।

अंत ही वक्तव्य है तुम्हारे पूरे जीवन पर।

अगर मृत्यु के क्षण तक तुमने समाधि को उपलब्ध कर लिया--मरने के पहले अगर तुम परम-समाधान को उपलब्ध हो गये, तो मैं तुमसे न कहूँगा कि तुम जीवन में कुछ फर्क करो। तुम्हारा जैसा जीवन था, उस पर छाप लग गयी कि वह सही

था। अगर उसमें जरा भी भूल-चूक होती, तो तुम इस समाधिस्थ अवस्था को उपलब्ध न होते। तुम अगर मंजिल को पहुँच गये, तो मार्ग ठीक था। मार्ग के ठीक होने का और सबूत क्या है? कोई मार्ग अपने-आप में ठीक थोड़े ही होता है; मंजिल पर पहुँचता है इसलिए ठीक होता है। क्या तुम ऐसा कह सकोगे कि मैं बिलकुल ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ, यद्यपि मंजिल कभी नहीं आती। मार्ग मेरा बिलकुल ठीक है, मंजिल कभी नहीं आती है। मैं तो तुमसे कहूँगा, कुमार्ग पर भी चलना पड़े मंजिल आ जाए, तो कुमार्ग कुमार्ग न रहा, सुमार्ग हो गया। जिससे मंजिल आ जाए वही मार्ग है। अंत ही वक्तव्य है, अंत ही निष्कर्ष है; और अंत तक रुकना नहीं पड़ता, क्योंकि प्रतिघड़ी वक्तव्य मिलता है, प्रतिघड़ी तुम जानते हो।

अगर तुम्हारे बाहर और भीतर में मेल है, तो प्रतिघड़ी, जैसे मंदिर की घंटियाँ बजती हों ऐसे तुम्हारे भीतर कुछ बजता चलता है। जैसे नदी के किनारे पहुँच कर हवाएँ शीतल होने लगती हैं, ऐसा जैसे ही तुम्हारे बाहर-भीतर में ताल-मेल होता है, वैसे ही तुम्हारे भीतर शीतलता उतरने लगती है। जैसे बगीचे के पास जाकर फूलों की सुगंध घेरने लगती है, ऐसे जैसे तुम्हारे भीतर ताल-मेल होता है एक सुगंध --अनिर्वचनीय सुगंध--तुम्हारे भीतर उठने लगती है। किसीसे पूछने जाने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे भीतर कसौटी है कि तुम्हारा जीवन ठीक जा रहा है, या नहीं। और, दूसरा कोई निर्णय देगा भी कैसे? दे भी नहीं सकता।

सोचो, कृष्ण ने एक तरह का जीवन जिया, महावीर का जीवन बिलकुल भिन्न है। बुद्ध का जीवन और भी अलग है। मुहम्मद और महावीर में तुम कहाँ संबंध जोड़ पाओगे? क्राइस्ट और कृष्ण बड़े दूर हैं। लेकिन सभी ने पा लिया। उनके रास्ते अलग-अलग हैं, लेकिन एक बात तय है कि वे जिस रास्ते पर थे, उससे उनका स्वधर्म मेल खाता था। बस उतनी बात सब में समान है। महावीर अपने रास्ते पर अपने स्वधर्म से मेल खाते हैं, मुहम्मद अपने रास्ते पर अपने स्वधर्म से मेल खाते हैं। उतनी एक बात सबमें समान है।

रास्ते अलग हैं, व्यक्तित्व अलग हैं, ढंग अलग हैं। कहाँ कृष्ण बाँसुरी बजाते हुए! तुम महावीर के ओंठ पर बाँसुरी की कल्पना भी न कर सकोगे, वह बात जँचेगी ही नहीं। बाँसुरी और महावीर के पास मिल भी जाए, तो तुम समझोगे कि कोई भूल गया होगा, महावीर की तो नहीं हो सकती! बाँसुरी से महावीर का क्या लेना-देना! और कृष्ण अगर तुम्हें नग्न खड़े मिल जाएँ किसी वृक्ष के नीचे आँख बंद किये, तो तुम मान न सकोगे कि वह कृष्ण हैं, बिना मोर-मुकुट के। वह पहचान में भी न आएँगे। उन्हें तुम नाचता हुआ पाओगे तो ही पहचान सकोगे।

कृष्ण के नृत्य से उनके भीतर का कुछ मेल है। महावीर के शून्य मौन से भीतर का कुछ मेल है। उस मेल के कारण ही, दोनों ही प्रबुद्ध हैं।

जीवन के ढंग का सवाल नहीं है। ढंग तो अनंत होंगे, क्योंकि अनंत आत्माएँ हैं। प्रत्येक आत्मा का अपना स्वभाव है, अपनी निजता है, अपनी विशिष्टता है। उस विशिष्टता को मिटाना नहीं है, उस विशिष्टता को ठीक-ठीक सम्यक् परिवेश देना है।

सहजो ठीक कहती है, उसे नहीं जँचा। लेकिन तुमसे मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम्हें जँचे, न जँचे, तो तुम किसी को मानकर चल पड़ो। जनक को घर-गृहस्थी में, सिंहासन पर, सम्राट हुए-हुए घटना घट गयी।

उपनिषदों में एक बड़ी प्राचीन कथा है--तुलाधर वैश्य की कथा।

एक तपस्वी वर्षों से तपश्चर्या कर रहा है। जाजलि उस तपस्वी का नाम है। उसने इतनी घनघोर तपश्चर्या की कि शरीर को उसने वृक्ष की तरह सुखा दिया, जैसे सूखी ठूँठ हो। हिलता नहीं था। वह ऐसा अडिग खड़ा रहता था कि कहते हैं, पक्षियों ने घोंसले बना लिए उसकी जटा में--अंडे रख दिये। अंडे बड़े हो गये, अंडे फूट गये--बच्चे हो गये—पक्षी जब उड़ गये, तभी जाजलि वहाँ से हटा। सोचकर कि बच्चों को तकलीफ होगी, अंडे हैं गिर न जाएँ, वह खड़ा ही रहा--हिला-डुला भी नहीं, भीख माँगने भी न गया, महीनों भूखों रहा--लेकिन जब बच्चे आकाश में उड़ गये, तब वह हिला। पर उस दिन उसे बड़ा गौरव और बड़े गर्व का भाव पैदा हुआ कि मुझ जैसा तपस्वी कौन? एक अकड़ पैदा हुई।

जब उसके भीतर यह अहंकार का भाव उठ रहा था, तब उसने एक आवाज सुनी एकांत जंगल में, कि कोई हँस रहा है। किसी अदृश्य व्यक्ति की आवाज, कि 'जाजलि, अहंकार से मत भर। अगर ज्ञानी खोजना हो तो पहले तुलाधर वैश्य के चरणों में जाकर बैठ।' उसे तो कुछ समझ में न आया, कि तुलाधर? और वैश्य! और उसके चरणों में जाजलि जैसा तपस्वी बैठे! जिसके बालों में पक्षियों ने घोंसले बनाये और जो हिला नहीं, ऐसी जिसकी अहिंसा है, और ऐसी जिसकी दया और करुणा है! मगर देखना तो पड़ेगा ही जाकर कि यह कौन है तुलाधर वैश्य?

तो वह खोजने गया।

काशी में तुलाधर वैश्य था। वह उसके पास गया। उसे तो भरोसा ही न आया--वह एक साधारण दुकानदार था, और दिन-रात तराजू पकड़े रहता था, इसलिए उसका नाम तुलाधर हो गया था--तौलता ही रहता था चीज। वह तौल ही रहा था, ग्राहकों की भीड़ लगी थी कि जाजलि पहुँचा, तो उसने इसकी तरफ देखा भी नहीं, इतना ही कहा कि, 'जाजलि, तू बैठ। बहुत परेशान मत हो कि तेरे जटा-जूट में पक्षियों ने घोंसले रखे! बहुत मत अकड़ कि तू हटा नहीं--पक्षी बड़े हो गये, उड़ गये--तब हटा! बैठ, शांति से बैठ; पहले मुझे ग्राहकों को निपटा लेने दे!'

यह बात जब तुलाधर ने कही तो जाजलि बहुत हैरान हुआ! कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गयी, यह आदमी जानता तो है ही कुछ--मुझसे तो आगे निश्चित है। इसने तो सब बात ही खराब कर दी। और इसके पास कुछ दिखायी नहीं पड़ता कि कला क्या है, साधना क्या है?

बैठ गया। लेकिन ध्वस्त हो गया अहंकार! देखता रहा बैठे-बैठे: अच्छे लोग आए, बुरे लोग आए, भलीभाँति बोले तुलाधर से, कोई अपमान भी किया--दूकान! दूकान का हिसाब! लेकिन तुलाधर समान रहा, समभावी रहा। न तो क्रोध, न राग; न तो किसी से पक्ष, न विपक्ष। जाजलि बैठा देखता रहा: उसकी तुला में किंचित्मात्र कोई फर्क न पड़ा—अपने आए, पराये आए, उसका तौल एक सा ही रहा।

शाम जब हो गयी, दूकान जब बंद होने लगी, तो जाजलि ने कहा, 'मेरे लिए क्या उपदेश हैं?' तो तुलाधर ने कहा, 'मैं तो एक साधारण दूकानदार हूँ, मैं कोई पंडित नहीं, इतना ही मैं जानता हूँ कि जैसे तराजू के दोनों पलड़े जब समान होते हैं तो एक संतुलन सध जाता है; ऐसे ही जब मन के दोनों ही पक्ष--क्रोध का, अक्रोध का; प्रेम का, घृणा का; राग का, द्वेष का--समतुल हो जाते हैं और भीतर का तराजू सध जाता है, उसी क्षण--बस उसी क्षण समाधि घट जाती है।

मैं तो तराजू को साधते-साधते खुद भी सध गया, और ज्यादा मैंने कुछ किया नहीं। न तो पक्षियों ने घोंसले बनाये, न मैंने कोई तपश्चर्या की। मैं साधारण दूकानदार हूँ, जाजलि! मैं कोई तपस्वी नहीं हूँ। पर, मेरा कुल राज इतना है कि तराजू को साधते-साधते मुझे साधने की कला आ गयी; और एक बात मैंने पकड़ ली कि जब भीतर बिलकुल संतुलन होता है तो अहंकार शून्य हो जाता है।

संतुलन शून्यता है। और उसी शून्य में पूर्ण उतर आता है।

पर, ये तो एक दूकानदार की बातें हैं; तुम बड़े पंडित हो, तुम ज्ञानी हो, तुम तपस्वी हो; तुम्हें इससे शायद कुछ लाभ हो, न लाभ हो। इतना ही मैं जानता हूँ, इतना ही मैं कहे देता हूँ: 'जंगल में रहो और अहंकार पकड़ जाए, तो फेंक दिये गये संसार में। संसार में रहो और तराजू समतुल हो जाए, हिमालय उपलब्ध हो गया—बाजार में। प्रश्न नहीं है कि तुम कहाँ जाते हो, क्या करते हो? प्रश्न यह है, कि तुम क्या हो?'

तो, जब मैं कहता हूँ कि परमात्मा के मार्ग पर सब स्वीकार है--घर, गृहस्थी;

तब तुम ध्यान रखना : हिमालय, एकांत, निर्जन, संन्यास--वह भी स्वीकार है; अस्वीकार कुछ है ही नहीं।

जीवन को तरल बनाओ। और, तुम्हारे जीवन की धारा जिस तरफ बहती हो, जहाँ बहने में तुम्हें सुख और रस उपलब्ध होता हो, वहीं बहे चले जाओ। रस कसौटी है।

गंगा पूरब की तरफ बहती है, नर्मदा पश्चिम की तरफ बहती है। अगर दोनों का बीच में मिलना हो जाए, तो बड़ी बेचैनी होगी। क्योंकि गंगा भी कहेगी मैं सागर की तरफ जाती हूँ, नर्मदा भी कहेगी मैं भी सागर की तरफ जाती हूँ। दो में से एक तो गलत होना ही चाहिए! दोनों भले गलत हों, दोनों सही तो नहीं हो सकतीं! बड़ा विवाद खड़ा हो जाएगा। और मध्य रास्ते पर, चौराहे पर खड़े होकर विवाद के हल करने का उपाय क्या है? जाकर ही देखना होगा। लेकिन जाकर अगर देखोगे, तो पूरब जाती गंगा भी पहुँच जाती है सागर में, पश्चिम जाती नर्मदा भी पहुँच जाती है सागर में, और सागर एक है। सागर कहीं पूरब और पश्चिम का है! भले तुम नाम रख लो उसका : अरब की खाड़ी कहो, बंगाल की खाड़ी कहो, इससे क्या फर्क पड़ता है? सागर एक है, सभी नदियाँ सागर पहुँच जाती हैं।

जिस तरफ ढलान मिले, जिस तरफ रस आए, जिस तरफ तुम्हारे जीवन में कविता पैदा होती मालूम हो, जिस तरफ तुम गुनगुना के जा सको, जिस तरफ तुम नाचते हुए चल सको, वही तुम्हारा मार्ग है। फिर किसी की मत सुनना--किसी की गंगा पूरब जाती हो, उससे कहना, 'शुभाशीष, जाओ। परंतु मेरी नर्मदा तो पश्चिम जा रही है, और मैं आनंदित हूँ। और मुझे मेरी ढलान मिल गयी है, मुझे मेरा मार्ग मिल गया है। और जब प्रति कदम मैं आनंदित हूँ, तो मानकर चला जा सकता है कि अंत में परम आनंद होगा।'

एक-एक इंच पर कसौटी है। जहाँ बेचैनी हो, तनाव हो, दुःख हो, पीड़ा हो, सँभलना। जीवन का संगीत टूट रहा है? पैर कहीं गलत पड़ते होंगे, स्वधर्म के कहीं विपरीत जाते होओगे।

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।' कहीं किसी दूसरे के धर्म में उलझ गये होओगे। किसी और के धर्म ने तुम्हें आकर्षित कर लिया, लोभ पैदा कर दिया। गंगा को जाते देखकर पूरब की तरफ, नर्मदा के मन में भी आकांक्षा उठ गयी कि मैं भी पूरब जाऊँ। नर्मदा अगर पूरब की तरफ जाएगी, तो तकलीफें पाएगी, कष्ट पाएगी और सागर तक नहीं पहुँच पाएगी।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना ढलान है। सदा अपने भीतर के काँटे पर नजर रखो। तुम्हारा काँटा सदा ही ठीक बताता है। तुम दूसरे के काँटे को देखने लगते हो जरूरत से ज्यादा। तब तुम उलझन में पड़ जाते हो। तुम जब दूसरे का अनुकरण करने लगते हो, तब तुम च्युत होते हो--आत्मच्युत होते हो। जब तक तुम भीतर के काँटे पर नजर रखते हो, और अपने अंतःकरण को पूछते हो, और अपनी अंतर्वाणी को सुनते हो, तबतक तुम कभी भी भटकते नहीं। और तब, तुम यह भी जानोगे कि जो मेरा मार्ग है, जरूरी नहीं कि दूसरे का मार्ग हो। तब तुम यह फिकर ही छोड़ दोगे कि मार्ग का निर्णय किया जाए। तब तुम इतना ही देखोगे, अगर गंगा भी नाचती जा रही है तो सागर की तरफ ही जा रही होगी--उसका सागर पूरब में होगा, मेरा सागर पश्चिम में है। मैं भी नाचता जा रहा हूँ, गंगा भी नाचती जा रही है, तो दोनों सागर की तरफ ही जा रहे होंगे। क्योंकि, जब तक नदी सागर की तरफ न जाए, तब तक नाच ही नहीं सकती। वह सागर का पास आना ही पैरों का नृत्य बनता है; परमात्मा का पास आना ही भीतर का आनंद बनता है।

आनंद कसौटी है।

दूसरा प्रश्न : क्या प्रेम में राग और आसक्ति निहित नहीं हैं?

प्रेम में राग हो तो प्रेम नर्क बन जाएगा। प्रेम में आसक्ति हो तो प्रेम कारागृह होगा। प्रेम रागशून्य हो, स्वर्ग बन जाएगा। प्रेम आसक्तिमुक्त हो, तो प्रेम ही परमात्मा है।

प्रेम की दोनों संभावनाएँ हैं। प्रेम के साथ तुम राग और आसक्ति को जोड़ सकते हो। तो ऐसा हुआ, जैसे तुमने प्रेम के पक्षी के गले में पत्थर बाँध दिये, अब वह उड़ न सकेगा। जैसे तुमने प्रेम के पक्षी को सोने के पिंजड़े में बंद कर दिया। पिंजड़ा कितना ही बहुमूल्य हो, हीरे-जवाहरात जड़े हों, तो भी पिंजड़ा पिंजड़ा ही है--पंखों को नष्ट कर देगा।

जब प्रेम से तुम राग और आसक्ति को काट देते हो; प्रेम जब निर्मल होता है, निर्दोष होता है, निराकार होता है; जब तुम प्रेम में सिर्फ देते हो, माँगते नहीं; जब प्रेम दान होता है--जब प्रेम सम्राट होता है, भिखारी नहीं--जब तुम आनंदित होते हो क्योंकि किसी ने तुम्हारा प्रेम स्वीकार किया; लेकिन जब तुम प्रेम का सौदा नहीं करते, जब तुम बदले में कुछ भी नहीं माँगते; तब तुम प्रेम के पक्षी को मुक्त कर देते हो आकाश में, तब तुम उसके पंखों को बल देते हो, तब यह पक्षी अनंत की यात्रा पर निकल सकता है।

प्रेम ने गिराया भी है, प्रेम ने उठाया भी है। निर्भर करता है कि तुमने प्रेम के

साथ कैसा व्यवहार किया। इसलिए प्रेम बड़ा बेबूझ शब्द है। वह द्वार है--उसके इस तरफ दुःख है, उस तरफ आनंद है; उसके इस तरफ नर्क है, उस तरफ स्वर्ग है; उसके इस तरफ संसार है, उस तरफ मोक्ष है--

प्रेम द्वार है।

अगर तुमने राग और आसक्ति से भरे प्रेम को जाना, तो तुम जब जीसस तुमसे कहेंगे : 'प्रेम परमात्मा है', तुम न समझ पाओगे। जब सहजो प्रेम के गीत गाने लगेगी तब तुम्हें बड़ी बेचैनी होगी, कि यह बात जँचती नहीं। प्रेम तो मैंने भी किया --हमने तो सिर्फ दुःख ही पाया, हमने तो प्रेम के नाम पर सिर्फ काँटों की फसल काटी--कभी फूल न खिले। यह प्रेम कल्पना का मालूम पड़ेगा। यह प्रेम जो भक्ति बन जाता है, प्रार्थना बन जाता है, मुक्ति बन जाता है, यह तुम्हें लगेगा शब्दों का जाल है।

प्रेम तो तुमने भी जाना, लेकिन जब भी तुमने प्रेम जाना तभी तुमने राग, आसक्ति का प्रेम जाना। तुम्हारा प्रेम वस्तुतः प्रेम न था। तुम्हारा प्रेम राग, काम और आसक्ति के ऊपर डाला गया पर्दा था। भीतर कुछ और था, बाहर से तुमने प्रेम कहा था। तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़े या एक पुरुष के प्रेम में पड़े, तब तुमने चाहा क्या? चाह तो कामवासना की है, प्रेम तो सिर्फ ऊपर की सजावट है।

अगर तुम अपने भीतर गहरा खोजोगे, तुम खुद ही देख लोगे कि प्रेम तो सिर्फ बातचीत है, भीतर तो कामवासना की लपटें जल रही हैं। उन लपटों को सीधा-सीधा किसी से निवेदन करना उचित नहीं है, थोड़ी कूटनीति चाहिए। जिस स्त्री के शरीर को तुम भोगना चाहते हो, उससे तुम कहते हो, मुझे तेरी आत्मा से प्रेम है। न तुम्हें अपनी आत्मा का पता है, उसकी आत्मा का तो पता ही कैसे होगा!

लेकिन शरीर के लोलुप व्यक्ति आत्मा की बातें करते हैं। शरीर को भोगने की आकांक्षा से भीतर के सौंदर्य की झूठी चर्चा करते हैं। तब अगर तुम सुनोगे सहजो, दया, राबिया की बातें, कि उन्होंने प्रेम से परमात्मा पाया, तो तुम कैसे मानोगे? तुमने तो प्रेम से सदा ही बंधन पाया। लेकिन इसमें कसूर प्रेम का नहीं था, कसूर तुम्हारा है। अगर चिकित्सक कुशल हो तो जहर से भी औषधि बना लेता है, और अगर चिकित्सक को कोई पता ही न हो तो अमृत भी जहर हो सकता है।

न तो जहर जहर है, न अमृत अमृत है—उपयोग पर निर्भर है।

कभी जहर बचाता है, कभी अमृत मार डालता है। प्रेम शब्द से कुछ अर्थ नहीं है, बहुत। प्रेम अमृत भी हो सकता है, जहर भी हो सकता है--तुम पर निर्भर है। प्रेम जहर हो जाएगा, अगर उसमें आसक्ति है। अगर तुमने प्रेम को अपनी काम-

वासना के लिए वाहन बनाया, और प्रेम से तुमने केवल शरीर की निम्नतम तृप्तियों को खोजा, तो तुम पाओगे, प्रेम से कलह मिली, दुःख मिला, पीड़ा मिली, बंधन मिला। सपने बहुत मिले, सपने सफल कभी न हुए। भ्रम बहुत दिखायी पड़े, बड़ी मृगमरीचिकाएँ बँधीं, बड़े इंद्रधनुष बने, लेकिन जब भी तुम पास पहुँचे सब कचड़ा हो गया। इंद्रधनुष सब मिट्टी में गिर गये, सपने सब व्यर्थ साबित हुए। वह महल स्वर्ण का जो दूर दिखायी पड़ता था सूर्य की किरणों में चमकता हुआ, पास आने पर सदा ही कारागृह सिद्ध हुआ। इसमें प्रेम का कोई कसूर नहीं है। तुमने प्रेम के नाम से कुछ और ही, किसी और ही चीज के सिक्के चला दिये। तुम खोटे सिक्के को चला रहे हो।

तो प्रेम को आसक्ति से मुक्त करना जरूरी है। प्रेम को बंधन नहीं बनने देना है, प्रेम बनना चाहिए मुक्ति। तुम जिसे प्रेम करो उसे मुक्त करो। तुम जिसे प्रेम करो अगर तुम उसे मुक्त करो, तो तुम बँध न सकोगे; फिर तुम्हें कोई भी बाँध न सकेगा। लेकिन तुम जिसे प्रेम करते हो उसे बाँधना चाहते हो, तुम उसके चारों तरफ एक चारदीवारी खड़ी करना चाहते हो, तुम उसके हाथों में जंजीरें डाल देना चाहते हो। जिसके हाथ में तुमने जंजीर डाली, वह तुम्हारे हाथ में जंजीर डालेगा।

जीवन से वही मिलता है जो तुम जीवन को देते हो, इस सत्य को कभी भूलना ही मत। यही तो कुल जमा कर्म का सिद्धांत है : तुम जो देते हो, वही पाते हो। अगर प्रेम से बंधन मिला, तो सबूत है इस बात का, कि तुमने प्रेम से किसी को बंधन देना चाहा होगा। अगर तुम प्रेम के द्वारा मुक्त करो--तुम प्रेम दो और भूल जाओ, तुम प्रेम दो और बदले में न माँगो, तुम प्रेम दो और तुम्हारी कोई शर्त न हो, कोई सौदा न हो--तुम प्रेम दो और धन्यवाद दो, कि किसी ने तुम्हारे प्रेम को स्वीकार किया इतना क्या कम है, अस्वीकार भी किया जा सकता था; तब तुम धीरे-धीरे पाओगे प्रेम ऊपर उठने लगा, कामवासना नीचे पड़ी रह गयी। तब प्रेम का पक्षी कामवासना के अंडे को तोड़कर उड़ जाता है। और तब एक नये ही आयाम में तुम्हारी गति होती है। तुम्हारी चेतना एक नये लोक में प्रवेश करती है।

'क्या प्रेम में राग और आसक्ति निहित नहीं है?'

हो भी सकती है। न भी हो।

साधारणतः होती है। सौ में निन्यानबे मौके पर होती है। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर एक मौके पर भी नहीं होती, तो वह एक मौका भी काफी प्रमाण है कि यदि तुम चाहो तो सौ मौकों पर भी नहीं हो सकती। अगर एक बीज टूट कर वृक्ष बन सकता है, तो सभी बीज टूटकर वृक्ष बन सकते हैं। नहीं बनते, यह

दूसरी बात है; ठीक भूमि न मिलती होगी।

जीसस ने कहा है, 'तुम एक मुट्ठी भर बीज फेंक दो। कोई रास्ते पर पड़ जाता है जहाँ लोगों के पैर चलते हैं, आते-जाते यात्री गुजरते हैं, वह बीज पनप न पाएगा। कोई रास्ते के किनारे पड़ जाता है; वहाँ पनप भी जाएगा, अंकुरित भी हो जाएगा, तो जानवर चर जाएँगे या बच्चे तोड़ लेंगे। कोई बीज पत्थर पर पड़ जाता है—चट्टान पर—वह तो कभी पनपेगा ही नहीं। कोई बीज ऐसी भूमि में पड़ जाता है, जो उर्वरा है। वह पनपेगा, वह अंकुरित होगा, वह वृक्ष बनेगा, उसमें फूल आएंगे, फल लगेंगे।'

कभी कोई बुद्ध, कोई फरीद, कोई सहजो, इनका बीज खिलता है—फूल को उपलब्ध होता है। अगर तुम्हारा नहीं हो पाता तो थोड़ा गौर करना, तुम कुछ गलत जगह पड़े होओगे। या तो ऐसी जगह, जहाँ चट्टान है; या ऐसी जगह, जहाँ चट्टान तो नहीं है, लेकिन लोगों का बहुत आवागमन है; या ऐसी जगह, जहाँ लोगों का आवागमन भी नहीं है, लेकिन कोई बचाव नहीं है—बागुड़ नहीं है। तुम्हें ठीक भूमि मिलनी चाहिए, तो तुम्हारे भीतर भी वही पैदा हो जाएगा, जो बुद्ध के, कृष्ण के भीतर पैदा होता है। संभावना तो हमारी वही है, प्रत्येक की वही है; उससे कम संभावना परमात्मा किसी को देता ही नहीं। परमात्मा ही तुम्हें बनाता है, तो परमात्मा परमात्मा के अतिरिक्त और किसी को बना भी नहीं सकता। परमात्मा के हाथ तुम्हें बनाने में लगे हैं, परमात्मा तुम्हारा प्राण होकर छिपा है, तुम्हारी संभावना होकर छिपा है।

प्रेम मुक्ति बन सकता है, वह हर प्रेम की संभावना है, हर हृदय की संभावना है। लेकिन सजग होना पड़े, आसक्ति को काटना पड़े। तुम तो उलटा आसक्ति के जाल को बढ़ाये जाते हो। तुम प्रेम की बात ही भूल गये हो। तुम तो राग को ही प्रेम कहने लगे हो।

मैंने सुना है—

एक बड़ी प्राचीन सूफियों की कथा है कि पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ एक गाँव था। उस गाँव के आसपास जंगल के अतिरिक्त और कुछ भी न था। तो उस गाँव के लोगों ने एक ही कला विकसित की थी कि जंगल से लकड़ियाँ काट लाते, उन्हीं लकड़ियों से मूर्तियाँ भी बनाते, घर के और साज-सामान बनाते। वह पूरा गाँव बढ़ई हो गया था, क्योंकि केवल लकड़ी ही उपलब्ध थी, उतना ही माध्यम था। और उस गाँव के लोगों का कुल धंधा इतना था कि आते-जाते राहगीर गाँव से गुजरते, पहाड़ी घाटी से गुजरते, तो उन्हें लकड़ी के सामान बेचना।

एक राहगीरों का जत्था गुजर रहा था तो उसने कहा, कि ठीक तुम्हारे ऊपर पहाड़ की चोटी पर भी एक गाँव है; तुम कभी वहाँ भी बेचने गये अपना सामान? वहाँ लोग बड़े धनी हैं, और तुम्हारे सामान की बड़ी अच्छी बिक्री हो जाएगी। उन्हें तो खयाल ही न था। क्योंकि घाटी में रहनेवाले को शिखरों का खयाल ही नहीं आता। अपनी घाटी में मस्त थे; जो भी दीन-दरिद्रता थी, ठीक थी; और पहाड़ पर चढ़ना—चढ़ाई कठिन है! कभी पहाड़ पर रहनेवाला भले घाटी में आ जाए भूल-चूक से, घाटी में रहनेवाला भूल-चूक से पहाड़ नहीं पहुँचता। उतार आसान है, चढ़ाव कठिन है।

खैर, कई बार ऐसी यात्रियों से खबरें मिलीं, तो गाँव ने कुछ जवानों को तय किया कि कुछ सामान लेकर जाओ। अगर वे धनी हैं, अपना सामान बेचकर आओ। युवक चढ़े। बड़ी कठिन थी चढ़ाई। कठिन और भी, क्योंकि चढ़ने की कोई आदत ही न थी। घाटी के सुलभ जीवन में रहे थे, बड़ी मुश्किल से...। और भरोसा भी नहीं होता था, कि पता नहीं अफवाह ही हो। कोई ऊपर रहता भी है! और इतने ऊपर कोई रहेगा कैसे, जब चढ़ना इतना मुश्किल हो रहा है! खैर, किसी तरह थके-माँदे वे पहुँचे। कई दिनों की यात्रा के बाद पहाड़ के शिखर पर पहुँचे।

बात तो लोगों ने ठीक कही थी। नगर तो बड़ा अद्भुत था। स्वर्ण-शिखरों से मंडित उस नगर के मंदिर थे। सूरज की किरणों में वे मंदिर ऐसे चमकते कि इन युवकों ने तो स्वप्न में भी कभी ऐसी कल्पना नहीं की थी। उन्होंने जाकर बाजार में अपनी दुकान लगायी, लोगों को बुला-बुलाकर सामान दिखाने लगे, लेकिन लोग हँसते। कोई खरीदने को तैयार न था। आखिर उन्होंने पूछा, 'बात क्या है?' उन्होंने कहा, 'इन लकड़ी के सामानों का हम क्या करेंगे? यहाँ सोने-चाँदी की खदानें हैं, पागलो! हम मूर्ति बनाते हैं स्वर्ण की। ये लकड़ी की मूर्तियों का हम क्या करेंगे?' उन्हें विश्वास तो न आया की लकड़ियों से भी मूल्यवान कोई चीज हो सकती है संसार में, और इससे भी कीमती कोई मूर्तियाँ हो सकती हैं। वे बड़े नाराज हुए। दुःखी भी थे, नाराज भी हुए। और इन लोगों के व्यवहार से बड़े विक्षुब्ध हुए। गाँव के लोगों ने कहा भी, कि 'तुम हमारे मंदिर में आवो, हम तुम्हें अपनी मूर्तियाँ दिखाएँ।' मगर वे इतने विक्षुब्ध थे, इतने क्रोधित थे, कि उन्होंने मंदिरों में जाना उचित न समझा। वे अपने सामान को लेकर वापस घाटी में उतर गये। और जब घाटी में लोगों ने पूछा कि—'क्या हुआ?' तो उन्होंने कहा, कि न, वहाँ लोग तो रहते हैं, लेकिन बड़े दुष्ट प्रकृति के। और एक चीज से सावधान

रहना, और एक चीज से बचने की कोशिश करना, उस चीज का नाम स्वर्ण है—वह हमारा सबसे ज्यादा दुश्मन मालूम होता है—स्वर्ण; हमने देखा तो नहीं कि वह क्या है, क्योंकि वे लोग हमसे बड़ा असद्व्यवहार कर रहे थे; और एक भी मूर्ति बिक न सकी।' कहते हैं घाटी के लोग अब पहाड़ की तरफ नहीं जाते, और घाटी में यह बात प्रचलित हो गयी है कि पहाड़ पर हमारे दुश्मन रहते हैं, वे हमारे मित्र नहीं हैं; और स्वर्ण नाम की चीज से सदा सावधान रहना, क्योंकि उससे ही हमारी संस्कृति के नष्ट हो जाने का खतरा है।

करीब-करीब ऐसी ही दशा उन सारे लोगों की है, जो प्रेम की घाटी में रहे और जिन्होंने प्रेम के शिखर को नहीं जाना। प्रेम की घाटी में लकड़ी का सामान है—वह वासना का सब फैलाव है। प्रेम के शिखर पर स्वर्ण है। लेकिन वासना में जीनेवाला आदमी स्वर्ण की बातें सुनकर डरता है, वह कहता है यह तो हमारे शत्रुओं की बात है। हम तो अपनी कामवासना में मस्त हैं, ये ऊँची बातें हमसे मत करो, हमारी नींद मत तोड़ो, और हमारे सपनों को खराब मत करो।

पर, मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम जहाँ भी जी रहे हो, वह ऐसा ही है जैसे कोई तुम्हें महल भेंट करे, और तुम महल के पोर्च में ही जीवन गुजार दो—भीतर प्रवेश ही न करो—तुम समझो कि पोर्च ही सब कुछ है। पोर्च तो सिर्फ प्रवेश है। जितने भीतर जाओगे, जितने अंतरतम में प्रवेश करोगे, उतने ही आनंद के, स्वर्ण के शिखर उपलब्ध होंगे।

कामवासना तो केवल प्रेम का पोर्च है। वहाँ से गुजर जाना है, वहाँ रुक नहीं जाना है। पोर्च से गुजरने में कुछ भी हर्ज नहीं है—ध्यान रखना, मैं पोर्च की निंदा नहीं कर रहा हूँ। पोर्च से गुजरना ही पड़ेगा महल में जाना है तो, लेकिन गुजरने के लिए रुक मत जाना, वहीं घर मत बना लेना, वहीं ठहर मत जाना—उसीको जिंदगी मत समझ लेना।

गुजरना काम से जरूर—गुजरना ही होगा, वह जिंदगी का अनिवार्य हिस्सा है। लेकिन पार करने के लिए गुजरना। जैसे कोई सीढ़ियों से गुजरता है, सेतु से गुजरता है पार होने के लिए।

भीतर बड़ी अद्भुत संभावनाएँ छिपी हैं। प्रेम जिसने काम की तरह जाना, राग-आसक्ति की तरह जाना, वह जीवन के नर्क से ही परिचित हो पायेगा। और तुम थोड़ा सोचो, नर्क में भी तुम्हें थोड़ा सुख मिल रहा है, तो स्वर्ग का तो कहना ही क्या! कामवासना में भी थोड़ी झलक तो सुख की मिलती ही है, पोर्च में भी थोड़ी खबर तो महल की आ ही जाती है। भीतर जलती हुई धूप हो, तो पोर्च में

भी थोड़ी गंध उड़ आती है; भीतर छायी शांति हो, तो पोर्च में भी थोड़ी शीतलता उतर आती है; भीतर संगीत बजता हो, तो पोर्च तक भी थोड़े स्वर तो भटके-भूले आ ही जाते हैं। तो कामवासना में भी थोड़ी तो मोक्ष की भनक पड़ती है, कामवासना में भी थोड़ी तो परमात्मा की छवि उतरती है। छवि ऐसी ही है, जैसे आकाश में चाँद हो और झील में प्रतिबिंब बनता हो। है प्रतिबिंब, जरा सी झील हिल जाए नष्ट हो जाता है; कुछ वास्तविक नहीं है। लेकिन फिर भी है तो वास्तविक का ही प्रतिबिंब। कामवासना में प्रेम की ही छबि है—झील पर बनी, शरीर और मन की झील पर बनी छबि है। आँख उठाओ, झील में छबि को जब इतना सुंदर पाया है तो थोड़ा आँख उठाकर उस चाँद को देखो जिसकी छबि है।

राबिया, एक फकीर औरत अपने घर में बैठी थी। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह हो गयी, सूरज उगा। हसन बाहर गया, और उसने जोर से आवाज दी कि राबिया, भीतर क्या कर रही है? बाहर आ, देख कितना सुंदर सूरज निकला है, परमात्मा की सृष्टि को देख! राबिया ने कहा, हसन! बेहतर हो तू ही भीतर आ जा, क्योंकि तू परमात्मा की सृष्टि को देख रहा है बाहर, भीतर मैं स्वयं उसी को देख रही हूँ।

सृष्टि सुंदर है। लेकिन सृष्टा से थोड़े ही मुकाबला करोगे? गीत सुंदर है। गायक के प्राणों की जरा सी भनक है वहाँ। यह चित्र बड़े सुंदर हैं, जो चारों तरफ खुदे हैं, लेकिन चित्रकार की बड़ी छोटी सी कृति है यह। चित्रों पर चित्रकार समाप्त नहीं हो गया, सृष्टि पर सृष्टा पूरा नहीं हो गया है। अनंत-अनंत सृष्टियाँ हो सकती हैं उस सृष्टा से, फिर भी वह पीछे उतना ही शेष रहेगा—उतना ही।

ईशावास्य् कहता है: 'पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

उस परमात्मा से अनंत सृष्टियाँ निकलती चली आएँ तो पीछे वह उतना का ही उतना शेष रह जाता है, उसकी असीमता में भेद नहीं पड़ता, वह चुकता नहीं है। और जब यह सृष्टि इतनी सुंदर है, तो थोड़ा तो सोचो! महल के बाहर ही इतना सुख है, भीतर कितना न होगा! आसक्ति और राग से भरे प्रेम में भी थोड़े से संगीत के भूले-बिसरे सुर सुनायी पड़े, तो जब परमशुद्ध हो जाएगा प्रेम, राग की अशुद्धि और आसक्ति गिर जाएगी, स्वयं जब निखरेगा, धूल-धवाँस, कूड़ा-करकट जल जाएगा अग्नि में, तब तुम थोड़ी कल्पना करो! वह कल्पना ही तुम्हें पुलक से भर देगी, एक नये आमंत्रण से भर देगी, एक नयी अभीप्सा जग जाएगी। उस अभीप्सा का नाम ही धर्म है।

प्रेम को उसकी परिशुद्धि में जानने की खोज ही धर्म है।
और प्रेम की परिशुद्धि को ही हमने परमात्मा कहा है।

तीसरा प्रश्न : आप कैसे जानते हैं कि सहजोबाई आत्मोपलब्ध थी? क्या उनके वचन ही इसका पर्याप्त प्रमाण हैं?

प्रश्न थोड़ा कठिन है।

वचन पर्याप्त प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि वचन तो उधार भी हो सकते हैं। जो कहा है, वह तो किसी और का कहा हुआ भी दोहराया जा सकता है। इसलिए वचन पर्याप्त प्रमाण नहीं हो सकते, अपर्याप्त प्रमाण हो सकते हैं।

थोड़ा ठीक से समझ लो :

अपर्याप्त प्रमाण का अर्थ है कि वचनों से थोड़ा इशारा मिल सकता है। लेकिन वह इशारा ही होगा। वह निश्चित ही सही होगा, कहना मुश्किल है। वचनों से इशारा तो मिलता है।

जब तुम किसी दूसरे का वचन दोहराते हो, तब कुछ न कुछ भूल-चूक हो जानी सुनिश्चित है। पंडित के वचन को पहचान लेने में बड़ी कठिनाई नहीं है। पंडित का वचन तत्क्षण पकड़ में आ जाता है, क्योंकि वह दोहराता है, खुद तो उसे कुछ पता नहीं है। वह कितनी ही चेष्टा से सही-सही दोहराए, तो भी कुछ न कुछ भूल हो जानी सुनिश्चित है, क्योंकि भीतर तो उसके भूल ही भूल भरी है, ऊपर से दोहराने की कोशिश कर रहा है। जो दोहरा रहा है वह भूल भरा है। तो कुछ भूलें मिश्रित हो जानी अनिवार्य हैं। ऐसा ही समझो, कि तुम्हारे हाथ तो कालिख में भरे हैं, और तुम किसी शुभ्र-भवन की सफाई में लगे हो—तुम काले हो, कालिख से भरे हो, काजल से भरे हो, और शुभ्र-भवन की सफाई में लगे हो—तुम्हारे हाथ की छापें कई जगह छूट ही जाएँगी—मजबूरी है। शायद अज्ञानी न पहचान सकें, लेकिन जिन्होंने जाना है वे तो पहचान ही लेंगे।

तो, वचन से अपर्याप्त प्रमाण मिल सकता है, इशारा मिल सकता है कि शायद इसने जाना हो। फिर जब कोई व्यक्ति जानकर कहता है, तो उसके कहने में एक बल होता है, जो कि बिन जाने कहे व्यक्ति की वाणी में नहीं होता—हो नहीं सकता, असंभव है। क्योंकि बल अनुभव से आता है।

मैं पढ़ रहा था एक ईसाई संत का जीवन। उसने लिखा, कि मैं एक गाँव से गुजरता था, और ठीक वैसी घटना घटी जैसी जीसस के जीवन में घटी थी। जीसस एक रात एक गाँव से गुजर रहे थे, एक युवक ने उनका वस्त्र पकड़ लिया। उस युवक का नाम 'निकोडेंमस' था। और 'निकोडेंमस' ने कहा, कि मैं क्या करूँ कि

तुम जिसे परमात्मा का राज्य कहते हो वह मुझे भी मिल जाए? तो जीसस ने कहा, 'तू सब छोड़ और मेरे पीछे आ।' (कम फॉलो मी)।

ये ईसाई फकीर ने लिखा है कि एक रात ऐसी घटना मुझे भी घट गयी। एक गाँव से गुजरता था, एक युवक ने मुझे पकड़ लिया। उसने कहा कि मैं भी वही पाना चाहता हूँ जिसकी तुम चर्चा करते हो, मुझे बताओ मैं क्या करूँ? उस ईसाई फकीर ने लिखा है, मुझे याद आया कि जीसस ने कहा था, 'सब छोड़ दे और मेरे पीछे आ।' लेकिन मैं यह कहने की हिम्मत न जुटा सका कि 'सब छोड़ दे, मेरे पीछे आ।' ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कह सका : 'सब छोड़ दे और जीसस के पीछे जा।'

इतना फर्क तो होगा ही।

कृष्ण कह सके अर्जुन से, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' 'छोड़ सब धर्म, मेरी शरण आ।' पंडित न कह सकेगा। पंडित कहेगा—'सब धर्म छोड़, कृष्ण की शरण जा।' पंडित को यह कहने में, कि 'मेरी शरण आ', डर लगेगा। पहले तो यह डर लगेगा, कि लोग समझेंगे कि यह तो बड़े अहंकार की बात हो गयी। अहंकार हो तो ही अहंकार का खयाल उठता है। कृष्ण को जरा भी न उठा। कृष्ण ने सोचा भी न कि सदियों तक यह किताब रहेगी, लोगों के हाथ में प्रमाण रहेगा, लोग कहेंगे कृष्ण बड़ा अहंकारी रहा होगा—कहता है अर्जुन से, 'सब छोड़, मेरी शरण आ।' कहीं ऐसा कोई कहता है! ये तो बड़ी अहंकार की बात हो गयी।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो बुद्ध ने कहा, मुझे वह उपलब्ध हुआ है जो करोड़ों में कभी एक को उपलब्ध होता है। सहज उपलब्ध न होनेवाली घटना घटी है। मैं सम्यक्-बुद्धत्व को प्राप्त हुआ हूँ।

पढ़नेवाले को लगेगा, यह तो बड़ी अहंकार की घोषणा मालूम पड़ती है। कहीं ज्ञानी ऐसा कहते हैं? ज्ञानी तो कहते हैं—'हम विनम्र हैं, तुम्हारे चरणों की धूल हैं।' लेकिन ध्यान रखना, जिनसे ऐसे वचन पैदा हुए हैं, उन्हें पता ही नहीं है। अहंकार तो बचा ही नहीं, इसलिए कौन चिंता करे?

पंडित और ज्ञानी के वचन में फर्क होता है। पंडित के वचन में उधार होगी—हिम्मत न होगी, साहस न होगा, बल न होगा, और पंडित के वचन में शास्त्र की गंध होगी। ज्ञानी के वचन में सहज स्फुरणा होगी—अभी आ रहे हैं स्रोत से, ताजे और नये। अभी ढाले जा रहे हैं, अभी बाजार में चले हुए सिक्के नहीं हैं ये। नये-ताजे नोट हैं—अभी निकले हैं टकसाल से, अभी किन्हीं हाथों ने छुआ भी नहीं। तुम पहचान लेते हो न टकसाल से निकला नया नोट, और बाजार में चला नोट!

क्या, अड़चन आती है पहचानने में ? क्योंकि नोटों को तुम पहचानते हो। जब तुम जागोगे, वचनों को भी पहचान लोगे।

ये सहजोबाई के वचन टकसाल से निकले हैं, बिलकुल सीधे-सीधे हैं। ये सहजोबाई कोई पंडित तो है ही नहीं, न ही कोई कवि है। वचन सीधे-सीधे हैं, कोई बहुत बड़ा आडंबर नहीं है। बात साफ-साफ, दो-टूक कहती है—कुछ छिपाया नहीं है। और इस ढंग से कही है जिस ढंग से किसी ने पहले नहीं कही थी। इसलिए उधारी का उपाय नहीं।

जब भी परमात्मा किसी में उतरता है हर बार नये ढंग से उतरता है; पुनरुक्ति परमात्मा को पसंद ही नहीं।

सहजोबाई का एक-एक पद बिलकुल अनूठा है। पहले कभी नहीं था, बाद में फिर कभी नहीं हुआ। इसलिए अपर्याप्त प्रमाण मैं कहता हूँ। इससे कुछ पक्का नहीं होता, इतना भर होता है कि संभावना है, इशारा है।

फिर, मैं कैसे कहता हूँ कि सहजोबाई आत्मोपलब्ध थी ?

शब्दों के बीच खाली जगह को पढ़ना पड़े, पंक्तियों के बीच रिक्त स्थान को पढ़ना पड़े। पंक्तियों से अपर्याप्त प्रमाण मिलेगा, वो जो खाली जगह है वहाँ पर्याप्त प्रमाण मिल जाएगा। लेकिन सहजोबाई के शब्दों में खाली जगह को तुम तभी पढ़ पाओगे, जब तुम अपने भीतर खाली जगह को पढ़ो। इसलिए मैंने कहा, प्रश्न् जरा कठिन है। मेरे उत्तर देने से हल न होगा, तुम्हारे जीवन में जब उत्तर आएगा तब हल होगा।

प्रश्न बहुत तरह के होते हैं। एक तो, जो मैं उत्तर दे दूँ, हल हो जाए। एक, जो जब तुम बढ़ो और विकसित हो, तब हल हो। जैसे एक छोटा बच्चा पूछे, कि ये कामवासना क्या है ? पूछ सकता है। किताब पढ़ ले, जिसमें लिखा है—कामवासना; शब्दकोश देख ले, जिसमें लिखा है—कामवासना; और पूछे कामवासना क्या है ? उसको कैसे समझाओ ? उसे क्या कहो ? उसके जीवन में कामवासना की अभी कोई भी घटना नहीं घटी, अभी कामवासना का धुआँ उसके चित्त पर नहीं फैला, अभी वह जानता ही नहीं कामवासना क्या है ? अभी तुम कुछ भी कहोगे वह सिर के ऊपर से निकल जाएगा। हाँ, जब उसके जीवन में उम्र आएगी, कामवासना उठेगी, तब तुम कुछ कहोगे तो कहीं चोट पड़ेगी, कहीं तालमेल बैठेगा—उसकी समझ में तुम्हारे वक्तव्य में कुछ संवाद होगा।

सहजोबाई आत्मोपलब्ध है, यह तुम आत्मोपलब्ध होओगे तो ही समझ पाओगे। जो व्यक्ति भी आत्मोपलब्ध है, वह तत्क्षण पहचान लेगा कि कोई दूसरा आत्मोपलब्ध है या नहीं। इसमें जरा भी दिक्कत नहीं होती। इसमें कुछ करना ही नहीं पड़ता। यह पहचान किसी प्रयास से नहीं होती। यह पहचान, सहज प्रमाण होता है इसका, बस घटती है। ऐसा ही समझो, कि तुम एक परदेश में भेज दिये जाओ, जहाँ तुम्हारी भाषा कोई भी नहीं समझता, जहाँ सभी अलग तरह की भाषाएँ बोलते हैं। तुम अकेले हो, तुम अपनी भाषा बोलते हो लेकिन कोई नहीं समझता, कोई नहीं सुनता। और अचानक एक आदमी तुम्हारी भाषा को सुननेवाला मिल जाए। क्या देर लगेगी दोनों को पहचानने में ? एक शब्द भी न बोला जाएगा कि पहचान हो जाएगी, कि अपनी ही भाषा बोलनेवाला है।

जब दो आत्मोपलब्ध व्यक्तियों का मिलन होता है, हजारों सालोंके फासले पर भी, तो भी भाषा वे एक बोलते हैं। सहजोबाई और जीसस, बुद्ध और महावीर, जरथुस्त्र और लाओत्से, जिसको तुम भाषा कहते हो वह तो अलग-अलग बोलते हैं—लाओत्से चीनी बोलता है, जीसस हिब्रू बोलते हैं, बुद्ध पाली बोलते हैं, सहजो हिंदी बोलती है—सब अलग-अलग भाषा बोलते हैं, जिसे तुम भाषा कहते हो। लेकिन, आत्मोपलब्ध की भी एक भाषा है, जिसे वे सभी एक सा बोलते हैं, उसमें जरा भी फर्क नहीं है। वे तत्क्षण पहचान लेंगे, अगर तुम एक कमरे में इनको बंद कर दो, वे तत्क्षण पहचान लेंगे। उनका इशारा, उनकी आँख, उनका उठना-बैठना, उनका होना, उनके जीवन की सुवास, उनके चारों तरफ की रोशनी, वे सब पहचान लेंगे, क्योंकि वे खुद भी वही जानते हैं।

ये हजारों साल के फासले पर भी पहचान लिया जाता है, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। लेकिन, इसलिए मैंने कहा कठिन है—मेरे उत्तर से हल न होगा। जिस दिन तुम जागोगे, उसी दिन तुम पाओगे कि सब जागनेवालों को तुम पहचान गये। सोनेवाला नहीं पहचान सकता कि कौन जागा हुआ है।

यहाँ हम इतने लोग बैठे हैं, हम सब सो जाएँ, एक आदमी जागा हो। जागा हुआ सोयों को भी पहचानता है, कि सोये हैं, अपने को भी जानता है, कि जागा हुआ है; सोये हुए न तो अपने को जानते, कि हम सोये हैं, और न यही जानते हैं कि कोई जागा हुआ है। फिर इतनों में से कोई और दूसरा जागे। दोनों जागे एक-दूसरे को पहचान लेंगे, तत्क्षण, कि जागे हुए हैं; और दोनों यह भी जान लेंगे कि बाकी सब सोये हुए हैं। इसमें कुछ अड़चन पड़ेगी ? बस ऐसा हो जीवन की नींद के बाहर जागना है, दो जागे हुए सदा पहचान लेते हैं।

मैं तो किसी एक ऐसे व्यक्ति के नाम का भी उल्लेख नहीं करता हूँ, जो जागा हुआ न हो। अगर सहजो की वाणी पर बोलने की मैंने तैयारी दिखायी, तो कोई

और कारण नहीं है। सहजो की कविता में कुछ भी नहीं रखा, अगर कविता तो बोलनी होती तो बड़े-बड़े कवि हैं। सहजो ने कोई बड़ा तत्त्वदर्शन भी स्थापित नहीं किया है, अगर दार्शनिकों पर बोलना होता तो बड़े-बड़े अफलातून हैं। सहजो एक साधारण अशिक्षित; न कवि, न पंडित; एक बड़ी साधारण, सरल-चित्त महिला है—पर जागी हुई है—बस उसका जागना ही बहुमूल्य है, बाकी सब दो कौड़ी का है।

तुम कितने ही बड़े पंडित रहो—सोये रहो—किसी काम के नहीं। तुम कुछ भी न जानो—सिर्फ जाग जाओ—सब जानना हो गया।

तो, मैं तो पहचानता हूँ कि सहजोबाई आत्मोपलब्ध है, अन्यथा मैं उसका नाम भी न उठाता; सोयों की भी क्या बात करनी! और सोये हुओं के सामने सोयों की क्या बात करनी! सोये हुओं को तो तुम भलीभाँति जानते ही हो। थोड़े जागे हुओं की बात करनी है कि शायद तुम्हें भी रस पकड़ जाए, जागने की आकांक्षा आ जाए, शायद तुम्हारे भीतर भी कोई पुकार उठे, तुम थोड़ी करवट बदलो।

चौथा प्रश्न : क्या स्त्रियों और पुरुषों के प्रश्न भी भिन्न होते हैं? और क्या उनके पूछने के ढंग में भी फर्क होता है?

निश्चित होता है। होगा ही। क्योंकि प्रश्न तुम्हारे भीतर से पैदा होते हैं। तुम्हारी खबर लाते हैं प्रश्न। तुम्हारा प्रश्न तुम्हारा प्रश्न है। उसका ढाँचा, उसका ढंग तुम दोगे।

निश्चित ही स्त्रियाँ अलग ढंग से पूछती हैं, पुरुष अलग ढंग से पूछते हैं। मेरे निरीक्षण में, पहली तो बात स्त्रियाँ पूछती नहीं—वह उनका ढंग है। मुश्किल से पूछती हैं। समझने की कोशिश करती हैं, पूछने की कम। पुरुष पूछने की कोशिश ज्यादा करते हैं, समझने की कम। चूँकि पूछते ज्यादा हैं, इसलिए ऐसा भ्रम पैदा होता है कि समझते ज्यादा होंगे। चूँकि स्त्री पूछती कम है, इसलिए ऐसा भ्रम पैदा होता है कि समझती ही न होगी—पूछती नहीं है? पर बात बिलकुल उल्टी है।

मेरे पास पुरुष आते हैं, बड़े प्रश्नों का जाल लेकर आते हैं। अक्सर पुरुष मुझसे आकर कहते हैं, मैं उनसे पूछता हूँ : 'पूछना है कुछ?'

तो वे कहते हैं, 'बहुत पूछना है, कहाँ से शुरू करें? इतना पूछना है कि पूछें कैसे, कहाँ से पूछें, समझ में नहीं आता।'

स्त्रियों से पूछता हूँ : 'कुछ पूछना है?' वे कहती हैं कि 'नहीं। बस आपके पास बैठने को आ गये हैं, 'दर्शन' को आए हैं।'

पुरुष भी नहीं पूछ पाता कभी, तो कारण यह होता है कि इतने प्रश्न होते हैं कि उनकी भीड़ के कारण नहीं पूछ पाता। स्त्री भी नहीं पूछती, इसलिए नहीं कि

भीड़ है, इसलिए कि पूछने को कुछ नहीं है।

पुरुष मेरे पास आकर बैठते हैं तो उनकी बुद्धि की भीड़ को मैं देख पाता हूँ। उनके सिर में बड़े विचारों की तरंगें चल रही हैं। अगर उनका सिर खोला जाए तो एक पागलखाना निकल पड़ेगा, पागल भाग खड़े होंगे—सब तरफ छितर-बितर हो जाएँगे, जैसे भूत-प्रेत खोल दिये गये हों किसी बंद कारागृह से। वे सुनते भी हैं, तो सिर से सुनते हैं। उनसे कोई संबंध भी बनता है, तो सिर से बनता है। जब तक सिर उनका न काटा जाए, तब तक हृदय से कोई संबंध नहीं बनता।

स्त्रियाँ आती हैं तो उनके सिर में बहुत भनक नहीं होती। उनके हृदय में एक धड़कन होती है, एक पुलक होती है—भावाविष्ट, हार्दिक! सुनती कम हैं, पीती ज्यादा हैं। उनकी आँखें ज्यादा सक्रिय होती हैं, उनके विचार कम सक्रिय होते हैं।

ऐसा मुझे अनुभव आया कि पुरुष अगर मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं, तो वे मुझसे कहते हैं कि हमें आपके विचार प्रिय हैं, इसलिए आपसे प्रेम हो गया। स्त्रियाँ अगर मेरे प्रेम में पड़ जाती हैं, तो वे कहती हैं हमें आप से प्रेम हो गया, इसलिए आपके विचार भी प्रिय लगते हैं।

ये फर्क है; भारी फर्क है।

पुरुष कहते हैं कि हमें आपके विचार प्रिय लगते हैं, इसलिए आपसे प्रेम हो गया। विचार प्रथम हैं, प्रेम नंबर दो है। स्त्रियाँ कहती हैं, हमें आपसे प्रेम हो गया, इसलिए आपके विचार भी ठीक लगते हैं। प्रेम पहले है, विचार नंबर दो है।

दोनों का व्यक्तित्व अलग-अलग है, भिन्न-भिन्न है। इसलिए स्त्रियों ने कोई बड़े शास्त्र नहीं रचे, न कोई बड़े दर्शन को जन्म दिया। पुरुषों ने बड़े शास्त्र रचे, बड़े संप्रदाय रचे, बड़े दर्शनशास्त्र पैदा किये। लेकिन प्रतीति ऐसी है कि पुरुष के बजाय स्त्रियाँ ज्यादा सुख से जियी हैं। इसको मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं अब।

इसे समझने की कोशिश करें।

पागलखानों में पुरुषों की संख्या ज्यादा है, स्त्रियों की बहुत कम। कारागृहों में पुरुषों की संख्या बहुत ज्यादा है, स्त्रियों की न के बराबर। मानसिक-रोग पुरुषों को जितनी सरलता से पकड़ते हैं, स्त्रियों को नहीं। पुरुष जितनी आत्महत्याएँ करते हैं, स्त्रियाँ नहीं—हालाँकि स्त्रियाँ कहती बहुत हैं—करती नहीं। स्त्रियाँ अक्सर कहती रहती हैं—'आत्महत्या कर लेंगे।' कभी-कभी गोली भी खाती हैं, लेकिन गिनती की—सुबह ठीक हो जाती हैं। मरना नहीं चाहतीं। अगर मरने की बात भी करती हैं, तो वह भी जीवन की किसी गहन आकांक्षा के कारण। जीवन को जैसा चाहा था, वैसा नहीं है, इसलिए मरने को भी तैयार हो जाती हैं, लेकिन

मरना चाहती नहीं। स्त्री जीवन से बड़ी गहरी बँधी है।

पुरुष जरा सी बात में मरने को तैयार हो जाता है। फिर जब पुरुष कुछ करता है तो पूरी सफलता से ही करता है, फिर वह मरता ही है। फिर वह ऐसा नहीं करता कि अधूरे उपाय करे, वह गणित उसका पूरा है, वैज्ञानिक है; वह मरने का सारा इंतजाम करके मरता है। स्त्री मरने की बात करे, बहुत ध्यान मत देना; कोई चिंता करने की बात नहीं। पुरुष मरने की बात करे, थोड़ा सोचना। अक्सर तो ऐसा होता है पुरुष मर जाएगा, मरने की बात न करेगा। स्त्री मरने की बात करती रहेगी, और जीती रहेगी।

स्त्रियों को शारीरिक बीमारियाँ भी पुरुषों से कम होती हैं, क्योंकि अगर मन थोड़ा शांत और स्वस्थ हो तो शरीर भी स्वस्थ और शांत होता है। स्त्रियाँ पुरुषों से ज्यादा जीती हैं, पाँच साल औसत ज्यादा। अगर पुरुष सत्तर साल जिएगा, तो स्त्रियाँ पचहत्तर साल जिएँगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि विवाह की व्यवस्था में हमें फर्क कर देना चाहिए। अभी हम कहते हैं कि लड़का तीन-चार साल बड़ा होना चाहिए लड़की से, यह बिल्कुल ही उल्टा है। लड़की बड़ी होनी चाहिए—चार-पाँच साल बड़ी, लड़के से। तो दोनों करीब-करीब साथ-साथ मरेंगे, नहीं तो विधवाओं से पृथ्वी भर जाती है। तुम पाओगे, विधुर व्यक्ति कम पाओगे। विधवाएँ ज्यादा पाओगे। जगह-जगह मंदिरों में बैठी हुई मिलेंगी तुम्हें। उसका कारण है, कि वे पाँच-सात साल ज्यादा जीनेवाली हैं। उचित यह होगा कि लड़कियाँ पाँच-सात साल बड़ी हों, तो मरने के वक्त दो-चार महीने फासले पर दोनों विदा हो जाएँगे, ठीक होगा जीवन।

लेकिन पुरुष की अकड़ है। वह विवाह में भी उम्र ज्यादा रखना चाहता है, ताकि बड़ा मालूम पड़े। वह हर चीज में उसे बड़ा होना चाहिए, उम्र में भी बड़ा होना चाहिए, हालाँकि बड़ा वह कभी हो नहीं पाता कितनी ही उम्र हो जाए। जब भी वह किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, तो वह उसी स्त्री में माँ को खोजने लगता है, बड़ा वह हो नहीं पाता। छोटी से छोटी बच्ची भी बड़ी होती है, क्योंकि छोटी बच्ची भी जो पहला खेल खेलती है वह माँ बनने का खेलती है, इससे कम का उसका काम नहीं। छोटे गुड्डों को सजाती है, बिठाती है, माँ बनती है। छोटी से छोटी बच्ची माँ है, और बूढ़े से बूढ़ा व्यक्ति भी बच्चा होता है—पुरुष बच्चा होता है।

लेकिन अकड़, अहंकार! तो बड़ा होना चाहिए हर बात में। स्त्री लंबी हो तो दूल्हे के मन को दुःख लगता है, बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है, पुरुष स्त्री से लंबा

ही होना चाहिए। हर चीज में उसे बड़ा होना चाहिए। कहीं हीनता की कोई ग्रंथि काम कर रही है पुरुष में। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, वह हीनता की ग्रंथि यह है कि स्त्री जीवन को जन्म देने में समर्थ है और पुरुष समर्थ नहीं है, यह हीनता की ग्रंथि है। इससे एक 'इनफिरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स' है।

स्त्री बच्चे को पैदा कर सकती है, जीवन को जन्म दे सकती है। परमात्मा उसका सीधा उपयोग करता है, वह सीधी माध्यम है। पुरुष सांयोगिक मालूम होता है। पुरुष को विदा किया जा सकता है, एक इंजेक्शन भी पुरुष का काम कर देगा। उसकी कोई इतनी अनिवार्यता नहीं है। लेकिन माँ को विदा नहीं किया जा सकता, क्योंकि माँ भीतर से जन्मायेगी—उसका खून, उसकी हड्डी, मांस-मज्जा, नये जन्म को निर्मित करेगा—नये जीवन को गति देगा। स्त्रियाँ बड़ी तृप्त मालूम होती हैं, और जब वे माँ बन जाती हैं तब तो बड़ी तृप्ति उनको घेर लेती है, क्योंकि एक अर्थ में वे परमात्मा का उपकरण बन गयीं।

वैज्ञानिक चिंतक कहते हैं, कि पुरुष इतनी दौड़-धूप करता है वह सिर्फ इसी बात की कमी पूरा करने के लिए। स्त्रियाँ चित्र नहीं बनातीं, मूर्ति नहीं बनातीं, कविता नहीं करतीं, कहानी नहीं लिखतीं, उपन्यास नहीं लिखतीं, नाटक-सिनेमा, चाँद पर जाने की दौड़, हवाई जहाज का बनाना—कुछ नहीं करतीं; क्योंकि इतना बड़ा कृत्य परमात्मा ने उन्हें दिया है कि उससे पर्याप्त तृप्ति हो जाती है, करने का भाव पूरा हो जाता है। लेकिन पुरुष हजार चीजें बनाता है। वह यह कह रहा है, कि कोई फिकर नहीं, अगर हम बच्चे को जन्म नहीं दे सकते हम मूर्ति बनाएँगे, सृष्टा बनेंगे, कविता लिखेंगे। लेकिन कितनी ही कविता सुंदर हो, एक बच्चे की आँखों की कविता से तो बड़ी नहीं हो सकती। और कितनी ही मूर्ति संगमरमर की हो, एक जीवित बच्चे की प्रतिमा तो नहीं बन सकती। और तुम चाहे चाँद पर पहुँच जाओ, चाहे मंगल पर पहुँच जाओ, तुम मातृत्व पर नहीं पहुँच पाओगे।

तो पुरुष के जीवन में तो तृप्ति तभी आती है, जब वह अपने को ही जन्म ले लेने देता है अपने भीतर से, जैसे बुद्ध, कृष्ण, महावीर। इसलिए हमने ज्ञानियों को द्विज कहा है, उन्होंने अपने को स्वयं जन्म दे दिया, दुबारा जन्म दे दिया। एक जन्म तो वह था जो माँ-बाप से मिला, और एक उन्होंने स्वयं अपने ध्यान, अपनी समाधि से अपने को जन्म दिया—वे पुनरुज्जीवित हुए। कभी कोई बुद्ध ही तुम पाओगे कि स्त्री जैसा शांत हो जाता है। इसलिए बुद्ध की प्रतिमा में स्त्रैणता दिखायी पड़ेगी, वही गोलाई आ जाती है बुद्ध के जीवन में, जो स्त्री के जीवन में है। वही तृप्ति, वही अहोभाव—एक परितोष।

निश्चित ही स्त्री, पुरुष के ढंग अलग हैं। और इन ढंगों को हम ठीक-ठीक पहचान लें तो बातें बड़ी सुगम हो जाती हैं, यात्रा सुगम हो जाती है; व्यर्थ के भटकाव, उलझाव बच जाते हैं।

स्त्री एक तो पूछती नहीं, और कभी अगर पूछती है, तो उसका पूछना सदा व्यावहारिक होता है—पारमार्थिक नहीं होता, 'मेटाफिज़िकल' नहीं होता।

इस संबंध में एक प्रश्न और है :

कल आपके प्रवचन के बाद मैंने बहुतेरी संन्यासिनियों से सहजोबाई के संबंध में प्रश्न बनाने को कहा, पर उन सभी ने मुस्करा दिया। हाँ भी नहीं भरी। स्त्रियाँ मुक्त स्त्री के संबंध में भी जानने-पूछने को उत्सुक क्यों नहीं हैं?

जानने की, पूछने की उत्सुकता पुरुष की है। होने की, जीने की उत्सुकता स्त्री की है। छोटे-छोटे बच्चे भी....., तुम फर्क कर सकते हो। लड़कियाँ अगर खेलती होंगी तो उनके खेल का ढंग सृजनात्मक होगा, वे कुछ बनाएँगी। लड़कों के खेल का ढंग विध्वंसात्मक होगा, वे कुछ तोड़ेंगे। अगर लड़के को तुमने मोटर-खिलौना दे दिया है, वह जल्दी ही तोड़कर उसके अंदर देखेगा, क्या है? जानने की उत्सुकता, जिज्ञासा, कि भीतर क्या है? घड़ी हाथ लग गयी, खोल डालेगा। तुम कहते हो सब नष्ट कर दी, लेकिन वह बेचारा वैज्ञानिक उत्सुकता कर रहा है। वह यह देख रहा है कि कैसे चलती है? चींटा चल रहा है, अँगूठे से मसल देगा। वह कोई हिंसा नहीं कर रहा है, उसको कोई हिंसा से कोई प्रयोजन भी नहीं है, अभी चींटे ने कुछ बिगाड़ा भी नहीं है; वह यह देख रहा है कि भीतर कौन सी चीज है जो चला रही है?

पुरुष की उत्सुकता जानने की है। वह जानना चाहता है, हर जगह खोजना चाहता है, जहाँ-जहाँ पर्दे पड़े हैं उठाकर देखना चाहता है, कि मामला क्या है? स्त्री की वैसी उत्सुकता नहीं है। जानने की नहीं, जीने की है। बड़ी व्यावहारिक उत्सुकता है, जो बिलकुल जरूरी है जीवन के लिए, उतना ही पूछेगी।

स्त्रियाँ मेरे पास नहीं आतीं पूछने, कि ईश्वर है या नहीं, स्वर्ग-नर्क है या नहीं, सृष्टि को किसने बनाया? ये सब पुरुषों के प्रश्न हैं। स्त्री अगर कभी कुछ पूछती भी है, तो यही पूछती है कि मन में असंतोष है, संतोष कैसे हो; क्रोध आ जाता है, शांति कैसे हो; जीवन ऐसे ही व्यर्थ जा रहा है, इसमें सार्थकता कैसे आ जाए; प्रार्थना-पूजा कैसे हो? उसके प्रश्न व्यावहारिक हैं। और मैं मानता हूँ, कि व्यावहारिक होना लंबे अर्थों में ज्यादा होशियारीपूर्ण है, ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण है। क्या करोगे जानकर कि किसने बनाया संसार को, किस दिन बनाया, कौन सी तारीख-

दिन में बनाया, क्यों बनाया—क्या करोगे जानकर?

मैं कल रात एक यहूदी फकीर का जीवन पढ़ रहा था। एक आदमी, जब भी वह फकीर बोलता था, तो बार-बार खड़े हो-होकर प्रश्न पूछता था। वह उससे ऊब गया था, परेशान हो गया था, उस आदमी से। वह ज़िद्दी था, और प्रश्न ऐसे उल्टे-सीधे पूछता था। फकीर ने एक दिन समझाया कि परमात्मा ने संसार बनाया। वह आदमी उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, 'कब बनाया, और उसके पहले क्यों नहीं बनाया?'

प्रश्न तो बिलकुल ठीक है।

फकीर इसके पहले कि कुछ बोले, कि उस पूछनेवाले ने कहा, 'अगर उसका तुम्हें न पता हो कि पहले क्यों नहीं बनाया, तो यह हमें बताओ कि बनाने के बाद फिर क्या कर रहा है वह?'

सभी प्रश्न संगत हैं। क्योंकि अगर समझ लो कि ईसाई जैसा कहते हैं, कि चार हजार चार वर्ष पहले, सोमवार को बनाना शुरू किया, शनिवार को पूरा किया, रविवार को विश्राम किया; तो चार हजार चार वर्ष के पूर्व क्या करता रहा? खाली बैठा रहा? थका नहीं, पागल नहीं हुआ? कुछ तो करता ही रहा होगा? खाली भी आदमी बैठा रहता है तो कुछ भी करता है—अखबार पढ़ता है, रेडियो खोलता है। मगर वह भी नहीं था, वह करता क्या रहा?

'खैर', उस आदमी ने कहा, 'वह भी तुम्हें पता न हो, क्योंकि बहुत पुरानी बात हो गयी, उसके बाद क्या कर रहा है? छः दिन में दुनिया बन गयी, सातवें दिन विश्राम किया, फिर...?'

उस फकीर ने कहा, कि 'अब वह तुम जैसे आदमियों के हिसाब लगाता रहता है कि कौन-कौन नालायकी के सवाल पूछ रहे हैं, और इनको क्या-क्या दंड दिया जाए?'

एक तो व्यर्थ के प्रश्न हैं। वे कितने ही व्यर्थ के हों लेकिन पुरुष को सार्थक लगते हैं। और एक सार्थक प्रश्न हैं; वे कितने ही क्षुद्र मालूम पड़ें, कितने ही छोटे मालूम पड़ें, लेकिन उनके भीतर बड़ी महिमा है। क्योंकि अंततः जिज्ञासा काफी नहीं है, मुमुक्षा चाहिए। जानने से कुछ न होगा, होने से कुछ होगा। जीवन रूपांतरित करना है, नया होना है, आलोकित होना है, बुझे दीये को जलाना है। इसलिए यह सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक ही सवाल महत्त्वपूर्ण है कि भीतर का बुझा दीया कैसे जले, आँख बंद है कैसे खुले, नींद गहरी है कैसे टूटे—कैसे मैं स्वयं के लिए प्रकाश बन जाऊँ?

स्त्री-पुरुष के प्रश्नों में फर्क है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि पुरुष भी जब जीवन

को सच में ही रूपांतरित करने में लगता है, तो उसके प्रश्न भी स्त्रियों जैसे व्यावहारिक हो जाते हैं।

और कुछ-कुछ स्त्रियाँ भी, कभी-कभी पुरुष की बीमारी से संक्रामित हो जाती हैं, और वे पुरुषों जैसे सवाल पूछने लगती हैं।

जोर मेरा है व्यावहारिक पर, जिससे तुम्हारा जीवन रूपांतरित होता हो, उसे पूछना, वही जिज्ञासा सार्थक है।

आखिरी प्रश्न : स्त्रियों को संघ में प्रवेश देने के कारण, भगवान बुद्ध का धर्म भारत में पाँच हजार की जगह पाँच सौ वर्ष ही चला। आप तो अपने संघ में स्त्रियों को मुक्तभाव से प्रवेश दे रहे हैं; क्या बताने की कृपा करेंगे कि आपका धर्म कितना दीर्घजीवी होगा?

भविष्य की चिंता अज्ञान का ही हिस्सा है। कल क्या होगा, इसकी फिकर कल करेगा। बुद्ध ने इसकी फिकर की होगी, ऐसी कहानी तो है, लेकिन कहानी कहाँ तक सच है, कहना मुश्किल है।

मैंने भी बहुत बार तुमसे कही है, कि बुद्ध ने कहा कि अब मेरा धर्म पाँच सौ वर्ष ही चलेगा, स्त्रियाँ सम्मिलित कर ली गयी हैं। इसका एक ही अर्थ हो सकता है, इसका यह अर्थ तो हो ही नहीं सकता कि बुद्ध भविष्य की चिंता करते हैं। धर्म पाँच सौ वर्ष चले, कि पाँच हजार वर्ष चले, कि पचास हजार वर्ष चले, इससे बुद्ध को क्या प्रयोजन है?

तो प्रयोजन कुछ दूसरा ही रहा होगा।

वह प्रयोजन इतना ही है कि बुद्ध की जो जीवन-पद्धति है वह मूलतः पुरुष के लिए विकसित की गयी थी। महावीर की भी जो जीवन-पद्धति है, वह भी मूलतः पुरुष के लिए विकसित की गयी थी। वे दोनों मार्ग संकल्प के हैं—समर्पण के नहीं; तपश्चर्या के हैं—प्रभु-अनुकंपा के नहीं। परमात्मा की दोनों के मार्ग में कोई जगह नहीं है; प्रार्थना-पूजा का कोई उपाय नहीं है। ध्यान के हैं दोनों मार्ग। ध्यान का जो मार्ग है, वह स्त्री को मौजूं नहीं आ सकता। स्त्री के लिए प्रार्थना और प्रेम का मार्ग मौजूं आता है।

तो महावीर ने जो मार्ग, या बुद्ध ने जो मार्ग विकसित किया वह ध्यान का है। फिर अचानक, पीछे स्त्रियाँ भी उत्सुक हो गयीं, और उन्होंने कहा हमें भी दीक्षित करें। तो बुद्ध को चिंता पकड़ी होगी। वह चिंता इसकी नहीं है वस्तुतः, कि कितने दिन धर्म चलेगा। अगर उन्होंने कहा भी होगा तो वह एक तथ्यगत वक्तव्य है, वह बुद्ध की चिंता नहीं है। लेकिन बुद्ध के सामने सवाल यह उठा, कि जो मार्ग है

वह तो ध्यान का है, अगर स्त्रियाँ उसमें समाविष्ट होती हैं तो दो ही उपाय हैं—या तो स्त्रियाँ मार्ग को बदलकर प्रार्थना का कर देंगी, और, या फिर ध्यान का मार्ग स्त्रियों को बदलकर पुरुष जैसा करे। दूसरी बात करीब-करीब असंभव है, पहली ही बात संभव है।

स्त्रियाँ जब प्रविष्ट होंगी, तो वे ध्यान के मार्ग को भी प्रार्थना का मार्ग बना देंगी, और मार्ग प्रार्थना का नहीं है, तो विकृति आ जाएगी। इसलिए महावीर ने तो कह ही दिया कि स्त्री-पर्याय से मोक्ष ही नहीं मिल सकता। उसका केवल इतना ही अर्थ है, क्योंकि यह तो हो ही नहीं सकता अर्थ कि महावीर कहते हैं स्त्री मुक्त नहीं हो सकती, यह तो बात बड़ी नासमझी की होगी, महावीर जैसे पुरुष से ऐसी नासमझी की संभावना नहीं। और महावीर तो निरंतर कहते हैं—'आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष।' इसलिए पर्याय तो शरीर की है, शरीर से मोक्ष का क्या लेना-देना? पुरुष की पर्याय भी यहीं पड़ी रह जाएगी, स्त्री की पर्याय भी यहीं पड़ी रह जाएगी। ये तो ऐसा हुआ, कि कोई कहे कि स्त्रियों के वस्त्रों से मोक्ष न होगा, पुरुष के वस्त्र पहनोगे तब मोक्ष होगा।

महावीर तो जानते हैं कि शरीर तो वस्त्रों से ज्यादा नहीं है, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? कहने का कारण है। महावीर का मार्ग भी ध्यान का मार्ग है। महावीर यह कह रहे हैं, कि स्त्री-पर्याय से मेरे मार्ग का संबंध नहीं जुड़ेगा। तो अगर स्त्री को मेरे ही मार्ग से मुक्त होना हो, तो उसे पुरुष होकर ही मुक्त होना पड़ेगा, यह अर्थ है। वह पुरुष होगी तो ही मुक्त हो सकेगी।

ध्यान के मार्ग से स्त्री मुक्त नहीं हो सकती, प्रेम के मार्ग से ही मुक्त हो सकती है। ध्यान से उसका तालमेल नहीं बैठता। हृदय जब उसका भरता है अहोभाव से, तभी वह पुलकित होती है और नाचती है, तभी उसके भीतर समाधि की दशा उतरती है। नृत्य और कीर्तन, और भजन, पूजा और अर्चन, उनसे ही उसका हृदय-कमल खिलता है।

तो महावीर और बुद्ध यह कह रहे हैं असल में—जब वे कह रहे हैं : 'मेरा धर्म,' तब वे यही कह रहे हैं—'ध्यान का मार्ग ऐसा है कि स्त्री उससे मुक्त न हो सकेगी, और स्त्री बड़ी घटना है, वह मार्ग को रूपांतरित कर लेगी।'

ऐसा हुआ। आज तुम जाओ जैनों के मंदिरों में, तुम वहाँ जैनियों को महावीर की प्रार्थना-पूजा करते पाओगे। महावीर का पूजा-प्रार्थना से कोई भी संबंध नहीं है, और जैनी पूजा-प्रार्थना कर रहा है। स्त्रियों ने भटका दिया। स्त्रियों ने पूजा-प्रार्थना शुरू कर दी। वे तो महावीर को भी प्रेम ही करेंगी, प्रेम करेंगी तो महावीर

के सामने नाचना चाहेंगी आरती लेकर। उन्होंने धीरे-धीरे मार्ग को भटका दिया, अब बड़ी कठिनाई है। अगर तुम कृष्ण के मंदिर में नाचो, तब तो ठीक है, क्योंकि नाचने से कृष्ण का तालमेल है। वह पद्धति नाचने की है। तुम जब महावीर के मंदिर में नाचो, तब गड़बड़ हो गयी। ये तो ऐसे ही हुआ, कि तुम कृष्ण के मंदिर में जाकर और तपश्चर्या करने लगो, वह पद्धति वहाँ की नहीं है। ये तो ऐसा हुआ कि तुमने एक फोर्ड कंपनी की कार खरीदी और रॉल्स रॉयस में उसके औजार लगाने लगे।

ध्यान की पद्धति बिल्कुल अलग पद्धति है, प्रेम की पद्धति बिल्कुल अलग। ये दो ही पद्धतियाँ हैं, दो ही मार्ग हैं। प्रेम की पद्धति पर जो सही है, वह ध्यान की पद्धति पर अड़चन होगी। ध्यान की पद्धति पर जो सही है, वह प्रेम के मार्ग पर बाधा बन जाएगी। मार्ग शुद्ध रखने चाहिए।

और तुम मुझसे पूछते हो। मेरा न तो ध्यान की पद्धति से कोई आग्रह है, न प्रेम की पद्धति से कोई आग्रह है। मेरा कोई मार्ग नहीं है। मेरे पास तो तुम जब आते हो, तो मैं तुम्हारी तरफ देखता हूँ, तुम्हारा क्या मार्ग है वह तुम्हें बता देता हूँ। तुम्हें मैं अपने मार्ग पर चलाने की कोशिश ही नहीं कर रहा हूँ, वह मेरी चेष्टा नहीं है। मैं तुम्हें देखता हूँ। तुम्हें देखकर ही तय करता हूँ कि तुम्हारा क्या मार्ग होगा। मेरा किसी मार्ग से कोई लगाव नहीं—मेरा बिलकुल अनाग्रह है। इसलिए अगर कोई स्त्री आती है, तो उसे मैं प्रेम-प्रार्थना की तरफ लगा देता हूँ। कभी कोई पुरुष भी आता है जो हृदय से भरपूर है, उसे भी प्रार्थना पर लगा देता हूँ। कभी कोई स्त्री भी आती है जिसके भीतर प्रेम का अंकुरण नहीं हो सकेगा, तो उसे ध्यान पर लगा देता हूँ।

फिर, प्रार्थना के भी बहुत रूप हैं। इस्लाम की अपनी प्रार्थनाओं का ढंग है, हिंदुओं का अपना है। फिर ध्यान के भी अनंत रूप हैं। जैनों का अलग है, बौद्धों का अलग है, पतंजलि का अलग है, लाओत्से का अलग है।

मैं तुम्हें देखता हूँ।

इस बात को तुम ठीक से समझ लो—

दो रास्ते हैं। एक तो मेरा रास्ता हो, तो तुम कोई भी हो तुमसे कोई प्रयोजन नहीं ,मेरे रास्ते पर चलना है तो मैं चुनकर लूँगा। मैं उन्हीं लोगों को लूँगा जो मेरे रास्ते पर चल सकते हैं, उनको नहीं लूँगा जो मेरे रास्ते को विकृत करते हों। उनको मैं कहूँगा, ये रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है, तुम कोई और मंदिर खोजो।

बुद्ध में एक चुना हुआ रास्ता है बुद्ध का। महावीर का एक चुना हुआ रास्ता है।

मेरा किसी रास्ते से कोई आग्रह नहीं है। मैं अपने रास्ते पर तुम्हें नहीं चला रहा हूँ। तुम इसे ही मेरा रास्ता कह सकते हो, कि मैं तुम्हें तुम्हारे रास्ते पर चलाना चाहता हूँ। तुम्हें देखता हूँ गौर से; तुम मुझे ज्यादा कीमती हो किसी भी मार्ग के मुकाबले। एक-एक व्यक्ति मेरे लिए मूल्यवान है।

तालमुद में यहूदियों के एक वचन है कि : 'एक व्यक्ति भी सारी सृष्टि से ज्यादा मूल्यवान है।' उसे मैं अंगीकार करता हूँ। एक-एक व्यक्ति इतना बहुमूल्य है कि सारी सृष्टि एक पलड़े पर रख दो, और एक व्यक्ति को, तो एक व्यक्ति ज्यादा वजनी साबित होगा। इतनी गरिमा है व्यक्ति की।

मैं तुम्हें देखता हूँ, तुम्हें क्या मौजूँ आएगा वही तुमसे कहता हूँ। इसलिए मुझे सब स्वीकार है। तुम नाचकर जाओ परमात्मा की तरफ, मेरी मंगलकामना तुम्हारे साथ है। तुम आँख बंद करके, ध्यानस्थ होकर जाओ, मेरी मंगलकामना तुम्हारे साथ है। तुम स्त्री की तरह जाओ, तुम पुरुष की तरह जाओ—यह सब तो जाने के ढंग हैं—पहुँचना तो एक ही मंजिल पर है।

परमात्मा तो एक है, उसके नाम अनेक हैं। सत्य तो एक है, पर उस तक पहुँचने की राहें बहुत हैं। मैं सभी राहों को स्वीकार करता हूँ। और हर राह कारगर हो सकती है। इस पर निर्भर करता है कि तुमसे राह का तालमेल बैठता है या नहीं।

तो मेरी नजर तुम पर है। मैं दवाई की फिकर नहीं करता, मैं मरीज की फिकर करता हूँ। मरीज के हिसाब से दवाई चुनता हूँ। कुछ चिकित्सक हैं जो दवाई तय कर लिए हैं; वे कहते हैं, जिन मरीजों को जमती है वे ही यहाँ आएँ; दूसरे मरीजों को कोई लाभ न होगा।

महावीर का एक संप्रदाय है; बुद्ध का एक संप्रदाय है; मेरा कोई संप्रदाय नहीं। मैं संप्रदायशून्य हूँ।

महावीर का एक घाट है। वे तीर्थंकर हैं। वे उस घाट से नाव को उतारते हैं।

मेरा कोई घाट नहीं। नाव मेरे पास है, तुम जिस घाट से उतरना चाहो, और जिस घाट से लगना चाहो, वह नाव वहीं काम आ जाएगी—सारी गंगा मेरी है।

आज इतना ही।

★ ★ ★

पाँव पड़ै कित कै किती

प्रवचन ३, प्रातः, दिनांक ३-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रेम दिवाने जे भये, पलटि गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कह भूप ।।

प्रेम दिवाने जे भये, जाति वरन गये छूट ।
सहजो जग बौरा कहे, लोग गये सब फूट ।।

प्रेम दिवाने जे भये, सहजो डिगमिग देह ।
पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह ।।

मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग ।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग ।।

चेतना की दो दशाएँ हैं। एक प्रेम की, एक प्रेम के अभाव की। चाहो तो कहो जागने की, सोने की। चाहो तो कहो धर्म की, अधर्म की। शब्दों से भेद नहीं पड़ता।

लेकिन चेतना दो ढंग से हो सकती है। जिसे तुमने संसार कहा है, वह चेतना के अप्रेम की अवस्था है। प्रेमशून्य आँखों से जब अस्तित्व को देखा जाता है तब संसार दिखायी पड़ता है। आँखें जब प्रेम से भर जाती हैं, तो वही जो कल तक संसार दिखायी पड़ता था, अचानक क्षणमात्र में परमात्मा हो जाता है।

संसार कोई यथार्थ नहीं है।

और समझने की कोशिश करना : परमात्मा भी कोई यथार्थ नहीं है।

जीवन को देखने के दो ढंग हैं।

संसार प्रेमरहित आँखों का अनुभव है, परमात्मा प्रेमपूर्ण आँखों का।

सवाल दृश्य का नहीं है, सवाल दृष्टि का है। क्या तुम देखते हो, वह मूल्यवान नहीं है। कैसे तुम देखते हो? क्योंकि तुम्हारे देखने का ढंग ही अस्तित्व को निर्धारित करता है। तुम्हें अगर परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता, तो ऐसा मत सोचना कि परमात्मा नहीं है, इतना ही सोचना कि आँखों में प्रेम नहीं है। तुम्हें अगर संसार ही संसार दिखायी पड़ता है, तो ऐसा मत सोचना कि केवल संसार है, इतना ही सोचना कि आँखें प्रेमरिक्त हैं, प्रेम से सूनी हैं। जब आँख प्रेम से खाली होती है, तो जो अनुभव में आता है स्वप्नवत् है, झूठा है। क्योंकि सत्य को जानने का प्रेम के अतिरिक्त कोई उपाय ही नहीं है।

जैसे कोई वीणा बजाता हो और तुम आँखों से सुनने की कोशिश करो। कुछ भी सुनायी न पड़ेगा। आँखें सुनने का उपाय नहीं हैं, आँख से कोई सुन नहीं सकता। वीणा बजती रहेगी, संगीत गूँजता रहेगा, तुम तक नहीं पहुँचेगा। क्योंकि जिस सेतु से जोड़ बन सकता था उसका तुमने उपयोग न किया। संगीत सुना जाता है, देखा नहीं। बहरा आदमी बैठकर देखता रहेगा, संगीतज्ञ की उँगलियाँ तारों से खेलती

हुई दिखायी पड़ेंगी, लेकिन तारों और उँगलियों के बीच जो जादू घट रहा है वह उसे सुनायी नहीं पड़ेगा। आँख से सुनने का कोई उपाय नहीं है। या, जैसे कोई आदमी कान से फूलों को देखने का प्रयास करे। फूल खिलते रहेंगे, झरती रहेगी वास उनकी, तितलियों और मधुमक्खियों को खबर लग जाएगी, भौंरों तक संदेश पहुँच जाएगा, लेकिन जो व्यक्ति कान फूल के करीब किये बैठा है उसे कुछ भी पता न चलेगा। कब कली खिली, कब फूल बनी, कब गंध के बादल घिरे, कब गंध विसर्जित हुई; कब कली फूल बनकर अस्तित्व के लिए समर्पित हो गयी; कब अर्चना का यह क्षण आया और गया—कान से कुछ भी पता न चलेगा। आँख चाहिए, नाक चाहिए, सम्यक् साधन चाहिए।

जब तुम कहते हो संसार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता, तो उसका केवल एक ही अर्थ है, कि तुमने जिस ढंग से अब तक देखना सीखा है उस ढंग से संसार के अतिरिक्त कुछ भी दिखायी नहीं पड़ सकता।

पुरानी बाउल कथा है :

एक फकीर नाच रहा है एक फूलों के बगीचे में—फूलों के साथ, पक्षियों के साथ; और एक पंडित ने आकर उससे पूछा, कि 'हमने सुना है तुम सदा प्रेम की ही प्रेम की रट लगाये रखते हो, प्रेम आखिर है क्या?' फकीर नाचता रहा, क्योंकि इससे अतिरिक्त और उत्तर क्या हो सकता था? प्रेम चारों तरफ झर रहा था। वृक्ष भी समझ रहे थे, सरोवर भी समझ रहा था, आकाश में तैरते शुभ्र बादल भी समझ रहे थे; पंडित अंधा था।

फकीर नाचता रहा। पंडित ने कहा, 'बंद करो यह उछल-कूद। जो पूछा है उसका ठीक-ठीक उत्तर दो, ऐसे उछल-कूद करने से कोई उत्तर नहीं मिल जाएगा। मैं पूछता हूँ, प्रेम क्या है?' फकीर ने कहा, कि 'मैं प्रेम हूँ। और, अगर नाचते में न दिखायी पड़ा तो जब मैं रुक जाऊँगा तब बिल्कुल दिखायी न पड़ेगा। जब गीत गा रहा हूँ तब दिखायी नहीं पड़ता, तो जब चुप हो जाऊँगा तब तुम्हारी समझ के बहुत दूर हो जाऊँगा। उत्तर ही दिया है।'

वह पंडित हँसने लगा। उसने कहा कि, 'वैसा नासमझों को उत्तर देना; मैं शास्त्रों का ज्ञाता हूँ—सम्यक् उत्तर चाहिए। कोई गैर पढ़ा-लिखा गँवार नहीं हूँ—वेद जानता हूँ, उपनिषद् जानता हूँ, गीता पढ़ी है। सोच-समझकर उत्तर दो। अन्यथा कहो कि उत्तर पता नहीं है।'

उस फकीर ने एक गीत गाया। उस गीत में उसने कहा, कि मैंने ऐसा सुना है कि एक बार और ऐसी घटना घटी थी—कि फूल खिले थे बगीचे में और माली नाच रहा था इस अभूतपूर्व फूलों के सौंदर्य के साथ। और, गाँव का सुनार आया और कहने लगा, 'ऐसे क्या मदमस्त हुए जाते हो! ऐसी कौन सी बड़ी घड़ी घट गयी है! नाचने का क्या कारण आ गया है?'

तो उसने कहा, 'देखो इन फूलों को।'

सुनार ने कहा, 'रुको। बिना जाँच किये मैं राजी न होऊँगा।'

उसने अपने झोले से सोने को कसने का पत्थर निकाला। निश्चित ही सोने के कसने का पत्थर होता है जिसपर सोना कस जाता है, पता चल जाता है—सही है या झूठ। उसने फूलों को सोने के पत्थर पर रगड़ा, कुछ भी पता न चला—फूल मर गये। फूल भी हँसे होंगे, वृक्ष भी हँसे होंगे, आकाश के बादल भी हँसे होंगे। और वह फकीर भी हँसा, वह माली भी हँसा। और, उस फकीर ने पंडित से कहा, 'ऐसे ही तुम मुझसे पूछ रहे हो। प्रेम को तुम तर्क की कसौटी पर कसना चाहते हो।'

तो जैसे फूल मर जाएँगे पत्थर के ऊपर....। पत्थर सोने को कस लेता है, क्योंकि सोने और पत्थर के बीच कोई तारतम्य है—सोना भी पत्थर है। तुमने कभी सोने को खिलते देखा? वह मृत है। मृत मृत को पहचान लेता है। फूल जीवन है। उसे तुम पत्थर पर कसोगे, मर जाएगा; सिर्फ मौत की खबर छूट जाएगी, सिर्फ फूल का लहू पड़ा रह जाएगा पत्थर पर; लेकिन पत्थर से कोई खबर न आएगी कि फूल सच था या झूठ।

सोने के कसने के पत्थर अलग हैं। तुम्हें अगर संसार में परमात्मा नहीं दिखायी पड़ा, तो तुम समझना तुम सुनार हो जो फूलों के बगीचे में सोने को कसने के पत्थर को लेकर घूम रहे हो, तुम्हें फूल मिलेंगे ही नहीं। तुम्हारे हाथ के पत्थर ने ही फूलों से मिलन रोक दिया। तुम्हारे देखने के ढंग ने ही बाधा डाल दी। तुम्हारा होने का जो रूप है, वही परमात्मा को वर्जित कर देता है।

जब तुम मुझसे आकर पूछते हो कि परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता, तब मैं परमात्मा को सिद्ध करने नहीं लग जाता हूँ, न मैं तुमसे कहता हूँ परमात्मा है। वह तो व्यर्थ की बात होगी, वह तो बहरे के सामने वीणा को छेड़ना होगा, वह तो अंधे के सामने दीये का जलाना होगा, वह तो जिसके नासापुट अवरुद्ध हैं उसके पास सुगंध का छिड़कना होगा। नहीं, वैसी भूल मैं नहीं करता।

जब तुम पूछते हो परमात्मा कहाँ है, तब मैं जानता हूँ, तुम पूछ रहे हो प्रेम कहाँ है? क्योंकि परमात्मा को पूछने का और क्या अर्थ हो सकता है? तुम परमात्मा के संबंध में कोई वक्तव्य नहीं दे रहे हो, तुम अपने संबंध में सूचन कर रहे हो कि मेरे पास प्रेम की आँख नहीं है।

काश ! तुम्हें भी यह समझ हो तो तुम परमात्मा को खोजने न निकलो, क्योंकि वह खोज गलत है; तुम प्रेम को खोजने निकलो ।

जिसने प्रेम को पा लिया, उसने परमात्मा को पा लिया । प्रेम के अतिरिक्त परमात्मा कहीं भी नहीं मिला है ।

तो, मैं तुमसे कहता हूँ, प्रेम परमात्मा से भी बड़ा है; क्योंकि प्रेम की आँख के बिना उससे कोई संबंध नहीं हो सकता । मैं तुमसे कहता हूँ, बड़े से बड़े संगीत से भी बड़े हैं तुम्हारे कान, क्योंकि उनके बिना संगीत शून्य हो जाता है । और मैं तुमसे कहता हूँ, सुंदर से सुंदर दीयों से भी बड़ी है तुम्हारी आँख । सूरज छोटा है, तुम्हारी आँख बड़ी है । तुम गणित से मत सोचना अन्यथा तुम्हारी आँख बड़ी छोटी है, सूरज बहुत बड़ा है । और, मैं फिर दोहराता हूँ, तुम्हारी आँख बड़ी है सूरज छोटा है, क्योंकि तुम्हारी आँख के बिना सूरज कहाँ होगा ?

तुम्हारी छोटी सी आँख में करोड़ों सूरज समा सकते हैं । और तुम्हारे छोटे से धड़कते प्रेम में परमात्मा की अनंतता समाविष्ट हो जाती है ।

तुम्हारा प्रेम बड़ा है । इस बात को जितनी सफाई से तुम ध्यान में ले लो उतना उपयोगी है, क्योंकि यात्रा का पहला कदम गलत पड़ जाए तो फिर मंजिल सदा के लिए भटक जाती है । पहला कदम ठीक पड़ जाए, आधी मंजिल पूरी ही हो गयी । ठीक दिशा में चल पड़े, आधे पहुँच ही गये––अब पहुँचने में कुछ अड़चन न रही, थोड़े समय की ही बात है । लेकिन अगर गलत कदम पड़ जाए, तो तुम जनम-जनम चलते रहो । कितना ही चलो, कितना ही दौड़ो, कितना ही श्रम-उपाय करो, कुछ भी न होगा—शायद उल्टी ही घटना घटेगी––जितना तुम श्रम करोगे, उतने ही दूर निकलते जाओगे; जितना दौड़ोगे, उतना ही फासला बढ़ जाएगा ।

गलत दिशा में दौड़ने से कोई नहीं पहुँचता । ठीक दिशा में धीमे-धीमे चलकर भी लोग पहुँच जाते हैं । और जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो कहा है, कि अगर बिलकुल दिशा ठीक हो तो एक कदम भी नहीं उठाना पड़ता; तुम जहाँ बैठे हो वहीं मंजिल आ जाती है ।

यही मैं तुमसे कहता हूँ ।

हिलने की भी जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि मंजिल दूर थोड़े है । मंजिल तो तुम्हारी आँख में है, तुम्हारे देखने के ढंग में है ।

प्रेम से देखने का एक ढंग है—वह एक जादू है, अल्केमी है । उससे देखते ही कुछ और दिखायी पड़ता है, जो कल तक दिखायी ही न पड़ा था । अप्रेम का भी देखने का एक ढंग है । बड़ी अंधी दृष्टि है अप्रेम की । उससे वह दिखायी पड़ता है, जो प्रेम से कभी दिखायी नहीं पड़ता ।

संसार और परमात्मा कभी तुम्हारे अनुभव में साथ-साथ न आएँगे । इसीलिए तो ज्ञानी––शंकर जैसे ज्ञानी––कहते हैं, 'संसार माया है ।'

तुम यह मत सोचना कि संसार माया है तो शंकर भिक्षा माँगने नहीं जाते, क्योंकि भिक्षा किससे माँगनी ? तुम यह मत सोचना कि संसार माया है तो शंकर को भूख नहीं लगती, क्योंकि भूख कैसे लगेगी जब झूठ है? तुम यह मत सोचना कि शंकर को जब भूख लगती है और वे रोटी खा लेते हैं, तब भूख नहीं मिटती । भूख भी लगती है, भूख भी मिटती है, भिक्षा भी माँग आते हैं; फिर भी कहते हैं, 'संसार झूठ है ।'

ऐसी कहानी है ।

एक सिरफिरे सम्राट ने शंकर की बातें सुनीं । उसे बात जँची नहीं । किसी को नहीं जँचती, तुम्हें भी नहीं जँचती । संसार असत्य है ! कैसे माना जा सकता है? जरा दीवाल से निकलने की कोशिश करो, सिर फूट जाता है, लहूलुहान हो जाता है । अगर दीवाल असत्य थी, तो तुम निकल गये होते, कौन रोकता? सपने की दीवारें कहीं रोकती हैं ? और दरवाजे से तुम निकल जाते हो । तो दरवाजे और दीवाल में जरूर कोई बुनियादी, यथार्थगत फर्क है । एक से सिर टकराता है, एक से नहीं टकराता ।

सम्राट सिरफिरा था, उसने कहा कि ठहरो ! बातचीत में मेरा बहुत भरोसा नहीं है । मैं आदमी यथार्थवादी हूँ, आदर्शवादी नहीं हूँ । तो तुम रुको, यह निर्णय तर्क से नहीं होगा––तर्क में तुम कुशल हो—यह निर्णय यथार्थ के अनुभव से होगा, रुको । उसने अपने महावत को कहा कि पागल हाथी को ले आओ । सम्राट के पास एक पागल हाथी था, जिसके पैरों में भयंकर जंजीरें डाल रखी थीं क्योंकि वह बस में न आता था । छूट जाता तो दस-पाँच हत्या कर डालता था, कई बार जंजीरें तोड़कर भी भाग निकला था । वह पागल हाथी लाया गया ।

सम्राट महल के ऊपर छत पर खड़ा हो गया, लोग अपने घरों में छिप गये, राजपथ खाली हो गया । शंकर को राजपथ पर छोड़ दिया और पागल हाथी छोड़ दिया । भागे शंकर ! चीखे, चिल्लाए, घबड़ाए ! ! तुम शायद सोचोगे, अरे ! संसार माया, और शंकर भागने लगे माया के इस हाथी को देखकर––ज्ञानी तो ऐसा नहीं करता । यही सम्राट ने भी सोचा । इसके पहले कि कोई हानि पहुँचायी जा सके, क्योंकि हानि पहुँचाने का तो कोई प्रयोजन न था, सिर्फ जाँच करनी थी—संसार माया है ?––शंकर को बचा लिया गया । पसीने से लथपथ, होश-हवास खोए हुए

दरबार में बुलाए गये, सम्राट हँसने लगा। उसने कहा, 'अब कहो, संसार माया है?'

शंकर ने कहा, 'निश्चित ही महाराज, संसार माया है।' सम्राट खिलखिलाकर हँसा, उसने कहा, कि 'पागल हो, अब बिल्कुल पागलपन की बात हैं। फिर भागे क्यों? फिर चीखे-चिल्लाए क्यों? फिर रोये क्यों? ये चेहरे पर पसीने की बूँद क्यों है? ये छाती अभी तक धड़क क्यों रही है? झूठे हाथी को देखकर यह सब हुआ है?'

शंकर ने कहा, 'महाराज! यह भी उतना ही झूठ है जितना हाथी झूठ है। सच्चे हाथी से सच्चे आँसू होते हैं, झूठे हाथी से झूठे आँसू हो जाते हैं। मेरा भागना भी झूठ था, मेरा चीखना-चिल्लाना भी झूठ था, आपका सुनना भी झूठ था।' सम्राट ने कहा, 'बकवास बंद करो, तुम पागल हो, हाथी से भी ज्यादा पागल हो। अब कुछ बात करने का कारण न रहा।'

ऊपर से लगेगा कि शंकर ने यह कैसा जवाब दिया, लेकिन यह ठीक हैं। शंकर जब कहते हैं—'संसार माया है'—तो इसका यह अर्थ नहीं है कि संसार नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि जो है, उसे तुमने गलत ढंग से देखा हैं। इसलिए, जो तुम समझ रहे हो कि वह है, वैसा वह नहीं है। तुम्हारा अनुभव झूठ है।

संसार तुम्हारा अनुभव है, तुम्हारी व्याख्या है सत्य की। सत्य को तुमने देखा नहीं है, तुमने तो सिर्फ व्याख्या की है, और तुम्हारी व्याख्या झूठ है।

संसार ब्रह्म की अज्ञानपूर्ण व्याख्या है।

और जब आँख खुलती है, होश आता है, प्रेम की धारा बहती है, तब तुम इसी संसार को एक दूसरे दृष्टिकोण से, एक दूसरी पृष्ठभूमि में देखते हो। एक दूसरा संदर्भ आविर्भूत होता है, और सब अर्थ बदल जाते हैं। उस समय तुम कहते हो, जो मैंने पहले जाना था वह झूठ था; क्योंकि इस बड़े सत्य के सामने वह एकदम फीका पड़ जाता है। उस क्षण तुम कहते हो कि अब तक जो माना था वह सही नहीं था, इस नये अनुभव ने उसे बाधित कर दिया।

तुम्हारी आँख आत्यंतिक मूल्य रखती है। इसलिए तो हमने भारत में तत्त्वशास्त्र को 'दर्शन' कहा, देखने का ढंग कहा। पश्चिम में तत्त्वदर्शन को फिलॉसिफी कहते हैं। फिलॉसिफी उतना कीमती शब्द नहीं है जैसा 'दर्शन।' क्योंकि फिलॉसिफी का मतलब होता है—सोचना, विचारना; देखना नहीं। फिलॉसिफी का अर्थ होता है—जीवन को सोचना, विचारना, निष्कर्ष लेना। दर्शन का अर्थ होता है—तुम सोचोगे, विचारोगे, निष्कर्ष लोगे, वह सत्य न होगा; क्योंकि तुम्हारे निष्कर्ष में, तुम्हारे सोचने-विचारने में, तुम समाविष्ट हो जाओगे—तुम्हारी व्याख्या तुम्हारा विस्तार होगी।

शब्द हटाओ। देखो।

देखने की पराकाष्ठा कब घटित होती है? क्यों प्रेम को देखने की पराकाष्ठा कहा है, क्यों? इसलिए, कि प्रेम के क्षण में दृश्य और दृष्टा एक हो जाते हैं।

प्रेम का अर्थ ही है, जिसे तुम देख रहे हो उससे दूरी नहीं है; जिसे तुम देख रहे हो उसके लिए तुम खुले हो, निकट हो, उपलब्ध हो; जिसे तुम देख रहे हो उसे अपने की तरह देख रहे हो—पराये की तरह नहीं; जिसे तुम देख रहे हो उसे अपना ही विस्तार मान रहे हो—कोई अन्य नहीं; जिसे तुम देख रहे हो उसके साथ तुम एक हो गये हो।

प्रेम का अर्थ है, जिसे तुम देख रहे हो उससे तुम जुड़ गये हो—वह विजातीय नहीं है। तुम्हारा हृदय और उसका हृदय साथ-साथ धड़क रहा है। तुम्हारी श्वाँस और उसकी श्वाँस साथ-साथ चल रही है, तुम्हारे होने में और उसके होने में अब बीच में कोई दीवाल नहीं है। प्रेम का इतना ही अर्थ है। सब दीवालें विसर्जित हो गयी हैं। दृष्टा दृश्य बन गया है।

कृष्णमूर्ति निरंतर कहते हैं: 'दि ऑब्जर्व्ड इज़ दि ऑब्जर्वर, दि ऑब्जर्वर इज़ दि ऑब्जर्व्ड'। वह प्रेम की व्याख्या कर रहे हैं—'देखनेवाला दृश्य हो गया है, दृश्य देखनेवाला हो गया है।' दोनों ऐसे मिल गये हैं जैसे दूध-पानी मिल जाते हैं। फिर अलग करना मुश्किल हो जाता है। मिलने के बहुत ढंग हैं। पानी और तेल भी मिलाया जा सकता है। कितना ही मिलाओ, फासला बना ही रहता है—पानी-तेल मिलते ही नहीं। अप्रेम की दृष्टि पानी और तेल का मिलन है। तुम देखते हो, पर मिलते नहीं। बिना मिले कैसे देखोगे? बिना मिले कैसे उतरोगे अंतरतम में यथार्थ के? बिना मिले कैसे पहुँचोगे गहराई तक? दूध-पानी जैसे मिल जाओ।

फूल देखने गये हो: वहाँ फूल रहे, यहाँ तुम रहो; धीरे-धीरे, धीरे-धीरे दोनों खो जाएँ, सिर्फ फूल का अनुभव रहे—न तो अनुभव करनेवाला बचे, न फूल बचे—सिर्फ बीच में तैरता एक अनुभव रह जाए। जहाँ दृष्टा और दृश्य खो जाते हैं, वहाँ 'दर्शन' फलित होता है।

प्रेम पराकाष्ठा है। प्रम के अतिरिक्त, जानने का कोई उपाय नहीं। तुमने कभी सोचा; तुमने कभी निरखा, परखा, पहचाना कि जीवन के, ज्ञान के अन्यतम क्षण प्रेम की छाया की तरह आते हैं। तुम केवल उसी व्यक्ति को जान पाते हो जिसे तुमने प्रेम किया। जिसे तुमने प्रेम नहीं किया, उसके आसपास तुम कितनी ही परिक्रमा करो—जैसे लोग मंदिर में परिक्रमा करते हैं—पर वह परिक्रमा आस-पास ही रहेगी, बाहर ही बाहर घूमोगे, भीतर न जा सकोगे। क्योंकि भीतर जाने

की तो संभावना तभी है जब तुम अपने को डुबाने और मिटाने को राजी हो जाओ। जब तुम मिटने को राजी होते हो तब दूसरा भी मिटने को राजी हो जाता है—तुम्हारा राजीपन उसमें राजीपन की प्रतिध्वनि पैदा करता है। जैसे दो बूंद करीब आती हैं, करीब आती जाती हैं—राजी हैं मिटने को—फिर पास आ जाती हैं और एक बूंद हो जाती हैं। ऐसा एक बूंद हो जाना प्रेम है।

उस प्रेम से जिसने जाना, परमात्मा जाना। तब उसकी बड़ी अड़चन होती है। तुम पूछते हो परमात्मा कहाँ है? वह पूछता है संसार कहाँ है? यही माया का अर्थ है। तुम पूछते हो, परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता। वह पूछता है, उसके अतिरिक्त कुछ दिखायी नहीं पड़ता। शेष सब झूठ हो गया है—वही केवल सत्य बचा है।

प्रेम से जाना गया जगत परमात्मा है। अप्रेम से जाना गया परमात्मा जगत है।

यह तुम्हारे देखने के ढंग हैं।

कुछ और दो-चार बातें समझ लें, तो फिर सहजो के सीधे-सादे वचन बड़ी गरिमा से प्रगट हो जाएँगे। यह वचन बहुत सीधे हैं, सीधे-सादे हैं, कुछ उलझाव नहीं है। लेकिन अगर पृष्ठभूमि तैयार न हो, तो तुम इन्हें दोहरा लोगे समझ कुछ भी न पाओगे। सरलतम चीजें भी कठिनतम हो जाती हैं, अगर समझ की पृष्ठभूमि न हो; कठिनतम चीजें भी सरलतम हो जाती हैं, अगर समझ की पृष्ठभूमि तैयार हो।

पहली बात—

तुमने छोटे बच्चों को कभी पढ़ते देखा है। रवींद्रनाथ की कोई श्रेष्ठतम कविता दे दो, तो भी छोटा बच्चा बड़े-बड़े अक्षर नहीं पढ़ सकता, उसे हिज्जे करने पड़ते हैं। अगर परमात्मा लिखा हो, तो वह प को अलग पढ़ता है, र को अलग पढ़ता है, हलंत् त को अलग पढ़ता है, 'म' को अलग पढ़ता है—हिज्जे करता है। श्रेष्ठतम कविता भी छोटे बच्चे को पढ़ते देखो, तुम पाओगे कविता खो गयी, वर्णमाला बची। छोटे बच्चे को सुनकर तुम्हें रवींद्रनाथ की कविता का स्मरण भी न आएगा। शायद तुम उसकी बकवास से ऊब भी जाओ कि—'क्या लगा रखा है, 'प' छोटा प, 'म' बड़ा म? बंद कर!'

उस गीत की सारी खूबी खो गयी। क्यों? क्योंकि गीत अखंडता में था, बच्चे ने खंड-खंड कर दिये। जैसे किसी की एक सुंदर मूर्ति हो और तुम हथौड़े से तोड़ दो—खंड-खंड हो जाए। पत्थर अब भी वही है, न तो तुमने कुछ जोड़ा, न तुमने कुछ घटाया—हथौड़ा न तो जोड़ता है, न घटाता है, हथौड़ा सिर्फ तोड़ता है। अगर तौलोगे तराजू पर उतना ही है अब, जितना पहले था। लेकिन कुछ चीज नष्ट हो गयी जो तराजू पर तौल में नहीं आती। इस मूर्ति के दाम लाख रुपये हो सकते

थे, अब दो कौड़ी हो गये। संगमरमर उतना ही है—बाजार में बेचने जाओगे, संगमरमर के दाम आ जाएँगे—मूर्ति खो गयी।

मैंने सुना है, एक गाँव में ऐसा हुआ कि एक आदमी अपने घोड़े को लेकर—एक गरीब किसान—जंगल से घर की ओर लौटता था। एक राहगीर वृक्ष के नीचे खड़ा था। उस राहगीर ने कहा, 'रुक। यदि मुझे तेरे घोड़े का चित्र बना लेने दे, तो मैं तुझे पाँच रुपये दूंगा।' वह आदमी तो चकित हुआ! पाँच रुपये तो घोड़े पर दिन भर सामान ढोता है तब नहीं मिल पाता, और यह आदमी सिर्फ चित्र बनाने का कह रहा है! उसने कहा, 'बड़ी खुशी की बात है, मजे से बना लो।' वह आदमी एक चित्रकार था। उसने घोड़े का चित्र बनाया, पाँच रुपये दिये, जहाँ से आया था शहर की तरफ चित्रकार वापस लौट गया। कोई महीनों बाद ग्रामीण शहर किसी काम से गया था, उसी घोड़े पर बैठकर। उसने एक बाजार में बड़ी भीड़ लगी देखी, पाँच-पाँच रुपया लग रहे थे, अंदर कोई बड़ी अद्भुत चित्रकला का नमूना मौजूद था। था तो ग्रामीण, गरीब भी था, लेकिन वह पाँच रुपये उसके पास थे जो चित्रकार ने दिये थे। वह अनायास ही मिल गये थे, उनका कोई खर्च भी उसे सूझा न था, कोई ज्यादा जरूरतें भी न थीं, वह खीसे में था। उसने कहा, क्यों न हो! अब शहर आ ही गये हैं, और इतनी भीड़ लगी है, लोग 'क्यू' लगाकर खड़े हैं; तो वह भी 'क्यू' लगाकर, पाँच रुपये देकर भीतर गया। वह तो चकित हो गया, क्योंकि यह तो उसी के घोड़े का चित्र था!

उसने चित्रकार को पकड़ा, उसने कहा कि 'लूट की हद हो गयी; तुम तो हजारों रुपये कमा रहे हो! और मेरा जिंदा घोड़ा बाहर खड़ा है, और तुमने केवल चित्र बनाया है, सिर्फ कागज पर कुछ रंग फैला दिये हैं! जिंदा घोड़े को भी देखने कोई पाँच रुपये नहीं देता, नहीं तो हम करोड़पति हो गये होते। तुम्हारे इस चित्र के लिए तुम्हें पाँच-पाँच रुपये देकर लोग देखने आ रहे हैं, और इतनी भीड़ लगी है, और बड़ी प्रशंसा है गाँव में। और, ये वे ही पाँच रुपये हैं जो तुमने मुझे दिये थे—मैं भी उन्हें देकर देखने आ गया हूँ। अगर धंधा ऐसा ही है, तो मैं भी क्यों न अपने घोड़े को तुम्हारे पास ही खड़ा कर लूँ, और उसके भी दाम लगवा दो!' चित्रकार ने कहा, 'वह संभव न होगा।'

वह ग्रामीण पूछने लगा—'लेकिन इस कागज में, लकीर में, रंग में रखा क्या है? दाम कितना है इसका?'

उस चित्रकार ने कहा, 'अगर कागज और रंग का दाम पूछो तो कुछ भी नहीं है। पाँच रुपये से कम ही होगा। लेकिन रंग और कागज के माध्यम से जो प्रगट

हुआ है वह अमूल्य है, उसके लिए खरीदा नहीं जा सकता। तुम्हारा घोड़ा कितना ही यथार्थ हो, आज नहीं कल मर जाएगा। ये चित्र शाश्वत है, ये सनातन है। ऐसे कई तुम्हारे जैसे घोड़े आएँगे और चले जाएँगे, यह घोड़ा रहेगा। यह घोड़ा तुम्हारे घोड़े का ही चित्र नहीं है, समस्त घोड़ों का सार है।'

ग्रामीण की बुद्धि में तो नहीं आया होगा। परमात्मा भी तुम्हारी बुद्धि में नहीं आता, क्योंकि बुद्धि बहुत ग्रामीण है।

छोटा बच्चा कविता को भी हिज्जे करके पढ़ता है और काव्य का सारा गुण खो जाता है। क्योंकि काव्य का गुण तो समग्रता में है।

तुम जब विचार से देखते हो संसार को, तो तुम हिज्जे करके देख रहे हो परमात्मा को--टुकड़े-टुकड़े में। विचार का अर्थ है विश्लेषण, विचार का अर्थ है 'एनॉलिसिस'—तोड़ो। विज्ञान यही करता है—तोड़ो और जानो।

अगर तुम पूछो कि फूल बहुत सुंदर हैं, वैज्ञानिक कहेगा हम ले जाएँगे अपनी प्रयोगशाला में, तोड़ेंगे। सब रासायनिक-द्रव्य अलग कर लेंगे--खनिज अलग कर लेंगे, कितनी मिट्टी, कितना आकाश, पानी, सब अलग कर देंगे। तुम आ जाना, हम विश्लेषण करके बता देंगे क्या-क्या इसके भीतर है। वैज्ञानिक विश्लेषण कर देगा, बोतलों में लेबल लगाकर रख देगा—इतनी मिट्टी, इतना आकाश, इतना जल, इतना ये, इतना वो। तुम इससे मत पूछना कि वह बोतल कहाँ है जिसमें तुमने सौंदर्य भी रखा है! वह कहेगा सौंदर्य तो पाया ही नहीं; मिट्टी मिली, पानी मिला, और सब जो-जो मिला ये बोतलों में बंद है। हमने कुछ छोड़ा नहीं, पूरा का पूरा फूल इन बोतलों में बंद है, तुम वजन कर ले सकते हो। सौंदर्य तुम्हारी भ्रांति रही होगी, क्योंकि सौंदर्य तो किसी भी फूल में खोजने से मिला नहीं, और हमने कुछ घटाया नहीं—वजन बराबर है।

ऐसा ही तो नासमझ, आदमी के संबंध में सोचते रहे हैं। कई प्रयोग किये गये हैं। जब आदमी मरे, तो पहले जिंदा आदमी का वजन तौलो, फिर जब वह मर जाए तो मरे आदमी का वजन तौलो, अगर आत्मा निकल गयी हो तो वजन कम हो जाएगा। वजन कम नहीं होता, कई बार तो बढ़ जाता है। तुम चकित होओगे कि बजाय इसके कि निकल गयी आत्मा, बढ़ जाता है उल्टा। क्योंकि जैसे ही श्वाँस छूट जाती है, शरीर का जो संयम है, शरीर की जो अपने-आप को बाँध रखने की क्षमता है, वह नष्ट हो जाती है--तो बहुत हवा शरीर के भीतर प्रवेश कर जाती है, उस हवा के कारण कभी-कभी तो वजन बढ़ जाता है। शरीर फूल जाता है, हवा की मात्रा बढ़ जाती है; घटता तो नहीं, बढ़ भले जाए।

तो, जिन्होंने आदमी को तौलकर जानना चाहा कि आत्मा मरते वक्त निकलती है या नहीं, वे हिज्जे कर रहे हैं। आत्मा है समग्रता, वह है काव्य जीवन का। वह विचार के विश्लेषण से नहीं, प्रेम के अनुभव से उपलब्ध होती है।

तुमने अगर किसी को प्रेम किया है, तो तुम जान ही लोगे कि वह शरीर नहीं है। ये कसौटी है कि तुमने प्रेम किया या नहीं। अगर तुम्हें अपनी प्रेयसी में, या प्रीतम में, या अपने बेटे में, या अपनी पत्नी में, या अपने मित्र में सिर्फ शरीर दिखायी पड़ता है, तो तुमने प्रेम नहीं किया। अगर तुमने प्रेम किया होता तो तुम पाते कि शरीर है, लेकिन तुम्हारा प्रेम यह शरीरमात्र नहीं है। शरीर के भीतर, शरीर से बहुत बड़ा, बहुत अनंतगुना है। शरीर क्षणभंगुर है, भीतर जो है वह सनातन है, शाश्वत है। भीतर तो जो है वह समस्त सृष्टि का सार है, वह तो चैतन्य का आखिरी शिखर है। लेकिन, उसे देखने के लिए पूरे के पूरे को देखने की क्षमता चाहिए।

प्रेम पूरे को देखता है। वह विहंगम-दृष्टि है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है और वहाँ से देखता है नीचे, सब इकट्ठा दिखायी पड़ता है। तुम रास्ते से गुजरते हो, एक झाड़ दिखायी पड़ा, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा--हिज्जे करते हो। पक्षी उड़ता है आकाश में, सारे झाड़ एक साथ दिखायी पड़ते हैं।

प्रेम ऊँचाई है। विहग की तरह आकाश में उड़ना है। वहाँ से जीवन को देखना है। वहाँ से जीवन की जो परिपूर्णता है, वही परमात्मा है।

जिसने समग्रता को जाना उसने परमात्मा को जाना, जिसने खंड-खंड को जाना वह संसार से आगे न जा सका।

यद्यपि खंड उसी अखंड के हैं, लेकिन वह अखंड खंड नहीं है। इस बात को ठीक से समझ लो। सब खंड उसी अखंड के हैं, लेकिन वह अखंड सभी खंडों के जोड़ से ज्यादा है। वह खंडों में प्रगट हुआ है, खंडों में समाप्त नहीं है। वह खंडों में उतरा है। खंडों की सीमा है, वह असीम है।

जैसे तुम्हारे आँगन में आकाश उतरा है। निश्चित ही आकाश उतरा है, लेकिन तुम्हारा आँगन सारा आकाश नहीं है। तुम्हारे आँगन में जो है वह भी आकाश है, लेकिन आकाश तुम्हारे आँगन के पार भी है। तुम्हारे शरीर में जो उतरा है, वह सारा परमात्मा नहीं है, वह सारा आकाश नहीं है। यद्यपि वह भी परमात्मा है। इतना ही आत्मा और परमात्मा का फर्क है। आत्मा का अर्थ है, आँगन में घिरा आकाश। परमात्मा का अर्थ है, दीवालें तोड़ दीं, आँगन मिट गया। आँगन को मिटाने के लिए कुछ भी तो नहीं करना पड़ता, सिर्फ उसको बनानेवाली दीवालें

तोड़ देनी पड़ती हैं। दीवालों के कारण भ्रांति पैदा होती थी, दीवालों के विसर्जित हो जाने पर भ्रांति विसर्जित हो जाती है।

भेद अप्रेम है। अभेद प्रेम है। और अखंड को देखने की बात है। अखंड को देखने के लिए तुम्हें ऊँचे जाना पड़े! जमीन पर न चल सकोगे, आकाश में उड़ना पड़े! अखंड को जानने के लिए तुम्हें खंड करने की प्रक्रिया को त्यागना पड़े।

विचार का त्याग प्रेम है, और विचार का त्याग ही ध्यान है। निर्विचार हो जाना ध्यान है, निर्विचार हो जाना प्रेम है। कोई विचार न रह जाए तुम्हारे भीतर। जब तुम गहन प्रेम में पड़ते हो तब विचार कम हो जाते हैं। कभी अपने प्रेमी के पास बैठे हो, तब तुम पाओगे कि मौन घेर लेता है, चुपचाप हो जाते हो, कहने को कुछ भी नहीं रह जाता। या, कहने को इतना होता है कि कैसे कहा जा सकता है? बोलने में अड़चन मालूम पड़ती है, क्योंकि लगता है, बोले कि झूठ हो जाएगा; बोले, तो पाप हो जाएगा; बोलने से ही बात की जो गरिमा है, खो जाएगी, नष्ट हो जाएगी। वह जो भीतर अभी उमग रहा है, वह जो भीतर अभी सघन हो रहा है, उसके लिए शब्द बाहर प्रगट न कर पाएँगे—शब्द बड़े असमर्थ हैं, सीमित हैं। उनका उपयोग बाजार में है, दूकान पर है, दफ्तर में है, काम-धाम में है—प्रेम में नहीं।

तो, जब भी दो व्यक्ति पास मौन में बैठे हों, जानना गहन प्रेम में हैं। या, जब भी दो व्यक्ति प्रेम में हों, तब तुम जानोगे कि गहन मौन में हैं। प्रेमी चुप हो जाते हैं। और अगर तुम चुप होने की कला सीख जाओ, तो तुम प्रेमी हो जाओगे। फिर तुम जिसके पास भी चुप बैठ जाओगे, उसीसे तुम्हारे प्रेम के संबंध जुड़ जाएँगे। तुम अगर वृक्ष के पास मौन बैठ गये तो वृक्ष से तुम्हारा संवाद हो जाएगा, और तुम सरिता के पास मौन बैठ गये तो सरिता से तुम्हारा तालमेल हो जाएगा, और तुमने अगर मौन से आकाश के तारों को देखा तो तुम अचानक पाओगे, जुड़ गये तारों से, कुछ अदृश्य द्वार खुल गये, कुछ पर्दे हट गये।

प्रेम है अखंड का दर्शन। अखंड के दर्शन के लिए तुम्हें मौन होना जरूरी है, क्योंकि मौन में ही तुम अखंड होते हो, तुम्हारी दीवालें गिर जाती हैं आँगन की—तुम खुद आकाश जैसे हो जाते हो।

मुझे इस भाँति कहने दो, कि अगर परमात्मा को जानना है तो परमात्मा जैसे होना पड़ेगा।

प्रेम में व्यक्ति परमात्मा हो जाता है। प्रेम में परमात्मा ही रह जाता है—बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, सभी दिशाओं में। लहरें खो जाती हैं, सागर ही शेष

रहता है।

जिनके जीवन में प्रेम नहीं है उनके जीवन में संसार है। फिर उनके जीवन में धन होगा, पद होगा, मान-मर्यादा होगी, प्रतिष्ठा होगी, यश होगा, महत्त्वाकांक्षा होगी—हजार पागलपन होंगे—बस प्रेम नहीं होगा; तो सब पागलपन प्रगट होने शुरू हो जाएँगे। तुमने कभी गौर किया, महत्त्वाकांक्षी प्रेम नहीं कर सकता। जितनी महत्त्वाकांक्षा हो उतना ही वह कहता है: कल—प्रेम कल; आज धन, आज पद। वह कहता है—अभी चुनाव करीब आ रहा है, अभी कैसे प्रेम? वह कहता है—अभी दिल्ली जाना है, अभी मंदिर की कैसे सुध-बुध? वह कहता है—अभी तो जवान हूँ, अभी प्रेम में व्यर्थ करूँगा जीवन की ऊर्जा को? अभी तो कमा लूँ; कल जब कमाने को हाथ कमजोर हो जाएँगे तब कर लेंगे प्रेम और प्रार्थना, और खोज लेंगे परमात्मा। दिन थोड़े हैं भोगने को, पाने को बहुत है।

इसे थोड़ा समझो—ये दूसरी बात समझने की है, कि जिन लोगों के जीवन में प्रेम नहीं है, उनके जीवन में कोई और दौड़ होगी। क्योंकि और दौड़ चाहिए जो कि 'सब्स्टीट्यूट'—परिपूरक—बन जाए, नहीं तो तुम बिलकुल खाली हो जाओगे। प्रेम है ही नहीं तो तुम खाली तो हो, अब इस खालीपन को किसी भी कूड़े-करकट से भरना होगा, अन्यथा जी न सकोगे, अन्यथा जीना दूभर हो जाएगा।

मैं एक यहूदी के जीवन-संस्मरण पढ़ रहा था। वह हिटलर के कारागृह में बंद था। उसने लिखा है कि उस कारागृह में लोग मुर्दों की भाँति थे। कोई जीवन में अर्थ नहीं रह गया था। सारा जीवन का अर्थ खो गया था—जो भी जीवन में उनके अर्थ था कारागृह के बाहर, कारागृह के भीतर नष्ट हो गया था। यह खुद व्यक्ति डॉक्टर है, ये लोगों का अध्ययन करता था। ये बड़ा हैरान था कि अचानक..., इन्हीं लोगों को वह जानता था बाहर की दुनिया में भी, बड़ी चहल-कदमी थी इनमें, बड़ी गति थी, बड़ी ऊर्जा थी,... अचानक जेलखाने के भीतर आते ही सब ऊर्जा खो गयी, सब गति खो गयी, ये खाली मुर्दों की तरह बैठ गये। लोग पागल होने लगे, या लोगों ने आत्महत्याएँ करनी शुरू कर दीं। जिन्होंने न आत्म-हत्या की, न पागल बने, वे बीमार रहने लगे। और बीमारी ऐसी, जैसे कि उनके मरने की आकांक्षा का सबूत हो, जैसे वे मरना चाहते हैं।

ये डॉक्टर था, तो इसको जेल का डॉक्टर नियुक्त कर दिया गया था। ये मरीजों को दवा देता। ये चकित हुआ कि जो दवाइयाँ हमेशा काम करती थीं, वे मरीजों पर काम नहीं करतीं! उनके जीवन की लालसा ही खो गयी है, दवा क्या खाक करेगी? तुम जीना चाहते हो, तो दवा से थोड़ा सहारा, थोड़ी बैसाखी मिल जाती

है; तुम जीना ही न चाहो, तो दवा तुम्हारे प्राण स्वीकार ही नहीं करते; शरीर में आती है और निकल जाती है, मल-मूत्र बन जाती है, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को गति नहीं दे पाती। बैसाखी थोड़े लँगड़े को चलाती है, लँगड़ा बैसाखी को सँभालता है तो चलाती है। लँगड़े को चलना ही नहीं, तुम बैसाखी लगा दो। तो वैसे चाहे थोड़ी देर में गिरता, अब ये बैसाखी की झंझट में और जल्दी गिर जाएगा। दवाएँ काम नहीं करतीं लोगों पर।

पर ये चकित हुआ, कि इसके खुद के जीवन में फर्क नहीं पड़ा। क्योंकि इसके जीवन की धारा तो वही रही--बाहर भी मरीजों को देख रहा था, ठीक करने की कोशिश कर रहा था, यहाँ भी मरीजों को देख रहा है, ठीक करने की कोशिश कर रहा है। वस्तुतः इसके जीवन में और भी ज्यादा अर्थ आ गया। क्योंकि बाहर तो मरीजों को धन के कारण देखता था, यहाँ तो धन का कोई सवाल न था; बाहर तो मरीजों को ग्राहकों की तरह देखता था, यहाँ तो कोई ग्राहक न था। कोई दूकानदार न था।

चिकित्सक भी मरीज की नाड़ी पर हाथ रखता है, तो एक हाथ नाड़ी पर रखता है दूसरा हाथ उसकी जेब में रखता है। अगर मरीज़ बहुत धनी हो तो चिकित्सक उसे जाने-अनजाने जल्दी ही अच्छा नहीं करना चाहता--चाहता है थोड़ी देर और बीमार रह जाए। इसलिए धनी होना और बीमार पड़ना, खतरनाक है। बीमारी गरीब को शोभा देती है, वह जल्दी ठीक भी हो जाएगा, धनी के लिए कौन ठीक करेगा? चिकित्सक भी दवा देगा, लेकिन प्राणों के गहन प्राण में सोचेगा कि थोड़ी देर और मरीज टिक जाए, बीमार रह जाए। शायद उसे खुद भी पता न हो, अचेतन में दबी हो यह बात, लेकिन यह भी काम करेगी, यह भी कारगर हो जाएगी --इसके परिणाम होंगे।

जेल में तो चिकित्सक को कुछ भी न लेना था, न देना था। सिर्फ प्रेम था, इस कारण सेवा में लगा था। उसके जीवन से अर्थ न खोया। उसके सब साथी धीरे-धीरे गल गये, मर गये, सड़ गये, पागल हो गये; वह जेलखाने के बाहर स्वस्थ का स्वस्थ आ गया।

बाद में उसने अपने संस्मरण में लिखा, कि कारण कुल इतना ही है कि वहाँ भी मैं अपने जीवन के अर्थ को खोज पाया।

सूनापन आ जाए तो जीवन गिरने लगता है।

प्रेम न हो, तो सूनापन होगा। इस सूनेपन को भरना होगा हजार तरकीबों से। जिसे तुम संसार कहते हो, जिसे तुम संसार की तृष्णा कहते हो, वह है क्या? वह

इस रिक्तता को भरने का उपाय है। दूकान से भरो, धन के नोट गिनते रहो, रुपयों के सिक्के खनकाते रहो--वही एकमात्र मधुर-संगीत मालूम होता है, नये-ताजे नोटों को छूने में ही स्पर्श का एकमात्र रस आता है--बड़े पदों पर पहुँचते रहो। प्रेम जिसके जीवन में नहीं है, वह कहीं से तो भरेगा, अन्यथा मर जाएगा। अन्यथा आत्म-घात हो जाएगा।

संसार है, जो प्रेम से मिलना था और नहीं मिल पाया उसको पाने की चेष्टा।

इंग्लैंड के बहुत बड़े विचारक लार्ड ऐक्टन का बड़ा प्रसिद्ध वचन है जो मैंने बहुत बार तुमसे कहा। ऐक्टन ने कहा है: 'पावर करॅप्ट्स, एण्ड करॅप्ट्स एब्सॅल्यूटली': सत्ता भ्रष्ट करती है, बुरी तरह भ्रष्ट करती है, परिपूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।

लेकिन, मैं तुमसे कहता हूँ, लार्ड ऐक्टन का वचन ठीक नहीं है। सत्ता किसी को भ्रष्ट नहीं करती, भ्रष्टों को आकर्षित करती है। धन किसी को भ्रष्ट नहीं करता, भ्रष्टों को बुलावा देता है। कुर्सियाँ थोड़े किसी को भ्रष्ट करती हैं, सिंहासन थोड़े किसी को भ्रष्ट करते हैं, लेकिन भ्रष्ट सिंहासनों की तरफ पागल हो जाते हैं, जैसे पतिंगे भगते हैं प्रकाश की तरफ। शायद सुना भी हो बड़े-बूढ़ों से, या न भी सुना हो, क्योंकि बड़े-बूढ़े और पहले किसी दीये पर मर चुके होंगे। पर शायद सुना हो, लोकोक्ति हो, कहावत हो उनकी दुनिया में, कि दीये से सावधान रहना, उनपर जाकर आदमी मरता है। लेकिन पतिंगे सुनते नहीं, भागते हैं।

क्या तुम कहोगे कि दीया पतिंगों को मारता है? नहीं, मरने को उत्सुक पतिंगे दीये की तरफ आकर्षित होते हैं।

तो लार्ड ऐक्टन की बात ऊपर से ठीक लगती है कि सत्ता में जिसको भी हमने जाते देखा, भ्रष्ट होते देखा, तो बात बिलकुल सीधी है। जिसको भी सत्ता में जाते देखा, उसको भ्रष्ट होते देखा। ये बात इतनी निरपवाद रूप से सही है कि लार्ड ऐक्टन ठीक मालूम होता है। लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ, वह ठीक नहीं है। सत्ता किसी को भ्रष्ट नहीं करती, भ्रष्टों को निमंत्रित करती है। सत्ता किसी को भ्रष्ट नहीं करती--कर नहीं सकती--सत्ता तो तुम्हारे भीतर जो भ्रष्टाचार है उसे प्रगट करती है।

गरीब भ्रष्ट होने की सामर्थ्य नहीं जुटा पाता, भ्रष्ट होने के लिए थोड़ा धन चाहिए, वह जरा महँगा काम है, वह जरा विलास है। गरीब भ्रष्ट होगा, फँसेगा, मुश्किल में पड़ेगा। भ्रष्ट होने के पहले सुरक्षा चाहिए, भ्रष्ट होने के पहले शक्ति चाहिए, ताकि भ्रष्ट होने से जो दुष्परिणाम हों उनको सँभाला जा सके, उनसे अपने को बचाया जा सके। भ्रष्ट होने के पहले कवच चाहिए--पद, प्रतिष्ठा, धन, वैभव,

यश, नाम, कुल, इन सब से कवच मिल जाता है।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, कि अगर गरीब को तुम भ्रष्ट न पाओ तो ऐसा मत सोचना कि वह भ्रष्ट नहीं है। जरूरी नहीं है। असलियत का पता तो तब चलेगा जब धन उसके पास होगा। धन परीक्षा है, पद परीक्षा है। वहाँ केवल वे ही बचेंगे जो वस्तुतः भीतर से खालिस थे, पवित्र थे। करोड़ में कोई एक बचेगा, बाकी लोग तो भ्रष्ट हो जाएँगे; भ्रष्ट हो जाएँगे इसलिए कि भ्रष्ट तो वे थे, अवसर मिलते ही प्रगट हो जाएँगे। जैसे तुम कमरे में बैठे हो, अँधेरा कमरा है, कभी तुमने दीया नहीं जलाया--सब ठीक लगता है। न तो कोनों-काँतरों में लगे मकड़ी के जाले दिखायी पड़ते हैं, न कोनों में छिपे साँप दिखायी पड़ते हैं, न आसपास सरकते बिच्छुओं का कोई पता चलता है--कुछ भी पता नहीं चलता, अँधेरे में तुम निश्चित बैठे हो--सब ठीक है। फिर किसी ने दीया जलाया। क्या तुम यह कहोगे कि दीये के कारण साँप, बिच्छू, मकड़ी के जाले और गंदगी कमरे में आ गयी? यह सब तो था ही, दीये ने तो रोशनी ला दी उससे चीजें दिखायी पड़ गयीं। जो अँधेरे में दबी थीं, जिन्हें अँधेरे ने छिपाया था, रोशनी ने प्रगट कर दिया।

गरीबी बहुत सी बातों को छिपा लेती है, अमीरी जाहिर कर देती है। निर्बलता बहुत सी बातों पर पर्दा बन जाती है, बल पर्दे उघाड़ देता है, आदमी को नग्न कर देता है।

नहीं, पद किसी को भ्रष्ट नहीं करते, भ्रष्टों को आमंत्रित करते हैं, और भ्रष्टों को उजागर करते हैं। जबतक पद पर न पहुँच जाए कोई व्यक्ति, तबतक तुम पक्का नहीं कर सकते कि वह भ्रष्टाचारी है, या नहीं। पद के बाहर तो सभी भ्रष्टाचार के विरोध में होते हैं, पद के बाहर तो सभी सेवक होते हैं, पद पर पहुँचते ही मालिक हो जाते हैं। और ध्यान रखना, कुर्सियाँ क्या भ्रष्ट करेंगी? कुर्सियाँ तो बड़ी समदृष्टि हैं--तुम उनपर सम्राटों को बिठाओ तो उन्हें फिकर नहीं, तो वे आनंदित नहीं होतीं। और तुम भिखमंगों को बिठा दो, तो वे परेशान नहीं होतीं। कुर्सियों का क्या लेना-देना है?

आदमी! आदमी की प्रेम की कमी!!

जिस आदमी के जीवन में प्रेम नहीं है, उसके जीवन में किसी न किसी तरह का बलात्कार होगा। वह कैसे पूरा करेगा अपने प्रेम की कमी को? वह खाली-खाली है। संगीत नहीं गूँजता हृदय का, तो रुपयों को खनका लेता है; उसी संगीत से अपने कानों को समझा लेगा, सांत्वना कर लेगा। अगर किसी से प्रेम किया होता, तो उसने एक मालिकियत जानी होती जिसमें मालिकियत का कोई भी भाव नहीं होता।

अगर उसने किसीको प्रेम किया होता, तो उसने एक हृदय पर साम्राज्य फैला लिया होता--ऐसा साम्राज्य जिसमें साम्राज्यवादिता बिल्कुल नहीं है। उसने एक ऐसी मालिकियत पा ली होती, जिसमें मालिकियत का सवाल ही नहीं होता है। उसने एक हृदय को अपने करीब पाया होता, एक हृदय उसके साथ नाचा होता, उसके जीवन में एक प्रफुल्लता होती--कोई उसे प्रेम किया, किसीने उसके प्रेम को स्वीकार किया--उसकी आत्मा आनंदित होती, एक अहोभाव होता कि मैं व्यर्थ ही नहीं हूँ।

अगर एक व्यक्ति ने भी तुम्हें प्रेम किया है, अगर एक व्यक्ति को भी तुम प्रेम कर सके हो, तो तुम पाओगे तुम्हारे जीवन में एक सार्थकता है, एक सुरभि, एक सुवास --तुम एक तृप्ति पाओगे। जब ऐसी तृप्ति नहीं होती, तब आदमी लोगों पर कब्जा करने की कोशिश करता है--राजनीति के सहारे, धन के सहारे, पद के सहारे--हजारों लोगों पर कब्जा कर लेने की कोशिश करता है। मजा यह है कि प्रेम का कब्जा एक आदमी पर भी होता तो तृप्ति हो जाती, और घृणा का कब्जा करोड़ों लोगों पर भी हो तो भी तृप्ति नहीं होती।

इसलिए पद पर पहुँचकर आदमी को पता चलता है, शक्ति तो मिल गयी, शांति नहीं मिली। सामर्थ्य तो आ गयी, संतोष नहीं आया। धन तो मिला, निर्धनता नहीं मिटी। भर तो लिया कूड़े-कबार से, पर इससे तो रिक्तता भी पवित्र थी--यह सिर्फ गंदगी हो गयी।

सहजो के वचन पर अब हम आ सकते हैं।

एक-एक शब्द को मंत्र मानना : 'प्रेम दिवाने जे भये, पलटि गयो सब रूप। सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कह भूप।।'

'प्रेम दिवाने जे भये'—प्रेम में जो पागल हुए। क्यों पागल? क्योंकि सारी दुनिया उन्हें पागल कहेगी। प्रेम में जो पागल हुआ है, वह अपने तईं तो घर आ गया है, सब पागलपन उसका मिट गया, लेकिन सारी दुनिया उसे पागल कहेगी। क्योंकि सारी दुनिया धन के पीछे पागल है, पद के पीछे पागल है; और यह आदमी न तो पद में उत्सुक होगा, न धन में उत्सुक होगा। स्वभावतः तुम इसे पागल कहोगे। पागलों की भीड़ में यह आदमी होश आ गया, भटकों की भीड़ में इस आदमी को घर मिल गया। ये तुमसे कहेगा भी रोक कर रास्ते पर, कि मुझे घर मिल गया, मुझे शांति मिली, संतोष मिला, तुम भरोसा न करोगे; तुम कहोगे पागल हो गये होगे, कभी किसीको शांति मिली इस संसार में? कभी किसीको संतोष मिला इस संसार में? तुम संमोहित हो गये होओगे, तुमने कोई कल्पना कर ली है, या तुम किसी नशे में खो गये हो--जागो! तुम जागे हुए आदमी से कहोगे, जागो!!

कुछ दो वर्ष पहले मेरे एक मित्र का मुझे पत्र मिला। वे विश्वविद्यालय में मेरे साथ पढ़ते थे। फिर इधर कोई बीस वर्षों में न तो कोई मिलन हुआ, न कोई संबंध रहा। विश्वविद्यालय में वे मेरे निकट थे। मेरे संन्यासी उनके नगर में गये होंगे। अब वे जयपुर में हैं, और जयपुर विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं। मेरे संन्यासियों को देखकर उन्होंने पूछताछ की होगी, फिर मुझे पत्र लिखा।

पत्र में उन्होंने लिखा कि : 'क्षमा करें, नाराज न हों, एक ही सवाल मुझे पूछना है, कि क्या आपको सच में ही शांति मिल गयी? इसपर भरोसा नहीं आता।'

फिर लिखा कि : 'नाराज न होना आप, आप पर शक नहीं कर रहा हूँ—ये नहीं कह रहा हूँ कि आपको नहीं मिली। इसपर मुझे भरोसा नहीं आता कि किसीको भी मिल सकती है, कि बुद्ध को, कि महावीर को, कि कृष्ण को! क्योंकि मैं इतना परेशान हो रहा हूँ, सब तरह के उपाय करता हूँ, कोई शांति नहीं! और जिनको मैं जानता हूँ, उनको भी कोई शांति नहीं!'

अगर आप शांत हो जाएँ, तो लोग समझेंगे कुछ गड़बड़ हो गयी। अगर आप आनंदित हो जाएँ, तो लोग समझेंगे दिमाग खराब हो गया। दुःखी होना सामान्य मालूम होता है, आनंदित होना विक्षिप्तता मालूम होती है। इससे ज्यादा विक्षिप्त और क्या हो सकता है संसार कि वहाँ स्वस्थ होना बीमारी मालूम पड़े और बीमार होना स्वास्थ्य का ढंग हो जाए?

'प्रेम दिवाने जे भये'––इसलिए सहजो कहती है कि ठीक है, तुम्हारे ही शब्द का उपयोग कर लेते हैं कि प्रेम में जो पागल हुए––'पलटि गयो सब रूप।' तुम उन्हें पागल कहते रहो, पर उनके लिए सब रूप पलट गया।

'सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कह भूप'––और अब सहजो को कुछ दृष्टि में नहीं पड़ता कि कौन अमीर है, और कौन गरीब––'कहा रंक कह भूप।' धन से हम तौलते हैं आदमियों को, क्योंकि प्रेम हमारे भीतर नहीं है। इसलिए धनी आ जाता है तो तुम उठकर खड़े हो जाते हो, गरीब आ जाता है तो तुम अपना अखबार पढ़ते रहते हो, जैसे कोई आया नहीं, जैसे कोई कुत्ता-बिल्ली गुजरती हो, कोई आदमी थोड़े!

उर्दू के महाकवि हुए ग़ालिब। बहादुरशाह ने निमंत्रण दिया था। बहादुरशाह की वर्षगाँठ थी सिंहासन पर आरूढ़ होने की। तो गालिब के मित्रों ने कहा––'ऐसे मत जाओ। इन कपड़ों में तुम्हें वहाँ कौन पहचानेगा? तुम्हारे काव्य को पहचानने की किसके पास आँख है? तुम्हारे हृदय को मापने का किसके पास तराजू है? तुम्हारे भीतर कौन झांकेगा, किसको फुर्सत है? कपड़े ठीक पहनकर जाओ; यह

भिखाराना भेष पसंद नहीं पड़ेगा वहाँ। और असंभव न होगा कि दरवाजे से वापस लौटा दिये जाओ।'

फटे-पुराने कपड़े एक गरीब कवि के! जूतों में छेद, टोपी जरा-जीर्ण! पर गालिब ने कहा कि, 'और तो मेरे पास कोई कपड़े नहीं हैं।' मित्रों ने कहा, 'हम किसीके उधार ले आते हैं।' गालिब ने कहा, 'यह तो बात जमेगी नहीं। उधारी में मुझे जरा भी रस नहीं है। जो मेरा नहीं है वह मेरा नहीं है, जो मेरा है वह मेरा है। नहीं, मुझे बड़ी बेचैनी और असुविधा होगी, उन कपड़ों में मैं बँधा-बँधा अनुभव करूँगा––मुक्त न हो पाऊँगा। किसी और के कपड़े पहनकर क्या जाना! जाऊँगा इसीमें, जो होगा होगा।'

ग़ालिब गये। द्वारपाल से जाकर जब उन्होंने कहा, दूसरों का तो झुक-झुककर द्वारपाल स्वागत कर रहा था, उनको उसने धक्का देकर किनारे खड़ा कर दिया कि––'रुक अभी।' जब और लोग चले गये तब वह उस पर एकदम टूट पड़ा द्वारपाल, और कहा––'अपनी सामर्थ्य को ध्यान में रखना चाहिए, यह राजदरबार है। यहाँ किसलिए घुसने की कोशिश कर रहा है?' तो उन्होंने कहा, 'घुसने की मैं कोशिश नहीं कर रहा, मुझे निमंत्रण मिला है।' खीसे से निमंत्रण-पत्र निकालकर दिखाया। द्वारपाल ने निमंत्रण-पत्र देखकर कहा, कि 'किसी का चुरा लाया होगा। भाग यहाँ से, भूलकर इधर मत आना। पागल कहीं का! भिखमंगे हैं, सम्राट होने का खयाल सवार हो गया है।'

ग़ालिब उदास घर लौट आए। मित्रों ने कहा––'पहले ही कहा था, और हम जानते थे यह होगा, हम कपड़े ले आए हैं।' फिर ग़ालिब ने इनकार न किया। कपड़े पहन लिए––उधार जूते, उधार टोपी-पगड़ी सब, शेरवानी। अब जब पहुँचे द्वार पर, तो द्वारपाल ने झुककर नमस्कार किया। आत्माओं को तो कोई पहचानता नहीं, आवरण पहचाने जाते हैं। बड़े हैरान हुए, वही द्वारपाल अभी झिड़की देकर अलग कर दिया था, मारने को उतारू हो गया था, अब उसने यह भी न पूछा कि निमंत्रण-पत्र। पर वे थोड़े डरे तो थे ही, पहले अनुभव ने बड़ा दुःख दे दिया था; इसलिए निमंत्रण-पत्र निकालकर दिखाया। उसने गौर से देखा, और उसने कहा, कि 'ठीक है। एक भिखमंगा इसी निमंत्रण-पत्र को लेकर आ गया था––यही नाम था उस पर––बमुश्किल उससे छुटकारा किया।'

भीतर गये। बहादुरशाह ने अपने पास बिठाया। बहादुरशाह भी कवि था, काव्य का थोड़ा उसे रस था। लेकिन थोड़ा चकित हुआ, जब भोजन शुरू हुआ तो गालिब बगल में बैठे कुछ बेहूदी हरकत करने लगे। हरकत यह थी कि उन्होंने

मिठाइयाँ उठायीं, अपनी पगड़ी से छुलायीं, कहा, कि 'ले पगड़ी, खा।' मिठाइयाँ उठायीं, अपने कोट से छुलायीं, और कहा, कि 'ले कोट, खा।'

कवि थोड़े झक्की तो होते हैं। सोचा बहादुरशाह ने, 'होगा, ध्यान नहीं देना चाहिए, शिष्ट-संस्कारी आदमी का यह लक्षण है कि दूसरा कुछ ऐसा पागलपन भी करता हो तो इसपर इंगित न करे, घाव न छुए।' वह इधर-उधर देखने लगा। लेकिन यह जब लंबी देर तक चलने लगा और गालिब ने भोजन किया ही नहीं, वह यह कपड़ों को ही और जूतों तक को भोजन करवाने लगे, तो फिर बहादुरशाह से न रहा गया—शिष्टाचार की भी सीमा है। उसने कहा, 'क्षमा करें, उचित नहीं है कि दखलंदाजी दूँ, उचित नहीं है कि आपकी निजी आदतों में बाधा डालूँ। होगा, आपका कोई रिवाज होगा, कोई क्रिया-कांड होगा, मुझे कुछ पता नहीं, आपका कोई धर्म होगा। मगर उत्सुकतावश मैं पूछना चाहता हूँ, कि आप कर क्या रहे हैं? ये कपड़े-कोट, जूता-पगड़ी, इसको भोजन करवा रहे हैं?'

ग़ालिब ने कहा कि ग़ालिब तो पहले भी आया था, उसे वापस लौटा दिया गया। वह फिर न आया। अब तो कोट-कपड़े आए हैं—ये भी उधार हैं। इन्हीं को प्रवेश मिला है, इन्हीं को भोजन करवा रहा हूँ। मुझे तो प्रवेश मिला नहीं, इसलिए भोजन करना उचित न होगा। तब ग़ालिब ने पूरी कहानी बहादुरशाह को कही, कि क्या हुआ है।

तुम जीवन में दूसरे को भी उसी मापदंड से तौलते हो जिसको पाने की तुमने अपने भीतर आकांक्षा बना ली है। अगर तुम धनी होना चाहते हो, तो धनी का आदर करोगे। धनी से ईर्ष्या भी करोगे, और आदर भी उसीका करोगे। तुम जो होना चाहते हो वह तुम्हारे आदर से पता चल जाएगा, और तुम्हारी ईर्ष्या से भी पता चलेगा। ईर्ष्या और आदर एक ही चीज के साथ होते हैं। अगर तुम बड़ा मकान बनाना चाहते हो, तो तुम बड़े मकानों से ईर्ष्या भी करोगे और बड़े मकानों के लोगों के चरणों में सिर भी झुकाओगे। तुम्हारी ईर्ष्या ही आदर का बिंदु भी होगी। तुम किसको सम्मान देते हो, उससे तुम्हारी तृष्णा की खबर मिल जाती है। तुम धनी आदमी की फिक्र करते हो, या तुम आदमी की फिक्र करते हो? तुम किस बात की चिंता लेते हो, उससे तुम्हारे भीतर कौन सी चीज की आकांक्षा दबी है उसकी खबर मिलती है।

'सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कह भूप।' अब, सहजो कहती है, जब प्रेम का दीवानापन आया, तब पता चला कि अब इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता, कौन धनी, कौन अमीर—यह बात असंगत हो गयी है। अब इससे कोई पहचान नहीं

होती है। प्रेम की आँख तुम्हारी आँखों में झाँकती है, और तुम्हें देखती है। महत्त्वाकांक्षा की आँख तुम्हारे पास क्या है उसे देखती है, तुम्हें नहीं। प्रेम तुम्हें देखता है—सीधा। महत्त्वाकांक्षा पद। अप्रेम तुम्हारे आसपास के संग्रह को देखता है।

'प्रेम दिवाने जे भये, जाति बरन गयी छूट।' यह अकड़ कि मेरा वर्ण क्या है, मेरी जाति क्या है, उन्हीं की है जिनको अपनी आत्मा का पता नहीं। कौन पागल कहेगा कि मैं ब्राह्मण हूँ, जिसने ब्रह्म को जान लिया? ब्राह्मण होने का दावा उसीका है जो ब्रह्म को जानने से वंचित रह गया। जब ब्रह्म को ही जान लिया तो क्या ब्राह्मण, क्या सस्ती बात पर राजी होना! ब्राह्मण होने से क्या होगा जब ब्रह्म ही होने की सुविधा हो!

'प्रेम दिवाने जे भये, जाति बरन गयी छूट।' अब न कोई जाति का दावा है, क्योंकि जब परमस्रोत का पता चल गया, तो क्या कहना कि हम किससे पैदा हुए? परमात्मा से ही जब पैदा हुए ऐसा पता चल गया, तो जिस बाप से पैदा हुए वह हिंदू है कि मुसलमान, ब्राह्मण है कि शूद्र, क्षत्रिय है कि वैश्य, क्या फर्क पड़ता है? जब मूलस्रोत का पता चल गया, तो मूलस्रोत तो वर्णातीत है। परमात्मा का तो कोई वर्ण नहीं, न वह वैश्य है, न वह क्षत्रिय है, न हिंदू है, न मुसलमान है, न शूद्र है—हरि तो हरिजन भी नहीं। हरि तो बस हरि है—वर्णशून्य, जातिमुक्त!

'प्रेम दिवाने जे भये, जाति बरन गयी छूट।' जिन्होंने प्रेम को पहचाना उन्होंने अपनी असली जाति पहचान ली। वह जाति तो परमात्मा की जाति है।

'सहजो जग बौरा कहे, लोग गये सब फूट।' और सहजो, सारी दुनिया कहने लगी, कि पागल हो गयी है तू। 'सहजो जग बौरा कहे'—कि तेरी बुद्धि खो गयी है, कि तेरा होश न रहा, कि तू क्या अनर्गल संलाप में पड़ गयी है? सन्निपात में है, क्या कहती है? 'लोग गये सब फूट'—जो पास थे वे दूर हट गये, जो अपने थे वे समझने लगे पराये, राह पर मिल जाते हैं तो पहचानते नहीं, कि पागलों के साथ कौन संबंध जोड़े! पागलों के साथ कौन कहे, कि अपने आदमी हैं!

तुमने देखा। तुम अगर गरीब हो, तो बहुत लोग दावा नहीं करते कि वे तुम्हारे रिश्तेदार हैं। अगर तुम अमीर हो जाओ, तुम अचानक पाओगे नये-नये रिश्तेदार पैदा होते जा रहे हैं, रिश्तेदारों के रिश्तेदार आते जा रहे हैं। सब रिश्तेदार हो जाते हैं। तुमसे किसी का रिश्ता नहीं है, तुम्हारे पास क्या है.....। अगर तुम पागल हो जाओ, तो राह पर तुम्हें अपने निकटजन भी मिलेंगे बचकर दूसरी गली से निकल जाएँगे—पागल से कौन बीच रास्ते पर मुलाकात करे! क्योंकि पागल से दोस्ती का मतलब है कि तुम भी पागल हो—बाजार में खबर हो जाए तो भारी

नुकसान लग सकता है !

'प्रेम दिवाने जे भये, जाति बरन गयी छूट। सहजो जग बौरा कहे, लोग गये सब फूट ।।' अब तो अकेले रह गये, कोई साथ नहीं देता। लोग तभी तक साथ देते हैं जबतक उनकी तृष्णा को तुमसे साथ मिलता है। लोग तुम्हारे साथी-संगी नहीं हैं, अपनी-अपनी वासनाओं के साथी-संगी हैं। जब तक तुम खूंटी का काम देते हो जिसपर वह अपनी वासनाएँ लटका लें, तबतक वह साथी हैं।

'प्रेम दिवाने जे भये, सहजो डिगमिग देह।' सहजो कहती है कि वे जो पागल हो गये प्रेम में, दिवाने हो गये, उनका शरीर का रोआँ-रोआँ आनंद से कँपता है। आत्मा तो आनंदित होती ही है, आत्मा के आनंद की झलक उनके शरीर तक उतर आती है।

बुद्ध-पुरुषों की देह भी बुद्धत्व की भनक देती है। बुद्ध-पुरुषों के रोएँ-रोएँ से भी बुद्धत्व की थोड़ी खबर आने लगती है। स्वाभाविक है। शरीर इतने करीब है आत्मा के। तुम्हारी हालत उल्टी है। तुम्हारी आत्मा से भी तुम्हारे शरीर की बू आती है। तुम जब आत्मा की भी बात करते हो तब निन्यानबे प्रतिशत तुम्हारा मतलब शरीर ही होता है। बुद्ध-पुरुषों के शरीर से भी उनकी आत्मा की सुगंध आने लगती है। जब वे शरीर की भी बात करते हैं तब भी निन्यानबे प्रतिशत उनका अर्थ आत्मा ही होता है।

'प्रेम दिवाने जे भये, सहजो डिगमिग देह'—आत्मा तो नाच ही रही है, उसके साथ पदार्थ भी नाचने लगा है। ऐसे ही जैसे कोई नर्तक नाचता हो, उसके पैरों की घूंघर बजती हो, उसके पैर पड़ते हों पृथ्वी पर तो पृथ्वी की धूलकण भी उठने लगे और उसके साथ नाचने लगे : एक बवंडर उसके चारों तरफ खड़ा हो जाए। ऐसा ही 'सहजो डिगमिग देह।'

'पाँव पड़ै कित कै किती'। अब कोई नृत्य, नृत्यशाला का नृत्य नहीं है ये कि पैर, पदचाप, ताल, छंद? ये कोई नर्तकी का नृत्य नहीं है, ये तो प्रेम दिवाने का नृत्य है—'पाँव पड़ै कित कै किती'—अब कोई हिसाब नहीं है। अब किसीकी धुन पर थोड़े ही नाच रहे हैं। ठीक तो यही होगा, कि अब ये कहना उचित नहीं है कि नाच रहे हैं, नाच हो गये हैं। भीतर कोई बचा नहीं, सिर्फ नाच ही है। एक अहर्निश नृत्य चल रहा है। 'पाँव पड़ै कित कै किती'—पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं। फिकर भी कौन करता है, प्रेम के दिवाने पैरों का हिसाब थोड़े ही रखते हैं! बड़ा संगीत सध गया है, अब इन छोटी-मोटी बातों की—तकनीकी बातों की—कौन चिंता करता है!

'पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह'—और एक नयी घटना हो रही है, कि हम तो अब पैर कहीं के कहीं भी पड़ते हैं तो पड़ने देते हैं, रहा ही भीतर कौन जो सँभाले! रहा ही नहीं वह अहंकार, जो चिंता करे कि छंदबद्ध हो सब, लयबद्ध हो सब। अब तो जीवन एक स्वच्छंद छंद है, मुक्तछंद है—अब इसमें मात्राओं का कोई हिसाब नहीं। लेकिन एक नया अनुभव हो रहा है : 'हरि सँभाल तब लेह'—हमारे पैर कहीं भी पड़ें, हरि सँभालता है। पहले हम सँभालते थे और सँभाल न पाते थे; अब हमने सँभालना छोड़ दिया, वह सँभालता है।

जिस दिन तुमने सब उसपर छोड़ दिया, उस दिन पैर कहीं भी पड़ें छंद में ही पड़ते हैं। इसे थोड़ा समझो।

अभी तुम चेष्टा कर-करके भी, व्यवस्था जमा-जमाकर भी पाते हो, जम नहीं पाती, कुछ न कुछ कमी रह जाती है, क्योंकि जमानेवाला ही बेहोश है। ऐसा समझो कि तुमने शराब पी रखी है, और तुम सँभाल-सँभालकर पैर तबले की धुन पर डालने की कोशिश कर रहे हो। तुमने शराब पी रखी है, तुम अपनी तरफ से बड़ी कोशिश करते हो, फिर भी कहीं का कहीं पड़ जाता है। शराबी, तुम सोचते हो रास्ते पर जब चलता है सँभल कर नहीं चलता। बहुत सँभल कर चलता है। असल में शराबी जितना सँभल कर चलता है तुम कभी सँभल कर चलते ही नहीं, क्योंकि शराबी को डर लगा रहता है—गिरते हैं, डाँवाडोल हो रहे हैं। शराबी को लगता है, चले नाली की तरफ फिर; वह रोकता है, रोकने में दूसरी तरफ हटा लेता है अपने को; शराबी चलता ही है एक नाली से दूसरी नाली, वह बीच रास्ते से नहीं चल पाता—चलना असंभव है—क्योंकि बीच में वह चले कैसे, होश तो है नहीं। बेहोशी में एक तरफ झुक जाता है, उधर से बचने को फिर झुकता है तो दूसरी तरफ झुक जाता है। एक भूल से बचता है तो दूसरी हो जाती है, कुएँ से बचता है तो खाई मिल जाती है—भीतर ही होश न हो तो तुम पैरों को कितना ही सँभाल कर रखो, तुम सँभाल कर न रख पाओगे।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर आया। बड़ी देर तक चौराहे पर खड़ा सिपाही देखता रहा कि वह ताले में चाबी डालने की कोशिश कर रहा है, लेकिन चाबी नहीं जाती, हाथ उसके कँप रहे हैं। हाथ इतने कँप गये हैं कि वह एक हाथ से ताला कँपा रहा है और एक हाथ से चाबी कँपा रहा है, अब वह दोनों कँपती चीजों का मेल नहीं हो रहा है। आखिर पुलिसवाले को भी दया आ गयी—पुलिसवाले भी अंततः तो आदमी हैं।

आया पास। उसने कहा, 'नसरुद्दीन, मैं कुछ सहायता करूँ? लाओ, चाबी मुझे

दो, मैं दरवाजा खोल दूं।' नसरुद्दीन ने कहा, 'दरवाजा तो मैं ही खोल लूंगा, तुम जरा भवन को सँभाल कर रखो ताकि कँपे न।' क्योंकि उसे ऐसा नहीं लग रहा है कि ताला कँप रहा है। पूरा मकान कँप रहा है। तुम जरा इसको सँभाल लो, चाबी तो मैं ही डाल लूंगा।

नशे में आदमी सँभलकर चलने की कोशिश करता है; सब सँभालना व्यर्थ सिद्ध होता है।

'पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह।' लेकिन एक घड़ी आती है, जब भीतर का होश आता है--प्रेम याने होश--जब भीतर का दीया जलता है, अचानक, अब तुम कहीं भी पैर डालो, कैसे भी चलो। अब तुम नाच सकते हो बेफिक्री से, अब तुम्हें सँभालने की जरूरत नहीं, अब परम सत्ता ने तुम्हें सँभाल लिया। जिसने अपने को छोड़ा उसे परम सत्ता का सहारा मिल जाता है--जिसने अपने को सँभालना भी छोड़ा--क्योंकि वह भी अहंकार है, कि मैं अपने को सँभालूं, वह भी अस्मिता है। जिसने कहा, जैसे रखो वैसे रहेंगे, जैसे चलाओगे वैसे चलेंगे; गिराओगे गिरेंगे, उसके लिए भी धन्यवाद करेंगे; उठाओगे उठेंगे--अपना कोई चुनाव न रहा। 'पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह।'

'मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग। ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग।।'

'मन में तो आनंद रहै'। अभी तुम्हारे भीतर मन ही मन है, आनंद तो बिल्कुल नहीं। जब मन मिटता है, तब आनंद आता है--मन का अभाव आनंद है। और प्रेम में मिटता है मन--प्रेम मन की मृत्यु है--प्रेम में मरता है मन। तुम खो ही जाते हो, कुछ खोज-खबर नहीं मिलती--कौन थे, क्या होने जा रहा है? सब रेखाएँ मिट जाती हैं।

'मन में तो आनंद रहै'--अब मन में मन नहीं रहता, अब तो मन में आनंद ही आनंद है। फर्क समझ लेना। तुम जिसे सुख कहते हो उसकी बात नहीं हो रही है। सुख और दुःख मन के ही हिस्से हैं। आनंद तब होता है जब न मन में दुःख रह जाता है, न सुख। जब सुख-दुःख दोनों ही चले जाते है। जब तुम्हारे भीतर कोई उत्तेजना नहीं रह जाती, न अच्छी, न बुरी।

'मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग'--और देखो, भीतर तो आनंद घिरा है, और तन भी बौरा गया है, शरीर का अंग-अंग मत्त है। भीतर होश आया है--होश की शराब में डूबा है तन का टुकड़ा-टुकड़ा।

एक शराब है बेहोशी की और एक शराब है होश की। बेहोशी में भी आदमी

डगमगाता है, लेकिन उस डगमगाने में नृत्य नहीं होता। होश में भी आदमी डगमगाता है, लेकिन उसमें परम नृत्य होता है। 'पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह।'

'मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग। ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग।।'

अब तो परम एकांत फलित हुआ है। न तो कोई साथ है, न किसीका साथ है। क्योंकि साथ भी द्वंद्व की बात है, द्वैत की बात है। भक्त ऐसा थोड़े ही समझता है, कि भगवान साथ है। भगवान ही है। भक्त ऐसा थोड़े ही समझता है, कि मैं भगवान के साथ हूँ। मैं तो हूँ ही नहीं, भगवान ही है।

'ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग'--अब न तो कोई साथ है अपने, न हम किसीके साथ हैं। अब एक ही बचा। वह मिट गया दृष्टा और दृश्य। एक ही बचा--'दर्शन' हुआ। मिट गया प्रेमी और प्रेयसी--'प्रेम' ही बचा। मिट गये किनारे, नदी सागर में खो गयी।

इन पदों को पूरा फिर से दोहरा देता हूँ--उनकी गूंज तुम्हारे रोएँ-रोएँ में रह जाए, तुम्हारे हृदय की धड़कन बन जाए--इस कामना के साथ :--

'प्रेम दिवाने जे भये, पलटि गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कह भूप ।।
प्रेम दिवाने जे भये, जाति बरन गयी छूट ।
सहजो जग बौरा कहे, लोग गये सब फूट ।।
प्रेम दिवाने जे भये, सहजो डिगमिग देह ।
पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह ।।
मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग ।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग ।।'

आज इतना ही।

★ ★ ★

हरि सँभाल तब लेह

प्रवचन ४, प्रातः, दिनांक ४-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्न : आपकी और सहजोबाई की भाषा की मधुरिमा और लयपूर्णता में साम्य सा क्यों लगता है ?

एक ही कुएँ से पानी पीने के कारण। शब्द या तो अंतर के अनुभव से आते हैं, या मस्तिष्क के संग्रह से। पंडितों की भाषा में साम्य होगा। संतों की भाषा में भी साम्य होगा। पंडितों की भाषा में साम्य होगा तर्क का, साम्य होगा शब्द-विन्यास का, साम्य होगा बाल की खाल निकालने का। संतों की भाषा में भी साम्य होगा—उस गहराई का जहाँ से शब्द आते हैं। शास्त्र का साम्य नहीं होगा; शून्य का, स्वाद का साम्य होगा। मधुरिमा होगी। तर्क नहीं है आधार उनके वक्तव्य का, प्रेम आधार है। इसलिए नहीं कुछ कह रहे हैं क्योंकि कुछ कहना है, बल्कि इसलिए कह रहे हैं क्योंकि कहने में एक करुणा है। कुछ देना है। कहने से ज्यादा देना। वक्तव्य से ज्यादा एक भेंट।

संत का वश चले तो चुप रहे। पंडित का वश चले तो चुप कभी न रहे। इसलिए दो संतों की वाणी में उनके मौन का साम्य होगा, उनके शून्य का साम्य होगा। अगर तुम गौर से सुनोगे, तो तुम्हें दोनों में ही एक सी चुप्पी के स्वर उठते हुए मालूम होंगे। अगर तुम गौर से न सुनोगे, तो साम्य चूक जाएगा। अगर तुमने परम ध्यान से सुना, शून्य होकर सुना, तो जो कहा है वह नहीं, बल्कि जहाँ से कहा है उस हृदय की धड़कन सुनायी पड़ेगी।

पंडितों की भाषा कठिन होगी। पंडित की भाषा सरल हो ही नहीं सकती, क्योंकि पंडित को अपनी कठिन भाषा में ही अपने कथ्य की गरीबी को छिपाना है, दीनता को छिपाना है। वह बिना जाने कुछ कह रहा है। अगर भाषा सरल हो, तो तुम्हें दिखायी ही पड़ जाएगा कि भीतर कुछ भी नहीं है। भाषा अगर सीधी-सादी हो, तो सतह समझ में आ जाएगी; और भीतर तो कोई गहराई नहीं है। तो सतह को इतना जटिल होना चाहिए कि तुम सतह के भीतर कभी प्रवेश ही न कर पाओ। और जितना तुम प्रवेश न कर पाओगे, उतना ही सोचोगे, कि भीतर कोई बड़ा रहस्य होना चाहिए।

पंडित की भाषा कठिन अनिवार्यतः होगी। क्योंकि भाषा ही मात्र है कुल, और

कुछ भी नहीं है। पंडित की भाषा ऐसे है जैसे किसी कुरूप स्त्री ने गहने पहन रखे हों, बहुमूल्य वस्त्र पहन रखे हों, रंग-रोगन कर रखा हो, और कुरूपता को छिपा लिया हो।

संत की भाषा ऐसे है जैसे कोई सुंदर स्त्री अनसजी खड़ी हो। जैसे वृक्ष नग्न हैं, चाँद-तारे नग्न हैं, ऐसे संत की भाषा नग्न है--उस पर कोई आवरण नहीं है। क्योंकि आवरण उसे कुरूप ही कर देंगे। कोई आवरण संत की भाषा को सुंदर नहीं कर सकता। वह आत्यंतिक रूप से सुंदर है ही। उस पर अब और कोई सजावट नहीं चाहिए।

सौंदर्य अपने आप में काफी है। कुरूपता को बेचैनी होती है; वह ढाँकती है, छिपाती है, दबाती है। जो नहीं है दिखलाती है, जो है उसे ढाँकती है।

पंडितों की भाषा में भी साम्य होगा, उनकी जटिलता का। और तुम उनसे अगर प्रभावित होते हो, तो उसका कुल कारण इतना ही होता है कि तुम्हारे पास गहरे देखने की आँखें नहीं हैं। अगर गहरे देखने की आँख होगी, तो पंडित के भीतर का अज्ञान तुम्हें स्पष्ट दिखायी पड़ेगा। अगर गहरी आँख होगी, तो सौंदर्य के आवरणों के पीछे छिपी कुरूपता स्पष्ट हो जाएगी। इसलिए पंडित कभी सनातन प्रभाव नहीं छोड़ता।

हीगल ने बहुत अद्‌भुत ग्रंथ लिखे हैं। अद्‌भुत इसी अर्थ में कि वे बहुत जटिल हैं। जबतक हीगल जिंदा रहा, लोग चमत्कृत रहे। क्योंकि उसकी भाषा के जंगल से गुजरना और उसके अंतस्तल तक पहुँचना ही कठिन था। जैसे ही हीगल मरा और लोगों ने गहरा अध्ययन किया, वैसे-वैसे हीगल का प्रभाव कम होने लगा। सौ साल भी न बीते थे कि हीगल लोगों के चित्त से समाप्त हो गया। क्योंकि जैसे ही लोगों ने समझा वैसे ही पाया, कि भीतर तो कुछ भी नहीं है। प्याज के छिलके थे सब। प्याज की परतों को उघाड़ते गये, भीतर तो हाथ कुछ भी न आया--केवल रिक्तता मिली।

पंडित अपने समय में काफी प्रभावी होता है, क्योंकि उसके समझने में देर लगेगी। संत अक्सर अपने समय में प्रभावी नहीं हो पाता, क्योंकि वह बात इतनी सरल कहता है कि अगर तुम्हारे पास ध्यान हो तो ही दिखायी पड़ेगी। विचार से तो दिखायी ही न पड़ेगी। अगर तुम भी मौन हो तो ही संत के साथ तुम्हारा हृदय धड़केगा, उसकी श्वाँस के साथ तुम्हारी श्वाँस चलेगी; और तब अपरिहार्य रूप से एक मधुरिमा तुम्हें घेर लेगी। तुम्हारे कंठ से एक स्वाद टपकने लगेगा, भीतर अमृत का एक स्पर्श शुरू हो जाएगा।

एक ही कुएँ से जब भी तुम पानी पियोगे, तुम्हारे कंठ से एक सी आवाज, एक से स्वर भी पैदा होंगे। तुम सभी संतों को एक ही बात कहते हुए पाओगे, चाहे उन्होंने कितनी ही अलग-अलग बातें कहीं हों, कितने ही भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया हो। सबके भीतर तुम पाओगे स्वर एक है। अगर स्वर न दिखायी पड़े तो तुम संतों के आसपास संप्रदाय बना लोगे, अगर स्वर दिखायी पड़ जाए तो धर्म में तुम्हारी गति हो जाएगी।

पंडित संप्रदाय बनाता है। संत धर्म को उतार लाता है।

एक बहुत आश्चर्य की घटना भारत के इतिहास में घटी है। महावीर में धर्म उतरा। लेकिन महावीर का जिन्होंने शब्द-संग्रह किया वे सभी ब्राह्मण थे। महावीर तो क्षत्रिय थे, उनके ग्यारह ही गणधर ब्राह्मण थे, बड़े पंडित थे। मेरा देखना है, कि महावीर ने जो दिया था वह इन ग्यारह पंडितों ने बुझा दिया। महावीर ने जो उतारा था इस जगत में, उतर भी न पाया कि इन ग्यारह शास्त्रविदों ने उसे शास्त्रों में ढाँक दिया, दबा दिया।

बुद्ध के साथ भी यही हुआ।

इस लिहाज से सहजोबाई, कबीर, दादू सौभाग्यशाली हैं। ये इतने सीधे-साधे लोग थे, और इतने दीन-दरिद्र घरों से आए थे, कि बड़े पंडित इन्हें अनुयायियों की तरह नहीं मिल सके। महावीर, बुद्ध को मिल गये, क्योंकि वे राजघरानों के लोग थे, शाही-परिवार से आए थे। उनके पास खड़े होने में पंडितों के अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती थी। ये दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। क्योंकि पंडितों ने भीड़ कर ली खड़ी, चारों तरफ एक वर्तुलाकार घेरा डाल दिया। साधारणजन से ज्यादा उत्सुकता उन्होंने दिखायी, क्योंकि बुद्ध के पास होना ही काफी अहंकार को पुष्ट करता था।

सहजोबाई के पास कौन आकर खड़ा होगा! एक साधारण ग्रामीण स्त्री है। पंडित तो कहेंगे, ये जानती ही क्या है? इससे ज्यादा तो हम जानते हैं। मन में तो शायद उनके यही बात महावीर और बुद्ध के बाबत भी रही होगी, कि इनसे ज्यादा हम जानते हैं, लेकिन कह न सके--ये राजपुत्र थे। इनकी महिमा का दूर-दूर तक प्रकाश फैला था। इनके पास खड़े होकर इनकी महिमा का थोड़ा-सा हिस्सा वे भी बाँट लेना चाहते थे। सहजोबाई को कौन पंडित फिक्र करेगा?

कबीर काशी में ही रहे, किसी पंडित ने कभी दाद न दी। कौन दाद देगा? न संस्कृत जानते हो, न प्राकृत जानते हो, न पाली जानते हो; न 'गीता' का कुछ पता, न 'समय-सार' की कोई पहचान, न 'धम्मपद' से कोई सबंध है, तुम्हें फिकर कौन करेगा? तुम जो कह रहे हो वह भाषा जुलाहे की है, ज्ञानियों की नहीं।

कबीर कहते हैं--'झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया'। बुद्ध नहीं कह सकते, महावीर नहीं कह सकते--कभी बीनी ही नहीं चदरिया। वह जुलाहा ही कह सकता है--उसके पास दूसरी कोई भाषा नहीं है।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि बुद्ध और महावीर की भाषा भी फीकी पड़ जाती है, राजमहल की भाषा है--जीवित कम। बहुत सुरक्षित रोपे की तरह है। खुले आकाश का रोपा नहीं है, हॉट-हाउस में रोपा गया रोपा है। खुले जंगल में, सूरज और तूफान में, आँधी और अंधड़ में बड़ा नहीं हुआ है। सुंदर हो सकता है, पर अति कोमल है। सौंदर्य में बल नहीं है।

जब कबीर बोलते हैं तो बात ही और है! जीवन के सीधे यथार्थ से शब्द आए हैं। इसलिए तुम्हें सरल लगते हैं। सरल लगने के कारण तुम्हें लगता है, इनमें रखा ही क्या है? क्योंकि तुम समझ लेते हो तुम समझते हो, समझने को कुछ है ही नहीं। और यही मेरी चेष्टा है तुमसे; सहजो को, कबीर को, दादू को तुम्हारे सामने खींच रहा हूँ, सिर्फ इसीलिए कि तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए कि जहाँ तुम्हें लगता है सब समझ लिया, वहाँ बहुत समझने को शेष है।

शंकराचार्य ने गीता पर टीका की। उपनिषदों पर टीका की। ब्रह्मसूत्र पर टीका की। इन तीनों पर भारत में सदा टीका होती रही है। किसी ने कभी सहजोबाई, कबीर, दादू इन पर टीका की ही नहीं। टीका करने को कुछ लगता ही नहीं। बात इतनी सरल है, कि अब इसे और क्या समझाओ!

और मैं तुमसे कहता हूँ, जहाँ सरल है वहीं समझने को है। रहस्य सरलता में दबा है। जटिलता में तो तुम सिर्फ कोरे शब्द पाओगे, जिनकी छीछालेदर जितनी करनी हो कर लो, आखिर में पाओगे, खाली हाथ आए खाली हाथ गये।

इसे स्मरण रखना।

जहाँ चीजें बिल्कुल सरल मालूम पड़ें, वहाँ रुकना। उनके सरल होने का ही बड़ा रहस्य है। सरल होना इस बात का सबूत है, कि कुछ है कहने को। जटिलता इस बात की सबूत है, कि कहने को कुछ नहीं है। कथ्य की दरिद्रता को छिपाने के लिए शब्दों का जाल है। जब कथ्य समृद्ध होता है, जो कहना है जब वही हीरा होता है, तब फिर उसे किसी और चीज से सजाने की जरूरत नहीं होती। कोहनूर अकेला ही रख दिया जा सकता है। वह काफी होगा। उसमें जोड़ने को और क्या है? उसे तुम कुछ जोड़ोगे तो उसका सौंदर्य कम ही होगा।

ये सहजोबाई के शब्द कोहनूर जैसे हैं। अप्रतिम इनका सौंदर्य है; पर सौंदर्य सरलता का है। इसलिए बुद्धि से अगर तुमने देखा तो समझ में न आएगा, क्योंकि

बुद्धि को जटिलता में मजा आता है, पहेलियाँ सुलझाने में मजा आता है। अगर हृदय से देखा, तो तुम इस सरलता में ऐसे रहस्य पाओगे जो कभी हल ही नहीं होते। उतरो, डूबो, तुम्हीं खो जाओगे; लेकिन कभी ऐसी घड़ी न आएगी जिस क्षण तुम कह सको जान लिया।

जो जान लिया जाए उसका परमात्मा से क्या संबंध? जो जान-जानकर भी अनजाना, अपरिचित रह जाए; पहचानते-पहचानते भी पहचान न बने; पकड़ो जितना ही उतना ही छूटता जाए; जितना पीछा करो उतना ही रहस्यपूर्ण होता चला जाए; वह अज्ञात ही परमात्मा है।

दूसरा प्रश्न : आपने कल कहा, महत्त्वाकांक्षी प्रेम नहीं कर सकता है। इने-गिने बुद्धपुरुषों को छोड़कर हम सभी कमोबेश महत्त्व के आकांक्षी हैं। तब क्या हमारा सब प्रेम माँ-बाप के लिए, बेटा-बेटी के लिए, पति-पत्नी के लिए, प्रेमी-प्रेमिका के लिए, जाति-धर्म के लिए कलुषित है, स्वाँग है, झूठा है?

जिस मात्रा में महत्त्वाकांक्षा है, उसी मात्रा में प्रेम झूठा हो जाता है। जिस मात्रा में महत्त्वाकांक्षा कम है, उसी मात्रा में प्रेम सच्चा हो जाता है।

जब तुम किसी को प्रेम करते हो, तो प्रेम के लिए ही प्रेम करते हो या कोई और भी कारण है। जिस मात्रा में तुम और भी कारण बता सको, उसी मात्रा में प्रेम कम हो जाता है। तुमसे कोई पूछे कि क्यों तुमने प्रेम किया इस व्यक्ति को, तुम अवाक् खड़े रह जाओ, तुम कोई कारण न बता पाओ; तुम कहो--अकारण ही समझो, हो गया, खोजता हूँ कुछ कारण नहीं पाता, कारण मेरी ही समझ में नहीं आता है। ध्यान रखना, ऐसी घड़ी ही प्रेम का अवतरण होता है, जहाँ कारण नहीं है।

जो सकारण है, वह संसार का हिस्सा है। जो अकारण है, वह परमात्मा का।

परमात्मा के होने का कोई कारण है? कहो, थोड़ा सोचो! संसार के होने का कारण हो सकता है। हम कहते हैं संसार को परमात्मा ने बनाया, वह मूल कारण है। लेकिन पूछो परमात्मा को किसने बनाया, बात बेहूदी हो जाती है। उसका कोई भी कारण नहीं है।

संसार किसी कारण से है, परमात्मा अकारण है।

तुम दूकान चलाते हो, कोई कारण है। रोटी-रोजी के लिए जरूरी है, पेट भरना है। तुम नौकरी-चाकरी करते हो, तुम धन कमाते हो, कोई कारण है। क्योंकि धन के बिना कैसे जियोगे? मकान बनाते हो, कारण है। बिना छप्पर के जीवन मुश्किल हो जाएगा--वर्षा है, धूप-ताप है।

लेकिन तुम प्रेम करते हो, क्या कारण है? क्या बिना प्रेम के न जी सकोगे? क्या बिना प्रेम के मर जाओगे? बिना रोटी के न जी सकोगे, मर जाओगे; बिना प्रेम के क्या अड़चन है; सच तो यह है कि बिना प्रेम के तुम करोड़ों लोगों को बिलकुल मजे से जीते देखोगे। प्रेम से शायद अड़चन भी आ जाए, प्रेम के अभाव से तो कोई अड़चन नहीं मालूम होती। धन के बिना न जी सकोगे, प्रेम के बिना तो आदमी जी सकता है--जीता है।

जिनको तुम जीवन में सफल देखते हो, ये वही लोग हैं जो प्रेम के बिना जी रहे हैं। प्रेम और सफलता का जोड़ नहीं बनता, क्योंकि सफलता के लिए जितना कठोर होना पड़ता है प्रेम उतने कठोर होने की सुविधा नहीं देता। प्रेम और धन का जोड़ नहीं बनता, क्योंकि धन के लिए जितनी हिंसा चाहिए उतनी प्रेम बर्दाश्त नहीं कर सकता। प्रेम और पद का संबंध नहीं बनता, क्योंकि पद के लिए जैसी विक्षिप्त दौड़ चाहिए और गलाघोंट प्रतियोगिता चाहिए वैसा प्रेम नहीं कर पाता।

नानक के पिता बहुत परेशान थे, क्योंकि किसी काम-धंधे में न लगे। जहाँ लगाएँ वहीं अड़चन आ जाए। कुछ पैसे लेकर दूसरे गाँव से सामान लेने भेजा। चलते वक्त कहा कि लाभ का ध्यान रखना। धंधे तो लाभ के लिए किये जाते हैं। नानक ने कहा बिल्कुल बेफिकर रहें, लाभ का ध्यान रखूँगा।

वह दूसरे गाँव से सामान खरीदकर आते थे, रास्ते में साधुओं की एक मंडली मिल गयी—वे भूखे थे तीन दिन से। उन्होंने सबको खाना खिला दिया, कंबल बाँट दिये—जो भी लाए थे वह सब बाँट-बूँट कर बड़े प्रसन्न, नाचते हुए घर आए। बाप ने देखा, नाचते आ रहा है, जरूर कुछ गड़बड़ हो गयी होगी! दूकानदार कहीं नाचते घर आया है। और सामान कुछ भी नहीं है, अकेले ही चला आ रहा है, और इतनी मस्ती में है, कुछ न कुछ गड़बड़ हुई है!

पूछा कि क्या हुआ--लाभ का क्या हुआ?

नानक ने कहा, जैसा कहा था वैसा ही करके आया हूँ; बड़ा लाभ अर्जित हुआ है। तीन दिन के भूखे साधू-संन्यासी। उस जंगल में मेरा निकलना। जैसे परमात्मा का ही भेजना हो गया। उनको कौन खिलाता, कौन उन्हें कंबल देता? बड़ा लाभ हुआ है। धन्यभागी हैं हम! उनके चेहरों पर आयी तृप्ति....उनके शरीरों पर डालकर कंबल आ गया हूँ.... और इस सेवा का क्या लाभ होगा--परमलाभ हुआ है।

बाप ने सिर पीट लिया।

नानक का लाभ कुछ और ही मालूम पड़ता है। ये कुछ ऐसा लाभ है जिसे लाभ कहना भी ठीक नहीं। बाप की समझ में नहीं आता कि ये कैसा लाभ है?

कोई रास्ता न देखकर सूबेदार के घर नौकरी लगवा दिया। नौकरी यह थी कि दिनभर तराजू से तौलते रहो सामान लोगों के लिए—बड़ी फौज-फाँटा था, सबको सामान देना--भंडारे पर बिठा दिया।

पर दो-चार दिन में ही गड़बड़ हो गयी। प्रेम जिसके जीवन में आ गया, संसार उसका गड़बड़ा ही जाता है। पैर डगमगा जाते हैं--'पाँव पड़ै कित कै किती'। शराबी की तरह आदमी हो जाता है—प्रेम की शराब।

नानक चौथे या पाँचवे दिन नाप रहे थे, तेरह का आँकड़ा आ गया। पंजाबी में तेरह—'तेरा'। कहा--ग्यारह, बारह, 'तेरा।' 'तेरा' पर अटक गये। 'तेरा' कहते ही उसकी याद आ गयी—'तू,' 'तेरा'। फिर आगे न बढ़े, फिर चौदह न आया, फिर पंद्रह न आया; फिर वे डालते ही गये, तौलते गये और कहते गये—'तेरा'। अब 'तेरा' के बाद कहीं कोई संख्या है? आखिरी संख्या आ गयी, परमात्मा आ गया। अब उसके बाद और क्या आने को बचता है? उसके न आगे कुछ है, न पीछे कुछ है, आखिरी घड़ी आ गयी—'तेरा'। गाँव भर में खबर फैल गयी, कि वह पागल हो गया है; लोगों ने कहा वह पागल पहले से है।

अब वह तौले जा रहा है, जो भी आ रहा है वह 'तेरा'.... दिये जा रहा है। अब वह कुछ पैसे-मैसे भी नहीं लेता, क्योंकि जब 'तेरा'—अब किससे क्या लेना? सूबेदार भागा आया। उसने कहा बरबाद कर देगा, यह क्या लगा रखा है—'तेरा'? 'तेरा' के बाद भी संख्या है, भूल गया? नानक ने तराजू वहीं रख दिया और कहा, कि 'तेरा' के बाद कोई संख्या नहीं है। अब मैं जाता हूँ, उसकी पुकार आ गयी। उसने ही पुकारा तभी तो मैं समझ पाया, नहीं तो 'तेरा' तो मैं गिनता था, चौदह आ जाता था, पंद्रह आ जाता था; आज उसकी कृपा हो गयी। अब सब उसी का है—यह अनाज, धान्य, संपत्ति, मैं, तुम, सब उसके हैं। अब कुछ तौलूँगा न। अब तो उसके हाथ पड़ गया जिसको तौला ही नहीं जा सकता, इसलिए तो 'तेरा' पर रुक गया।

अब यह प्रेम की दुनिया अलग ही दुनिया है, इसका कोई हिसाब-किताब नहीं!

तो तुम जो प्रेम करते हो, उसमें जिस मात्रा में महत्त्वाकांक्षा है, लाभ है, लेने का भाव है, कोई कारण है, उसी मात्रा में प्रेम में जहर घुल जाता है। इसलिए तो तुम्हारे प्रेम से सुख नहीं होता, दुःख ही होता है। कहाँ तुम्हारे प्रेम से सुख होता है? पति को क्या सुख होता है पत्नी के प्रेम से? सोचता है, होगा। सोचता था,

कहना चाहिए। अब तो सोचता भी नहीं है, सोचता था कि सुख होगा। पत्नी ने भी सोचा थां कि सुख होगा, उसी सोच में तो उलझे, उसी लोभ में तो पड़े, उसी मृगमरीचिका के पीछे तो चल पड़े।

सतत कलह है। अभद्र हो, भद्र हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? सज्जनोचित हो, ग्राम्य हो, सभ्य हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? सुशिक्षित हो कलह, कि अशिक्षित हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन कलह है। और, प्रेम ने जितने सपने दिखाए वे कोई पूरे नहीं हुए। अगर तुम छोड़कर नहीं भाग जाते हो इस प्रेम को तो उसका कारण यह नहीं है कि तुम्हें कुछ मिल गया है। छोड़कर तुम नहीं भागते हो तो वही कारण है, जो मैंने तुमसे पहले दिन कहा--सैमुअॅल बैकट की कथा में--'कि छोड़कर जाएँ कहाँ?' छोड़कर नहीं भागते हो, इसका मतलब यह नहीं है कि तुम्हें कुछ मिल गया है यहाँ। नहीं भागते हो इसलिए, कि जाएँ कहाँ? जहाँ जाएँगे वहीं यही होगा। तो नये रोग लेने से तो पुराना रोग ही ठीक है। परिचय तो है, जाने-माने हैं।

छोटी-छोटी चीज की कलह है।

कल ही मैं एक घटना पढ़ रहा था। किसीने अपने मित्र को भोजन पर बुलाया है। और जैसा किसी को भोजन पर बुला लो और घर में कलह होती है, पत्नी नाराज है। तो जो भोजन ग्यारह बजे बन जाना चाहिए, बारह बज गये हैं वह बन ही नहीं रहा है। मित्र की वजह से वह कुछ कह भी नहीं सकती। लेकिन भीतर तो पीड़ा है, तो वह लंबा रही है समय, बरतन जोर से गिर रहे हैं, दरवाजे जोर से लगाए जा रहे हैं, करीब-करीब सब बच्चे पीटे जा चुके है—बड़ा शोरगुल मचा है। पति भी क्रुद्ध बैठा है, कुछ कह भी नहीं सकता, अब कहे भी क्या? मित्र के सामने कुछ कहना भी ठीक नहीं, प्रतीक्षा ही करना उचित है। भूख लगी है। और मित्र भी बैठा है, और मित्र को भी दिखायी तो पड़ रहा है जो हो रहा है!

आखिर पत्नी ने भीतर से झाँका और कहा, कि सुनो जी, खीर तो तैयार होने के करीब है, लेकिन शक्कर नहीं है। अब यह एक नया उपद्रव! ग्यारह बजे से नहीं कहा उसने कि शक्कर नहीं है; अब एक बजे हैं! अब ये शक्कर में कहीं जाकर 'क्यू' लगाकर खड़े होओ तो उसने लगा दिया पूरा दिन चौपट कर दिया--और मित्र सामने बैठा है। तो मित्र की तरफ देखकर पति एकदम आगबबूला हो गया, उसने कहा, शक्कर नहीं है तो मेरा भेजा डाल दे। मित्र ने सोचा कि अब झंझट बढ़ेगी, मैं अकारण फँस गया; आ गया, अब जाना भी नहीं बनता। अब जाऊंगा तो भी अभद्र है, और अब ये तो बात बिगड़ गयी। लेकिन पत्नीने कुछ न

कहा, चुपचाप चली गयी, जोकि बड़ी आश्चर्यजनक घटना थी! लेकिन पंद्रह-बीस मिनट बाद वह फिर आयी, उसने कहा कि शक्कर नहीं है, चाय कैसे बनेगी? अब तो पति और भी आगबबूला हो गया, उसने कहा, एक दफा कह दिया कि मेरा भेजा डाल दे। उसकी पत्नी ने कहा कि भेजा तो खीर में डाल दिया, अब चाय में क्या डालूं?

ऊपर सतह पर सब संस्कार रह जाते हैं, भीतर कलह है, भीतर गहन घृणा है। घृणा से भी ज्यादा विषाद है, कि तुमने मुझे धोखा दिया, कि तुमने प्रेम के जो सपने दिखाये वे पूरे न हुए, कि तुमने आश्वांसन दिये थे फूल-सजे रास्तों के, सिवाय काँटों के और कुछ भी न मिला।

बाप नाराज हैं बेटों से, बेटे नाराज हैं बाप से। माँ नाराज है बच्चों से, बच्चे नाराज हैं माँ से। कोई किसी से प्रसन्न नहीं है, क्योंकि प्रेम ही नहीं है। कोई दूसरे कारणों पर अटका है प्रेम; वही कारण कष्ट के आधार बन जाते हैं।

माँ सोच रही है, बेटा बड़ा होगा तो उसकी जो-जो महत्त्वाकांक्षाएँ अधूरी रह गयी हैं वह पूरी करेगा। बेटा अपनी वासनाएँ लेकर संसार में आया है, तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने नहीं आया है। बाप सोचता है कि मैं नहीं हो पाया बहुत बड़ा अमीर, कोई बिड़ला-टाटा नहीं बन पाया, मेरा बेटा करके दिखा देगा। लेकिन बेटा संगीतज्ञ बनने के धुन में पड़ा है। बेटा को धन में रस नहीं है, वह कहता है संगीतज्ञ बनना है। बेटा अपनी वासनाएँ लेकर आया है। और बाप ने बेटे को जन्म के पहले पूछा भी नहीं, कि तू मेरी महत्त्वकांक्षा पूरी कर सकेगा, जो मैं तुझे दुनियाँ में लाऊँ। और बेटे ने भी न पूछा, कि मैं अपनी महत्त्वाकांक्षा, वासना लेकर आता हूँ, तुम सहारा बन सकोगे, मैं आऊँ?--अन्यथा संबंध तोड़ लें।

संबंध अँधेरे में हुआ, और दोनों अपनी आकांक्षाएँ लिए हैं। दोनों की महत्त्वाकांक्षाएँ टकराएँगी, क्योंकि इस संसार में कोई किसी दूसरे की महत्त्वाकांक्षा पूरा करने को आया ही नहीं, सबकी अपनी महत्त्वाकांक्षा है—अपने कर्मों का जाल है। हर आदमी खुद होने को पैदा हुआ है। इसलिए, अगर तुम्हारी जरा सी भी महत्त्वाकांक्षा है किसी आदमी से तो वही जहर बन जाएगी।

बाप देख रहा है कि बेटा धोखा दे रहा है। मैं चाहता था कि धनपति बन जाऊँ, मैंने जिंदगी भर इसके लिए गँवायी इसी आशा में कि मरते वक्त मेरी आशा पूरी होगी, और ये सितार बजा रहा है! ये भीख माँगेगा! अमीर होना तो दूर भिखमंगे हो जाएँगे; बुढ़ापे में पेट भर रोटी भी मिलेगी यह भी संदिग्ध हुई जा रही है बात।

माँ सोचती है बेटा बड़ा होगा, एक साम्राज्य कल्पनाओं का उसने बना रखा है जो वह पूरी कर देगा--जो उसका पति न कर पाया पूरी वह बेटा कर देगा। लेकिन बेटे को कोई और औरत मिल जाएगी, वह उसकी आकांक्षाएँ पूरी करेगा कि माँ की करेगा?

कौन किसकी आकांक्षाएँ पूरी कर सकता है? अपनी ही पूरी नहीं होतीं, दूसरे के पूरे होने का तो कोई उपाय नहीं।

इसलिए, जहाँ तुम्हारे प्रेम में महत्त्वाकांक्षा का संबंध आया, वहीं तुम जान लेना कि अड़चन शुरू हो गयी। अड़चन बाद में नहीं आती, पहले ही उसका बीज मौजूद होता है।

तुम थोड़ी देर सोचो, कि बाप बेटे को प्रेम करता हो, सिर्फ प्रेम करता हो--कि आनंदित हूँ, तू जो भी होना चाहे हो; तू अगर सितार बजाएगा तो मेरी खुशी है; तू धन कमाएगा तो मेरी खुशी है; तू भिखमंगा हो जाएगा लेकिन प्रफुल्लित रहेगा अपने भिखमंगेपन में तो मेरी खुशी है; मैं खुश हूँ, तू जो होना चाहे उसमें मेरा सहयोग है। तब बाप और बेटे के बीच एक संबंध होगा, जो प्रेम का है।

जहाँ भी प्रेम से ज्यादा कुछ तुमने माँगा, वहीं प्रेम तिरोहित हो जाता है। प्रेम बहुत नाजुक है। और जिस व्यक्ति के जीवन में प्रेम का अनुभव हो जाए, वह इतना तृप्तिदायी है अनुभव कि फिर तुम कुछ और न माँगोगे। वह अनुभव ही नहीं हो पाता, इसलिए तुम दूसरी चीजें माँग रहे हो।

एक बार प्रेम का अनुभव हो जाए तो तुम्हारे जीवन में स्वाद आ गया; अब तुम प्रार्थना की तरफ बढ़ोगे। प्रार्थना इस अस्तित्व के साथ आकांक्षारहित संबंध है। लेकिन तुम तो प्रार्थना करते हो उसमें भी आकांक्षा होती है, उसमें भी तुम माँगते हो--तुम कहते हो परमात्मा, ऐसा कर। अगर ऐसा करेगा तो प्रसाद चढ़ा देंगे, अगर ऐसा करेगा तो तीर्थयात्रा कर आएँगे। छोटे-छोटे बच्चों को भी तुम यही समझाते हो, कि अगर तुमने न मानी बात तो परमात्मा नाराज हो जाएगा, मानो तो प्रसन्न हो जाएगा।

मैंने सुना है कि एक माँ अपने बेटे को डाँट रही थी--छोटा सा बेटा, पाँच-छः साल की उमर का होगा--क्योंकि उसने चॉकलेट ज्यादा खा ली है, और ज्यादा चॉकलेट डॉक्टर ने मना किया है, और रोग का घर है, और वह डाँट रही थी। वह कह रही थी, परमात्मा बहुत नाराज होगा, तुम सजा पाओगे। वह लड़का, डरा-धमका कर माँ ने उसको भेज दिया अपने बिस्तर पर। जैसे ही वह बिस्तर पर पहुँचा--बरसात के दिन थे--जोर से बिजली कड़की और बादल गरजे। तो

वह लड़का उठा। माँ पहुँची देखने कि लड़का कहीं डर तो नहीं गया है, इतने जोर से बिजली चमकी है--घर कँप गया है, बादल गरजे। उसने झाँक कर देखा तो वह लड़का खिड़की पर खड़ा है, और परमात्मा से कह रहा है--'थोड़ी सी चॉकलेट के लिए इत्ता तो मत करो! इसमें ऐसा क्या पाप हो गया, बिलकुल दुनिया ही मिटाने को तैयार हो!'

छोटे से छोटे बच्चे के मन में हम जहर भर रहे हैं--दंड का, पुरस्कार का। नर्क और स्वर्ग तुम्हारे क्या हैं? तुम्हारे दंड और पुरस्कार हैं। अच्छा करोगे तो स्वर्ग, बुरा करोगे तो नर्क। तो जिसको स्वर्ग पाना हो, वह अच्छा करे--वही तुम्हारे साधु-संन्यासी कर रहे हैं। जिसको बुरा न पाना हो, दुःख न पाना हो, नर्क से बचना हो, वह अच्छा करे--वही तुम्हारे साधु-संन्यासी कर रहे हैं। तुम्हारे साधु-संन्यासी बड़े बचकाने हैं।

ऐसा मैं उनके बहुत निरीक्षण से कहता हूँ।

उनकी बुद्धि इसी छोटे बच्चे जैसी बुद्धि है। वह बेचारे उपवास कर रहे हैं, वह कर रहे हैं, सामायिक कर रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं, पूजा-पत्री में लगे हैं--लेकिन भीतर बच्चे की आकांक्षा है, कि ऐसा करेंगे तो भगवान प्रसन्न हो जाएगा--स्वर्ग, मोक्ष! नहीं किया--नर्क में जलाए जाएँगे; कड़ाहे, उबलता हुआ तेल, उसमें फेंके जाएँगे; मरेंगे भी नहीं, जी भी नहीं सकेंगे--बड़ा कष्ट होगा! ऐसे कष्टों से बचने के लिए वे यहीं अपने को कष्ट दे रहे हैं, ताकि भगवान देख ले कि हम खुद ही अपने को काफी कष्ट दे रहे हैं, तुम हमें मत भेजो। देखो हमारी तरफ--हम उपवास किये हैं, भूखे मर रहे हैं, सो नहीं रहे हैं, काँटों पर लेटे हुए हैं, धूप में खड़े हैं, पानी में खड़े हैं--देखो, हम अपने को खुद ही कष्ट दे रहे हैं, हम अपने अपराधों के लिए खुद ही प्रायश्चित किये ले रहे हैं, अब तुम्हें नर्क और भेजने की हमें कोई जरूरत नहीं है, यह आकांक्षा है। इसका धर्म से कोई भी संबंध नहीं।

धर्म आकांक्षारहित संबंध है।

न स्वर्ग का कोई लोभ है, न नर्क का कोई भय है मन में। स्वर्ग और नर्क पागलों की बकवास है। प्रार्थना न माँगती है, न माँगना जानती है। प्रार्थना तो केवल अहोभाव है! प्रार्थना तो यह कहती है कि जितना तूने दिया है वह जरूरत से ज्यादा है, उसे मैं भोग पाऊँ यही संभव नहीं दिखायी पड़ता। जितना तूने बरसाया है, वह इतना ज्यादा है कि मेरे पात्र में भर पाऊँ--कितना भरूँगा--मेरा पात्र बहुत छोटा है! सागर भर जाएँगे, झीलें भर जाएँगी सारी पृथ्वी की, इतना तूने अमृत बरसाया है। धन्यवाद है प्रार्थना! लेकिन धन्यवाद तभी उठता है जब तुम

देखो यथार्थ को।

अगर तुम कामवासना को देखते रहो, जो होना चाहिए उसपर नजर लगी रहे—जो है उस पर नहीं—तो तुम माँगते ही चले जाओगे।

तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारे प्रेम के संबंध सब जहरीले हैं—माँ का हो, पिता का हो, भाई का हो, बहन का हो, पति-पत्नी का हो, मित्र का हो, राष्ट्र का हो—सब जहरीले हैं।

इसलिए तुम्हारे सभी प्रेम कलह पर ले जाते हैं।

राष्ट्र-प्रेम युद्धों में ले जाता है। भाई-भाई का प्रेम अदालतों में ले जाता है। तुम्हें पता है, जब दो भाई लड़ते हैं ऐसा कोई भी नहीं लड़ता। दो दुश्मन भी इस बुरी तरह नहीं लड़ते—जैसा दो भाई लड़ते हैं। पति-पत्नी जिस तरह की सतत कलह में होते हैं, इस तरह की कलह में कोई भी नहीं होता—दुश्मन से भी इतनी झंझट नहीं चलती। झंझट के लिए भी चौबीस घंटे साथ कोई तो और है ही नहीं, सिवाय पत्नी के।

तुम्हारा प्रेम कैसा प्रेम है कि पृथ्वी नर्क बन गयी है तुम्हारे प्रेम के कारण! तुम मंदिर को प्रेम करते हो मस्जिद जलती है, और कुछ नहीं होता। तुम मस्जिद को प्रेम करते हो मंदिर तोड़ा जाता है, और कुछ नहीं होता। तुम भारत को प्रेम करते हो पाकिस्तान को काटोगे, तुम पाकिस्तान को प्रेम करते हो तुम भारत की हत्या करोगे। तुम्हारे प्रेम से कुछ और होता दिखायी नहीं देता!

तुम्हारा प्रेम जीवन को सजाने के काम तो नहीं आता, मिटाने के काम आता है। इसे तुम ठीक से समझ लो।

तुम जिसको कहते हो परिवार का प्रेम, अगर तुम गौर से देखोगे तो दूसरे परिवारों की घृणा है वह—परिवार का प्रेम नहीं है, तुम गलत शब्द का उपयोग कर रहे हो। तुम कहते हो परिवार का प्रेम, वह तुम्हारे दूसरे जो पड़ोसी हैं उनकी घृणा है, बस। उनकी घृणा के कारण तुम सहमत हो गये हो, इसलिए कभी तुमने गौर किया....।

मेरे घर के सामने, मेरे गाँव में एक परिवार रहता था, जिनमें अक्सर झगड़ा हो जाता। बचपन से मैं उनको देखता आ रहा हूँ, और एक अनूठी बात मैंने उनमें अनुभव की, फिर मैंने सभी परिवारों में पायी। सूत्र मुझे वहीं मिला।

उनमें अक्सर झगड़ा हो जाता, बड़े लठैत किस्म के लोग हैं। बाप बेटे को मारने लगता, बेटा बाप को मारने लगता। काफी बड़ा परिवार है। काका, भाई, भतीजे सब इकट्ठे हो जाते, सड़क घिर जाती—छोटी सड़क, रास्ता बंद हो जाता, ताँगे

न निकल सकते—भारी मच जाता उपद्रव! लेकिन कभी भी अगर कोई दूसरा आदमी भीड़ में से बीच में आ जाए, और कह दे कि बंद करो, ये क्या झगड़ा है? तो वे सब उस पर टूट पड़ते। उनका झगड़ा खत्म हो जाता, वे सब मिलकर उसकी पिटाई कर देते, कि तुम हमारे बीच में बोले क्यों? यह तो हमारे भाई-भाई का झगड़ा है। ये बाप-बेटे का झगड़ा है।

तब मैंने गौर से देखा कि सारे परिवार आपस में इकट्ठे हैं वह प्रेम के कारण नहीं, वह दूसरे परिवारों की घृणा के कारण।

तुम इकट्ठे हो, क्योंकि तुम्हारे सबके सामान्य दुश्मन हैं। उनसे बचना है तो तुम्हें इकट्ठा होना पड़ेगा। इसे तुम गौर से अगर अध्ययन करोगे तो राष्ट्रों में भी दिखायी पड़ेगा। हिंदुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा हो जाए, पूरा हिंदुस्तान इकट्ठा हो जाता है। फिर गुजराती मराठी से नहीं लड़ता, फिर हिंदी गैरहिंदी से नहीं लड़ता; फिर झगड़ा एकदम बंद हो जाता है। क्योंकि अब झगड़ा पड़ोसी से हो रहा है। अब हम सब इकट्ठे हैं। तो जब भी पाकिस्तान से झगड़ा हो, हिंदुस्तान इकट्ठा! तब तमिलनाड में पंजाब में कोई झंझट नहीं; मैसूर में गुजरात में कोई झंझट नहीं; महाराष्ट्र गुजरात में कोई झंझट नहीं—सब झगड़े बंद। हिंदुस्तानी तब सब इकट्ठे—भाई-भाई! जैसे ही पाकिस्तान का झगड़ा समाप्त हुआ, तुम्हारे भीतर के झगड़े शुरू हो जाते हैं। तब छोटी-छोटी बातों पर तुम लड़ोगे—नर्मदा का जल, कि कोई जिला, कि रेखा कहाँ खींची जाए। तब तुम भूल जाते हो, तब गुजराती गुजराती है, मराठी मराठी; तब दोनों दुश्मन हैं।

तुम्हारा प्रेम भी तुम्हारी घृणा का आवरण है। तुम अपनी घृणा को प्रेम कहते हो। तुम्हें अच्छे शब्दों का उपयोग करने की लत पड़ गयी है और उनमें तुम बुरी बातों को छिपा लेते हो।

कोई मर जाता है, तो तुम कहते हो स्वर्गवासी हो गये। तुम्हें अच्छे शब्दों की आदत पड़ गयी है। यह जरा कहना अच्छा नहीं लगता कि मर गये। स्वर्गवासी हो गये। जैसे सभी स्वर्गवासी होते हों! तुम्हारे राजनेता मरते हैं, वे भी स्वर्गवासी हो जाते हैं! सब मरते चले जाते हैं, स्वर्ग में पहुँचते जाते हैं, फिर नर्क में कौन जा रहा है? जो भी मरता है वह स्वर्गवासी हो जाता है! मरते ही तुम उस आदमी की बुराई करना बंद कर देते हो, मरते ही वह एकदम दिव्य-पुरुष हो जाता है, और उसकी पूर्ति अब कभी भी न हो सकेगी, और श्रद्धांजलि चढ़ाने पहुँच जाते हो!

तुम मृत्यु को छिपा रहे हो अच्छे शब्दों से, तुम मृत्यु के साथ साक्षात्कार नहीं करना चाहते, तुम सीधा नहीं कहना चाहते कि यह आदमी मर गया। क्योंकि यह

कहने से तुम्हें भी डर पैदा होगा—'मैं भी मरूँगा।' तुम कहते हो, यह स्वर्गवासी हो गये। इससे तुम्हें बड़ी तृप्ति मिलती है कि हम भी आज नहीं कल, अगर होंगे कभी, तो स्वर्गवासी ही होंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक आदमी रास्ते पर मिला और उसने कहा : 'अरे नसरुद्दीन, तुम जिंदा ?' नसरुद्दीन ने कहा, 'क्यों, किसने कहा कि मैं मर गया ?' उसने कहा : 'किसी ने कहा नहीं, कल से गाँव में तुम्हारी प्रशंसा की बातें सुन रहा था, तो मैंने सोचा मर गये होओगे। क्योंकि जिंदा आदमी की तो कोई प्रशंसा करता ही नहीं। जहाँ गया वहीं तुम्हारी प्रशंसा सुनी, तो मैंने समझा कि स्वर्गीय हो गये।'

यह तुम जानते हो, भलीभाँति जानते हो !

एक आदमी मरा एक गाँव में। उस गाँव का रिवाज था कि जब भी कोई मर जाए, तो इसके पहले कि दफन किया जाए गाँव का कोई आदमी उठकर उसकी प्रशंसा में कुछ कहे। पर वह आदमी इतना बुरा था कि उसने पूरे गाँव को सता रखा था। वह मर गया, गाँव के लोग इकट्ठे भी हो गये दफनाने को, लेकिन कौन उसके संबंध में खड़े होकर दो शब्द कहे ? बहुत सोचा, लोगों ने सिर पचाया, गाँव में बड़े व्याख्यान करनेवाले भी थे कि जिनसे लोग ऊब जाते थे, उन्होंने भी सिर पचाया, लेकिन कोई ऐसी बात ही न मिले कि इस आदमी के संबंध में कहो कि ये अच्छी थी—थी ही नहीं। अब बड़ी देर होने लगी, क्योंकि वह दफनाया कैसे जाए—रीति-रिवाज पूरा होना जरूरी है। यह हिस्सा है हमारे मौत को छिपाने का, कि जब कोई मर जाए, दो अच्छी बातें कहो।

आखिर एक आदमी खड़ा हुआ। लोग बड़े चौंके कि क्या अच्छी बात कहेगा ! उसने कहा, कि ये सज्जन जो चल बसे, स्वर्गवासी हो गये, इनके पाँच भाई और हैं, उनके मुकाबले ये देवतातुल्य थे। वे जो पाँच भाई अभी जिंदा हैं गाँव में, उनके मुकाबले में देवतातुल्य थे। तब उनको दफना दिया गया। किसीने अच्छी बात कह दी।

तुम मौत को ढाँक लेते हो। तुम घृणा को प्रेम से ढाँक लेते हो। तुम सब चीजों को अच्छे शब्दों से ढाँकने में कुशल हो गये हो। अब इन शब्दों को उघाड़ो और चीजों की असलियत को देखो, क्योंकि असलियत को देखते ही जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है। अगर तुम घृणा को प्रेम से मत ढाँको तो तुम ज्यादा दिन तक घृणा न कर सकोगे, क्योंकि घृणा सिर्फ दुःख देती है—दूसरे को देती है यह तो ठीक ही है, तुम्हें देती है। इसके पहले कि तुम दूसरे को दुःख दो, तुम्हें अपने को दुःख देना पड़ता है; इसके पहले कि तुम किसीके जीवन को नष्ट करने में लगो, तुम्हें स्वयं नष्ट होना पड़ता है; इसके पहले कि तुम किसीके रास्ते पर काँटे बोओ, तुम्हारे

हाथों में खुद काँटे चुभ जाते हैं।

तुमसे लोगों ने दूसरी बात कही है।

तुमसे अब तक कहा गया है कि अगर तुम दूसरों के रास्तों पर काँटे बोओगे, तो भविष्य में तुम्हें काँटों भरे रास्तों पर चलना पड़ेगा। मैं तुमसे भिन्न ही बात कहता हूँ। मैं तुमसे कहता हूँ, अगर तुम दूसरों के रास्ते पर काँटे बोओगे, तुम काँटों से पहले ही छिद चुके होओगे। बाद की बात नहीं करता, क्योंकि बाद में तो शायद बचने का उपाय भी मिल जाए, किसीको रिश्वत खिला दो—भगवान की पूजा कर लो, प्रार्थना कर लो ! मैं तुमसे कहता हूँ, अगर तुमने किसी को घृणा की, तो तुम्हें भविष्य में फल नहीं मिलेगा, घृणा तुम्हारे दुःख का ही फल है, तुमने दुःख पहले ही भोग लिया। तुमने किसीको क्रोध किया, तुमने क्रोध में ही अपने को जला लिया, और तुमने क्रोध में ही अपने हृदय में घाव बना लिए, भविष्य की कोई जरूरत नहीं है।

तो पुरानी कहावत है : 'जैसा बोओगे वैसा तुम काटोगे।'

मुझे तुम आज्ञा दो कि मैं तुमसे यह कहूँ कि : 'तुम जैसा बो रहे हो वैसा तुम काट चुके हो।'

अगर तुम जीवन के सत्यों की सचाई को ठीक से पहचानोगे तो तुम पाओगे, किसीको दुःखी करना हो तो दुःखी हो जाना जरूरी है। जहर पिलाने के पहले जहर पी लेना जरूरी है। मारनेवाला दूसरे को मारने के पहले ही आत्मघात कर लेता है, वह मर ही जाता है।

तो तुम्हारा प्रेम झूठा तो होना ही चाहिए अन्यथा पृथ्वी स्वर्ग हो गयी होती !

वृक्ष उनके फलों से पहचाने जाते हैं। सारी पृथ्वी पर सभी लोग प्रेम कर रहे हैं। कितने लोग हैं पृथ्वी पर ? कोई तीन अरब लोग हैं। अगर उन सबके प्रेमों का हम हिसाब लगायें, तो उनके संबंध तो तीन अरब से कई गुना ज्यादा होंगे। कोई किसी का बाप है, वही किसी का बेटा है, वही किसी का पति है, वही किसी का भाई है, किसी का चाचा है, किसी का मामा है, किसी का फूफा है—एक आदमी कम से कम बीस-पच्चीस संबंधों में बँधा है। तीन अरब आदमी हैं दुनिया पर, अगर पच्चीस गुना कर दो तो पचहत्तर अरब प्रेम के संबंध इस पृथ्वी पर हैं। पृथ्वी स्वर्ग बन जाए ! जहाँ पचहत्तर अरब प्रेम के पौदे हों वहाँ फूल ही फूल खिल जाएँ, सुगंध ही सुगंध हो जाए। लेकिन हालत उल्टी दिखायी पड़ती है—पूरी पृथ्वी नर्क है !

मैंने एक कहानी सुनी है—

एक आदमी मरा, उसे नर्क ले जाया गया। लेकिन शैतान ने उसकी दशा देखी तो वह ऐसी खराब हालत में दिख रहा था कि उसे लगा, अब इसे और क्या सतायेंगे? यह तो सताया ही हुआ था।

उसने पूछा—'भाई कहाँ से आते हो?'

उसने कहा, 'पृथ्वी से आते हैं।'

तो उसने कहा इसको अब स्वर्ग ले जाओ, नर्क तो यह भोग ही चुका, अब इसको नर्क में डालने से क्या फायदा? मरे को क्या मारना! इसको स्वर्ग ले जाओ—थोड़ी शांति मिले, राहत मिले इसको।

पुराने शास्त्रों में लिखा है कि पृथ्वी पर जो पाप करते हैं वे नर्क चले जाते हैं। अब नया शास्त्र बनना चाहिए जिनमें लिखा जाना चाहिए—नर्कों में जो पाप करते हैं वे पृथ्वी पर आ जाते हैं।

अब पृथ्वी बहुत दुःख से भरी है। लेकिन तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि तुमने आँखों पर बड़े रंगीन चश्मे लगा रखे हैं। घृणा को प्रेम के चश्मे से देखते हो, शत्रुता को राष्ट्र-प्रेम के चश्मे से देखते हो—निषेध को तुम विधायक शब्दों की आड़ में छिपा देते हो।

महत्त्वाकांक्षा को अलग करो, थोड़ा सा भी टुकड़ा अगर प्रेम का बच जाए जो महत्त्वाकांक्षा-शून्य हो, वही तुम्हें उबार लेगा। महत्त्वाकांक्षा तुम्हें डुबाएगी; वह कितनी ही बड़ी नाव हो, छेद भरी है। प्रेम तुम्हें बचाएगा; वह छोटी सी डोंगी हो भले, पर सुरक्षित है।

प्रेम एकमात्र सुरक्षा है। क्योंकि, प्रेम ही धीरे-धीरे परमात्मा से जोड़ देता है—वही सुरक्षा का मूल है।

तीसरा प्रश्न : आपने कल कहा, आदर में ईर्ष्या सम्मिलित है। आपके प्रति मुझ में अपार आदर है, लेकिन उसमें निहित ईर्ष्या उसमें जहर घोलती रहती है और मैं ग्लानि और पीड़ा का अनुभव करता हूँ। क्या श्रद्धा इस विषभरे आदर का अतिक्रमण करती है?

इसे थोड़ा समझना पड़े, थोड़ा नाजुक बिंदु है।

जब भी तुम किसी का आदर करते हो, तो तुम आदर इसीलिए करते हो कि उस व्यक्ति में तुम्हें कुछ दिखायी पड़ता है जो तुममें नहीं है। तुम इसीलिए आदर करते हो, उस व्यक्ति के पास कुछ दिखायी पड़ता है जो तुम भी चाहोगे कि तुम्हारे पास हो।

भिखारी सम्राट का आदर करता है, क्योंकि उसकी आकांक्षा है कि सम्राट

हो। तो एक तरफ आदर भी करता है, भीतर ईर्ष्या भी करता है। क्योंकि सम्राट अभी वह है नहीं, सम्राट होना चाहता है। तुम हो गये हो, तुमने वह पा लिया है जो वह पाना चाहता है। इसलिए तुम्हें आदर भी करता है, कि तुम कुशल हो, सफल हो, मैं पंक्ति में बहुत पीछे खड़ा हूँ, तुम आगे पहुँच गये हो, तुम उस जगह पहुँच गये हो जहाँ मुझे होना चाहिए था। इसलिए तुम शक्तिशाली हो, होशियार हो, बुद्धिमान हो, बलशाली हो, तुम्हारा आदर करता हूँ। लेकिन एक भीतर ईर्ष्या की आग भी जलती है—अगर मुझे मौका मिले तो उस जगह मैं होना चाहूँगा, तुम्हें हटाना चाहूँगा। और जब मौका मिल जाएगा इस भिखारी को तो यह सम्राट को हटाकर धक्का दे देगा, सिंहासन पर बैठ जाएगा।

तो, आदर में छिपी ईर्ष्या है। तुमने कभी सोचा न होगा, तुम तो सोचते हो आदर बड़ी ऊँची बात है। आदर ऊँची बात नहीं है, आदर ईर्ष्या का ही पहलू है; आदर के पीछे तुमने ईर्ष्या को छिपा रखा है।

इसलिए श्रद्धा और आदर बड़ी अलग बातें हैं। समझो।

आदर ऐसी श्रद्धा है जिसमें ईर्ष्या सम्मिलित है। श्रद्धा ऐसा आदर है जिसमें ईर्ष्या नहीं है। फिर श्रद्धा में क्या होगा? श्रद्धा हम उस व्यक्ति की करते हैं, जिसमें हमने अपने स्वभाव की अनुगूंज सुनी। आदर हम उस व्यक्ति का करते हैं, जिसमें हमने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति देखी।

फिर से दोहरा दूँ।

आदर हम उस व्यक्ति का करते हैं, जिसमें हमारी वासना की पूर्ति हमें दिखायी पड़ती है; हमें नहीं हो सकी, पर उसे हो गयी है। और श्रद्धा हम उसको करते हैं जिसमें हमें हमारा स्वभाव झलका—महत्त्वाकांक्षा नहीं हमारा स्वभाव; जो हमारे लिए दर्पण बन गया और जिसने हमें वह दिखाया जो हम हैं ही, जिसने हमें हमारे स्वभाव से परिचय कराया।

महत्त्वाकांक्षा तो भविष्य में पूरी होगी। आदर हम उसका करते हैं जिसमें हमने अपने भविष्य को अभी पूरा होते देखा—हमारा तो नहीं हुआ है, इसलिए पीड़ा भी है—उसका हो गया है। ईर्ष्या और आदर सम्मिलित हैं।

बुद्धपुरुष के पास तुम आओ, तुम्हारे मन में श्रद्धा का जन्म हो। श्रद्धा का अर्थ है, बुद्धपुरुष ने तुम्हें वह दिखाया जो तुम हो ही। अब इसको पाने का कोई सवाल नहीं, इसलिए ईर्ष्या का कोई सवाल नहीं। और, आदर उन चीजों का होता है जो छीनी जा सकती हैं; श्रद्धा उन चीजों की होती है जो सीखी जा सकती हैं, छीनी नहीं जा सकतीं।

मेरे पास धन हो तो तुम्हें आदर हो सकता है, पद हो तो आदर हो सकता है, क्योंकि पद तुम छीन सकते हो। जो मेरे पास है वह कल तुम्हारे पास हो सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि जब तक मेरे पास है तुम्हारे पास न हो सकेगा। इसलिए आदर में गहरी शत्रुता है। तुम भी वही पाना चाह रहे हो जो मैंने पा लिया है। मैंने पा लिया है, इसका मतलब है कि तुमसे मैंने छीना है, या तुम्हें पाने से रोका है। और अगर तुम पाओगे, तो मुझसे छीनोगे, और मुझे पाने से रोकोगे।

राजनैतिक एक-दूसरे का आदर करते हैं––बड़ा आदर करते हैं, भीतर ईर्ष्या जलती है। धनपति एक-दूसरे का आदर करते हैं, भीतर ईर्ष्या जलती है।

श्रद्धा का क्या अर्थ है ?

श्रद्धा का अर्थ है मेरे पास कुछ है जो मैंने तुमसे छीना नहीं––किसीसे नहीं छीना है––और तुम लाख उपाय करो तो मुझसे छीन न सकोगे। हाँ, तुम चाहो तो मुझसे सीख सकते हो। अगर मेरे पास धन है, तो मैंने किसीसे छीना है। मेरे पास होने का मतलब ही यह है कि कोई मेरे पास होने के कारण गरीब हो गया है––चाहे मुझे उसका पता न हो, चाहे उसे मेरी पहचान न हो। लेकिन अगर मेरे पास धन है, तो कहीं न कहीं किसी की जेब खाली हो गयी है। अगर मेरा धन छिनेगा, तो किसी न किसी की जेब भर जाएगी।

धन में संघर्ष है। धन न्यून है, थोड़ा है––बहुत महत्त्वाकांक्षी हैं उसके। जितनों में बँट जाएगा उतना कम हो जाएगा। जितने कम में बँटेगा उतना ज्यादा होगा। इसलिए जिनके पास है, वे बाँटने को तैयार नहीं होते; और जिनके पास नहीं है, वे बाँटने के लिए शोरगुल मचाते हैं। जिनके पास है वे बाँटने को तैयार नहीं होते, इसलिए अमरीका में समाजवाद का कोई प्रभाव नहीं होता। होना चाहिए सर्वाधिक वहीं। क्योंकि मार्क्स ने कहा है कि जो सबसे ज्यादा पूँजीपति देश होगा, वहीं क्रांति होगी। होता उल्टा है। पूँजीपति देश में क्रांति नहीं होती, गरीब देश में क्रांति होती है। मार्क्स को बिलकुल गलत कर दिया क्रांति ने। मार्क्स गलत है, क्रांति का गणित ही वह नहीं समझा। अगर अमरीका में क्रांति हो तो मार्क्स सही हो सकता है, लेकिन अमरीका में क्रांति नहीं हो सकती क्योंकि सभी के पास कुछ हैं, बँटने में डर है––अपना भी बँटेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन, मैंने एक दिन सुना कि कम्यूनिस्ट हो गया, तो मैं थोड़ा चकित हुआ कि इस बूढ़े को क्या सूझी ! तो मैं गया उसके पास। मैंने कहा, 'तुम्हें मालूम है कि कम्यूनिजम का क्या मतलब होता है ? अगर तुम्हारे पास दो कारें हैं, तो एक तुम्हें उसको देनी पड़ेगी जिसके पास एक भी नहीं।' उसने कहा कि 'बिलकुल सही।' 'अगर तुम्हारे पास दो मकान हैं, तो एक तुम्हें उसे देना पड़ेगा जिसके पास एक भी नहीं।' उसने कहा कि 'बिलकुल सही।' मैंने कहा कि 'तुम्हारे पास अगर दो करोड़ रुपये हैं––उनको बाँटना पड़ेगा।' उसने कहा 'बिलकुल राजी, यही कम्यूनिजम का .....।' और मैंने कहा, 'अगर तुम्हारे पास दो मुर्गियाँ हैं, तो एक उसको देना पड़ेगी जिसके पास एक भी नहीं है।' उसने कहा कि 'बिलकुल नहीं। यह कभी नहीं हो सकता।'

मैंने कहा, 'तुम बदल गये।' उसने कहा कि 'बदला नहीं हूँ, लेकिन मुर्गियाँ मेरे पास हैं। कार तो मेरे पास है नहीं––कार का जहाँ तक सवाल हो, मकानों का सवाल हो, बाँटो। जो है ही नहीं उससे डर क्या? मुर्गी मेरे पास दो हैं, ये मैं कभी न बँटने दूँगा।'

तुम्हारे पास जब होता है तब तुम बाँटने को तैयार नहीं होते। जब तुम्हारे पास नहीं होता, तुम बाँटने को बड़े आतुर होते हो। तुम कहते हो, साम्यवाद तो वेदों में लिखा है। यह तो धर्मों का सार है। लेकिन जब तुम्हारे पास होता है तब तुम साम्यवाद की बात नहीं करते। तब तुम कहते हो, व्यक्तिगत-स्वतंत्रता। ये तो वेदों का सार है। प्रत्येक व्यक्ति को कमाने की, गँवाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। संपत्ति का वैयक्तिक अधिकार तो प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध-अधिकार है। तब तुम्हारा धर्म और भाषा बदल जाती है।

अमरीका में क्रांति नहीं होती, क्योंकि सभी के पास कुछ है। चीन में क्रांति हुई, किसी के पास कुछ नहीं है। रूस में क्रांति हुई। कभी न कभी भारत में हो सकती है, क्योंकि बड़ा दीन का वर्ग इकट्ठा होता जा रहा है जिसको यह बात जँचेगी, कि बाँटो। क्योंकि अपने पास तो कुछ बँटने को है नहीं। जब भी जाएगा दूसरे का जाएगा। हमें अगर कुछ मिलेगा तो ठीक, न मिला तो कोई हर्जा नहीं, हम जैसे थे वैसे रहेंगे। मिलने की संभावना है। मरता क्या न करता!

ध्यान रखना, आदर तुम उसी का करते हो जिससे तुम्हारी कोई ईर्ष्या भी है। और ईर्ष्या का अर्थ ही यह है कि तुम्हारे कारण कुछ ऐसे हैं जो बँट सकते थे। लेकिन अगर मेरे ध्यान के कारण तुम मेरा आदर करते हो तो वह श्रद्धा होगी, क्योंकि ध्यान को तो तुम बाँट नहीं सकते। ध्यान मैं तुम्हें देना चाहूँ तो दे नहीं सकता, तुम चुराना चाहो तो चुरा नहीं सकते, तुम लूटना चाहो लूट नहीं सकते। तुम मुझे मार डाल सकते हो, लेकिन मेरे ध्यान को छू भी नहीं सकते। तुम मुझे कारागृह में डाल दे सकते हो, लेकिन मेरे ध्यान पर तुम जंजीरें नहीं डाल सकते। मेरा ध्यान कारागृह में और जंजीरों में भी उतना ही मुक्त रहेगा जितना मुक्त खुले

आकाश में है। कोई फर्क न पड़ेगा।

अगर ध्यान के कारण तुम्हारा मेरे प्रति आदर है तो ईर्ष्या नहीं हो सकती। ईर्ष्या का कोई कारण नहीं। कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, ईर्ष्या का क्या सवाल है? बल्कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति एक प्रेम और श्रद्धा उठेगी कि मेरे निकट तुम्हारे भीतर भी तुम्हें यह संभावना झलकी, कि जो मुझे हो सका वह सबका स्वभाव है। और अगर तुमने मुझे ठीक से समझा, और तुम्हारी श्रद्धा सिर्फ थोथी न रही, गहरी बनी और साधना भी बनी, तो तुम पाओगे कि जो मेरे पास है वह तुम्हारे पास है। सिर्फ उघाड़ना है, पाना नहीं है। भविष्य से उसका कोई संबंध नहीं है। वह तुम्हारे भीतर की संपदा है--अभी, यहीं, इसी क्षण पायी जा सकती है।

श्रद्धा अस्तित्व की सूचना है, आदर संपत्ति की।

आदर जो मेरे पास है उसका, और श्रद्धा जो मैं हूँ उसकी।

मगर, इन दो शब्दों के बीच तुम बड़ी भ्रांति में होते हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं हमें आपके प्रति बहुत आदर है--शायद उनका मतलब श्रद्धा से है। कई दफा लोग आते हैं, वे कहते हैं हमारी आपके प्रति बड़ी श्रद्धा है--शायद उनका मतलब आदर से है। सौ में निन्यानबे मौके पर तुम श्रद्धा कहो कि आदर, वह आदर ही होता है। सौ में एक मौके पर श्रद्धा होती है।

अगर आदर है, तो तुम गलत संबंध बना रहे हो। उससे तुम कभी भी आनंद को उपलब्ध न हो सकोगे। अगर श्रद्धा है, तो तुमने ठीक कदम उठाया। मंदिर पास ही आ गया, तुम मंदिर में ही विराजमान हो। श्रद्धा इसी क्षण फल देती है, आदर भविष्य की वासना है। आदर से बचना। अनादर तो श्रद्धा के विपरीत है, आदर भी विपरीत है। आदर तो मन का ही जाल है, श्रद्धा हृदय का अनुभव है।

चौथा प्रश्न : प्रेम और करुणा में क्या भेद है?

तीन शब्द समझें : काम, प्रेम, करुणा।

काम प्रेम की सीढ़ी का प्रारंभ है--सीढ़ी का पहला पायदान। करुणा सीढ़ी का आखिरी पायदान है। प्रेम पूरी सीढ़ी का नाम है।

काम प्रेम का सबसे पतित रूप है—निम्नतम।

काम का अर्थ है, दूसरे से मुझे कुछ पाना है। दूसरे के बिना मैं खाली-खाली हूँ। दूसरे के बिना मेरा प्राण रिक्त है। दूसरे से मुझे अपने को भरना है।

काम शोषण है।

काम का अर्थ है, दूसरे का मुझे साधन की तरह उपयोग करना है। एक पति पत्नी का उपयोग कर रहा है, पत्नी पति का उपयोग कर रही है--वह साधन की

तरह उपयोग कर रहे हैं। इसलिए तो इतना क्रोध है। क्योंकि कोई भी मनुष्य साधन नहीं बनना चाहता। प्रत्येक मनुष्य की आत्मा साध्य है।

जर्मनी के एक बहुत बड़े नीतिविद्, इमनुअॅल कांट ने नीति की परिभाषा जो की है वह यही है : 'दूसरे मनुष्य का ऐसा उपयोग जिसमें वह साधन बन जाए, अनीति है। और दूसरे मनुष्य का ऐसा उपयोग जिसमें वह साध्य हो, नीति है।'

ये बड़ा बुनियादी आधारबिंदु है।

दूसरे का उपयोग अपने लिए कर लेना काम है। बात तो तुम प्रेम की ही करते हो कि मुझे तुझसे प्रेम है, लेकिन भीतर यह चेष्टा होती है कि तुझे मुझसे प्रेम हो। इसलिए मेरे पास लोग आते हैं, हजारों लोग आए हैं, जो मुझसे कहते हैं कि जिसको हम प्रेम करते हैं उससे हमें प्रेम नहीं मिला। मेरे पास ऐसा आदमी आया ही नहीं, जिसने यह कहा हो कि जिसको हम प्रेम करते हैं उसको हमने प्रेम नहीं किया। यह बड़े मजे की बात है। जो आता है वही कहता है, हम जिसको प्रेम करते हैं—हम तो करते ही हैं, इसमें तो वह कभी शक ही नहीं उठाता—दूसरे से नहीं मिला। और वह दूसरा भी जब मेरे पास आता है वह भी यही कहता है, कि जिसको हम प्रेम करते हैं--हमने तो दिया--लेकिन पाया नहीं। धोखा हुआ, ठगे गये, छले गये। और अक्सर तो दोनों आ जाते हैं--पति आ जाता है, पत्नी आ जाती है; बेटा आ जाता है, बाप आ जाता है; मित्र आ जाते हैं—और वे दोनों यही कहते हैं कि हमने तो किया। असली बात यह है, किया उनमें से किसीने भी नहीं। क्योंकि मैं तुमसे कहता हूँ, जब प्रेम किया जाता है तो उत्तर अपरिहार्य है—गूँजता है, लौटता है। तुम जो देते हो वह सदा लौट आता है।

इस संसार में पुरानी कहावत है : 'देर है, अंधेर नहीं है।'

मैं तुमसे कहता हूँ : 'न देर है, न अंधेर है।'

क्योंकि देर भी क्यों हो? देर होगी तो वह भी तो अंधेर हो जाएगा। देर बहुत हो सकती है। तुम आज प्रेम करो, करोड़ों-करोड़ों जन्मों के बाद उत्तर मिले; वह भी अंधेर हो जाएगा।

तो मैं कहता हूँ : 'न देर है, न अंधेर है।' तुमने प्रेम किया, करते ही पाया, करने में ही पाया। मिलना किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है, वह तुम्हारे ही प्रेम की प्रतिध्वनि है, वह गूँज है तुम्हारे ही प्रेम की। वही तुम पर लौट आता है जो तुम देते हो।

तो लोग कहते हैं प्रेम किया लेकिन मिला नहीं। असली बात यह है प्रेम किया नहीं, प्रेम करना तो केवल प्रवंचना थी, धोखा था। असली बात प्रेम चाहना था;

बिना किये, प्रेम की बातचीत करके, प्रेम पाना था। की तो बातचीत, चाहिए था दूसरे का हृदय, दूसरे का समर्पण, दूसरे का पूरा प्राण! वह नहीं मिला। दूसरा भी इसी कोशिश में लगा था कि प्रेम की बातचीत चले, कविता करें प्रेम की, लेना-देना कुछ न हो, पूरे प्राण पर कब्जा हो जाए। दोनों ही मुफ्त पाना चाहते थे, बिना दिये पाना चाहते थे। इसलिए कलह है।

इसलिए जिनको तुम प्रेमी कहते हो वे निरंतर लड़ते रहते हैं। कलह के भीतर कारण यही है, दोनों एक-दूसरे को साधन बनाने की कोशिश कर रहे हैं। और किसी की आत्मा साध्य बनने को पैदा हुई है, साधन बनने को नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपना लक्ष्य है; कोई उसके सिर पर पैर रखकर सीढ़ी बनाए तो उसे पीड़ा होती है, परतंत्रता अनुभव होती है।

तो काम निम्नतम रूप है प्रेम का—जब तुम माँगते तो पूरा हो, देते कुछ भी नहीं।

करुणा श्रेष्ठतम रूप है प्रेम का—जब तुम देते तो सब हो, माँगते बिलकुल नहीं।

वह आखिरी ऊँचाई है प्रेम की। जब तुम सब दे डालते हो और माँगते नहीं। जब तुम दूसरे को साध्य बना देते हो, खुद साधन बन जाते हो। तुम कहते हो, निछावर कर दूँ बस यही मेरा सौभाग्य है! तेरे लिए रहूँ या तेरे लिए न रहूँ, यही मेरा सौभाग्य है! हर हाल में खुश रहूँगा, माँगना कुछ भी नहीं है; धन्यवाद इसका करूँगा कि तूने मेरे समर्पण को स्वीकार कर लिया। मैंने दिया और तूने इनकार न किया, बस इसका धन्यवाद है!

और मजे की बात यह है, काम में तुम माँगते हो और मिलता नहीं, करुणा में तुम माँगते नहीं और मिलता है। यह जीवन का रहस्य है। यह जीवन का विरोधाभास है।

कामी अतृप्त मरता है, करुणावान सदा तृप्त। प्रतिपल तृप्त है। क्योंकि जीवन अनुगूंज करता है। तुम जो देते हो वह मिलता ही है। यहाँ मिलना किसी के देने-लेने पर निर्भर नहीं है, तुम जो देते हो वह मिलता ही है। कल मैं बुद्ध के वचन पढ़ रहा था। उसमें वे बार-बार अनेक वचनों के बाद कहते हैं: 'एस धम्मो सनंतनो'—यही सनातन नियम है; जो तुम देते हो वह मिलता ही है। कि वैर से तुम वैर काटोगे, न कटेगा। प्रेम से काटोगे, कटा ही है—'एस धम्मो सनंतनो'—यही सनातन धर्म है, यही चिरातन, पुरातन नियम है। इससे विपरीत कभी कुछ भी नहीं होता है।

काम है प्रेम की माँग, करुणा है प्रेम का दान।

दोनों के मध्य में प्रेम है जहाँ लेना-देना बराबर है। काम से कभी कोई तृप्त नहीं होता, करुणा से सदा तृप्त हो जाता है। प्रेम तृप्ति और अतृप्ति के बीच एक लटकाव है—मध्य में। थोड़ी तृप्ति भी होती है, थोड़ी अतृप्ति भी बनी रहती है। क्योंकि प्रेम में आधी करुणा है और आधी वासना है। प्रेम आधा-आधा है। इसलिए थोड़े सुख के क्षण भी आते हैं, थोड़े दुःख के क्षण भी आते हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि सौ में निन्यानबे प्रतिशत लोग तो प्रेम को ही उपलब्ध नहीं हो पाते, करुणा की तो बात अलग। वह तो सपना दूर का है। वह तो मृग-मरीचिका है। सौ में निन्यानबे लोग कामना में ही मर जाते हैं। और उनकी भ्रांति कहाँ है? उनकी भ्रांति यह है, कि उन्होंने मान ही लिया कि हमने प्रेम दिया। उसे फिर से सोचना। इसके पहले कि तुम पूछो प्रेम मिला या नहीं, बहुत गौर से देखना कि दिया या नहीं। क्योंकि मैं तुमसे कहता हूँ अगर तुमने दिया है, प्रेम मिलता ही है—'एस धम्मो सनंतनो।' अगर नहीं मिला, तुमने दिया नहीं होगा। वहीं खोजना, 'अपने गिरेबाँ में'—जैसा फरीद कहता है; उसमें ही खोजना। 'फरीदा जे तू अकल लतीफ'—अगर तू बुद्धिमान हो तो अपने ही गिरेबाँ में खोजना, वहीं तू पाएगा।

जो दिया है वह मिलेगा, जो नहीं दिया है वह नहीं मिलेगा। नहीं मिला हो, जानना नहीं दिया है। मिला हो, जानना दिया है।

काम निम्नतम सीढ़ी है। अधिक लोग उसी पर अटके रह जाते हैं।

पर ध्यान रखना, मैं काम की निंदा नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि है तो वह सीढ़ी प्रेम की ही। पहली है माना, लेकिन है तो प्रेम की ही। और पहली पर जो न चढ़ेगा वह अंत पर कैसे पहुँचेगा? इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूँ कि सीढ़ी से उतर जाना। मैं तुमसे यह कह रहा हूँ, सीढ़ी पर रुको मत, चलो आगे, और भी पायदान हैं बहुत। ये पहले ही पायदान पर खड़े हो गये हो! वहीं मंदिर और घर बसा लिया! बढ़ो। पहला पायदान अच्छा है, क्योंकि दूसरा उससे आता है। बुरा है, अगर दूसरा उससे न आए।

तो मेरे मन में काम की कोई निंदा नहीं है। इसलिए तो मैंने निरंतर कहा है, संभोग और समाधि जुड़े हैं। संभोग ही समाधि तक ले जाता है। लेकिन संभोग पर अटक गये, तो समाधि कभी न आएगी।

और दूसरी बात भी ध्यान में रखना, क्योंकि वह भूल भी बहुत से लोगों ने की है—भारत में वह भूल बड़ी प्राचीन हो गयी है। वह भूल यह है कि चूँकि मैं कहता हूँ काम की सीढ़ी पर मत रुको, तुम दो काम कर सकते हो। या तो काम

की सीढ़ी के ऊपर बढ़ो प्रेम की तरफ, या तुम सीढ़ी से नीचे उतर जाओ--जिसे तुम ब्रह्मचर्य कहते हो।

मैं उसे ब्रह्मचर्य नहीं कहता।

इसलिए तुम जिनको ब्रह्मचारी कहते हो वे तुमसे भी बदतर हैं। वे सीढ़ी से नीचे उतर गये हैं। उनके जीवन में करुणा तो कभी नहीं आ सकती, क्योंकि जहाँ काम ही नहीं है वहाँ करुणा कैसे आएगी? न रहा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम बाँस ही लिए बैठे रहना। बाँसुरी बनाना। लेकिन बाँस से बाँसुरी बनती है। काम से करुणा बनती है। वही साधारण बाँस जिसका कोई उपयोग नहीं सूझता था, ज्यादा से ज्यादा किसी के सिर को फोड़ सकते थे, वही बाँसुरी बन जाती है और किसी की आत्मा तक में प्रवेश हो जाता है। उससे मधुर स्वर उठने लगते हैं--अलौकिक, अपार्थिव; किसी और लोक की खबर ले आते हैं, किसी और लोक के फूल इस पृथ्वीपर खिलने लगते हैं--बाँस से।

कौन भरोसा करेगा?

अगर तुमने जाना ही न होता, देखा ही न होता, अचानक तुमने सिर्फ बाँसुरी देखी होती और कोई कहता कि बाँस से ही बनती है, तुम न मानते! अगर मैं तुमसे कहूँ, कि बुद्ध और महावीर की करुणा काम से ही बनती है, तुम नहीं मानते हो। तुम्हें अड़चन होती है, क्योंकि तुमने बाँस भी देखा है, बाँसुरी भी देखी है, दोनों के बीच के पायदानों का तुम्हें कोई पता नहीं। तुम संबंध नहीं जोड़ पाते। तुम कहते हो, कहाँ बुद्ध की करुणा, कहाँ हमारी कामना! नहीं-नहीं, कहाँ हम नर्क में पड़े, कहाँ वे आकाश में उठे! नहीं, कोई संबंध नहीं!

पर तुम सोचो थोड़ा; अगर संबंध न हो तो तुम फिर कभी बुद्ध न बन पाओगे। यात्रा कैसे होगी? जाओगे कहाँ से? कोई सेतु तो होना ही चाहिए तुम्हारे और बुद्ध के बीच। काम और राम के बीच कोई सीढ़ी तो होनी ही चाहिए। उस सीढ़ी को ही मैं प्रेम कहता हूँ। उसी सीढ़ी की सहजो बात कर रही है।

काम को शुद्ध करो।

कबीर कहते हैं--'हीरा हेराइल कीचड़ में'--वह जो हीरा है, कीचड़ में गिरकर खो गया है। इससे तुम कीचड़ से भाग मत खड़े हो जाना, नहीं तो हीरा भी छूट जाएगा पीछे कीचड़ के ही साथ। खोजना कीचड़ में, कीचड़ में कमल छिपे हैं; साफ करना हीरे को--जैसे-जैसे कीचड़ हटती जाएगी हीरा शुद्ध होता जाएगा। हीरा अशुद्ध वस्तुतः तो हुआ ही नहीं है। कीचड़ में भी गिरकर हीरा

हीरा ही है, कीचड़ नहीं हो गया है। और कीचड़ में भी जो कमल छिपे हैं, वे छिपे हों कितने ही--चाहे तुम्हें कभी दिखायी न पड़ें--फिर भी कमल कमल है, कीचड़ नहीं है। एक बार उठने का मौका मिल जाए, तो कमल खिल जाता है।

काम को छोड़कर मत भाग जाना। नहीं तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य ज्यादा से ज्यादा नपुंसकता होगा, उससे ज्यादा नहीं। या दमन होगा, जबरदस्ती होगी। उससे तुम्हारे जीवन का फूल तो क्या खिलेगा, जो खिल रही थी थोड़ी सी कली वह भी वापस कीचड़ में गिर जाएगी।

तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में मैंने करुणा का कमल खिलते नहीं देखा, करुणा के कमल के खिलने की संभावना का अंत होते देखा है।

वे नीचे गिर गये हैं, सीढ़ी से नीचे। तुम्हें ठीक लगते हैं, क्योंकि तुम कामवासना की सीढ़ी पर खड़े हो वे नहीं हैं कामवासना की सीढ़ी पर। तुम सोचते हो शायद, जो कामवासना की सीढ़ी पर नहीं है वह अनिवार्यतः करुणा की सीढ़ी पर पहुँच जाएगा। जरूरी नहीं है। उतर जाना आसान है, चढ़ना कठिन है। उतरने में क्या लगता है? छोड़ दो घर, भाग जाओ जंगल में, लँगोटी लगाकर खड़े हो जाओ। लोग हाथ-पैर जोड़ने लगेंगे, पैर पर सिर रखने लगेंगे--कि धन्यभाग, आप महानता को उपलब्ध हो गये--भीतर चाहे तुम कामवासना से ही भरे हो।

मुझे संन्यासी मिलते हैं--वृद्ध संन्यासी, सत्तर साल की उम्र हो गयी है, तो भी चित्त कामवासना से भरा है। एकांत में पूछते हैं, कैसे कामवासना से छुटकारा हो? और अब तो जान भी गयी जीवन भी गया, और अभी तक पीछा नहीं छूटा। अब कब छूटेगा, मौत करीब आ रही है? मरने को होने लगे हैं और कामवासना पीछा कर रही है।

सीढ़ी से भूलकर उतरना मत। भगोड़ों के लिए भगवान नहीं है। चढ़ना। जीवन एक यात्रा हो, पलायन नहीं। एक-एक सीढ़ी ऊपर उठना। काम को प्रेम बनाना, थोड़े से स्वर्ग की हवा बहने लगेगी--नर्क भी रहेगा। लेकिन स्वर्ग के टापू भी तुम्हारे नर्क के सागर में उभरने लगेंगे। उन्हींसे तो आशा बँधेगी कि और भी कुछ हो सकता है। जो आज छोटा टापू है, कल महाद्वीप बन सकता है। जरा-जरा पानी से और ऊपर उठना, थोड़ा और आगे जाना।

धीरे-धीरे माँगने पर ध्यान हटाना और देने पर जोर देना। बाँटना; माँगना मत। सम्राट बनना; भिखारी नहीं।

काम भिखारी है, करुणा सम्राट है।

जिस दिन तुम दे सकोगे अशेष भाव से, बेशर्त, बिना माँगने का कोई सौदा

किये, बिना धन्यवाद माँगने के लिए भी रुके—दिया और बढ़े; दिया और धन्यवाद भी दिया कि ले लिया, स्वीकार किया; अन्यथा कोई जरूरत न थी, इनकार भी हो सकता था—ऐसी जिस दिन तुम्हारी भावदशा होगी, उस दिन तुम करुणा पर पहुँच जाओगे।

ये प्रेम के ही रूप हैं: काम, प्रेम, करुणा।

और प्रेम की ही मात्रायें हैं जीवन में। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, प्रेम परमात्मा से बड़ा है, क्योंकि प्रेम में ही उठकर तुम परमात्मा तक पहुँचोगे। जिस दिन तुम्हारी करुणा ऐसी हो जाएगी कि तुम देने वाले की तरह भी न बचोगे, सिर्फ दान ही रह जाओगे, पीछे कोई रह ही न जाएगा शेष जो दे रहा है, कर्ता का कोई भाव न बचेगा—उसी दिन, उसी दिन तुम परमात्मा हो गये।

जिस दिन तुम्हें अपना भाव मिट गया कि मैं हूँ, उसी दिन परमात्मा हो गये। कोई सीमा न रही फिर। फिर तुम असीम में उतर गये, असीम तुममें उतर आया।

पर, परमात्मा की बातों में ज्यादा विचार में मत पड़ना। जीवन की सीढ़ी तो यही है—काम से प्रेम, प्रेम से करुणा, करुणा के बाद छलाँग अपने-आप लग जाती है, क्योंकि उसके आगे कोई सोपान नहीं है। ध्यान रखना सीढ़ी दो अर्थों में छूटती है, या तो पहले ही सोपान पर उतर गये और या अंतिम सोपान से छलाँग लगी। अगर पहले ही सोपान से उतर गये, तो परमात्मा तो नहीं मिलता संसार भी खो जाता है; और अगर अंतिम सोपान से उतरे, तो सब मिल जाता है। परमात्मा भी मिल जाता है और संसार खोता नहीं, क्योंकि संसार परमात्मा का ही अंग है। अब पूरा दर्शन होता है, उसमें संसार भी है। संसार की तरह नहीं है, परमात्मा के सृजन की भाँति है।

पाँचवाँ प्रश्न: आपने मौन को अस्तित्व के संवाद का माध्यम बताया। कृपया समझाएँ कि ऊपर से वाणी का मौन भीतरी मौन के लिए किस प्रकार से सहायक हो सकता है?

बाहर और भीतर में बहुत भेद मत करना। भेद है नहीं। जिसको तुम बाहर कहते हो, वह भी भीतर है बाहर आया हुआ। जिसको तुम भीतर कहते हो, वह भी बाहर है भीतर गया हुआ।

भूख तो भीतर लगती है, भोजन तो तुम बाहर का डालते हो, और कभी नहीं सोचते कि बाहर का भोजन भीतर की भूख को कैसे मिटाएगा? मिटाता है, रोज-रोज मिटाता है। फिर भी तुम्हें खयाल नहीं आता कि बाहर का भोजन भीतर की भूख को मिटाता है।

निश्चित ही कहीं कोई सीमा नहीं है बाहर और भीतर में।

कब तुम कहोगे कि बाहर का भोजन भीतर की भूख को मिटाने वाला बन गया—मुँह में रहता है तब, कंठ में जाता है तब, पेट में पचता है तब, खून बनता है तब? कब भीतर हो जाता है? फिर खून की धड़कन मस्तिष्क को चलाती है तब, विचार उठते हैं तब, विचारों की शुद्धि मौन बन जाती है तब, विचारों की परिपूर्ण शून्यता ध्यान बन जाती है तब, ध्यान का आखिरी अनुभव परमात्मा का बोध बन जाता है तब—कब?

ठीक कहा है किसी ने—'भूखे भजन न होइ गोपाला।' उसने भूख और गोपाल को जोड़ा है। थोड़ा सोचना। कहीं न कहीं भोजन भगवान बनता होगा, बनना ही चाहिए, नहीं तो भोजन और भगवान का संबंध ही नहीं जुड़ेगा। कोई जगह होगी जहाँ से भोजन भगवान हो जाता है, भगवान भोजन हो जाता है।

उपनिषद् कहते हैं—'अन्नं ब्रह्म'। अन्न ब्रह्म है।

ये दो छोरों को जोड़ा है। तुम क्यों बाहर-भीतर के भेद में पड़े हो बहुत? तुम जब बहुत ज्यादा बातचीत करते हो, तब बहुत ज्यादा मन चलता है। तुम बातचीत मत करो, तो तुमने मन का आधा आधार तोड़ दिया। ऐसा ही समझो कि तुम दो साल तक चलो मत, पैर का उपयोग मत करो, पल्थी लगाकर बैठे रहो पद्मासन में, तुम्हारे पैर चलने में असमर्थ हो जाएँगे। फिर तुम अचानक चलना भी चाहोगे तो गिर पड़ोगे। क्या हुआ? चलना तो बाहर था, चलने की शक्ति तो भीतर थी? चलते तो भीतर की शक्ति से थे, लेकिन चलते बाहर की शक्ति के सहारे थे—वे तुम्हारे दोनों पंख थे।

अगर तुम बोलो न, तो धीरे-धीरे भीतर का बोलना भी कम होने लगेगा। क्यों? क्योंकि भीतर का बोलना सिर्फ बाहर के बोलने का रिहर्सल है। वह तुम बाहर बोलने की तैयारी कर रहे हो भीतर, प्रशिक्षण है वह।

जैसे समझो कि तुम इंटरव्यू देने जाते हो एक दफ्तर में नौकरी के लिए, तो तुम दो दिन पहले से तैयारी करने लगते हो—क्या पूछेगा, क्या जवाब देंगे? कहीं ये जवाब जमेगा कि नहीं जमेगा? किस ढंग से दें, किस ढंग से न दें? तुम दफ्तर के जैसे-जैसे करीब पहुँचते हो, भीतर का ऊहापोह बढ़ता जाता है। दफ्तर पर दस्तक देते हो दरवाजे पर तब तुम्हारे भीतर हजार विचार हैं, कि किस विचार से शुरुआत करें? तुम रिहर्सल कर रहे हो, तुम हजार बार इंटरव्यू दे चुके इंटरव्यू देने के पहले—तैयारी कर ली। अगर इंटरव्यू न देना हो तब तुम तैयारी करते हो? तब कौन पागल तैयारी करता है! किसको प्रयोजन है!

तुम जो भी भीतर सोचते हो उसका कारण है, उसकी तुम्हें चौबीस घंटे जरूरत है। तुम देखो, सोच को तुम अपना तोड़ना, उसका विभाजन करना––अधिक चीजें तो ऐसी होंगी जो तुम्हें भविष्य में काम में आनेवाली हैं, इसलिए मन तैयारी कर रहा है; कुछ चीजें ऐसी होंगी जो अतीत में तुमसे अधूरी हुई हैं।

समझो कि तुम दफ्तर में इंटरव्यू देकर लौट आए। पूछी गयी आकाश की बात, बतायी तुमने जमीन की। अब तुम पछता रहे हो। अब तुम वह उत्तर दे रहे हो जो देना चाहिए था, और दे नहीं पाए।

पीछे तो सभी बुद्धिमान हो जाते हैं। चूक गये!

मैंने सुना है, एक मेडिकल कालेज में परीक्षा चल रही थी। परीक्षक ने पूछा एक विद्यार्थी को, कि इस-इस तरह का मरीज है, ये-ये दवा देनी है, कितनी मात्रा में दोगे? उसने कुछ मात्रा बतायी। परीक्षक ने कहा––'ठीक है, तुम जाओ।' जैसे ही वह दरवाजे तक आया उसे खयाल आया, यह मात्रा तो थोड़ी ज्यादा हो गयी। लौटकर उसने कहा, 'क्षमा करिये, मात्रा थोड़ी ज्यादा हो गयी।' डॉक्टर ने कहा, 'मरीज मर चुका। दरवाजे के बाहर! ये कोई मरीज को देकर थोड़े तुम जाकर पीछे कहोगे––क्षमा करिये, मात्रा ज्यादा हो गयी। वह तो जहर है, वह तो मरीज को ले गया। अगली साल आना अब, मात्रा ठीक से सोचकर!'

तो बहुत सी तो बातें हैं जो तुमने पीछे कीं, और ठीक नहीं कर पाए। मुश्किल से ही कोई आदमी सब बातें ठीक कर पाता है। सिर्फ वे ही लोग ठीक बातें कर पाते हैं जो निर्विचार से बोलते हैं। वे पीछे लौटकर नहीं देखते। बात खत्म हो गयी, अब क्या लेना-देना है? लेकिन तुम निर्विचार से तो बोलते नहीं, तो पहले तुम तैयारी करते हो विचार में, फिर उत्तर देते हो, फिर उत्तरों में भूल-चूक हो जाती है, क्योंकि उत्तर तुम्हारे प्रश्न से ठीक-ठीक मेल नहीं खाते। तुमने जिस प्रश्न को सोचकर तैयार किया था, जरूरी कहाँ है कि वही प्रश्न पूछा जाएगा?

एक पागलखाने में ऐसा हुआ। वहाँ परीक्षा करते थे वे पागलों की इसके पहले कि उन्हें छोड़ते, कि वे ठीक हो गये या नहीं। परीक्षा में ठीक उतरते तभी छोड़ जाते। परीक्षा चल रही थी, वर्ष का आखिरी दिन आ गया था। एक पागल भीतर गया––नंबर एक का पागल था। सबने उससे कहा कि 'हमको बता देना क्या पूछते हैं। हो सकता है तुम ठीक जवाब न दे पाओ।' वह पागल भीतर गया।

उससे पूछा कि 'अगर तुम्हारे दोनों कान काट दिये जाएँ, तो क्या होगा?' तो उसने कहा कि 'मुझे दिखायी नहीं पड़ेगा।' तो वह चिकित्सक भी थोड़ा हैरान हुआ, उसने कहा, 'तुम्हारा मतलब?' उसने कहा, 'मतलब साफ है, चश्मा गिर जाएगा।'

पागल के भी अपने तर्क होते हैं। बात तो बिलकुल ठीक है, चश्मा कहाँ टिकेगा? उसने कहा, 'अच्छा तुम जाओ, सोचेंगे। गलत भी नहीं कहते, सही भी नहीं कहते, सोचना पड़ेगा। याने एक हिसाब से तो तुम ठीक कह रहे हो।'

वह आदमी बाहर आया। उन पागलों ने घेर लिया, 'क्या पूछा?' उसने कहा, 'तुम फिकर न करो क्या पूछा, कुछ भी पूछे तुम तो यही कहना कि दिखायी न पड़ेगा। मैंने उसको चौंका दिया है!'

अब उसने कुछ भी पूछा, दूसरे पागल बिलकुल साफ खड़े होकर कहते रहे कि दिखायी न पड़ेगा। जब दो-चार से भी यही पूछा, और सभी, कोई भी प्रश्न पूछो उनसे वे कहें, दिखायी नहीं पड़ेगा। उसने कहा, 'मामला क्या है?' उन्होंने कहा, 'पहले पागल ने हम लोगों को बता दिया उत्तर।' तो उसने कहा, 'वह पहला भी अभी गलती ही से ठीक उत्तर दे गया है, क्योंकि जो बँधे हुए उत्तर सिखला रहा है वह पागल ही है।'

जीवन में कोई न तो बँधे प्रश्न हैं और न कोई बंधे उत्तर हैं। कभी-कभी तुम्हारा बँधा उत्तर भी कारगर हो जाएगा, संयोगवशात्। लेकिन सदा नहीं होगा।

तो तुम जो उत्तर दे आए, जो नहीं देना था, पीछे तुम बुद्धिमान बन जाते हो। सोचने लगते हो।

तो, या तो तुम अतीत के ऊहापोह में पड़े रहते हो या भविष्य के, और इन दोनों के मध्य में तुम्हारे वर्तमान का क्षण भरा हुआ गुजर जाता है––वही तुम्हारी भीतर की चर्चा है––'इनर टॉक'। चौबीस घंटे चल रही है। छोटा सा क्षण है; भविष्य बड़ा है, अतीत भी बड़ा है, उन दोनों का घमासान तुम्हारे वर्तमान के क्षण में चल रहा है।

लेकिन, अगर तुम बाहर से बोलना धीरे-धीरे कम करो, तो भीतर का बोलना भी धीरे-धीरे कम होगा। आज ही हो जाएगा, ऐसा नहीं। वर्षों लगेंगे। लेकिन जब तुमने बाहर का बोलना अगर बिलकुल ही बंद कर दिया हो, या कामचलाऊ बोलते होओ, कि दिन में दो-चार-दस शब्दों से काम चला लिया, तो भीतर किसकी तैयारी करोगे? धीरे-धीरे मन भी कहेगा अब तैयारी की कोई जरूरत नहीं, अब कोई परीक्षा ही नहीं होती। तैयारी बंद हो जाएगी। जब तुम परीक्षा ही न दोगे, तैयारी ही न करोगे, तो अतीत में कोई भूल-चूकें न होंगी। तो तुम किसका हिसाब-पश्चाताप करोगे? वह भी बंद हो जाएगा।

अगर कोई व्यक्ति तीन वर्ष तक बिलकुल मौन रख ले, तो कुछ और करना न पड़ेगा, भीतर का विचार अपने-आप टूट जाएगा। लेकिन तीन वर्ष बड़ा कठिन

होगा। करीब-करीब पागल होने के मौके आ जाएँगे, अनेक बार। क्योंकि जब विचार भीतर जोर से चलेगा--बाहर निकालने से थोड़ा निकास मिल जाता है, किसीसे बात कर लिया हल्के हो जाते हैं--भीतर ही भीतर चलेगा, तो कई दफे तो विस्फोट के क्षण आ जाएँगे, जब तुम पाओगे अब पागल हो जाएँगे; अब अगर न बोले, तो बस अब पागलपन आ जाएगा।

तीन वर्ष अगर कोई चुपचाप मौन में बिता दे, बाहर का ही मौन सही। लेकिन बाहर के मौन के भी बड़े अनुसंग हैं। शब्द से ही आदमी नहीं बोलता है। अब मैं बोल रहा हूँ तुमसे तो हाथ के इशारे भी कर रहा हूँ, तो वह भी बोलना है। आँख से भी आदमी बोलता है। रास्ते पर तुम चले जा रहे हो, आँख से भी तुम इशारा कर देते हो किसीको—'कहो कैसे हो?' मुस्करा देते हो, बोल दिये। बाहर से पूरे मौन का अर्थ है—जैसे तुम अकेले हो संसार में, कोई भी नहीं है। अगर परिपूर्ण मौन रखा जाए आँख का, भाव का, भंगिमा का, ओंठ का, इशारों का, चलने का, उठने-बैठने का--कुछ भी वक्तव्य न दिया जाए--तो तीन महीने भी काफी हैं, तीन साल की जरूरत नहीं है। तीन महीने में ही विचार की वाणी अपने-आप शांत हो जाएगी--उसका कोई प्रयोजन न रहा। और भीतर मौन अगर हो जाए, तो तुम्हारी आँखें निर्मल हो जाएँगी, शब्दों की पर्तें हट जाएँगी, तुम देख पाओगे। उसी को मैंने 'दर्शन' कहा है। तुम देखने में समर्थ हो पाओगे।

विचार तुम्हें अंधा किये है। विचार ही तुम्हारा अंधापन है। निर्विचार हो जाओ, आँख खुल जाए। विचार से जो देखा है वह संसार है, निर्विचार से जो दिखायी पड़ेगा वही परमात्मा है।

इसलिए मैं कहता हूँ न तो संसार का सवाल है, न परमात्मा का। सवाल तुम्हारी आँख का है। निर्मल, निर्विचार, निराकार आँख निराकार से जुड़ जाती है; विचार से भरी, सीमा, ऊहापोह में दबी आँख संसार के भीड़-भाड़ को देख पाती है।

तुम भीतर निर्विचार हुए, बाहर से संसार विदा। बाहर का संसार तुम्हारे विचार का प्रक्षेपण है, प्रोजेक्शन है। तुम्हारे भीतर से फिल्म बंद हो गयी, पर्दा सामने शून्य हो जाएगा। फिल्म-गृह में तुमने देखा--तुम देखते पर्दे पर हो, पर्दे पर फिल्म देखते हो, कई बार रोते हो, हँसते हो, खुश होते हो, दुःखी होते हो; लेकिन पर्दा तो खाली है--धूप-छाया का खेल है, और वह जो धूप-छाया आ रही है उसका स्रोत पीछे है--प्रोजेक्टर है। वह पीछे छिपा है दीवाल के पार। वहाँ कोई प्रोजेक्टर को बंद कर दे, सामने पर्दा शून्य हो जाता है। तुम उठकर खड़े हो जाते हो, तुम कहते हो फिल्म समाप्त हो गयी।

ऐसा तुम जिस संसार को बाहर देख रहे हो वैसा संसार है नहीं, वह तो तुम्हारा प्रक्षेपण है।

एक स्त्री तुम्हें दिखायी पड़ी। वह स्त्री अपने-आप में कैसी है वह तुम्हें नहीं पता हो सकता, तुम्हें तो अपना भी पता नहीं कि अपने-आप में कैसे हो! तुम्हारे मन और विचार के प्रोजेक्टर ने एक छवि फेंकी, वह उस स्त्री पर फैल गयी, वह स्त्री तो सफेद पर्दा थी। कल तक कई बार देखा था, कोई स्वर भीतर न छिड़ा था, कोई घंटी न बजी थी; आज अचानक वह स्त्री तुम्हें दीवाना कर गयी। आज कोई ऐसे मौके पर आ गयी स्त्री सामने जब तुम्हारे भीतर कोई विचार चल रहा था, जो छिटककर स्त्री पर बिखर गया, फैल गया। अब तुम जिस स्त्री को देख रहे हो वह असली स्त्री नहीं, वह तुम्हारे सपने की स्त्री है, वह माया है।

शादी कर लोगे। धीरे-धीरे, रोज-रोज छवि पड़ते-पड़ते पुरानी पड़ जाएगी। बार-बार उसी विचार का उपयोग करते-करते तुम उसके आदी हो जाओगे। एक दिन अचानक फिर तुम देखोगे, जैसे आँख खुल गयी, यह स्त्री तो बड़ी साधारण है! इसके लिए तुमने इतनी कविताएँ लिखीं, इतने सपने देखे! यह तो साधारण जैसी साधारण स्त्री है, कुछ भी नहीं है। पर्दा खाली हो गया, भीतर का विचार-तंतु टूट गया।

तुम जबतक धन में धन देख रहे हो, तब तक धन तुम्हें दिखायी पड़ता है। जिस दिन तुम्हें समझ आएगी, ठीकरों का ढेर रह जाएगा। हीरे में हीरा दिखायी पड़ता है, हीरे का प्रोजेक्शन कर रहे हो तुम, अन्यथा पत्थर है। जिस दिन प्रोजेक्शन हट जाएगा, उस दिन तुम पाओगे पत्थर है।

धीरे-धीरे जब विचार भीतर बंद हो जाते हैं, तब प्रोजेक्टर काम नहीं करता--प्रक्षेपण बंद हो जाता है, संसार-पर्दा कोरा हो जाता है। उस कोरे पर्दे का नाम परमात्मा है।

सहजो यही कह रही है। कह रही है कि मैं हरि को छोड़ दूंगी, गुरु को न छोड़ सकूँगी; क्योंकि हरि, तुमने तो नाटक में भरमाया, तुमने तो पर्दे पर बड़ी धूप-छाया का खेल निर्मित किया; गुरु ने जगाया। तो तुम्हें छोड़ सकती हूँ, तुमने तो इंद्रियों का प्रपंच दिया, संसार दिया; गुरु ने संसार से ऊपर उठाया। तुमने तो दुःख दिया, गुरु ने आनंद की झलक दी। तुमने तो स्वयं से दूर ले जाने के मार्ग पर छोड़ दिया, गुरु घर लौटा लाया। तो कहती है, हरि को छोड़ दूँ पर गुरु को न छोड़ सकूँगी, क्योंकि गुरु के बिना तुम्हारे होने का कोई उपाय ही न था--मैं तुम्हें जान ही न पाती। यही कह रही हूँ कि गुरु ने मौन दिया, शून्य दिया।

उस शून्य से जब तुम देखते हो तो सारा संसार हरि की ही हरियाली से भर जाता है।

आज इतना ही।

* * *

जो सोवै तो सुन्न में

प्रवचन ५, प्रातः, दिनांक ५-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

निर्द्वन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास ।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस ।।

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम ।
जो बोलै तो हरिकथा, भक्ति करै निहकाम ।।

नित ही प्रेम पगै रहैं, छकै रहैं निज रूप ।
समदृष्टि सहजो कहै, समझैं रंक न भूप ।।

साध असंगी संग तजै, आतम ही को संग ।
बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग ।।

मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार ।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त विहार ।।

एक छोटी कहानी से शुरू करें। हसीद कथा है।

एक सम्राट का इकलौता बेटा था—शराबी, जुआरी, वेश्यागामी। सम्राट परेशान था। सब तरह समझाया, कोई राह न बनी। मजबूरी में, आखिरी उपाय की तरह, शायद इस तरह चेत जाए, सम्राट ने उसे राज्य से बाहर निकाल दिया।

सोचा था क्षमा माँगेगा, पछतावा करेगा, वापस लौट आएगा। समझ आ जाएगी। ऐसा कुछ भी न हुआ। बेटा गया तो वापस न लौटा। भटकता रहा राज्य की सीमाओं के आसपास। अंततः उसने एक शराबियों के अड्डे में प्रवेश पा लिया।

सम्राट का बेटा था, नेतृत्व की क्षमता थी, जल्दी ही अड्डे का साधारण सदस्य न रहा—अगुआ हो गया। जुआ, वेश्या, शराब, अब चौबीस घंटे उसी में पड़ा रहने लगा।

वर्षों तक बूढ़े बाप ने प्रतीक्षा की। बेटा न लौटा सो न लौटा। बाप मरने के करीब आने लगा तब उसे चिंता पकड़ी, तब वह बहुत संतापग्रस्त हुआ। उसने अपने एक वजीर को भेजा, कि तू बेटे को समझाकर ले आ। जैसा भी है, न होने से बेहतर है। मेरे मरने के बाद वही मालिक है। शराबी, तो शराबी सही। शायद मेरी मौत से समझ आ जाए। शायद साम्राज्य का मालिक बने तो कुछ होश आ जाए।

वजीर गया, अपने शाही-लिबास में, स्वर्णरथ पर बैठकर—सम्राट का राजदूत था। लेकिन बेटे ने उसकी तरफ कोई ध्यान ही न दिया। उसने बड़े उपाय किये लेकिन बेटे की नजर भी अपनी तरफ मोड़ने में सफल न हो सका।

वापस लौट आया—पराजित।

सम्राट ने अपने दूसरे वजीर को कहा कि तू जा।

दूसरे वजीर ने सोचा, पहले वजीर के जाने के ढंग में भूल थी। बड़ा फासला लेकर गया था। स्वर्णरथ पर बैठकर गया, एक भिखारी को समझाने। अंतर बहुत

ज्यादा था, संवाद न हो सका।

तो वह खुद भिखारी बनकर अड्डे पर सम्मिलित हो गया--उसी जैसा हो गया। शराब भी पीता, जुआ भी खेलता। दोस्ती तो बन गयी लेकिन बात उलटी हो गयी। इतना ज्यादा डूब गया नशे में, शराब में, वेश्याओं में कि भूल ही गया कि लेने आया था। सम्मिलित ही हो गया।

राजकुमार तो लौटा नहीं, वजीर भी राजकुमार ने डुबा लिया।

महीने बीतने लगे। सम्राट ने कहा, यह तो और भी बुरा हुआ। कम से कम पहला वजीर वापस तो आ गया, बेटा आया न आया। यह दूसरा वजीर तो गया।

खबरें आनी शुरू हुईं कि वह तो सम्मिलित ही हो गया है। अब तो उसे याद भी नहीं है कि वह वजीर है, चौबीस घंटे पिये पड़ा रहता है।

बहुत बार ऐसा हो जाता है। किनारे पर खड़े होकर डूबनेवाले को बचाने का कोई उपाय नहीं है। अगर किनारे से ही खड़े रहना है, अपने वस्त्र भी बचाने हैं, पानी में भीगना भी नहीं है, जोखिम भी नहीं लेनी है, तो डूबनेवाले को बचाने का कोई उपाय नहीं। तुम कितने ही बुद्धिमान हो, किनारे पर खड़े होकर थोड़े ही बचा सकोगे। साहस चाहिए नदी में उतरने का। लेकिन तब खतरा है, क्योंकि जो डूब रहा है वह तुम्हें भी डुबा ले सकता है।

पहला वजीर किनारे खड़ा रहा, दूसरा वजीर नदी में उतरा। पहला तो वापस लौट आया अपने को बचाकर, लेकिन दूसरा डूब गया।

सम्राट ने अपने बड़े वजीर को कहा अब तुम्हारे सिवाय कोई सहारा नहीं है। वह बूढ़ा था, इसलिए अब तक उसे भेजा भी न था। अब तुम जाओ, तुम आखिरी हो। इसके बाद फिर कोई उपाय न कर सकूँगा।

वजीर गया। वह गया जैसा दूसरा वजीर गया था वैसा ही--भिखमंगे के वेश में। शराब पीने का बहाना तो उसने किया, लेकिन शराब पी नहीं। वेश्याओं के नाच में उसने रस तो दिखलाया, लेकिन रस लिया नहीं। जुआ खेला, पासे फेंके, लेकिन भीतर होश जारी रखा। अछूता रहा, जल में जैसे कमल। रहा भी, नहीं भी रहा। उतरा भी और किनारे पर भी खड़ा रहा। डूबनेवाले को बचाने भी गया, और अपना किनारा न छोड़ा।

एक दिन राजकुमार को लेकर महल आ गया।

हसीद फकीर कहते हैं, यही सद्गुरु का लक्षण है।

सद्गुरु अगर तुमसे बहुत दूर खड़ा रहे तो तुम्हें बचा न सकेगा, चाहे अपने को बचा ले। सद्गुरु अगर तुम्हारे पास आ जाए जहाँ तुम डूबते हो, तुम्हें बचाने आ

जाए, तो जोखिम है; हो सकता है तुम उसे भी डुबा लो।

तो वही सद्गुरु तुम्हें बचा सकता है जो तुम्हारे पास भी हो, और दूर भी। जो तुम्हारे निकट से निकट भी आ जाए, और तुम्हारे निकट कभी आए नहीं। जो किनारे पर भी खड़ा रहे, साथ ही साथ नदी की मध्यधार में भी उतर जाए। जिसका एक हाथ तुम्हें बचाए, और जिसका एक हाथ किनारा कभी छोड़े नहीं। जो एक अर्थों में ठीक तुम जैसा हो, और एक अर्थों में तुम जैसा बिलकुल न हो। जो मनुष्य हो, और परमात्मा हो। जो बाहर से ठीक तुम्हारा पड़ोसी हो, और भीतर से तुम जहाँ कभी होओगे वहाँ बना रहे। भीतर से कभी केंद्र न छूटे, और बाहर परिधि पर दिखलावा कर सके कि परिधि पर हूँ।

इसलिए सद्गुरु को पहचानना बहुत कठिन है।

जो किनारे पर खड़े हैं उन्हें तुम पहचान लोगे, लेकिन वे तुम्हें बचा न पाएँगे। उन्हें तुम पहचान लोगे कि वे सद्गुरु हैं, लेकिन उनकी और तुम्हारी दूरी इतनी होगी कि सेतु कैसे बनेगा? संबंध कैसे जुड़ेगा? वह होंगे पावन, वह होंगे स्वर्ण-सिंहासनों पर, उन्होंने स्वर्ग की हवा में साँस ली होगी, उन्होंने अलौकिक फूलों की गंध पी होगी, लेकिन वे तुमसे बड़े दूर हैं। ज्यादा से ज्यादा उन्होंने अपने को बचा लिया होगा।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, जिसने अपने को बचा लिया है वह तुम्हें न बचा सके, तो उसने अपने को बचा लिया है यह भी संदिग्ध है। जिसे किनारा छोड़ने में डर लगे, वह किनारे पर है यह भी संदिग्ध है। जो किनारे पर पहुँच ही गया है, उसे किनारा छोड़ने का भय नहीं पैदा होगा। फिर पा लेंगे। जो पा ही लिया है उसे छोड़ने में डर नहीं होता। जो नहीं पाया है उसे ही छोड़ने में डर होता है, कि कहीं छूटा फिर न पा सके, हाथ से गया फिर न आया!

जिसने अपने को बचा लिया है, वह तो खोने की जोखिम उठा सकता है। लेकिन, जोखिम उठाने से ही कोई तुम्हें बचा लेगा ऐसा मत सोचना। क्योंकि जोखिम तो मूढ़ भी उठा लेते हैं। कई बार ऐसा हो जाता है।

ऐसा मेरी आँख के सामने एक बार घटा--

मैं नदी के किनारे बैठा था। और, एक सज्जन और मेरे पास ही बैठे थे, मेरा कोई परिचय नहीं। एक आदमी डूबने लगा। मैं भी भागा, वे सज्जन भी भागे। वे मुझसे पहले कूद गये। उन्हें कूदा देखकर मैं रुक गया। देखा कि वे तो खुद ही डूबने लगे। वे भूल ही गये कि तैरना नहीं जानते।

कभी कोई डूबता हो तो इतनी तीव्रता से घटना घटती है और बचाने की

आकांक्षा इतने जोर से पैदा होती है कि तुम शायद भूल ही जाओ, कि तुम तैरना जानते हो ?

तब मुझे उन्होंने दोहरी मुसीबत कर दी। मुझे दो आदमियों को नदी से बाहर लाना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि महाराज, आप न कूदते तो अच्छा था ! वे बोले कि मैं भूल ही गया। भले आदमी, सज्जनचित्त, बचाने की आकांक्षा प्रगाढ़। लेकिन बचाने की आकांक्षा से ही तो कोई नहीं बचा सकता, बचाने की कला भी तो चाहिए।

आकांक्षा इतने जोर से पकड़ ले कि कला का ख्याल ही न रहे, कि हम कभी तैरना सीखे ही नहीं, तुम बचाने की जगह डुबानेवाले हो जाओगे। और जिसे तुम बचाने गये हो वही तुम्हें डुबा लेगा।

जोखिम तो मूढ़ भी उठा लेते हैं, अक्सर मूढ़ जल्दी उठा लेते हैं। समझदार तो सोचकर जोखिम उठाता है। मूढ़ तो कूद जाता है। जहाँ बुद्धिमान झिझकते हैं, वहाँ मूढ़ दौड़ते हुए प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन जोखिम से क्या होगा, जोखिम थोड़े बचाती है। जोखिम जरूरी है बचाने के लिए, लेकिन जोखिम थोड़े बचाती है।

और, जो जानता है, बचाना उसके लिए जोखिम है ही नहीं, तुम्हें मालूम पड़ती है कि जोखिम है। जो बचाना जानता है, उसे तो खयाल ही नहीं है कि जोखिम है। अगर उसने होश का किनारा पा लिया है, तो वह मझधार में भी अपने होश के किनारे को थोड़े छोड़ देता है।

तीसरा वजीर बचा लाया। जुआ खेला, बाहर-बाहर। जुआड़ी बन गया, पर अभिनय था। नाटक ही रहा; भीतर जागा रहा। शराब दिखलाता था कि पी रहा हूँ, पी नहीं। और शराबियों के अड्डे में किसको इतना होश है कि वह देखे कि तुमने पी कि नहीं पी। तो बोतल सामने रखकर अगर पानी भी पीता रहेगा, तो शराबियों को थोड़े पता चलेगा। जिनको पता चल जाए वह भी कोई शराबी हैं। वेश्याएँ नाचीं, आँखें वेश्याओं को देखती रहीं, मन कहीं और था।

ऐसे अस्पर्शित, असंग जीवन के तट पर जो खड़ा है, वही डूबतों को बचा लेता है।

सहजो को ऐसे ही एक गुरु मिल गये चरनदास। वे बड़े सीधे-साधे आदमी थे। इतने सीधे-साधे, कि साधारण आदमी पहचान भी न सके कि मुझमें और इनमें भेद क्या है। बिलकुल सामान्य थे। और ध्यान रखना, सामान्य में ही जब तुम असामान्य की झलक पा लो तभी तुम बचाए जा सकोगे; तभी तुम जानना कि कोई है जो करीब भी और दूर भी है। जो कभी-कभी इतने करीब होता है कि

तुम्हें संदेह होने लगता है, कि इसमें और हममें भेद क्या है? शायद यह भी तो नहीं डूब रहा है हमारे साथ ही।

जो तुम्हें बचाने आएगा उसे करीब तो आना ही पड़ेगा, वहीं जहाँ तुम मझधार में डूब रहे हो। डूबते को तो ऐसा ही लगेगा कि यह भी डूबने आ रहा है। लेकिन डूबनेवाला भी हाथ-पैर तड़फड़ाता है, तैरनेवाला भी हाथ-पैर तड़फड़ाता है। हाथ-पैर तड़फड़ाने में कोई फर्क नहीं होता। तैरना है क्या? सिर्फ हाथ-पैर को ढंग से तड़फड़ाना। डूबनेवाला भी तड़फड़ाता है, तैरनेवाला भी तड़फड़ाता है। डूबनेवाले को लगे कि यह तो खुद ही तड़फड़ा रहा है।

लेकिन भेद है बड़ा !

डूबनेवाला भय से तड़फड़ा रहा है, बचानेवाला प्रेम से। हाथ तो दोनों ही फेंक रहे हैं—एक मूर्छा में, एक होश में। होश बचाता है।

तो चरनदास बड़े सीधे-साधे आदमी थे। उन्होंने सहजो को बचाया। इसलिए सहजो उनके गीत गाये चली जाती है। वह कहती है हरि को भी त्यागना हो तो त्याग दूँगी, पर गुरु को न त्यागूँगी। क्योंकि हरि ने तो मझधार में फेंका और डुबाया, गुरु ने मझधार से बचाया और उबारा। तो, 'हरि को तज डारूँ पै गुरु को न बिसारूँ।'

चरनदास का तो किसी को पता भी न चलता, सहजो के गीतों से उनकी खबर लोगों तक पहुँची। उनकी दो शिष्याएँ थीं—सहजो और दया। जैसे दो आँखें हों किसी की। जैसे दो पंख हों किसी पक्षी के। इन दोनों ने चरनदास के गीत गाये, तो लोगों को कुछ खबर मिली।

जल्दी ही हम दया की भी बात करेंगे। और दोनों के स्वर इतने एक से हैं, होंगे ही, क्योंकि एक ही गुरु ने दोनों को बचाया है, एक ही गुरु की छाया दोनों पर पड़ी, और एक ही गुरु का हृदय दोनों में धड़का है। दोनों के गीत एक ही स्रोत से आते हैं। इसलिए मैंने सहजो के पदों के ऊपर जो चर्चा की श्रृंखला रखी है, उसका नाम रखा है—'बिन घन परत फुहार', ये शब्द दयाबाई के हैं। जब दयाबाई पर बोलूँगा, तो जो श्रृंखला का नाम रखा है उसमें शब्द सहजो के हैं—'जगत तरैया भोर की।' जैसे सुबह का डूबता हुआ तारा—अब गया, अब गया—ऐसा जगत है : 'जगत तरैया भोर की।'

दोनों जैसे एक ही प्राण के दो स्पंदन हैं। इसलिए दोनों के शब्द मैंने—सहजोबाई के लिये दया का शब्द उपयोग किया है, दया के लिए सहजोबाई का करूँगा।

ये जो बचने की घटना घटी है—सहजोबाई जो उबरी—मध्य से, डूबती नदी

से, तो उसने डूबना भी जाना है, बचना भी जाना है; नदी का मध्य भी जाना है और किनारा भी जाना है; डूबने की घबड़ाहट भी जानी है और बचने का आनंद भी जाना है। इसलिए तुम्हारे हृदय के भी बहुत करीब है; आधी बात तो तुम्हें समझ में आ ही जाएगी, क्योंकि डूबते तुम हो, डूबने की घबड़ाहट तुम्हारे पास है। और आधी अगर समझ में आ जाए तो आधी की तरफ भी आँखें खुलेंगी। वह आधी भी समझ में आ जाएगी कि बचने का आनंद क्या है ?

इन पदों को समझने की कोशिश करो--

> 'निर्दुन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास।
> संतोषी निर्मल दसा, तर्कै न पर की आस ॥'

तीन शब्द : निर्द्वन्द्व, निर्वैर, निर्वासना। दो हैं जगत में, तब तक तुम डूबोगे। दूसरे का बोध, कि दूसरा है, डुबाने का कारण है। जिस दिन तुम जानोगे दो नहीं हैं, एक ही है, उसी दिन उबर जाओगे। बड़ी से बड़ी भ्रांति दूसरे में दूसरा देखना है; और बड़ी से बड़ी क्रांति दूसरे में अपने को पहचान लेना है।

तुम्हारे पास जो बैठा है वह पड़ोसी नहीं है, वह तुम ही हो। रूप होगा अलग, ढंग होगा अलग, लेकिन गहरे में एक ही हृदय की धड़कन है। और गहरे में, एक ही बोध की दशा है। क्या फर्क है तुममें और किसी दूसरे मनुष्य में ? फर्क तो हजार हैं। अगर फर्क का हिसाब ही रखोगे तो वह जो समान है, वह चूक जाएगा। बड़े भेद हैं, और भेद में अभेद छिपा है। अगर भेद ही भेद देखे, तो तुम संसार को देख पाओगे परमात्मा को नहीं। अगर अभेद को देखा, संसार खो जाएगा और परमात्मा प्रगट हो जाएगा।

भेद में अभेद को देख लेना परमात्मा के मंदिर पर पहुँच जाना है।

वृक्ष खड़े हैं, चट्टानें हैं, पहाड़ हैं—और भी ज्यादा भेद मालूम होते हैं। लेकिन फिर भी एक बात समान है : चट्टान है और तुम हो--होना समान है। फूल खिलते हैं, तुम भी कभी खिलते हो; फूल मुरझाते हैं, तुम भी कभी मुरझाते हो; जलधारा नाचती-गाती सागर की तरफ जाती है, तुम भी कभी नाचते-गाते हो; कभी जलधारा बड़ी उदास होती है, कहीं जाती मालूम नहीं पड़ती, ठिठकी-ठिठकी होती है, ऐसे तुम भी कभी उदास होते हो, कहीं जाते नहीं मालूम पड़ते, जैसे जीवन मरुस्थल में खो गया है।

जीवन के भीतर जहाँ भी तुम्हें कुछ दिखायी पड़े, वहाँ अभेद को खोजने की चेष्टा करना। तब तुम धीरे-धीरे पाओगे कि भेद बहुत हैं, लेकिन भेद ऊपर-ऊपर हैं, भीतर अभेद है। भेद में आदमी डूब जाता है, अभेद में बच जाता है। अभेद

किनारा है, भेद मझधार है। तुम अपने शत्रु में भी देखोगे तो एक बात तो तुम निश्चित ही पा लोगे, कि तुम दोनों कहीं तो एक हो, शत्रुता में ही सही, विरोध में ही सही, एक संबंध में तो तुम दोनों एक-जैसे हो। और उस एक-जैसेपन का जैसे ही बोध होगा, शत्रु ऊपर-ऊपर शत्रु रह जाएगा भीतर-भीतर एक मैत्री बन जाएगी। तुम अपने शत्रु के बिना ! तुम अधूरे हो जाओगे। जब शत्रु मरेगा तो तुम्हारे भीतर भी कुछ मर जाएगा। तुम उतने ही न रहोगे जितने थे। हालाँकि तुमने हजार बार सोचा होगा कि शत्रु को मार डालें, लेकिन जब शत्रु मरेगा तब तुम पाओगे, अरे! हृदय का कोई कोना खाली हो गया! उसने घेर रखी थी कोई जगह, उसका भी कोई स्थान था तुम्हारे जीवन में।

जहाँ विरोध है, वहाँ भी सेतु को खोजना। जहाँ दो हैं, वहाँ एक को खोजना। जहाँ अनेक हैं, वहाँ भी धारा को खोजना भीतर। नदियाँ बहुत हैं, सागर एक है। रूप बहुत हैं, रूपों के भीतर छिपा हुआ अरूप एक है। जब तक तुम्हें बहुत दिखायी पड़ते रहें, समझना कि संसार में हो। जिस दिन तुम्हें अचानक बहुत गिर जाएँ और एक दिखायी पड़े, उसी क्षण तुम पाओगे कि परमात्मा में आ गये।

कभी-कभी ऐसी घटना अनायास भी घट जाती है। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

कभी शायद तुम्हें अचानक ऐसा लगा हो, राह पर चलते-चलते, कहीं एकांत मौन में शांत बैठे-बैठे, अचानक ऐसा लगा हो कि जगत एकदम स्वप्नवत् मालूम हुआ है, जैसे सब असार है; जैसे क्षण भर को कोई पर्दा खिंच गया, या आकाश से बादल हट गये और सूरज दिखायी पड़ा है। कभी कोई मर गया हो, मरघट पर बैठे-बैठे अचानक जैसे आँखों से एक धुंध हट गयी और अचानक ऐसा एक एहसास हुआ है कि सब असार है, सब व्यर्थ है, यह सब माया है, सब स्वप्नवत् है। जल्दी ही तुम वापस अपनी दुनिया में लौट आते हो, क्योंकि बड़ी घबड़ाने वाली बात है ऐसी स्थिति। जल्दी ही तुम बात करने लगते हो, चीत करने लगते हो--इसीके संबंध में बात करने लगते हो, कि ऐसा मुझे हुआ। उसी बातचीत में भावदशा खो जाती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि ऐसा तभी होता है जब कभी-कभी तुम्हारे भीतर से भाषा का जो सतत-क्रम है वह टूट जाता है। जब बच्चा पैदा होता है उसके पास कोई भाषा नहीं होती। भाषा तो आदमी धीरे-धीरे सीखता है। बच्चे तो मौन में पैदा होते हैं। उनके पास कोई भाषा नहीं होती। मौन में भेद करना असंभव है।

जब बच्चा पहली दफे आँख खोलता है, तो उसे ऐसा थोड़े दिखायी पड़ता है--जैसा तुम्हें दिखायी पड़ता है कि ये झाड़, ये पत्थर, ये मकान, ये स्त्री, ये पुरुष--

ऐसा थोड़े दिखायी पड़ता है। दिखायी ही नहीं पड़ सकता ऐसा तो, क्योंकि उसे पता ही नहीं मकान क्या है, झाड़ क्या है? उसे ऐसा थोड़े दिखायी पड़ता है--ये हरा वृक्ष, लाल फूल। न उसे लाल का पता है, न हरे का पता है। थोड़ी देर कल्पना करो कि बच्चा अभी जब आँख खोलता होगा, उसे कैसा दिखायी पड़ता है! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

बच्चे को सभी चीजें इकट्ठी मालूम पड़ती हैं। इकट्ठी मालूम पड़ती हैं ऐसा भी हम कह रहे हैं। उसे तो अनेकता का कोई पता ही नहीं है। एकता का भी कोई पता नहीं। बस दिखायी पड़ता है। सब चीजें जुड़ी हैं। न तो लाल लाल है, न हरा हरा है अभी। कोई सीमा नहीं है। सब चीजें एक दूसरे से जुड़ी है, मिली हैं।

फिर भाषा पैदा होती है। फिर भाषा भेद बनाती है। फिर कुत्ता अलग, बिल्ली अलग, मकान अलग, झाड़ अलग--भेद होने शुरू होते हैं। जितना बच्चा सीखना समझने लगता है, विचार करने लगता है, भाषा का उपयोग करने लगता है, उतने भेद निर्मित होते चले जाते हैं।

तुम उस व्यक्ति को बड़ा विचारक कहते हो जो बड़े बारीक बाल के खाल के भेद करने लगता है। लेकिन अस्तित्व तो अभेद है। भाषा ने भेद खड़े कर दिये हैं। इसलिए सभी धर्मों ने मौन का महत्त्व माना है। मौन का और क्या महत्त्व है? मौन का यही महत्त्व है कि तुम जरा भाषा को हटाकर देखो। तुम जरा भाषा की पर्तों को अलग करके झांको। मौन का इतना ही अर्थ है कि भाषा के बिना अस्तित्व को देखो। तत्क्षण भेद गिर जाएँगे, अभेद प्रकट हो जाएगा।

इसलिए मौन बड़ी गहरी कीमिया है। और जिसने मौन नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना। मौन कहो, ध्यान कहो, प्रेम कहो, बात एक ही है। प्रेम में भी मौन हो जाता है, शब्द खो जाते हैं। शब्द खो जाते हैं, तो ध्यान हो जाता है। ध्यान से भर जाओ, तो प्रेम बहने लगता है। ध्यान और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान का अर्थ है: चुप हो गये। चुप हुए तो पाया कि एक ही है, दूसरा तो है ही नहीं। और जब पाया कि एक ही है, दूसरा नहीं है, तो प्रेम प्रवाहित होने लगा। दूसरा है, इसलिए प्रेम को रोके थे। जब तुमने पाया कि मैं ही हूँ, सभी के हृदय में मैं ही धड़कता हूँ, वृक्षों में मैं ही खिला हूँ, चाँद-तारों में मैं ही चमका हूँ, फिर कैसा अप्रेम? फिर कैसी घृणा? फिर कैसा वैर-वैमनस्य?

तो सहजो कहती है--'निर्दुन्दी, निर्वैरता।' तो पहली तो बात है तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ, दो न रहे। दो नहीं रहे तो निर्वैरता अपने-आप पैदा हो जाएगी, प्रेम जग जाएगा--फिर कोई शत्रु न रहा। कोई बचा ही न शत्रु रहने को। शत्रु के

लिए कम से कम कोई और तो चाहिए, कोई दूसरा चाहिए।

'निर्दुन्दी निर्वैरता।' इसलिए निर्वैरता का जैसा बारीक सूत्र सहजो ने दिया है, वैसा शायद ही किसी ने दिया हो। वह कहती है, पहले निर्द्वन्द्व हो जाओ, दो न रहे, द्वन्द्व न रहे, दुई न रहे; फिर निर्वैरता तो अपने से बह जाती है। 'निर्दुन्दी निर्वैरता'--निर्द्वन्द्व से निकलती है निर्वैरता।

'सहजो अरु निर्वास।' और निर्वैर से निकलती है निर्वासना। ये बड़ा कीमती सूत्र है। जब दो न रहे, तो अपने-आप संघर्ष, शत्रुता गिर गयी: तुम निर्वैर हो गये। और जब दो ही न रहे तो पाने को क्या बचा? तो वासना कैसे टिकेगी? पाना तो दूसरे की प्रतिस्पर्धा में है—कहीं दूसरा ज्यादा न पा ले, कहीं मैं दूसरे से पीछे न रह जाऊँ--इसलिए तो महत्त्वाकांक्षा पैदा होती है। इसलिए दूसरे के गले भी काटने पड़ें तो हर्ज नहीं, मुझे मेरे पदों पर पहुँचना है। ऐसे दूसरों पर दया करूँगा तो कैसे पहुँच पाऊँगा? दूसरों के सिरों की सीढ़ियाँ बनानी हैं, उनका उपयोग करना है; और पागल की तरह, उन्मत्त की तरह दौड़ना है।

हिटलर की सफलता का सारा राज यही था। उससे ज्यादा बुद्धिमान लोग थे संघर्ष में, पर हार गये। किसी को कल्पना भी न थी कि हिटलर जर्मनी की छाती पर इस तरह प्रभावी हो जाएगा। बहुत बुद्धिमान लोग राजनीति में थे उसके साथ, उन सबको उसने पछाड़ दिया। और उसका कुल कारण इतना था कि उनमें से कोई भी इतना पागल न था, वह थोड़े बुद्धिमान थे। वही उनके हार का कारण बन गया।

हिटलर बिलकुल पागल था। तुम अगर पागल आदमी के साथ दौड़ोगे, समझ लेना जीत न सकोगे। पागल दौड़े हो न, बात और है। अगर दौड़ा, तो तुम्हारी हार निश्चित है। तुम कितनी ही ताकत लगाओगे, पागल जैसी ताकत थोड़े लगा पाओगे।

तुमने भी कभी खयाल किया हो, अगर तुम क्रोध में हो तो तुम एक बड़ी चट्टान को भी धकाकर गिरा देते हो। बिना क्रोध में वह चट्टान हिलती भी नहीं। क्रोध में तुम विक्षिप्त हो, पागल हो। पागलों ने जंजीरें तोड़ दी हैं, जोकि बड़े शक्तिशाली पहलवान अपने होश में नहीं तोड़ पाए—और पागलों ने तोड़ दी हैं। क्योंकि पागल के लिए कोई सीमा ही नहीं है। पागल को कोई होश ही नहीं है।

हिटलर दूसरे महायुद्ध में करीब-करीब सफल हो गया था सारी दुनिया पर मालिकियत करने में। और कारण? कारण एक बहुत अनूठा था। सैन्य-शास्त्री कहते हैं, कि हिटलर जैसी घटना मनुष्यजाति के इतिहास में कभी घटी नहीं।

इंग्लैंड, अमरीका, रूस, फ्रांस, सभी के सेनापति परेशान थे। क्यों? क्योंकि पागल आदमी से लड़ाई चल रही थी। अगर दूसरी तरफ भी कोई सैन्य-शास्त्र को समझनेवाला सेनापति हो, तो गणित साफ होता है।

जैसे, सारी दुनिया के विरोधी हिटलर के सेनापति कहेंगे कि इस जगह हमला होगा, क्योंकि यह हमारी सबसे कमजोर कड़ी है। वहाँ हिटलर हमला ही न करेगा। लोग वहाँ तैयारी करेंगे, क्योंकि कमजोर कड़ी पर हमला होता है सदा। हिटलर वहाँ हमला करेगा जहाँ वे सोचते थे हम सबसे ज्यादा ताकतवर हैं, इसलिए वहाँ रक्षा की कोई जरूरत नहीं है। हिटलर के सेनापति कहते थे कि आप ये क्या कर रहे हैं? ये तो हार का कारण हो जाएगा। हिटलर कहता, 'तुम चुप। मुझे परमात्मा से आदेश मिलता है।' उसके परमात्मा के आदेशों ने ही उसे पाँच साल तक जिताया।

फिर तो धीरे-धीरे बड़ी झंझट हो गयी। उसके दाँव-पेंच समझने ही असंभव हो गये। जैसे कोई शतरंज खेलता हो पागल आदमी के साथ, जो कोई गणित ही नहीं मानता, जो उल्टी-सीधी चालें चलता है। वह बुद्धिमान से बुद्धिमान खिलाड़ी को अड़चन में डाल देगा!

पाँच साल तक हिटलर उलझाए रहा। पाँच साल लगे विरोधी सेनापतियों को उसकी बुद्धि का ढंग समझने में, कि वह किस तरह से चलता है; तब कहीं उनकी जीत शुरू हुई। पाँच साल उनको अध्ययन करना पड़ा। सारा मनुष्यजाति का सैन्य-शास्त्र उसने व्यर्थ कर दिया। वह बिलकुल पागल था। जो कोई सोच ही नहीं सकता, वह काम करेगा। जो कोई कभी विचार भी नहीं कर सकता कि इससे कभी सफलता मिल सकती है, वह वही काम करेगा।

उसने ज्योतिषी रख छोड़े थे। ज्योतिषियों से वह युद्ध का हिसाब लगवाता था कि पूरब जाएँ, कि पश्चिम जाएँ। उसके सेनापति कहते भी कि ज्योतिष से कहीं कोई युद्ध लड़े गये हैं! हमसे पूछिए! तो उसने ज्योतिषी रख छोड़े थे।

जब इंग्लैंड को पता चला कि वह ज्योतिषियों के हिसाब से चल रहा है, तो चर्चिल जैसे आदमी को, जिसको ज्योतिष में बिलकुल विश्वास नहीं था, उसको भी एक ज्योतिषी रखना पड़ा। लेकिन करोगे क्या? क्योंकि जब उससे लड़ना है तो हमको भी एक ज्योतिषी रखना पड़ेगा! ज्योतिषी यह बताए कि उसका ज्योतिषी क्या बता रहा है। सेनापति से तो यह युद्ध हो नहीं सकता।

'निर्दुन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास।' पागल दूसरों से आगे निकल जाते हैं। मगर दूसरा चाहिए आगे होने को। अगर दूसरा न हो, फिर किससे आगे निकलना? फिर कैसी वासना, कैसी महत्त्वाकांक्षा?

तो मूल बात है निर्द्वन्द्व। फिर उससे निर्वैर निकल आता है। फिर निर्वैर से निर्वासना निकल आती है--कोई है ही नहीं जिससे संघर्ष करना है।

और, जैसे ही तुम्हें पता चलता है कि दो नहीं हैं, संघर्ष की भाषा ही व्यर्थ हो जाती है। एक ही; तभी समर्पण की भाषा सार्थक होती है--तब लड़ना किससे है, झुकना है; तब जूझना किससे है, मिटना है, तब जीतना किससे है; तब हार ही जीत है। तब ये विराट, जो मेरा ही रूप है, उसके साथ लड़ने का कोई कारण नहीं है, उसके साथ बहना है--समर्पण।

फिर नदी के साथ तुम लड़कर तैरते नहीं, तुम नदी के साथ बहते हो। नदी तुम्हें ले चलती है। रामकृष्ण कहते थे, दो ढंग हैं नदी पार करने के। एक तो नाव-पतवार ले के तुम चलो; तब नदी से लड़ना पड़ता है, हवाओं से लड़ना पड़ता है। और एक ढंग है, प्रतीक्षा करो ठीक क्षण की, जब हवा ठीक दिशा में बहती हो, नदी मौज में हो, तब तुम पाल तान दो; फिर हवाएँ और नदी खुद ही तुम्हें ले जाते हैं, वे खुद ही तुम्हारी पतवार बन जाते हैं।

वासना से भरा हुआ व्यक्ति पतवार लेकर लड़ता है। निर्वासना से भरा व्यक्ति परमात्मा की मर्जी पर छोड़ देता है। उसीकी हवाएँ ले जाएँ अब; वह अपनी पाल तान देता है, तेरी जहाँ मर्जी; तू जहाँ लगाएगा, वही हमारी मंजिल।

'निर्दुन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास'

तो ये तीन चीजें हैं: कि तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ, निर्वैर हो जाओ, निर्वासना से भर जाओ।

'संतोषी निर्मल दसा।' इन तीन से जो फलित होती है वह संतोष की निर्मल दशा है।

'संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस'--पर तो बचा ही नहीं, तो पर की आस क्या? 'संतोषी निर्मल दसा'--संतोष भी दो तरह के हैं, इसलिए सहजो ने निर्मल भी जोड़ा है। संतों को एक-एक शब्द सोचकर बोलना पड़ता है, क्योंकि तुमसे बोले जा रहे हैं शब्द। अनिर्मल संतोष भी होता है। तुम कहोगे अनिर्मल संतोष कैसा होता है? जब तुम जबरदस्ती संतोष कर लेते हो, तब वह पवित्र संतोष नहीं है। जैसे तुम हार गये। मन को समझाने के लिए कहते हो, चलो, सब ठीक है। जो भाग्य में लिखा था, हुआ। शायद परमात्मा की इसमें भी कोई अच्छी ही आकांक्षा होगी। शायद अभिशाप में वरदान छिपा हो।

ये संतोष नहीं है, सांत्वना है--कन्सोलेशन! ऐसा तुम अपने को समझा लेते

हो, क्योंकि जीवन वैसे ही तो कठिन है; अगर निरंतर असंतोष में रहो तो जलोगे, रोएँ-रोएँ में जहर हो जाएगा, पीड़ा के घाव हो जाएँगे। तो समझा लेना पड़ता है, कि शायद इसमें भी कुछ भला ही होगा। जो हुआ ठीक है, परमात्मा जो करता है ठीक है। लेकिन तुम जानते हो ठीक नहीं हुआ! अन्यथा तुम यह भी क्यों कहते कि परमात्मा जो करता है ठीक है। 'गैर-ठीक' का काँटा तो लग गया; 'ठीक' से तुम मरहम-पट्टी कर रहे हो। तुम जो कहते हो अभिशाप में भी वरदान छिपा होगा, अभिशाप तो तुम्हें दिखायी पड़ गया। अब तुम चेष्टा कर रहे हो वरदान को भी आरोपित करने की।

ध्यान रखो, अगर संतोष निर्मल है तो अभिशाप दिखायी ही नहीं पड़ता। वरदान ही वरदान है। अगर संतोष अनिर्मल है तो पहले अभिशाप दिखायी पड़ता है, और अभिशाप को झेलने के लिए तुम वरदान की आशा बाँधते हो; क्योंकि अभिशाप इतना बड़ा है, कैसे झेल पाओगे? तो कुछ सहारा चाहिए।

पुराने कर्मों का जाल है। शायद पुराने कर्मों के कारण भोगना पड़ रहा है। लेकिन भोगना पड़ रहा है। तुम जानते हो कि भोग रहे हो, अब तुम कुछ उपाय करते हो जिससे सहारे मिल जाएँ। चारों तरफ मकान गिर रहा है, तुम सहारे के लिए लकड़ियाँ लगा देते हो। मगर यह कोई स्वस्थ मकान की दशा नहीं है। यह तो अंगूर खट्टे हैं, वही बात है। तुम पहुँच नहीं पाते अंगूरों तक, तो तुम कहते हो अंगूर खट्टे हैं, अभी पके ही नहीं। ये तुम किसे धोखा दे रहे हो?

तुम्हें इस तरह के संतोषी इस देश में बहुत मिलेंगे। वे सारी दुनिया की निंदा करते हैं। वे कहते हैं, सारी दुनिया अधार्मिक है। संतोष सीखो तो हमसे सीखो। भारत बड़ा संतोषी है।

मैंने तो संतोषी आदमी मुश्किल से देखे हैं। तुम्हारा संतोष झूठा संतोष है। तुम्हारा संतोष नपुंसक-संतोष है। जब मैं कहता हूँ नपुंसक-संतोष, उसका मतलब यह है कि तुम दौड़ने में असमर्थ हो, तुम्हारी हिम्मत संघर्ष की नहीं है, इसलिए तुमने संतोष का बाना ओढ़ रखा है। दौड़ना तुम भी चाहते हो, तुम्हारी इच्छा है कोई और तुम्हारे लिए दौड़ जाए। पहुँचना तो तुम भी चाहते हो सिंहासनों पर, लेकिन तुम चाहते हो परमात्मा तुम्हें उठाकर सिंहासनों पर रख दे, तुम्हें कुछ करना भी न पड़े। क्योंकि करने में हारने का डर है। दौड़े तो डर है। कहीं पीछे रह गये तो अहंकार को चोट लगेगी।

तो दो तरह के अहंकारी हैं दुनिया में। एक, जो पागल की तरह दौड़ते हैं। दूसरे, जो संतोषी की तरह खड़े रहते हैं। पागल की तरह दौड़नेवाला अहंकारी

धक्का-मुक्की करता है। संतोषी की तरह खड़ा रहनेवाला शायद तुम्हें धोखा दे दे, लगे कि आदमी कितना संतोषी है, किनारे खड़ा है! मगर तुम उसके गहन में झाँकोगे तो पाओगे, वह इसलिए खड़ा है कि कहीं दौड़ने में हार न जाए। शायद ये उस पागल आदमी से भी ज्यादा अहंकारी है। ये प्रतियोगिता में सम्मिलित ही नहीं हो रहा है, क्योंकि प्रतियोगिता में सम्मिलित होने का मतलब साफ है: जीत सुनिश्चित नहीं है, हार भी हो सकती है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम प्रेम करना चाहते हैं लेकिन किसी की तरफ बढ़ नहीं पाते, क्योंकि डर लगता है--रिजेक्शन; कहीं दूसरा इनकार न कर दे। हम अपने प्रेम को निवेदन नहीं कर पाते। ये अहंकार है। निश्चित ही जब तुम किसीके प्रति प्रेम निवेदन करोगे, खतरा है इनकारी का भी। दूसरा स्वतंत्र है। तुम प्रेम करना चाहते हो, इससे जरूरी नहीं कि वह भी तुम्हारे प्रेम में पड़ने को राजी हो। तुमने मित्रता का हाथ बढ़ाया है, इससे वह भी हाथ बढ़ाए मित्रता का ये अनिवार्य नहीं है। उसे तुम जँचो ही न! और अक्सर ऐसा होता है। जिसे तुम प्रेम करोगे, उसे तुम न जँचोगे। इसके पीछे भी बड़ी अहंकार की बात है। क्योंकि कोई आदमी ऐसा तो मानता ही नहीं कि मैं प्रेम के योग्य हूँ, जब भी उसे कोई प्रेम करता है तो वह कहता है, जो मुझे भी प्रेम करने को राजी है वह दो कौड़ी का है। किसी को अपनी आत्मगरिमा का तो बोध नहीं है। निंदा ही सिखायी गयी है सदियों से। तो तुम इतने निंदित हो अपने भीतर, तुम जानते हो कि मैं भी कोई ऐसा हूँ कि मुझे कोई प्रेम करे; जो मुझे प्रेम करता है वह दो कौड़ी का है।

अमरीका का एक हँसोड़ अभिनेता है—ग्रैको मार्क्स। हॉलीवुड के एक प्रसिद्ध क्लब ने--जिसमें कि श्रेष्ठतम हॉलीवुड के अभिनेताओं, दिग्दर्शकों और बड़ी चोटी के लोगों को ही सदस्यता मिलती है, जिसकी सदस्यता पाने के लिए लोग पागल होते हैं, राष्ट्रपति और गवर्नर और इस तरह के लोग ही जिसकी सदस्यता पा सकते हैं--ग्रैको मार्क्स को निमंत्रण दिया कि आप, हमें खुशी होगी, हमारे क्लब के सदस्य हो जाएँ। ग्रैको मार्क्स ने उत्तर में लिखा कि जो क्लब मुझे सदस्य की तरह स्वीकार करने को राजी है, उस क्लब को मैं क्लब की तरह स्वीकार करने को राजी नहीं हो सकता। वह मुझसे नीचा है, नहीं तो वह मुझे स्वीकार करने को राजी क्यों? मैं तो उस क्लब का सदस्य होना चाहता हूँ जो मुझे स्वीकार करने को राजी न हो। अहंकार!

बर्नार्ड शॉ को नोबल-प्राइज मिली, उसने इनकार कर दिया। उसने कहा कि

ये मुझसे अब छोटी पड़ती है। ये मेरे योग्य नहीं है। ये तो अब नये, जवान सिक्खड़ हैं, उनको दो। मैं तो बूढ़ा आदमी हुआ, वह वक्त गुजर गया, बीस साल पहले तुमने दी होती तो शायद मैं स्वीकार कर लेता।

जयप्रकाश से बहुत बार कहा गया कि आप राष्ट्रपति हो जाएँ। वे कहते हैं मुझसे जरा छोटा पड़ता है पद।

अहंकार की बड़ी अद्भुत खूबियाँ हैं। लोग सोचते हैं त्यागी है ये आदमी, क्योंकि राष्ट्रपति का पद छोड़ रहा है। उस आदमी के भीतर का भाव समझो, वह कह रहा है कि मेरे योग्य नहीं। त्याग का सवाल नहीं है, मेरे योग्य ही नहीं है।

तो कई बार जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे तुमसे बड़े अहंकारी होते हैं। और कई बार जो रास्ते के किनारे खड़े हो जाते हैं और संतोष की हवा फैलाते हैं, वे तुमसे ज्यादा असंतुष्ट होते हैं।

तो बाहर की रूप-रेखा से कुछ भी नहीं होता। अंतस् रूपांतरित होना चाहिए।

सहजो कहती है—'संतोषी निर्मल दसा'। संतोष की तो बड़ी निर्मल दशा है। अगर तुम मुझे आज्ञा दो तो मैं कहना चाहूँगा, जब तुम्हें संतोष का भी पता नहीं चलता तभी संतोष की निर्मल दशा है। जब तक पता चलता है, असंतोष है। जब तक तुम्हें ऐसा लगता है कि मैं तो संतोषी, तब तक तुम जानना कि असंतुष्ट तुम हो। जब तुम्हें पता ही न चले कि तुम संतोषी हो—संतोष का भी बोध न रह जाए—तभी जानना : 'संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस।'

अब यहीं बड़ी बारीक गुत्थियाँ हैं। अहंकारी भी हो सकता है पर की आस न करे, मगर वह इसलिए पर की आस नहीं करता कि वह पर की आस कर कैसे सकता है? उसका अहंकार किसीके सामने हाथ फैलाने को राजी नहीं होता। और संतोषी भी पर की आस नहीं करता। दोनों की बातें एक सी दिखायी पड़ती हैं, लेकिन बड़े भेद हैं—स्वर्ग और नर्क के। संतोषी इसलिए पर की आस नहीं करता कि पर बचा नहीं। 'तकै न पर की आस', क्योंकि पर न बचा। 'निर्दुन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास। संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस ॥' कोई पर बचा नहीं, इसलिए पर से कोई आशा का सवाल ही न रहा। अहंकारी भी पर की आशा नहीं करता, क्योंकि वह कहता है कि मैं और कैसे पर की आशा करूँ? वो मैं नहीं कर सकता। झुकना मुझे नहीं आता। संतोषी भी नहीं झुकता, क्योंकि वह कहता है झुकूँ कहाँ? कोई और तो है ही नहीं, अपने ही पैर झुककर छू लेने में क्या मजा है, क्या अर्थ है? अहंकारी भी नहीं झुकता, क्योंकि वह कहता है झुकूँ कैसे, मैं

और झुक सकता हूँ? और निरहंकारी भी नहीं झुकता, क्योंकि वह कहता है कोई है नहीं जिसके पास झुकूँ, अपनी ही प्रतिमा के सामने पूजन करने से तो पागलपन सिद्ध होगा। अपने ही चेहरे को दर्पण में देखकर नमस्कार करने से क्या सार है?

अहंकारी नहीं झुकता, निरहंकारी भी नहीं झुकता। पर कारण उनके बड़े अलग-अलग हैं। अहंकारी गलत कारणों के कारण नहीं झुकता, निरहंकारी के लिए कारण ही न बचा झुकने का—कोई कारण नहीं है।

'संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस।' और इस सूत्र को जीवन के सभी पहलुओं पर उपयोगी पाओगे। धार्मिक व्यक्ति को पता नहीं रह जाता कि मैं धार्मिक हूँ, अधार्मिक को पता रहता है। स्वस्थ आदमी को पता नहीं रह जाता कि मैं स्वस्थ हूँ, सिर्फ बीमार को पता रहता है। बुद्धिमान को पता नहीं रह जाता कि मैं बुद्धिमान हूँ, सिर्फ अज्ञानी को पता रहता है।

जब तक तुम्हें पता रहे, तब तक तुम जानना कि दूसरा तत्त्व कहीं छिपा है, मौजूद है, कहीं भीतर काँटे की तरह गड़ रहा है; तुमने ऊपर से फूल छा लिए होंगे, बात और! घाव है। मरहम-पट्टी की गयी है। भीतर मवाद है। जब घाव बिलकुल मिट जाता है तो पता ही नहीं चलता, न घाव के होने का पता चलता है न घाव के मिटने का पता चलता है। मिट ही गया। बात ही समाप्त हो गयी।

और इसके बाद सहजो का जो सूत्र है, उपनिषद् छान डालो न पा सकोगे; वेद तलाश डालो न पा सकोगे—

'जो सोवै तो सुन्न में'—सहजो कहती है अब मेरी नींद है शून्य की, कोई स्वप्न नहीं। अब मैं सोती हूँ तो शून्य में सो जाती हूँ। 'जो जागै हरिनाम'—और जब जागती हूँ तो हरिस्मरण में जागती हूँ। सोती हूँ शून्य में, जागती हूँ पूर्ण में। बस ये दो अंग हैं—शून्य और पूर्ण।

बुद्ध ने निर्वाण को शून्य कहा है। शंकर ने निर्वाण को पूर्ण कहा है। सहजो ने दोनों को जोड़ दिया। सहजो सेतु बन गयी। बुद्ध की जिद है कि परम अस्तित्व का स्वभाव शून्य है। सहजो कहेगी, बुद्ध ने विश्राम से परमात्मा को देखा। विश्राम की आँख से देखा तो निराकार, शून्य अनुभव हुआ। शंकर ने परमात्मा को विश्राम की आँख से नहीं, निद्रा की आँख से नहीं, गहरी सो गयी स्थिति से नहीं, सुषुप्ति से नहीं, आँख खोलकर, जाग्रत, श्रम की आँख से देखा, तो पाया कि पूर्ण है।

'जो जागै हरिनाम'—सोकर जो शून्य हो जाता है, जागकर वही पूर्ण है। वह तो वही है। हमारी दो दशाएँ हैं—सोना और जागना। जो नींद से देखेगा वह उसे परमशांति की तरह पाएगा; जो जागकर देखेगा वह उसे परम आनंद की

तरह पाएगा। जो जागकर देखेगा वह उसे परम आनंद की तरह पाएगा। नींद में आनंद शांति बन जाता है; जागने में शांति आनंद बन जाती है।

तो बुद्ध चुप बैठे हैं वृक्ष के नीचे--बोधिवृक्ष के नीचे। उन्होंने परमात्मा को शून्य की तरह पाया। चैतन्य नाच रहे हैं हरिनाम में--'हरि बोल, हरि बोल...' --चैतन्य नाच रहे हैं; उन्होंने परमात्मा को जागने से देखा।

दोनों एक को ही देख रहे हैं, पर दो पहलू हैं देखने के। तुम आँख बंद करके देखोगे, परमात्मा को शून्य की तरह पाओगे; आँख खोलकर देखोगे ये विराट लीला उसकी, तुम उसे पूर्ण की तरह पाओगे।

शंकर बुद्ध के खंडन में लगे हैं। शंकर के भीतर दार्शनिक मौजूद है, मिट नहीं गया है। मिटते-मिटते भी उसकी रेखा रह गयी है। रस्सी जल जाती है तो भी गाँठ रह जाती है। शंकर का मौलिक स्वभाव दार्शनिक का है, चिंतक का है। वह परमज्ञान को उपलब्ध हुए, तब भी उनकी जो चिंतन की धारा है वह रह गयी।

बुद्ध का स्वभाव भी दार्शनिक का है। वे ज्ञान को उपलब्ध हुए। लेकिन चिंतक सदा ही विचार के किसी पहलू को पकड़ता है, क्योंकि बिना विचार के तो चिंतन का कोई उपाय नहीं है। तो बुद्ध ने पाया कि परमात्मा शून्य है। शंकर ने पाया कि पूर्ण है। सहजो दोनों को जोड़ देती है। और अच्छा ही है कि दो लड़ते पुरुषों को एक स्त्री जोड़ देती है।

सहजो का वचन बहुत अद्भुत है।

'जो सोवै तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम।' इसलिए वह कहती है बुद्ध भी ठीक, शंकर भी ठीक। हमने दोनों तरह परमात्मा को देखा है। और हमने पाया कि वो दो नहीं है, दो एक ही हैं। हमारी दो दशाएँ हैं। आँख बंद करते हैं तो भीतर शून्य है, बाहर आँख खोलते हैं तो पूर्ण विराजमान है। सब जगह वही बरस रहा है।

'जो सोवै तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम।' इसे तुम साधना भी समझ सकते हो। जागते परमात्मा का स्मरण रखो, और सोते शून्य में खो जाओ। अगर रात सोते में भी तुम परमात्मा की गुनगुनाहट लगाए रखे, तो विश्राम न मिलेगा। परमात्मा को भी विश्राम दो, तुम भी विश्राम करो।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा। वह पुजारी था बड़ा, और बड़ा पंडित था। सामने ही घर के द्वार पर एक वेश्या थी, वह भी मरी। जब मृत्यु के देवता ले जाने लगे तो उस आदमी ने कहा पंडित ने, कि यह क्या गड़बड़ हो रही है, मुझे नरक की तरफ ले जा रहे हो और ये वेश्या स्वर्ग की तरफ जा रही है? कुछ

भूल-चूक हो गयी है। तुम फिर पता-ठिकाना करके लाओ। पंडित था, अड़ियल था। वह अड़ गया। उसने कहा कि ऐसे नहीं, पहले तुम जाओ पता करके आओ। यमदूतों ने कहा कभी भूल हुई ही नहीं। उस पंडित ने कहा कि मुझे तुम नर्क ले जाते हो, जो दिन-रात, अहर्निश राम-राम जपता रहा। और ये वेश्या जिसने कभी राम का नाम भी नहीं लिया....।

यमदूतों ने कहा आपको हम परमात्मा के पास ही ले चलते हैं, आप ही विवाद कर लो।

उस आदमी ने जाकर परमात्मा से कहा कि ये क्या अंधेर है? वेश्या स्वर्ग लायी जा रही है! तो स्वर्ग में भी संसार ही चलने लगा! संसार में उसीकी प्रतिष्ठा थी, और यहाँ भी इसीकी प्रतिष्ठा है। तो हम तो न घर के रहे न घाट के। वहाँ भी हम तुम्हारा नाम जपते मरे, अब नरक में जाएँ। और जिंदगी भर तुम्हारा नाम जपा; याद है, एक क्षण को तुम्हें भूले नहीं।

परमात्मा ने कहा उसी की वजह से भेजे जा रहे हो। न तुम सोये, न मुझे सोने दिया। इस वेश्या ने मेरा नाम न लिया हो, यह ठीक है, लेकिन मुझे कोई उपद्रव भी इसने नहीं दिया। तुमने मुझे उबा डाला है! तुम मेरी खोपड़ी खाते रहे!

चौबीस घंटे किसी भी एक चीज को मत पकड़ लेना।

जीवन में दो घाट हैं, दो किनारे हैं जीवन की सरिता के। श्रम है, विश्राम है; जागना है, सोना है। इसीलिए तो पलक झपती है, बंद होती है। इसीलिए तो श्वाँस भीतर आती है, बाहर जाती है। इसीलिए तो जन्म होता है, मौत होती है। इसीलिए तो स्त्रियाँ हैं, पुरुष हैं। जीवन पर दो घाट हैं। और दोनों को जो संतुलन में सँभाल लेता है वही परमात्मा को उपलब्ध होता है।

एक को मत पकड़ लेना। एक को तुमने पकड़ा तो तुमने चुनाव कर लिया, आधे को पकड़ा आधे को तुमने छोड़ दिया। वह आधा भी परमात्मा है।

मेरे पास लोग आते हैं। एक सज्जन को मेरे पास कई वर्ष पहले लाया गया। भले आदमी हैं। बुरे आदमी बुरी झंझट में पड़ते हैं, भले आदमी भली झंझटों में पड़ जाते हैं। मगर झंझट से नहीं बचते। और कई दफे भले आदमी और भी ज्यादा झंझटों में पड़ जाते हैं। उनका भलापन भी उनके अहंकार को बड़ी गाँठ बन जाती है। वे सज्जन लाए गये। मैंने पूछा, क्या हुआ है? उनकी हालत बिलकुल खराब थी। पत्नी भी साथ आयी थी, पिता भी साथ आए थे। पूछा, हुआ क्या? क्योंकि वे तो कुछ बोलने-चालने की स्थिति में नहीं हैं।

तो उन्होंने कहा, ये शिवानंद जी की किताबें पढ़-पढ़कर पहले आठ घंटे सोते

थे, फिर पाँच घंटे सोने लगे, फिर तीन घंटे सोने लगे । इनका चित्त अब कुछ विक्षिप्त हो गया है । और हम कितना ही समझाएँ वे कहते हैं कि ये तो--निद्रा का तो त्याग करना है, और ब्रह्मज्ञानी तो सोता ही नहीं । और, किताबें रखे रहते हैं, और बस--पहले नींद छोड़ी, फिर दिनभर नींद आने लगी, तो किसी गुरु को पूछा । गुरु ने कहा, अगर नींद कम करनी है तो भोजन कम करो । भोजन अगर लोगे तो नींद तो दिन भर आएगी--तामसी हो । तो उन्होंने भोजन कम कर दिया, अब सिर्फ दूध पर रहने लगे हैं । शरीर भी सूख गया है, कमजोर भी हो गये हैं । रात भर सोते नहीं हैं । नींद से भयभीत हो गये हैं, क्योंकि जब सोते हैं तो सपने आ जाते हैं । और सपना तो पाप है । सपने का तो त्याग करना है । तो अब ये विक्षिप्त हालत उनकी हुई जा रही है । सुनते किसी की हैं नहीं क्योंकि ज्ञानी हैं, समझाने को तो उल्टा हमीं को समझा देते हैं, तर्क में जीत जाते हैं । पत्नी रोने लगी, उसने कहा ये तो सब घर-गृहस्थी बरबाद हो गयी । किसी तरह उनको शिवानंद से छुड़ाओ !

मैंने उनसे कहा महाराज, किताब कहाँ है तुम्हारी ? तो अपनी फोती में किताब रखे थे । मैंने कहा जरा शिवानंद का चित्र तो देखो ! शिवानंद से मोटा आदमी तुम हिंदुस्तान में भी न पाओगे—चार तरुलताएँ इकट्ठी, तब भी शिवानंद वजनी पड़ेंगे । तुम तामसी हो ? सूख के हड्डी हो रहे हो, चलते तुमसे बनता नहीं ! शिवानंद चलते तो दो आदमियों के कंधे पर हाथ रखते थे, क्योंकि वो हाथ अपने खुद तो चला नहीं सकते थे । दो आदमी के कंधे पर हाथ रखें तब वे चलें । उनकी किताब पढ़कर कम से कम उनका फोटो तो देख लेते ! सब किताब में फोटो छपा है ।

पर भले आदमी को भली बीमारियाँ पकड़ लेती हैं, जो कभी-कभी बुरी बीमारियों से भी खतरनाक सिद्ध होती हैं ।

जीवन को बड़ा संतुलन चाहिए । संतुलन को मैं संयम कहता हूँ । संयम का मेरा अर्थ त्याग नहीं है । संयम का मेरा अर्थ है भोग और त्याग के बीच संतुलन । संयम का मेरा अर्थ है जीवन को एक निसर्ग, सहज रूप देना । शरीर को विश्राम चाहिए, भोजन भी चाहिए, श्रम भी चाहिए । रात सोओ भी, दिन जागो भी ।

तो फिर धार्मिक आदमी क्या करे ? 'जो सोवै तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम ।' जागकर जब देखे तो हरि को देखे, सोवे तो शून्य में गिर जाए । बस इतनी साधना हो--जागते में हरि न भूले, सोने में किसी की याद न रह जाए--हरि की भी न रह जाए, क्योंकि हरि की भी याद रह जाए तो शून्य पूरा न हो पाएगा ।

और जब तुम शून्य और पूर्ण के बीच डोलने लगते हो, तब तुम्हें एक नशा

पकड़ लेता है, जो नशा होश का है, बेहोशी का नहीं । तो सहजो कहती है, 'पाँव पड़ै कित कै किती'—तो पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं । लेकिन हरि सँभाल लेता है । अब खुद सँभालने की जरूरत न रही, जिसके जीवन में संतुलन आ गया उसे हरि सँभाल लेता है । 'जो सोवै तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम ।'

'जो बोलै तो हरिकथा'—जो बोलो, इसी तरह बोलना जैसे हरिकथा बोलते हो । बोलना ही इसीलिए । अगर वह हरिकथा हो तो ही बोलना, नहीं तो बोलना ही मत । बिना बोले चल जाएगा, लेकिन बोलो तो हरिकथा बोलना ।

भारत में पुराना रिवाज है, हम तो अर्थ भूल गये, राह पर अजनबी भी मिल जाता है तो 'राम-राम' करनी । वह नमस्कार के माध्यम से परमात्मा को स्मरण करना है । तुम तो मतलब से 'राम-राम' भी करने लगे हो । गाँव में से गुजरोगे तो जिसको कोई मतलब नहीं है तुमसे, तुम्हें पहचानता भी नहीं है, वह भी कहेगा—'जयराम जी' । तुम्हें लगेगा कि क्या फिजूल की बात है ? न कोई लेना न देना, नाहक 'जयराम जी' !

लेकिन गाँव का आदमी पुराने हिसाब से चल रहा है । वह तुमसे नमस्कार कर रहा है ऐसा नहीं, तुम्हारे बहाने परमात्मा को याद कर रहा है ।

'जो बोलै सो हरिकथा'--तुम दिख गये, एक बहाना मिला । बहाने का उपयोग कर लिया, भगवान का स्मरण कर लिया । इसलिए हिंदुओं ने जैसा नमस्कार खोजा है, दुनिया में कोई नहीं खोज पाया । 'गुडमॉर्निंग'—ठीक है; कुछ बहुत ज्यादा नहीं है । कुछ ज्यादा नहीं है; ठीक है, काम चल जाता है । लेकिन 'जयराम जी' अनूठी है । सुबह की क्या बात करनी जब परमात्मा की ही बात हो सकती है, तो सुबह तो उसमें आ ही जाती है ! सुबह में परमात्मा न आता हो, लेकिन परमात्मा में सुबह तो आ ही जाती है । और सुबह सदा ही अच्छी होती है, ऐसा भी नहीं है । साँझ सदा अच्छी होती है, ऐसा भी नहीं है । परमात्मा सदा अच्छा है । साँझ-सुबह में तो फर्क पड़ते रहते हैं । आज मौसम ठीक है, कल मौसम ठीक नहीं है । परमात्मा सदा ठीक है । याद ही करना हो, तो उसकी ही याद करनी चाहिए ।

'जो बोलै सो हरिकथा, भक्ति करै निहकाम' । और, अगर भक्ति करनी हो तो निष्काम । उसमें कोई माँग न हो । प्रेम की वही कसौटी है । जहाँ माँगा, प्रेम वासना हो जाता है—नीचे गिर जाता है । जहाँ न माँगा, प्रेम वहीं भक्ति हो जाता है--ऊपर उठ जाता है । माँगा कि प्रेम के गले में पत्थर लटक जाते हैं । न माँगा कि प्रेम के पंख लग जाते हैं, आकाश में उड़ना शुरू हो जाता है । 'भक्ति करै

निहकाम।'

'नित ही प्रेम पगै रहैं, छकै रहैं निज रूप।
समदृष्टि सहजो कहै, समझैं रंक न भूप।।'

ऐसी हमारी दशा हो गयी है। एक निर्मल संतोष ने घेर लिया है--बाहर-भीतर। संतोष का भी कोई पता नहीं चलता। किसी की आस नहीं रही। कोई पराया नहीं, आस किसकी? कुछ पाने को न रहा, क्योंकि हम ही सब हैं, सब ही हम हैं। कहीं जाने को न रहा, कोई भविष्य न रहा, वर्तमान का क्षण परिपूर्ण है। सोते हैं शून्य में, जागते हैं हरिस्मरण में, बोलते हैं तो उसकी कथा। नहीं बोलते, तो उसकी भक्ति—बिना किसी माँग के चुपचाप। जब माँगना ही नहीं है तब बोलना क्या है?

तो बोलते हैं तो उसका नाम, बोलते हैं तो उसका स्मरण, बोलते हैं तो उसकी स्तुति। नहीं बोलते हैं तो उसकी भक्ति, तो उसके प्रेम में डूबे रहते हैं। 'नित ही प्रेम पगै रहैं'--अब तो चौबीस घंटे उसके प्रेम में ही पगे हैं। 'छकै रहैं निज रूप'--हृदय भर गया है, कोई कमी न रही--अपने ही से भरे हैं, क्योंकि वह अब दूसरा नहीं है। वह मेरा ही निज रूप है। 'छकै रहैं निज रूप।'

'समदृष्टि सहजो कहै'--और दृष्टि अब सम हो गयी है। जहाँ संतोष—वहाँ दृष्टि सम। जहाँ शून्य और पूर्ण के बीच संतुलन--वहाँ दृष्टि सम।

'समदृष्टि सहजो कहै, समझैं रंक न भूप।' अब न कोई गरीब दिखता है, न कोई अमीर; न कोई सुंदर, न कोई कुरूप; न कोई स्त्री, न कोई पुरुष; न कोई संसार, न कोई मोक्ष। 'समदृष्टि सहजो कहै, समझैं रंक न भूप।'

'साध असंगी संग तजै, आतम ही को संग।
बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग।।'

'साध असंगी संग तजै'--साधना हो तो असंग साधो, अकेला होना साधो, क्योंकि तुम्हारे अकेलेपन में ही तुम उसे पाओगे। जब तक तुम दूसरे को खोज रहे हो तब तक तुम्हें कितने ही मिलेंगे, वह नहीं मिलेगा। जब तक तुम दूसरे को खोजते हो, तब तक तुम अपने से बच रहे हो।

सब दूसरे की खोज अपने से पलायन है।

तुम अकेले में बेचैन होते हो। कहते हो क्या करें, कहाँ जाएँ, किसको मिलें? मित्र खोजते हो, क्लब जाते हो, होटल में बैठते हो, सिनेमा देख आते हो, मंदिर पहुँच जाते हो, लेकिन तुम्हारी खोज दूसरे की खोज है। कोई दूसरा मिल जाए तो थोड़ा अपने से छुटकारा हो, नहीं तो अपने से घबड़ाहट होने लगती है। अपने ही

अपने से ऊब पैदा हो जाती है। तुम अपने को झेल नहीं पाते। तुम अपने से परेशान हो जाते हो। तो पत्नी को खोजते हो, पति को खोजते हो, बच्चे पैदा करते हो--भीड़ बढ़ाते जाते हो, इसमें उलझे रहते हो।

अब मेरे पास लोग आते हैं। अगर वे अकेले हैं, तो दुःखी। वे कहते हैं, हम अकेले हैं। अगर वे परिवार में हैं, तो दुःखी हैं। वे कहते हैं, परिवार है। अकेले हैं तो अकेलापन काटता है। अकेलेपन से बचने के लिए भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं, तो भीड़ सताती है। फिर वे कहते हैं दबे जा रहे हैं, व्यर्थ मरे जा रहे हैं, बोझ ढो रहे हैं, कोल्हू के बैल बन गये हैं। पत्नी है, बच्चे हैं, अब इनको पालना है, शिक्षा दिलानी है, शादी करनी है, अब तो फँस गये! जबतक फँसे नहीं थे तबतक लगता था, क्या करें अपने-आप? अपने साथ क्या करें? कुछ सूझता न था। अकेले-अकेले ऊब मालूम पड़ती थी, कुछ चाहिए करने को।

'साध असंगी संग तजै।' साधु तो वही है जो असंग को साधता है, अकेलेपन को साधता है। जो कहता है मैं अपने अकेले में आनंदित रहूँगा। जो धीरे-धीरे अपने निजरूप में उतरता है। जो अपने ही भीतर गहरा कुआँ खोदता है, और उसमें डूबता है। एक ऐसी घड़ी आती है जब अपने ही केंद्र पर कोई पहुँच जाता है, तो फिर किसी के साथ की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

इसका यह मतलब नहीं कि तुम जंगल भाग जाओ। जंगल भी वही भागता है जो पहले अपने से भागने के लिए भीड़ में फँसा। अब भीड़ से बचने के लिए जंगल भागता है। जंगल में फिर अकेला हो जाएगा, फिर भागेगा।

कुछ दिन पहले की बात है। पश्चिम से एक युवक और युवती मेरे पास आए। शादीशुदा हैं। दो वर्ष पहले आए थे तब शादीशुदा न थे। तब मुझसे आशीर्वाद माँगने आए थे कि शादी करनी है। मैंने उनको समझाया भी था कि जल्दी न करो, थोड़े दिन साथ रह लो, एक-दूसरे से परिचित हो जाओ, फिर कर लेना। पर बड़ी जल्दी में थे। प्रेम साधारणतः पागलपन जैसा होता है। नहीं, हम तो सदा एक-साथ रहेंगे। देरी क्या करनी है! कल के लिए क्या छोड़ना है! शादी कर ली, अब दो साल में एक-दूसरे से ऊब गये, फिर आए। अब वे कहते हैं किसी तरह हमारा छुटकारा करवा दें।

तो मैंने कहा कि पहले भी तुमने न मानी। तब भी जल्दी की, अब भी जल्दी मत करो। छुटकारे की इतनी जल्दी क्या है? तुम ऐसा करो कि दोनों अलग-अलग दो-चार महीने के लिए हो जाओ। पति को गोआ भेज दिया। दूसरे सप्ताह वापस हाजिर, कि अकेले मन नहीं लगता। पत्नी के बिना नहीं रह सकते।

मैंने कहा पहले भी तुमने भूल की थी, अब अगर तुम्हारा तलाक करवा दिया होता! तीन दिन साथ रहे, फिर हाजिर। साथ नहीं बनता।

अपने साथ नहीं रह सकते, दूसरे के साथ नहीं रह सकते! अपने से ऊबते हो, दूसरे को पकड़ते हो। दूसरे को पकड़ते हो, दूसरे से ऊब जाते हो। जब अपने से ही ऊब जाते हैं तो दूसरे से कैसे न ऊबोगे। थोड़ा सोचो, जब अपने से ही मन नहीं भरता, तो दूसरे से क्या खाक भरेगा! जब तुम अपने को ही इतना प्रेम नहीं कर पाते कि अपने संग रह सको, तो तुम किसको इतना प्रेम कर पाओगे कि उसके संग रह सको?

'साध असंगी संग तजै'--तो साधु वही है जो इतना अपने प्रेम में डूब जाता है, सहज के, कि अपने ही साथ होता है; फिर उसे कोई संग की जरूरत नहीं रह जाती।

'आतम ही को संग'--फिर वह अपना ही संगी-साथी है। और मजा यह है, पहेली यह है, कि जो अपना संगी हो जाता है उसका साथ अगर तुम्हें मिल जाए, तो तुम्हारे आनंद का हिसाब न रहेगा। जो अपने साथ है वह तुम्हारा संग खोजता नहीं, लेकिन अगर तुम मिल जाओ तो तुम्हें छोड़कर भागता भी नहीं। तुम से कोई प्रयोजन ही न रहा, न छोड़ने का, न पकड़ने का। वह तो अपनी मस्ती में रहता है। अगर तुम्हें भी मौज है तो उसकी मस्ती थोड़ी तुम ले सकते हो, वह बाँटेगा। जैसे दीया जलता हो और बुझी ज्योति का दीया पास आ जाए, तो जलती ज्योति डरती थोड़े है कि बाँटूंगी तो कम हो जाऊँगी! हजार दीये जला लो तुम एक दीये से। दीये की ज्योति वैसी ही रहती है, कुछ कम नहीं होता--और हजार दीयों में ज्योति आ जाती है।

जो व्यक्ति अपने साथ रहना सीख गया, उसकी ज्योति जग गयी। अब वह किसी की तलाश में नहीं है। कोई न आए तो मजे में है, कोई आए तो मजे में है। अकेला हो तो उतने ही मजे में है, जितना पूरे संसार में हो तो मजे में है। हिमालय भी उतना ही सुंदर है, बाजार भी उतना ही सुंदर है। लेकिन, अब अगर किसीको उसके पास आना हो, तो वह उससे ज्योति का दान ले सकता है। ज्योति से ज्योति जले। और उसकी ज्योति में कोई कमी नहीं आती। वह आनंदित ही होता है, क्योंकि दूसरा जल जाता है और मैं तो बुझता नहीं--प्रकाश बढ़ता है संसार में। और प्रकाश तो एक ही है, ज्योतियाँ चाहे अलग हों।

'साध असंगी संग तजै, आतम ही को संग।
बोध रूप आनंद में, पियैं सहज को रंग।।'

और एक ही आनंद है जगत में, वह है--बोधरूप। वह है चैतन्य का आनंद। अमूर्छा का, जागरण का। वह अपने साथ होता है और जागता है भीतर। अपने को जगाता है, निद्रा के बाहर खींचता है। ज्योति को ऊपर उठाता है जो तेल में छिपी थी, बत्ती में दबी थी--उसे प्रगट करता है। अंगार से राख झाड़ता है।

'बोधरूप आनंद में'--फिर बोध इसका जगता है। आँख खुलती है। वह परम आनंद में जीने लगता है। 'बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग'--फिर वह अपने को ही पीता है। और जब तक तुमने अपने को ही न पिया, तुम्हारी प्यास न बुझेगी।

इस संसार का कोई कुआँ तुम्हारी प्यास न बुझा सकेगा। इस संसार की कोई प्याली तुम्हारे ओंठों को तृप्त न कर सकेगी, जबतक तुम अपने को ही न पी लोगे। उस एक शराब को ही पीनेवाला मुक्त हो जाता है, प्यास से, दौड़ से।

जीसस एक कुएँ पर रुके। उन्होंने पानी माँगा, एक स्त्री पानी भरती थी। उसने कहा लेकिन मैं शूद्र हूँ। मेरे हाथ का पानी ऊँचे कुल के लोग नहीं पियेंगे। तुम्हारे वस्त्रों से लगता है तुम अच्छे कुल के हो। जीसस ने कहा, पागल! अगर तू अपने कुएं का पानी मुझे पिला देगी, तो मैं भी तुझे वचन देता हूँ कि अपने कुएँ का पानी तुझे पिलाऊँगा। और मैं तुझसे कहता हूँ, तेरे पानी को तो पीकर फिर प्यास लगेगी, मेरे पानी को पीकर फिर कभी प्यास नहीं लगती।

जिसने अपने भीतर का पानी पी लिया, उसकी खुद की प्यास तो मिट ही जाती है वह दूसरे की प्यास को मिटाने में भी समर्थ हो जाता है। क्योंकि वह तुम्हें भी वही दीवानगी लगा दे सकता है--अपने को पीने की।

धर्म संक्रामक है। एक के भीतर पैदा हो जाता है, तुम उसके पास आ जाओ, उसकी हवा में आ जाओ, जरा उसके मौसम में प्रविष्ट कर जाओ, तो तुम भी पकड़ में आ जाते हो। तुम्हारे भीतर भी कोई जगने लगता है।

'बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग'। और वह जो पीना है, वह जो उस रंग में डूबना है, वह जो उस जल में उतर जाना है, वह बड़ा सहज है। सहजस्फूर्त है। कुछ करना नहीं पड़ता। बिना किये बरसता है। 'बिन घन परत फुहार'। बादल भी दिखायी नहीं पड़ते, कहाँ से फुहारे आ रहे हैं? आकाश खुला है, बादल घिरे नहीं हैं और वर्षा हो रही है--'बिन घन परत फुहार'। भीतर कुछ भी करना नहीं पड़ता, कोई कारण नहीं खोजना पड़ता। सहज का अर्थ है, अकारण। सहज शब्द बड़ा कीमती है। उसका अर्थ है जो बिना किये हो जाए। बस तुम भीतर पहुँच जाओ--'बिन घन परत फुहार'। कोई कारण नहीं है, तुम भीतर पहुँचे

और प्यास तृप्त होने लगती है। कंठ पर कोई अमृत की वर्षा शुरू हो जाती है-- 'पियैं सहज को रंग'।

'मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त विहार।।'

सहजो कहती है, 'मुए दुखी'--जो मर गये, वे दुःखी हैं; 'जीवत दुखी'--जो जी रहे हैं, वे दुःखी हैं; 'दुखिया भूख अहार--भूखे दुःखी हैं, जिनके पेट भरे हैं वे दुःखी हैं। गरीब दुःखी है, अमीर दुःखी है। सफल दुःखी हैं, असफल दुःखी हैं। जो हार गये वे दुःखी हैं, जो जीत गये वे दुःखी हैं। दुःख तो लगता है संसार का ढंग है। चाहे जीतो चाहे हारो, चाहे जियो चाहे मरो, दुःख तो मिलेगा ही--दुःख से बचने का कोई उपाय यहाँ दिखायी नहीं पड़ता। 'मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।'

'साध सुखी सहजो कहै'--बस एक साधु सुखी है। क्यों? 'पायो नित्त विहार' --क्योंकि अपने भीतर की परम समाधि को, जो कभी नहीं टूटती, उसे पा लिया।

वही सिर्फ सुखी है, जिसने कुछ ऐसा पा लिया जो अकारण है। इसे थोड़ा समझो।

तुम्हारे सुख का कारण है तो तुम जल्दी ही दुःखी हो जाओगे, क्योंकि निर्भर है सुख किसी बात पर। मित्र घर आया, वर्षों से न आया था, तुम बड़े खुश हुए, सुखी हुए। सुखी होने का कारण क्या है? अगर ये मित्र तुम्हें कल भी मिला होता, तो तुम सुखी होते? नहीं, क्योंकि ये वर्षों बाद आया है। कारण यह है कि वर्षों तक एक खाली जगह छूट गयी थी। आज इसने आकर भर दी, इसलिए तुम खुश हो। लेकिन तीन-चार दिन बाद, फिर तुम सुखी रहोगे? क्योंकि फिर तो खाली जगह न रही। खुश थे तुम--ये पाँच साल तक न आया था मिलने, एक खाली जगह छूट गयी थी--अचानक आया, एक भराव मालूम हुआ। लेकिन पाँच दिन बाद, अब तो तुम खाली नहीं हो। अब तुम सोचोगे, कब ये सज्जन विदा हों।

मेहमान का लोग स्वागत भी करते हैं, और उससे भी ज्यादा स्वागत तब करते हैं जब वह जाता है। कैसे इससे छुटकारा हो अब? कारण था, कारण मिट गया। तुम्हें भूख लगी तो भोजन में रस आया। लेकिन जब तुम्हारा पेट भर जाएगा तब तो भोजन में रस नहीं रह जाएगा। भूख के कारण रस था। भूख मिट गयी, रस खो गया। कामवासना उठी, एक स्त्री या पुरुष में रस आया। लेकिन कामवासना तृप्त हो गयी, फिर? फिर तो रस नहीं रह जाएगा। इसलिए तो लोग पत्नियों से ऊबे हैं, पतियों से ऊबे हैं। और जब पहली दफा मिले थे, तो कहा था कि तुम्हारे बिना सब व्यर्थ है। तुम्हीं स्वर्ग हो, तुम्हीं स्वप्न हो, तुम्हीं सब कुछ हो। और

अब पत्नी से भागे फिर रहे हैं, अब पति से भागे फिर रहे हैं। जहाँ पास आते हैं, तो सिवाय बेचैनी और कलह के कुछ भी होता नहीं दिखायी पड़ता। क्या कारण होगा? सीधी सी बात है। जीवन को समझा नहीं। भूख थी वासना की, वह तृप्त हो गयी। जैसे भरा पेट आदमी भोजन की तरफ नहीं देखता। भरी वासना, फिर पत्नी और पति में कोई रस न रहा। फिर जब खाली होओगे, तब फिर रस पैदा होना शुरू हो जाएगा।

जहाँ-जहाँ कारण है वहाँ-वहाँ सुख होगा--क्षणभंगुर होगा। और, जल्दी ही दुःख आ जाएगा। और जहाँ-जहाँ कारण है, वहाँ सुख के तुम मालिक न हो सकोगे। मालिक तो वही रहेगा जिसके हाथ में कारण है।

अगर पति इसलिए सुखी है कि पत्नी उसकी वासना को तृप्त कर देती है, तो भीतर एक दुःख भी रहेगा कि पत्नी मालिक हो गयी। जब वह दुःखी करना चाहेगी, वासना तृप्त न करेगी। तब दुःख पैदा हो जाएगा। तो जिससे सुख होता है उसीसे दुःख पैदा हो जाएगा। जो आज फूलमाला डालता है तुम्हारे गले में और तुम प्रसन्न हो जाते हो, कल जब जूता फेंकेगा तब तुम्हें अप्रसन्न भी कर देगा। फूलमाला जब कोई डाले तब जरा सावधानी रखना, क्योंकि तुम एक तरकीब उसके हाथ में दे रहे हो। अगर तुम प्रसन्न हुए तो तुमने एक कुंजी हाथ में दे दी, वह तुम्हें दुःखी कर सकता है किसी भी दिन। फूलमाला न डालेगा तो दुःखी हो जाओगे; और अगर ज्यादा ही दुःखी करना हुआ तो जूतों की माला बनाकर ले आएगा।

जहाँ कारण है, वहाँ निर्भरता है। वहाँ स्वतंत्रता खो जाती है, तुम्हारा मोक्ष खो जाता है।

'साध सुखी सहजो कहै'--सिर्फ वही सुखी है जिसका कारण अपने ही भीतर है, जो अपने से बाहर पर निर्भर नहीं है, जो सुख के लिए किसी के द्वार पर हाथ नहीं फैला रहा है, जिसने अपने भीतर ही उस कुएँ को खोज लिया जहाँ सहज झरना बह रहा है। तुम्हारे भीतर ही छिपा है तुम्हारा आनंद। जब तक तुम बाहर माँगोगे, तब तक तुम सुख भी पाओगे, दुःख भी पाओगे। और, अंत तक जब तुम हिसाब लगाओगे तो तुम पाओगे, सुख तो न-कुछ पाया, दुःख बहुत पाया। दुःख के काँटे बहुत मिले, सुख के फूल कभी-कभी। और, जब तुम पीछे लौटकर देखोगे तुम पाओगे, इतने से फूलों के लिए इतने काँटे झेलने में कुछ सार्थकता नहीं मालूम होती। ये तो यात्रा व्यर्थ हो गयी। काँटे ही छिदे, फूल तो सिर्फ आशा बँधाते रहे। एक सांत्वना रही कि मिलेंगे फूल, मिलेंगे फूल, मिले काँटे। जब पाया तब काँटा पाया! जब सोचा तब सुख की आस रही!

'मुए दुखी जीवत दुखी'। तुम जीते जी दुःखी हो। बहुत दुःखी हैं लोग। अनेक बार लोग कहते पाए जाते हैं, कि मर ही जाते तो अच्छा था।

बड़ी पुरानी कहानी है--

एक लकड़हारा लौट रहा है जंगल से। थक गया है। बूढ़ा हो गया है--जीवन से थक गया है। यही लकड़ी ढोना, ढोना। कई बार मन में होता है, मर ही जाए। उस दिन तो बड़े जोर से इच्छा उठी कि अब क्या रक्खा है, कुछ मिलता नहीं, रोज यही लकड़ी ढोओ, साँझ घर पहुँचो, खाना खाओ, सो जाओ, सुबह फिर...। हाथ-पैर बूढ़े हो गये हैं, कँपते हैं, चलते भी नहीं बनता, आँखें ठीक से देख भी नहीं सकतीं, कान सुन भी नहीं सकते, अब क्या प्रयोजन है? कुछ भी तो पाया नहीं। जब जवान थे तब न कुछ मिला, तो अब क्या मिलेगा? एक आह उठी और उसने कहा, हे मौत! तू सबको आती है, न मालूम मेरे पीछे पैदा हुओं को आ गयी, जवान उठा लिए, मुझे क्यों छोड़ रही है, मुझे क्यों सता रही है? मुझे ले चल। अब तू आ जा!

ऐसा मौत किसी को सुनकर आती नहीं, लेकिन उस दिन कुछ हुआ--आस ही पास होगी--आ गयी। वह इतना दुःखी हो गया था कि उसने गुस्से में और दुःख में अपनी लकड़ियों का गट्ठर नीचे पटक दिया, और बैठ गया था--कि अब तू आ जा। मौत आ गयी! मौत सामने आयी तो उसकी करीब-करीब अंधी आँखें भी सतेज हो गयीं। उसने कहा, 'तू कौन है?' मौत ने कहा, 'आपने बुलाया। मैं मौत हूँ, मैं आ गयी।' घबड़ाया। प्राण कँप गये। ये कोई.... कही थी बात इसका मतलब यह थोड़े कि आ ही गये... ऐसा तो आदमी कह ही देता है दुःख-सुख में।

उठकर खड़ा हो गया और कहा, 'हाँ बुलाया जरूर, बूढ़ा हो गया हूँ, गठरी उठाने को कोई दिखायी नहीं पड़ता था। गठरी उठवा दो, धन्यवाद!'

जिस गठरी को पटका था, मौत को देखकर उसीको उठवाकर सिर पर रख लिया। जीते जी तुम दुःखी हो, कई बार सोचते हो मर जाएँ। मौत आ जाए तो तड़फड़ाते हो, कहीं मर न जाएँ।

'मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।' गरीब दुःखी है, समझ में आता है। अमीर भी दुःखी है। भूखा दुःखी है, जिनके पेट ज्यादा भर गये हैं वे दुःखी हैं। गरीब का दुःख तो हमें समझ में भी आ जाता है, कि ठीक है। अमीर का दुःख बड़ा बेबूझ मालूम पड़ता है कि ये क्यों दुःखी है? सब तुम्हारे पास है, फिर तुम क्यों दुःखी हो?

हम दुःख का स्वभाव ही नहीं समझे हैं। गरीब दुःखी होता है क्योंकि उसकी

आशाएँ पूरी नहीं होतीं। अमीर इसलिए दुःखी होता है कि आशाएँ तो पूरी हो जाती हैं, और कुछ भी पूरा नहीं होता। अमीर का दुःख गरीब से ज्यादा गहरा है। अमीर गरीब से भी ज्यादा दया का पात्र है। गरीब को तो कम से कम आशा रहती है, अमीर की आशा भी मर जाती है। गरीब तो सोचता है, आज नहीं कल एक छोटा मकान बना लेंगे, सब सुख हो जाएगा। इस आशा में पैर चलते चले जाते हैं। आशा खींचती है। आशा पर संसार टँगा है। अमीर महल बना लेता है, अचानक पाता है महल तो बन गया, अब? और महल बनने से जो-जो आशाएँ सोची थीं, वह तो कोई पूरी होती दिखायी नहीं पड़तीं! महल के बनाने में जीवन का बड़ा हिस्सा खो गया, महल के बनाने में न रात देखी न दिन, न चैन किया न विश्राम। जो दिन गये वे लौटाए नहीं जा सकते, और आशा एक भी पूरी नहीं हुई!

अमीर बहुत दया का पात्र है। इसलिए तुम आश्चर्यचकित मत होना, अगर बुद्ध और महावीर जैसे सम्राट-पुत्र सब छोड़कर भाग गये। गरीब त्याग करे कैसे, अभी उसे आशा है। अमीर त्याग कर सकता है, आशा भी टूट गयी। कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता, यह सब व्यर्थ साबित हो गया। और ध्यान रखना, तब तक मैं तुम्हें अमीर न कहूँगा जब तक तुम्हारी आशा न टूट जाए; तब तक तुम गरीब ही हो। अगर तुम्हारी आशा अभी भी है, तो उसका मतलब तुम अभी भी गरीब हो। गरीब मेरी परिभाषा में वही है, जिसकी आशा अभी शेष है। जो कहता है, अभी कुछ मिलेगा तो उससे सब ठीक हो जाएगा। अमीर वही है जो कहता है सब मिल गया, कुछ भी ठीक नहीं हुआ। अब बेचैनी भारी है। अब एक संताप ने पकड़ा है कि अब क्या करना, जीवन हाथ से जा रहा है? और जो कल तक सार्थक मालूम होता था वह सब व्यर्थ मालूम हो गया। अचानक एक ऐसी जगह आ गयी जहाँ रास्ता समाप्त। आगे भयंकर खड्ड है। आगे कोई मार्ग नहीं है। गरीब वह है जिसे अभी आगे रास्ता शेष है। खड्डा उसका भी आएगा, लेकिन अभी बहुत दूर है--खड्ड दिखायी नहीं पड़ता, लगता है मंजिल की तरफ जा रहे हैं।

मेरी दृष्टि में जब भी कोई समाज धनी हो जाता है तो धार्मिक होता है। गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म तो पैदा ही तब होता है जब जीवन की सब आशा टूट जाती है; जब जीवन बिलकुल ही राख मालूम होता है; तभी आँख उठती है आकाश की तरफ और परमात्मा की खोज शुरू होती है।

भारत कभी धार्मिक था, लेकिन वे भारत के स्वर्ण-दिन थे। बुद्ध-महावीर के दिन, तब भारत के सम्राट भी भिखारी बनकर घूमे। अभी तो भारत के भिखारी

सभी सम्राट होने का सपना देख रहे हैं। इसलिए भारत अब धार्मिक नहीं है। अब धर्म अगर संभव है, तो सिर्फ अमरीका जैसे मुल्क में संभव है। भारतीय मन को पीड़ा होती है इससे, कि हम और धार्मिक नहीं! मगर तुम्हारी पीड़ा का क्या करें? सत्य यही है कि पूरब से धर्म विदा हो गया। अब पूरब की संपदा सुख-समृद्धि के साथ ही विदा हो गयी। अमरीका में आज एक बेचैनी है। क्योंकि सब मिल गया है, अब? अब क्या करना? अब कहाँ जाएँ?

ध्यान रखना, गरीब आदमी भी धार्मिक हो सकता है, लेकिन उसके लिए फिर बहुत बुद्धिमानी चाहिए। अमीर बुद्धू भी हो तो धार्मिक हो सकता है, क्योंकि अमीर बुद्धू भी हो तो भी इतना तो दिखायी ही पड़ सकता है कि सब इकट्ठा कर लिया और कोई सार इकट्ठा न हुआ। गरीब को अगर धार्मिक होना हो तो इतनी प्रतिभा चाहिए, कि जो नहीं मिला है वह अगर मिल जाएगा तो कुछ न मिलेगा, यह देख पाए। यह दृष्टि उसमें हो। मैं यह नहीं कहता कि गरीब अमीर नहीं हो सकता, लेकिन उसके लिए बड़ी प्रांजल प्रतिभा चाहिए। अमीर तो बुद्धू भी हो तो धार्मिक हो जाना चाहिए। गरीब को बहुत प्रांजल प्रतिभा चाहिए, दूरदृष्टि चाहिए; जहाँ रास्ता समाप्त होता है और खड्ड आ जाता है, वह अभी दिखना चाहिए। कठिन हो जाता है।

'मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।' फिर सुखी कौन है? संसार में कोई भी सुखी नहीं है। 'साध सुखी सहजो कहै'--साधु का अर्थ है जो संसार में है, और संसार में नहीं है। वह जो किनारे पर भी खड़ा है, और मझधार में भी खड़ा है--एक साथ। जिसका एक पैर संसार में, और एक पैर परमात्मा में।

'साध सुखी सहजो कहै'--साधु एक बड़ी अनहोनी घटना है। तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में बैठे हुओं को तुम साधु मत समझ लेना। साधु तो एक महान क्रांति है। वह तो इस जगत का सब से रहस्यपूर्ण तत्त्व है। साधु वह है, जिसने संसार को व्यर्थ जान लिया। त्यागकर भागेगा, तो उसका अर्थ हुआ कि संसार में अभी भी कुछ... कम से कम इतना तो था ही कि त्यागा जा सके। साधु भागकर कहाँ जाए? भागने को कहीं भी नहीं है। सारा संसार ही व्यर्थ हो गया, यहाँ भी और वहाँ भी। तो साधु अपने भीतर चला जाता है। बाहर जाने की कोई जगह न रही, बाजार से मंदिर जाने की कोई जगह न रही। मंदिर भी बाजार का हिस्सा है, और बाजार भी मंदिर का हिस्सा है, वह सब साथ-साथ है, वह एक ही तराजू के दो पलड़े हैं, वह अलग-अलग नहीं हैं। असाधु दुकान से मंदिर भागता है, मंदिर से दूकान भागता है, ऐसे ही जिंदगी बिताता है। साधु वह है, जिसे दिखायी पड़ गया

कि बाहर जाने में कुछ भी सार नहीं है।

'साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त विहार'। और उसने अब भीतर की परम मुक्ति को, समाधि को, विहार को, पा लिया उस कुएँ को, जिसको पीकर फिर सब प्यास मिट जाती है, बुझ जाती है। उस आतम-आनंद को चख लिया जिसे चखते ही सब क्षुधा शांत हो जाती है।

इस पद को पूरा दोहरा दूँ:--

'निर्द्वन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास ।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस ।।
जो सोवै तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम ।
जो बोलै तो हरिकथा, भक्ति करै निहकाम ।।
नित ही प्रेम पगै रहैं, छकै रहैं निज रूप ।
समदृष्टि सहजो कहै, समझें रंक न भूप ।।
साध असंगी संग तजै, आतम ही को संग ।
बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग ।।
मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार ।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त विहार ।।'

आज इतना ही।

★ ★ ★

भक्त में भगवान का नर्तन : कब

प्रवचन ६, प्रातः, दिनांक ६-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्न : बुद्ध शून्यता का आग्रह करते हैं और शंकर पूर्णता का । ये अपने-अपने आग्रह के लिए भारी तर्क और वाद-विवाद भी खड़ा करते हैं । इन्हें सत्य का, परमात्मा का पता है । फिर भी वे दूसरे का खंडन एवं स्वयं का मंडन क्यों करते हैं ? और, एक आप हैं जो दोनों का एक साथ समर्थन करते हैं, ऐसा क्यों ?

बुद्ध ने शून्य से ही परमात्मा को जाना। जैसा उन्होंने जाना, वैसा ही वे दूसरों को भी जना सकते हैं । जिस मार्ग से वे चले, उस पर ही वे तुम्हें भी ले जा सकते हैं । जिस मार्ग से वे स्वयं नहीं चले, उससे तुम्हें ले जाना खतरनाक है । उस पर मार्गदर्शन असंभव होगा ।

ऐसा नहीं है कि बुद्ध नहीं जानते हैं कि दूसरे मार्ग से भी पहुँचना हो जाता है। लेकिन, यह कहना भी कि दूसरे मार्ग से भी पहुँचा जा सकता है, तुम्हारी जो एक मार्ग के प्रति अनन्य श्रद्धा है उसे उखाड़ना है। तुम पर करुणा करके ही दूसरे मार्ग का खंडन करते हैं, क्योंकि तुम वैसे ही बड़ी उलझन में हो। तुम्हारी उलझन यही है, कि तुम कोई निष्कर्ष नहीं ले पाते। निष्कर्ष न लेना ही तो तुम्हारा रोग है।

अगर बुद्ध कहें, शून्य से भी पहुँचता है व्यक्ति, पूर्ण से भी पहुँचता है; पूरब से भी, पश्चिम से भी; तो तुम्हारी अनिर्णय की अवस्था में और भी अनिर्णय हो जाएगा । इसलिए बुद्ध जोर देते हैं, शून्य से पहुँचता है। और, जब वे कहते हैं पूर्ण से नहीं पहुँचता, तो कुल उनका मतलब इतना ही है कि शून्य से ही पहुँचता है । वे पूर्ण के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं। वे सिर्फ इतना कह रहे हैं कि तुम जो सुननेवाले हो, तुम्हारे अनिर्णय को मैं न बढ़ाना चाहूँगा। तुम वैसे ही काफी भटके हो। आग्रहपूर्वक कहते हैं, बस यही मार्ग है; दूसरा मार्ग गलत है । जब तक तुम्हें साफ न हो जाए कि दूसरा गलत है, तब तक तुम इस मार्ग पर कदम ही न रखोगे।

इसलिए ज्ञानियों को बहुत बार उन बातों का खंडन करना पड़ा, जिनका वे खंडन नहीं करना चाहते थे । अज्ञानियों पर करुणा के कारण !

लेकिन अज्ञानी अज्ञानी है । उस पर तुम करुणा करो तो भी वह गलत समझेगा। बुद्ध ने कहा कि शून्य से पहुँच सकते हो । इस बात को तुम्हारे हृदय में मजबूत बिठाने के लिए उन्होंने कहा, पूर्ण से न पहुँच सकोगे । तुमने सुना कि पूर्ण से न पहुँच सकोगे । इसलिए पूर्ण से जाना तो व्यर्थ है । रही शून्य की बात, जब पूर्ण से ही न पहुँच सकेंगे तो शून्य से क्या पहुँचेंगे ! और, ये बुद्ध अज्ञानी मालूम पड़ते

हैं, क्योंकि विवाद करते हैं, खंडन करते हैं, तर्क देते हैं। ये बुद्ध गलत मालूम पड़ते हैं—अपने को ठीक कहते हैं, दूसरे को गलत कहते हैं। अज्ञानी ने यही सुना। बुद्ध की करुणा से जो निकला, अज्ञानी ने अपनी मूढ़ता में सुना।

एक बड़ी प्राचीन कथा है।

जीसस भागे जा रहे हैं एक खेत के बीच से। उन्हें भागते देखकर खेत का मालिक उनसे पूछने लगा, 'कहाँ भागे जाते हैं? और इस तरह भाग रहे हैं जैसे कोई शेर, सिंह पीछे लगा हो। यहाँ तो कोई है नहीं, पीछे कोई दिखायी नहीं पड़ता!' लेकिन वे इतनी तेजी में हैं कि रुक कर उत्तर भी नहीं दे सकते।

तो वह आदमी भी उनके साथ हो लिया। फर्लांग भर जाकर उसने उन्हें पकड़ा, और कहा कि 'सुनो भी, कहाँ भागे जाते हो? कौन पीछे लगा है? इतने क्यों भयभीत हो? और मैं तुम्हें जानता हूँ कि तुम तो पृथ्वी की सुगंध हो। तुम्हारा कौन अहित कर सकेगा? तुमने अंधों को आँखें दीं, बहरों को कान दिये; मैंने सुना है कि तुमने मिट्टी से पक्षी बनाए और उन्हें जीवन दे दिया, और वे आकाश में उड़ गये; और तुमने मुर्दों को कब्र से पुकारा और वे जीवित हो गये। तुम्हें क्या भय है? तुम किससे भागे जाते हो? क्या मैंने जो सुना वह गलत है?'

जीसस ने कहा, 'नहीं, तूने जो सुना ठीक सुना। मैं वही हूँ, जिसके हाथ के इशारे से आँखें खुलीं; जिसके श्वाँस के धक्के से कान सुनने लगे; जिसने मिट्टी में से भी प्राण को पुकारा और पक्षी आकाश में उड़े। मैं वही हूँ, जिसके मंत्र को सुनकर मुर्दे जाग गये—पुनरुज्जीवित हुए। मगर मुझे रोक मत! मुझे जाने दे।' फिर उसने कहा, 'अगर तुम वही हो तो तुम भागे कहाँ जाते हो, किससे भागे जाते हो?'

तो जीसस ने कहा, 'एक मूर्ख मेरे पीछे पड़ा है। मैं उसीसे भाग रहा हूँ।'

वह किसान हँसने लगा। उसने कहा, 'अंधों को तुम आँखें दे सके, बहरों को कान दे सके, मिट्टी को प्राण दे सके, मुर्दों को पुनरुज्जीवित कर सके, एक मूर्ख पर तुम्हारी शक्ति काम नहीं आती?'

जीसस ने कहा, 'कभी काम नहीं आती। मूर्ख पर मैंने सब उपाय कर लिए। कुछ भी नहीं होता। कोई परिणाम नहीं होता। मैं करता कुछ हूँ, होता कुछ है। मैं चाहता कुछ हूँ, परिणाम कुछ आते हैं।'

तो उस किसान ने पूछा, 'बस इतना और मुझे बता दो, फिर तुम्हें न रोकूंगा, कि तुम अंधे के साथ सफल हो गये, मुर्दे के साथ भी सफल हो गये, क्या मूर्ख मुर्दे से भी बुरी हालत में है? उसके सामने तुम्हारा सामर्थ्य काम नहीं आया?'

जीसस ने कहा कि 'कारण है। अंधा तो चाहता है कि आँख खुल जाए, इस-

लिए मेरा मंत्र काम आता है। बहरा चाहता है कान ठीक हो जाएँ, मुर्दा चाहता है कि जीवित हो जाए, मिट्टी भी चाहती है—माँगती है कि प्राण मिल जाएँ, तो मैं जो करता हूँ उसमें उनका साथ है। मूर्ख तो मानता है वह ज्ञानी है। इसलिए मूर्खता को मिटाने के लिए उसकी कोई उत्सुकता नहीं।'

जीसस ही नहीं भाग रहे हैं मूर्खों से, बुद्ध भी भाग रहे हैं, शंकर भी भाग रहे हैं।

बुद्ध ने तो महाकरुणा से कहा कि शून्य से ही तुम पहुँच सकोगे। लेकिन तुमने अपने अहंकार से सुना होगा—ये बुद्ध भी अहंकारी है, अपने ही मार्ग को ठीक कहता है, दूसरे के मार्ग को गलत कहता है।

बुद्ध दूसरे के मार्ग को गलत कह ही नहीं रहे हैं। वे सिर्फ इतना ही कह रहे हैं, जो समझते हैं वे समझ लेंगे, कि मैं इस मार्ग से चला हूँ, इससे मैं पहुँच गया हूँ, तुम भी पहुँच जाओगे। और, तुम्हारा मन इतनी दुविधा में है कि अगर मैं कहूँ दोनों मार्ग से पहुँच जाओगे, तो तुम चलोगे ही नहीं, तुम चौराहे पर ही बैठे रह जाओगे। तुम कहोगे, पहले यह निर्णय तो हो जाए कि किस मार्ग से पहुँचूँगा, तभी चलना ठीक है, अन्यथा कहीं गलत चले और दूर निकल गये!

बुद्ध ने समझाया, तुमने नहीं सुना। हजार साल, डेढ़ हजार साल बुद्ध को बीते, तब शंकर का आविर्भाव हुआ। बुद्ध ने कहा था, शून्य से पहुँच जाओगे। शंकर ने देखा, बहुत थोड़े से लोग जिन्होंने सुना वे पहुँचे; बहुत सारे लोग, जिन्होंने सुना तो समझा नहीं, पहुँचे नहीं; उल्टे शून्य के बकवास में उलझ गये हैं, शून्य का वाद खड़ा कर लिया है। शून्य का जीवन तो नहीं बनाया, जैसा सहजो कहती है—'सोवैं तो सुन्न में', ऐसा जीवन तो नहीं बनाया है कि सोवें तो शून्य में, उठें तो शून्य में, चलें तो शून्य में; शून्य का जीवन तो नहीं बनाया शून्य का शास्त्र बना लिया है। शून्यवादी हो गये हैं। हर किसीका खंडन करने को तत्पर हैं। खुद के जीवन में तो कोई क्रांति नहीं घटी, लेकिन दूसरों के विचार को तोड़ने में बड़े प्रवीण हो गये हैं।

तो धारा को बदलना जरूरी था।

शंकर ने कहा पूर्ण से ही पहुँचता है कोई। शून्य में भटक जाता है। और, शंकर ने उतने ही जोर से कहा कि पूर्ण से पहुँचता है, जितने जोर से बुद्ध ने कहा था। और, शंकर ने उतना ही विरोध किया शून्य का, जितना बुद्ध ने पूर्ण का किया था। और, शंकर ने कहा पूर्ण ब्रह्म ही मार्ग है। लेकिन जो जानते हैं वे कहते हैं, शंकर बुद्ध का ही छिपा हुआ रूप हैं। जो जानते हैं वे कहते हैं, शंकर वही कह रहे हैं जो बुद्ध ने कहा था, सिर्फ शब्द भर बदल दिये हैं। शंकर की अगर तुम पूर्ण

की परिभाषा देखोगे तो तुम हैरान हो जाओगे, वह वही है जो बुद्ध की शून्य की परिभाषा है।

क्या है शून्य? निराकार, निर्गुण, अनादि-अनंत--ये शून्य की परिभाषा है बुद्ध की। क्या है ब्रह्म? निराकार, निर्गुण, अनादि-अनंत--ये शंकर की पूर्ण की परिभाषा है। सिर्फ शब्द बदला है। और, शब्द भी इसीलिए बदला है कि शून्य के आसपास बहुत उपद्रव खड़ा हो गया, वह शब्द गंदा हो गया। जब बुद्ध ने उसका उपयोग किया था तब यह सुबह की ओस की तरह ताजा था। जब बुद्ध ने उपयोग किया था शून्य का, तब वह उपयोग पहली बार हुआ था। उसके पहले पूर्ण का बहुत उपयोग हो चुका था, वह बासा हो गया था। इतने लोग उसकी चर्चा कर चुके थे कि अब उसमें कोई सार न था; उसमें कोई प्राण न थे, पुकार न थी; आवाहन उसमें पैदा नहीं होता था--वह शब्द शास्त्रीय हो गया था। जब भी कोई शब्द शास्त्रीय हो जाता है तो साधना के मार्ग पर पत्थर की तरह पड़ जाता है, सीढ़ी नहीं रह जाता। तब पंडित उसका विचार करने लगते हैं और प्रज्ञावान उसे छोड़ देते हैं।

तो बुद्ध ने वेदों, उपनिषदों के पूर्ण को त्याग दिया। जो जानते हैं वे कहते हैं, बुद्ध से बड़ा उपनिषदों का कोई ऋषि नहीं। उपनिषदों का सारा सार बुद्ध में है। लेकिन पूर्ण शब्द को छोड़ दिया है, ब्रह्म शब्द को छोड़ दिया है, शून्य को पकड़ा। विधायक ढंग से अभिव्यक्ति छोड़ दी, नकारात्मक अभिव्यक्ति पकड़ी। 'पॉज़िटिव' --विधायक--को इनकार किया, निषेध को--'निगॅटिव' को--स्वीकार किया। परमात्मा की व्याख्या बहुत हो चुकी थी दिन की तरह, बुद्ध ने रात की तरह व्याख्या की। बहुत हो चुकी थी परमात्मा की व्याख्या प्रकाश की तरह, बुद्ध ने अंधकार की तरह व्याख्या की। बहुत हो चुकी थी व्याख्या परमात्मा की जीवन की तरह, बुद्ध ने मृत्यु की तरह, निर्वाण की तरह उसकी व्याख्या की।

मृत्यु भी उतनी ही परमात्मा है। रात भी उतनी ही परमात्मा है जितना दिन।

एक पहलू चुक गया था, चर्चा बहुत हो चुकी थी, चर्चा ही चर्चा रह गयी थी; हवा में धुआँ ही धुआँ था बातचीत का, शब्दों का जाल गुथ गया था। एक नयी अभिव्यंजना चाहिए थी, परमात्मा नये शब्द की तलाश में था, जिससे फिर उन हृदयों पर दस्तक दे सके जो अभी पांडित्य की मूढ़ता से अछूते हैं। फिर उन्हें पुकार सके जो निर्दोष हैं, निष्कलुष हैं, जो सहज हैं। बुद्ध ने शून्य पकड़ा। महत्त्वपूर्ण शब्द था।

तुम सोचो, बुद्ध और महावीर एक साथ ही पैदा हुए। लेकिन बुद्ध का प्रभाव

अप्रतिम हुआ, महावीर का नहीं हुआ। बुद्ध का विचार सारे जगत पर फैलता चला गया, उसकी लहरें दूर-दिगंत तक गयीं। महावीर का विचार बड़ी सीमित दुनिया में रहा, थोड़े से लोगों तक गया। दोनों एक से प्रज्ञावान हैं। दोनों का एक अनुभव है। दोनों बड़े समर्थ हैं। एक-दूसरे से श्रेष्ठ हैं, कहीं कोई किसीसे पीछे नहीं है। फिर महावीर का विचार दूर-दिगंत तक गया क्यों नहीं? कारण था। महावीर पिटे-पिटाये शब्दों का उपयोग कर रहे थे। उन्होंने परमात्मा को पुराने और बासे शब्दों से ही पुकारा--'आत्मा'। बुद्ध ने कहा--'अनात्मा'। चोट लगी! महावीर ने कहा, 'आत्मा ही ज्ञान है'। बुद्ध ने कहा, 'आत्मा? आत्मा अज्ञान है। अनात्मा--न होना, मिट जाना--ज्ञान है।'

दोनों एक साथ थे। लेकिन बुद्ध ने परमात्मा को नयी व्याख्या दी, नये अर्थ दिये, नावीन्य लाए। उस नावीन्य का परिणाम हुआ। अछूते हृदयों को उसने छुआ।

महावीर का विचार पंडितों के घेरे में पड़कर टूट गया। लोगों ने कहा ठीक है, वही कहते हैं जो सदा कहा है। लेकिन बुद्ध पर सोचना पड़ा।

लेकिन पंद्रह सौ साल बीतते-बीतते, बुद्ध के पीछे इतना बड़ा शास्त्रों का जाल खड़ा हुआ कि सब उपनिषद्, सब वेद फीके पड़ गये। अकेले बुद्ध के पीछे इतने दर्शन के विवाद खड़े हुए जितने मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी मनुष्य के पीछे खड़े नहीं हुए। इतने शास्त्र रचे गये। कहते हैं सब धर्मों के शास्त्र जोड़ लिए जाएँ और बुद्धों के शास्त्र, तो बुद्धों के शास्त्र ज्यादा हैं। इतनी चिंतना चली, पंद्रह सौ साल में एक तूफान आ गया। अक्सर ऐसा होता है, जब नयी अभिव्यक्ति मिलती है सत्य को तो उसके पीछे बड़े तूफान उठते हैं। पक्ष में, विपक्ष में; मित्र थे, शत्रु थे; जिनके भवन गिर गये, वे थे; जो नया भवन बना रहे थे, वे थे। पुराने शब्दों की हत्या हो गयी, नये शब्दों का प्रसव हुआ। बड़ा ऊहापोह चला। पंद्रह सौ वर्ष तक, शंकर के आते-आते तक बुद्ध छा गये। लेकिन, तब वही हो गया बुद्ध के शास्त्रों का जो उपनिषद् और वेद की हालत बुद्ध ने पायी थी। मर गये वे, पिट गये, पांडित्य हो गये, विश्वविद्यालय में चर्चा के योग्य हो गये; अब उनमें कोई प्राण न रहा--साधक के काम के न रहे, सिद्ध का तो कोई उनसे प्रयोजन न रहा। फिर वो बुद्धि का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण हो गया। शंकर ने फिर तूफान को बदल दिया। शंकर ने कहा शून्य नहीं है ब्रह्म, पूर्ण है।

पंद्रह सौ साल के अंतराल के बाद ये पूर्ण शब्द फिर से नया होकर आया। उपनिषद् को फिर से नया प्राण मिला। वेद फिर से जागे। शंकर ने सब स्थापित कर दिया, जो बुद्ध तोड़ गये थे।

और तुम चकित होओगे कि वे दोनों एक ही काम में लगे हैं।

न तो बुद्ध तोड़ रहे हैं उपनिषदों को, न शंकर बचा रहे हैं। उपनिषदों का जो प्राणों का प्राण है उसीको बुद्ध बचा रहे हैं, उसीको शंकर बचा रहे हैं। जो तोड़ रहे हैं वह ऊपर की खोल है। वह सदा गंदी हो जाती है। जैसे तुमने बच्चे को आज कपड़े पहनाए, वह पुराने कपड़े उतारने को राजी नहीं है। वह कहता है इससे मेरा मोह हो गया है, ये कमीज़ मुझे बहुत प्रिय है, (ये) मैं दूसरी पहनना नहीं चाहता। लेकिन तुम जानते हो यह गंदी हो गयी है, वर्षों पुरानी हो गयी है, छिद्र हो गये हैं––इसे उतारो। बच्चा सोचता है शायद तुम उसे नंगे करने में उत्सुक हो; धूप में, ताप में, सर्दी में नग्न घूमेगा? कपड़े के पीछे क्यों पड़े हो? उसको इससे प्रेम है, वह पकड़ता है। लेकिन तुम उसका कपड़ा बदल देते हो। बदल देते हो एक दफा, तब वह प्रसन्न हो जाता है, कि नया कपड़ा! उसकी चाल बदल जाती है, प्रसन्नता से चलता है, लेकिन फिर सालभर बाद वही हालत आ जाती है। ये कपड़ा भी पुराना हो जाता है, फिर बदलने का क्षण आ जाता है।

जागे हुए व्यक्ति किसी के विपरीत नहीं हैं––हो ही नहीं सकते। क्योंकि, जागकर उन्होंने एक को ही पाया है।

तो, न तो शंकर बुद्ध के विपरीत हैं, न बुद्ध शंकर के विपरीत हैं। वे दोनों एक ही बात कह रहे हैं, उनके कहने के ढंग अलग हैं।

और, तब तुम मुझसे पूछते हो कि मैं दोनों का समर्थन करता हूँ!

ये बात ठीक है। पूछने योग्य है। एकदम जरूरी है।

अब दोनों का विवाद भी व्यर्थ हो गया है। बुद्ध को बीते पच्चीस सौ साल हो गये, शंकर को बीते हजार साल हो गये, अब दोनों का विवाद भी बासा हो गया है। अब दोनों के बीच संवाद को नयी गति मिलनी चाहिए। अब कोई चाहिए, जो कहे कि ये विवाद है ही नहीं, दोनों एक ही बात कह रहे हैं। इसलिए मैं शून्य का भी समर्थन करता हूँ और पूर्ण का भी। अब यह एक तीसरी भाव-भंगिमा है। बात वही है। मैं वही कह रहा हूँ जो बुद्ध ने कहा, मैं वही कह रहा हूँ जो शंकर ने कहा। लेकिन, इतना फर्क है कि मैं पच्चीस सौ साल बाद हूँ।

अब सत्य एक नया अर्थ लेगा, एक नयी अभिव्यक्ति। एक नये स्वर में वही गीत गाना है, पर अब स्वर नया चाहिए। नये वाद्य पर वही धुन बजानी है, पर वाद्य नया चाहिए! शंकर का वाद्य भी पुराना पड़ गया। अब तुम शून्य की बात करो तो भी पुरानी है, पूर्ण की बात करो तो भी पुरानी है। नित नूतन परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा सनातन है। जो सदा है, वह सदा नया है। अब एक नया

स्वर....। तो मैं कहता हूँ शंकर का शून्य, या बुद्ध का पूर्ण; या बुद्ध का शून्य, या शंकर का पूर्ण उस एक की ही कथा है।

इसलिए सहजो मुझे रुचती है।

'जो सोवै तो सुन्न में, जागै तो हरिनाम।' रात भी उसकी, दिन भी उसीका। सोते भी उसीमें हैं, जागते भी उसीमें हैं। रात का अंधकार भी वही है, दिन का प्रकाश भी वही है। दोनों ही महिमावान हैं। ये तो तुम्हारा भय है, पक्षपात है कि तुम कहते हो परमात्मा प्रकाश जैसा है, क्योंकि अंधेरे में तुम डरते हो। अंधेरा भी वही है। और जब तुम शांत होओगे, तब तुम पाओगे अंधेरे की भी अपनी गरिमा है। अंधेरे का अपना सौंदर्य है। कोई प्रकाश उसका मुकाबिला नहीं कर सकता। अंधेरे की अपनी शांति है। प्रकाश का अपना मजा है। कोई तुलना की बात नहीं है। प्रकाश को भी पियो, अंधेरे को भी पियो। सभी घाट उसके हैं। तुम घाटों से बँधी गंगा मत देखो। घाटों से मुक्त बहती गंगा देखो।

तो मैं कहता हूँ, शंकर का घाट भी उसीका है, बुद्ध का घाट भी उसीका है। बुद्ध के घाट से भी नाव छोड़ोगे तो उस पार लगोगे, और शंकर के घाट से भी नाव छोड़ोगे तो उस पार लगोगे। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, जरा जागो! सारी गंगा उसीकी है। मुहम्मद का भी उसका घाट है, जीसस का भी उसीका घाट है, जरथुस्त्र का भी घाट उसीका है। और, कितने घाट बनाओगे, गंगा बड़ी है। पटे घाट तो थोड़े ही होंगे, गैर-पटे घाट भी उसीके हैं। सहजोबाई, कबीर, दादू––ये गैर-पटे घाट हैं, ये गरीब घाट हैं। इनपर कोई संगमरमर नहीं लगा है, और इनपर कोई बड़े कीमती पत्थर नहीं हैं। ये काशी के घाट नहीं हैं, ये तो ऊबड़-खाबड़ घाट हैं जंगल के। पर इनसे भी नाव छोड़ दोगे तो भी उस पार लगोगे।

घाट जहाँ बने हैं वहाँ से भी तुम उसी पार जाओगे, जहाँ नहीं बने हैं वहाँ से भी उसी पार जाओगे। अगर तुम बहुत सुसंस्कृत घाट खोजते हो तो बुद्ध का घाट है, शंकर का घाट है—परिमार्जित है, सुसंस्कृत है, सुंदर है। वहाँ फिसलने का डर कम होगा––पत्थर पटे हैं। सहजोबाई का घाट भी है, पर वहाँ पत्थर नहीं पटे हैं, वहाँ फिसल सकते हो। कीचड़ पाओगे।

लेकिन बिना-पटे घाटों से नाव छोड़ने का मजा भी और है।

पटे घाट पर पिटा-पिटायापन होता है, पंडे-पुजारी होते हैं, मार्गदर्शक होते हैं, 'गाइड' होते हैं, उनका शोरगुल-उपद्रव होता है। बिना-पटे घाटों पर कोई भी नहीं होता। तुम अकेले होते हो। अपने ही हाथों पर भरोसा रखकर नाव पर उतरना पड़ता है। कोई 'गाइड' नहीं होता, कोई मार्गदर्शक नहीं होता, कोई नक्शे देने-

वाला नहीं होता। भटकने की संभावना भी होती है। लेकिन, तब पहुँचने की पुलक भी बढ़ जाती है।

मैं कहता हूँ सारी गंगा उसीकी है। अब यह एक नया स्वर होगा। और जान लेना, मैं वही कहता हूँ जो बुद्ध कहते हैं, मैं वही कहता हूँ जो शंकर कहते हैं। रत्तीभर भेद नहीं है। फिर भी भाषा में भेद पड़ेंगे, क्योंकि लोक की रुचि बदल जाती है, लोक के समझने के ढंग बदल जाते हैं, लोक-मन बदल जाता है--इस कारण।

न तो शंकर बुद्ध का खंडन करते हैं--शंकर, और बुद्ध का खंडन क्या करेंगे? शंकर का सारा होना बुद्धत्व का समर्थन है। गहन से गहन में शंकर बुद्ध को नमस्कार कर रहे हैं। बुद्ध कैसे शंकर का खंडन करेंगे? बुद्ध कैसे उपनिषदों का, वेदों का खंडन करेंगे? यद्यपि, पंडित कहते हैं वे वेद-विरोधी हैं। पंडित तो अंधा है। अंधा भी नहीं है, मूढ़ है। क्योंकि अंधे की तो आँख भी खुल जाती है, मूढ़ पर कोई दवा काम नहीं आती। मूढ़ वही है, जिसे यह खयाल है कि मैं जानता हूँ और जो जानता नहीं। वह अपनी मूढ़ता को मिटाने को भी तैयार नहीं। दुनिया में एक ही बीमारी है--मूढ़ता, कि उसका मरीज उसे मिटाने को तैयार नहीं होता, बचाता है। इसलिए सब बीमारियाँ मिट जाती हैं, मूढ़ता नहीं मिटती। जीसस ने ठीक ही कहा कि एक मूढ़ से भाग रहा हूँ, मुझे मत रोक, वह मेरे पीछे पड़ा है। सब चमत्कार वहाँ हार जाते हैं।

दूसरा प्रश्न : सहजोबाई का मार्ग है प्रेम, भक्ति, समर्पण, गुरु-पूजा। फिर भी वह अंतर्मुखता, अंतर्यात्रा और वीतरागता पर जोर क्यों देने लगती है?

उसका जोर तो बिलकुल ठीक है। तुम्हें अड़चन होती है। क्योंकि तुम इन सब चीजों को सोचते हो, जानते नहीं। सोचने के कारण, तुम्हें सदा चीजों में विरोध दिखायी पड़ने लगता है। विचार में विरोध दिखायी पड़ता है। निर्विचार में अविरोध दिखायी पड़ता है।

जैसे मैंने तुमसे कह दिया कि एक मार्ग है प्रेम, एक है ध्यान। बस तुम्हें विरोध दिखायी पड़ने लगा। अब अगर किसी ने ध्यान की बात कही, तुम कहोगे ये प्रेम का विरोधी है। अगर प्रेम की बात कही, तुम कहोगे ये ध्यान का विरोधी है। और तुमसे कितनी बार कही जाए ये बात, कि प्रेम उसी अनुभव का नाम है जिसका नाम ध्यान है। प्रेम और ध्यान में रत्तीभर फर्क नहीं है। अगर फर्क भी है तो वह प्रेम और ध्यान का नहीं है, प्रेम और ध्यान तक पहुँचने की थोड़ी व्यवस्था का है।

तुममें से कोई पैदल चलकर यहाँ आया है, तुममें से कोई साइकिल पर सवार होकर चला आया है, कोई कार पर बैठा है; कोई दौड़ता आया है, कोई धीमे-धीमे

आया है; कोई अकेला आया है, कोई किसीके साथ आया है। पर इस सबका क्या मूल्य है कि तुम कैसे आए? तुम यहाँ आ गये हो, मेरे पास हो। यहाँ आते ही तुम साइकिल पर आए, कि पैदल आए, कि साथ आए, कि अकेले आए, सब बात असंगत हो गयी। अब उसे उठाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम यह थोड़े कहोगे कि मैं इस आदमी के पास नहीं बैठ सकता, यह साइकिल पर आया हम पैदल आए। अब बात ही तुम भूल गये। हो सकता है रास्ते पर थोड़ी अड़चन भी हुई होगी, जो साइकिल पर आ रहा था उसको देखकर थोड़ी ईर्ष्या भी उठी होगी, तुम पैदल आ रहे थे। जो कार से निकल गया था तेजी से, राह की कीचड़ को उड़ाता, उस पर थोड़ा क्रोध भी आया होगा, थोड़ा वैमनस्य भी जगा होगा।

मैंने सुना है, एक कार के ड्राइवर ने अपनी गाड़ी रोकी और पास बैठे एक किसान से पूछा कि 'रास्ता कहाँ जाता है?' उसने कहा, 'किसी और से पूछो।' उसने कहा, 'भाई, क्यों नहीं बता सकते?' उसने कहा, 'हम पैदल-यात्री हैं। किसी कार वाले से पूछो। हम क्यों बताएँ? हम पैदल-यात्री हैं। हमारा संप्रदाय ही अलग है। हम पैदल चलते हैं, तुम कार पर चलते हो। हम से तुम से लेना-देना क्या? पूछ लो किसी और से।'

राह पर शायद अड़चन भी हुई हो, लेकिन जब आ ही गये, पहुँच गये मंजिल पर, तो न तो कार वाला कार में है, न साइकिल वाला साइकिल पर है, न पैदल चलनेवाला पैदल है; सब उतर गये अपने-अपने वाहन से--वाहन सब छूट गये।

ध्यान तो वाहन है, और ध्यान मंजिल भी है। प्रेम वाहन है, और प्रेम मंजिल भी है। वाहन की तरह तो प्रेम और ध्यान अलग हैं, मंजिल की तरह अलग नहीं हैं। वे साधन भी हैं और साध्य भी हैं। तुम उनसे पहुँचते हो और तुम उन्हीं पर पहुँचते भी हो।

तो ध्यान रखना निरंतर, जब भी मैं प्रेम और ध्यान की चर्चा कर रहा हूँ तो दो तरह से कर रहा हूँ। कभी जब साधन की तरह चर्चा करता हूँ, तब मैं कहता हूँ वे अलग हैं; और जब साध्य की तरह चर्चा करता हूँ, तो मैं कहता हूँ वे एक हैं।

'सहजोबाई का मार्ग है प्रेम, भक्ति, समर्पण, गुरु-पूजा; फिर भी वह अंतर्मुखता, अंतर्यात्रा और वीतरागता पर जोर क्यों देने लगती है?'

क्योंकि कोई विरोध नहीं है। अगर प्रेम परिपूर्ण होगा तो वीतराग हो ही जाएगा। वीतरागता अगर परिपूर्ण होगी, उससे प्रेम की अहर्निश-धारा बहने ही लगेगी।

क्या है वीतराग का अर्थ? वीतराग का अर्थ है, जो राग के ऊपर उठ गया।

और प्रेम का क्या अर्थ है ? जो काम के ऊपर उठ गया ।

तुम शब्दों के आर-पार देखने में कब सफल हो पाओगे ? शब्द तुम्हारी आँखों को इतना क्यों अटका लेते हैं ?

प्रेम का अर्थ है, राग से मुक्ति । वीतराग का भी वही अर्थ है । वीतराग ध्यानियों का शब्द है; और भक्ति प्रेमियों का शब्द है । बस इतनी ही झंझट है, और कोई झंझट नहीं है । अगर तुम महावीर से पूछोगे, वे कहेंगे वीतराग । अगर तुम मीरा से, सहजो से, दया से पूछोगे, चैतन्य से पूछोगे, वे कहेंगे प्रेम, भक्ति । बस तुम अड़चन में पड़ जाओगे ।

समर्पण ? अंतर्मुखता में और समर्पण में भेद क्या है ?तुम जब स्वयं को समर्पण करते हो तो तुम किसे समर्पण करते हो, तुम्हें पता है ? जब तुम स्वयं को समर्पण करते हो तब तुम अपनी बहिर्मुखता को ही समर्पण करते हो, और क्या समर्पण करते हो ? और है क्या तुम्हारे पास देने को ?अपने अहंकार को चरणों में उतार-कर रख देते हो । फिर जो भीतर बच रहता है, वही तो अंतर्मुखता है। बहिर्मुखी गया, वह तुमने छोड़ दिया, उसका तुमने त्याग कर दिया । फिर अंतर्मुखता बचती है, वही तुम्हारा शुद्ध अस्तित्व है ।

तुम पूछते हो गुरु-पूजा और अंतर्यात्रा । गुरु बाहर है । मगर जो बाहर गुरु है, वह भीतर के गुरु तक पहुँचाने की सीढ़ी मात्र है । जब तुम बाहर के गुरु के चरणों में अपने को बिलकुल छोड़ देते हो, आँख खोलकर देखते हो तुम पाते हो बाहर का गुरु तुम्हारे समर्पित होते ही विदा हो गया । वह तो तुम्हारे बाहर के देखने का ढंग ही था, इसलिए गुरु बाहर दिखायी पड़ता था । अचानक तुम पाते हो यह स्वर तो भीतर बज रहा है । यह तो कोई बाहर नहीं है, कोई भीतर बोल रहा है ।

मैंने सुना है, एक फकीर मस्जिद में पहुँचा । थोड़ी देर हो गयी थी शायद उसे, लोग मस्जिद से विदा हो रहे थे । तो उसने कहा, 'भाइयों, इतनी जल्दी संगत उठ गयी । इतनी जल्दी क्या है ? प्रार्थना इतनी त्वरा से क्यों की गयी ? थोड़ा धीरे, आहिस्ते करते ।' एक आदमी ने कहा, 'खुद को तो दोष नहीं देते कि देर से आए हो, और संगत को दोष दे रहे हो । पैगंबर ने प्रार्थना पूरी कर दी ।' मुहम्मद के जमाने की कहानी है । 'पैगंबर ने प्रार्थना पूरी कर दी । अब मस्जिद में बैठकर क्या करना है ?'

ये सुनकर कि प्रार्थना पूरी हो गयी, कहते हैं, उस आदमी की आँख से आँसू बहे, और मुँह से एक आह निकली । जो आसपास खड़े थे उन्होंने देखा कि उसकी आह बड़ी असाधारण थी । छू गयी । प्रार्थना से ज्यादा गहरी मालूम पड़ी । न केवल

आह निकली बल्कि लोगों को ऐसा लगा, जैसे लोगों ने उसकी आह में उसके जलते हुए हृदय की गंध पायी । एक धुआँ उठा । एक लपट जैसे बाहर आयी । एक आदमी उसके पैर पर गिर पड़ा और उसने कहा भाई, इतना दुःख मत करो । अगर अपनी आह तुम मुझे दे दो, तो मैंने जो प्रार्थनाएँ की हैं वो मैं तुम्हें दे देता हूँ । इतने दुःखी मत हो ।

सौदा हो गया । उस फकीर ने आह दे दी, और उस आदमी ने अपनी प्रार्थनाएँ दे दीं । रात, जिस आदमी ने आह ले ली और प्रार्थनाएँ दे दीं, अचानक नींद में सुना कि 'तू धन्यभागी है ! तूने आह ले ली, आह से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है । तूने लपट ले ली, अंत में लपट ही तृप्ति सिद्ध होती है। तूने उसकी अभीप्सा ले ली, उसके प्राणों की पीड़ा ले ली, तुझे स्वर्ग का राज्य आज मिल गया है । और, परमात्मा इतना प्रसन्न है कि अभी भी लोग प्रार्थनाओं को देकर आह लेने को राजी हैं, कि आज जितने लोगों ने पृथ्वी पर प्रार्थनाएँ की हैं सबकी प्रार्थनाएँ पूरी कर दी गयीं इस खुशी में ।'

जब तुम्हारे भीतर से प्रगाढ़ परमात्मा की प्यास उठती है तो तुम परमात्मा को बाहर थोड़े ही पाओगे, उसी प्यास में छिपा हुआ पाओगे । प्यास ही प्रार्थना बन जाती है । जब तुम्हारे भीतर गहन आह उठती है, तुम उसी आह में दबे हुए अस्तित्व के सारे सार को पाओगे ।

जब तुम किसी गुरु के चरणों में सिर झुकाते हो, तो तुम झुकाते क्या हो ? वह तुम्हारी जो बाहर के देखने की दृष्टि थी, वही झुका देते हो—बहिर्मुखता, अहंकार । और जब तुम झुककर उठते हो, अगर झुकना सच में हुआ, तो तुम पाओगे गुरु बाहर से विदा हो गया, अब वह तुम्हारे भीतर है । अब तुम्हें उसकी आवाज अह-निश भीतर से सुनायी पड़ने लगेगी, वह तुम्हारी अंतर्वीणा हो जाएगी । तो बाहर का गुरु तो भीतर के गुरु को जगाने का उपकरण मात्र है। अगर तुम समर्पित हो जाओ, तो बाहर का गुरु भीतर के गुरु से एक हो जाता है ।

किसे तुम गुरु कहते हो ?

उसीको हम गुरु कहते हैं जिसमें तुमने अपने भीतर के आत्यंतिक रूप को झलका पाया है । जैसे तुम होना चाहोगे, जैसा तुम्हारा अंतरतम चाहता है कि तुम होते, जिसमें तुम्हें ऐसी झलक मिली है, जिसमें तुमने अपने भीतर के स्वर सुने हैं । जो तुम कहना चाहते थे और न कह सके, और किसीकी वाणी में तुमने वह स्वर सुना । जैसा तुम चाहते कि तुम्हारे हाथ का स्पर्श होता, और किसी के हाथ के स्पर्श में तुमने वही जादू पाया । जैसा तुम चाहते कि तुम्हारी आँख होती, और

किन्हीं आँखों में तुमने झाँका और वैसी ही आँखें पायीं। जिसमें तुमने अपने को पाया है, अपनी नियति को पाया है, वही गुरु है।

इसलिए ध्यान रखना, तुम्हारा गुरु जरूरी नहीं कि सभी का गुरु हो। गुरु तो निजी अनुभव है। जो तुम्हें जमा है वह सभीको जमेगा, यह जरूरी थोड़े ही है। किसी को बुद्ध जमेंगे, शून्य की बात जमेगी; किसी को पूर्ण की बात जमेगी, शंकर जमेंगे। मगर एक बात तय है, जब भी कभी कोई गुरु तुम्हें जम जाएगा उसी वक्त तुम मिट जाओगे। गुरु और शिष्य साथ-साथ थोड़े ही हो सकते हैं। जब तक दो हैं तब तक गुरु अभी मिला ही कहाँ? जब अचानक गुरु मिलता है तो शिष्य तो खो जाता है। और, तब तुम अपने भीतर पाते हो....।

अगर तुमने मुझमें अपने गुरु को देखा, तो तुम जल्दी ही पाने लगोगे कि मैं तुम्हारे भीतर बोल रहा हूँ। अगर मैं बाहर भी बोल रहा हूँ, तो भी तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर जो अनलिखा पड़ा है उसे लिख रहा हूँ, जो अनपढ़ा पड़ा है उसे पढ़ रहा हूँ। तुम अचानक पाओगे, यह तो तुम अपने भीतर भी खोज लेते लेकिन तुम्हारे पास खोजने की व्यवस्था न थी। मैंने तुम्हें वही दिखाया है जो तुम्हारे पास आँख होती तो तुम अपने भीतर देख ही लेते। मैं तुम्हें कुछ नया नहीं सिखा रहा हूँ। जिसे तुम भूल गये हो, उसे भर जता रहा हूँ।

तो गुरु का अर्थ ही इतना है।

तुम यह मत पूछो कि सहजोबाई गुरु-पूजा की बात करती है, फिर अंतर्यात्रा की बात करने लगती है! गुरु की अगर पूजा हो गयी, तो अंतर्यात्रा शुरू हो गयी, क्योंकि गुरु भीतर है। इसीलिए तो हिंदू गाते रहे हैं—'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश'। वह आत्यंतिक है, वह आखिरी है, वह परमात्मा है।

इसीलिए तो सहजो कहती है—'हरि को तज डारूँ पै गुरु न बिसारूँ'। क्योंकि हरि तो एक बंद किताब थी, गुरु ने ही उसे खोला। हरि तो छिपा पड़ा था भीतर, पर कौन जगाता, कौन चेताता? गुरु ने जगाया और चेताया। गुरु तुम्हें तुम्हीं को दे रहा है। इसलिए वह अंतर्यात्रा है।

भक्ति और ध्यान के शब्दों में बहुत मत उलझना। शब्दों में उलझना ही मत। शब्दों से जागना है। निःशब्द की तरफ चलना है। इसलिए शब्दों का उपयोग भले करना, लेकिन शब्दों को जंजीरें मत बनाना। और सदा याद रखना कि धर्म के जगत में विपरीत दिखायी पड़नेवाले शब्द भी वस्तुतः विपरीत नहीं हैं। वे एक दूसरे के परिपूरक हैं।

अगर प्रेम ठीक चला, भक्ति ठीक चली, ध्यान उपलब्ध होगा। अगर ध्यान

ठीक चला, समाधि लगी, भक्ति उपलब्ध होगी।

ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तीसरा प्रश्न : कल आपने कहा कि यदि तुम्हें पता है कि मैं संतुष्ट हूँ, कि मैं सुखी हूँ, तो समझना कि अभी संतोष और सुख नहीं आए हैं। इस हालत में स्वयं साधु होकर सहजोबाई कैसे कह सकी कि—'साध सुखी सहजो कहै'?

समझना पड़े।

निश्चित ही मैंने कहा कि अगर तुम्हें लगता रहे कि तुम संतुष्ट हो, तो जानना कि कुछ न कुछ असंतोष कहीं न कहीं भीतर शेष है। कोई न कोई रेखा असंतोष की शेष है। अन्यथा संतोष को तौलोगे कैसे, पहचानोगे कैसे? तौल के लिए विपरीत चाहिए। अगर तराजू में एक ही पलड़ा रह जाए तो तुम तौलोगे कैसे? दूसरे पलड़े पर भी बाँट चाहिए।

तो जब तुम्हें लगता है संतुष्ट हूँ, तब कहीं न कहीं भीतर असंतोष अभी मौजूद है। उसी की तुलना में लगता है कि संतुष्ट हूँ। जब परम संतोष आता है, तब न तो पता चलता है कि असंतुष्ट हूँ, न पता चलता कि संतुष्ट हूँ। हाँ, कोई पूछे तो बात और! तुम्हें पता नहीं चलता। कोई पूछे कि संतुष्ट हो? तो तुम कहोगे—निश्चित! कोई न पूछे, तो तुम्हारे भीतर यह खबर नहीं आती कि संतुष्ट हूँ। खबर आने का कोई कारण न रहा, कोई प्रयोजन न रहा।

पर तब सवाल उठता है कि साधु होकर सहजोबाई खुद ही कहती है: 'साध सुखी सहजो कहै', तो क्या अभी साधु पूरी नहीं हो पायी?

फर्क है सहजो के वक्तव्य में। सहजो यह नहीं कह रही है कि 'मैं सुखी सहजो कहै'। अगर ऐसा कहती, तो दुःख शेष है। सहजो यह नहीं कह रही है—'मैं सुखी सहजो कहै', यह तो कह ही नहीं रही है। सहजो तो सिर्फ परिभाषा कर रही है, वह अपने संबंध में कुछ कह ही नहीं रही है। वह तो ऐसे ही कह रही है, कि देखो सूरज उग गया, सुबह हो गयी; कि देखो पक्षी गीत गा रहे हैं। अपने संबंध में कुछ भी नहीं कह रही है। एक वक्तव्य दे रही है तथ्य के संबंध में। 'साध सुखी सहजो कहै'—वह यह कह रही है कि साधु सुखी होता है। और, सुख की परिभाषा वही है जो मैंने कही, उसे सुख का पता भी नहीं चलता। साधु सुखी होता है, इतना भर सहजो कह रही है। यह सिर्फ परिभाषा है साधुता की। इसमें अपने संबंध में कोई वक्तव्य नहीं है। इसमें किसी और के संबंध में भी कोई वक्तव्य नहीं है। इसमें तो सिर्फ एक सिद्धांत के संबंध में सूचन है कि साधु सुखी होता है, असाधु दुःखी होता है। अगर किसी को दुःखी पाओ, तो समझना असाधु है। किसी

को सुखी पाओ, तो समझना साधु है। और, मैं तुमसे कहता हूँ, सुखी वही है जिसे पता भी नहीं चलता कि मैं दुःखी हूँ या सुखी हूँ। जिसे सुख-दुःख का पता ही नहीं, वही सुखी है। और वही साधु है।

अभी चार दिन पहले एक महिला आयी। उसने मुझे कहा कि मैं बड़ी दुःखी हूँ अपने पति के कारण। वे दुश्चरित्र हैं। आचरणहीन हैं।

मैंने उससे कहा, 'अगर वे आचरणहीन हैं, तो उन्हें दुःखी होने दे। आचरण-हीनता के कारण वे दुःखी होंगे, तू क्यों दुःखी है? ये तो मैंने सुना ही नहीं कि कोई दूसरा आचरणहीनता करे और कोई दूसरा दुःखी हो। अगर तू दुःखी है, तो कारण तेरे ही भीतर होगा। उनकी आचरणहीनता तेरे दुःख का कारण नहीं हो सकती। उनकी आचरणहीनता उनके दुःख का कारण होगी। लेकिन मैं तेरे पति को जानता हूँ, वे दुःखी नहीं हैं। होंगे आचरणहीन, मगर दुःखी नहीं हैं।'

और मैंने कहा, 'अगर कोई व्यक्ति आचरणहीन होकर भी सुखी है तो तुझ से तो ज्यादा ही साधु है--तू आचरणवान होकर भी सुखी नहीं है। तू तो चमत्कार कर रही है! तेरे पति भी चमत्कार कर रहे हैं! वे आचरणहीन होंगे, लेकिन सुखी हैं। तू आचरणवान होगी, लेकिन दुःखी है। तेरे आचरणवान होने में भी कोई आचरणहीनता है, और तेरे पति की आचरणहीनता में भी कोई आचरण है। अन्यथा जो हो रहा है वो नहीं हो सकता।'

तो मैंने उससे कहा, 'इसे तू कसौटी मान कि जब भी तू दुःखी है, समझना कि कुछ असाधु तेरे भीतर है। क्योंकि असाधु होने के साथ ही दुःख जुड़ा है। तू अपने पति की आचरणहीनता से दुःखी नहीं। तू अपनी अपेक्षा से दुःखी है--पति आच-रणवान होने चाहिए। तू इस कारण दुःखी है कि तू सोचती है, तू इतनी आचरण-वान है, इतना कष्ट झेल रही है संयम का और आचरण का, और पति मजा कर रहा है। मजा तू भी करना चाहती है। भीतर तू भी वही चाहती है जो पति कर रहा है, लेकिन उतनी तेरी हिम्मत नहीं है।

तू दुःखी अपने कारण हो रही है। अगर आचरणहीन होना हो आचरणहीन हो जा, मगर दुःखी मत हो कम से कम। सुखी होना हो सुखी हो जा, मगर यह आचरणवान होने का बोझा मत ढो।

और, मेरी अपनी समझ यह है कि अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन में सुख की तलाश करता रहे तो आचरणवान अपने-आप हो जाता है, क्योंकि सुख फलता ही नहीं जब तक आरचणहीनता हो। मैं तुमसे आचरणवान होने को नहीं कहता, मैं तुमसे सुखी होने को कहता हूँ। क्योंकि आचरणवान होने को तुमसे सदियों से कहा

गया है। तुम सिर्फ दुःखी हुए हो, कुछ भी न हुआ।

मैं तुमसे सुखी होने को कहता हूँ। सुखी मेरे लिए मापदंड है।

तुमसे कहा गया है सदा कि अगर पुण्य करोगे तो सुख मिलेगा। मैं तुमसे कहता हूँ, सुखी हो तो तुम पुण्यवान हो। तुमसे कहा गया है, पाप करोगे तो दुःख पाओगे। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम दुःखी हो, (तो) तुम पापी हो।

दुःख पाप है, सुख पुण्य है।

और, जब कोई व्यक्ति ठीक से देखने लगता है तो सहजो की परिभाषा समझ में आ जाएगी। सहजो अपने संबंध में कुछ भी नहीं कह रही है। अपने संबंध में कहती तो मैं सहजो पर बोलता ही नहीं, बात ही बेकार थी फिर। अगर वह यह कहती--'मैं सुखी सहजो कहै', तो यह तो साफ था कि यह औरत अभी भी दुःखी है, ढाँक रही है, सुख की कल्पना कर-करके अपने को समझा रही है। तो ये बात भले सुख की करती, तुम उसके चेहरे पर दुःख पाते। लेकिन सहजो अपनी बात ही नहीं करती।

अगर ठीक समझो, तो सुखी आदमी अपनी बात ही नहीं करता। सिर्फ दुःखी आदमी अपनी बात करते हैं। तुम्हें भी पता है। दुःखी आदमी से मिल जाओ, वह बात ही किये चला जाता है, अपना दुःख रोए चला जाता है। तुमने कभी किसी आदमी को सुख हँसता हुआ पाया?

दुःख रोते हुए लोग पाये जाते हैं, सुख हँसता हुआ कोई नहीं पाया जाता।

सुख को भी क्या किससे कहना? सुख को लोग सँभालते हैं। कबीर ने कहा है: 'हीरा पायौ, गाँठ गठियायौ'। मिल गया हीरा, आदमी अपनी गाँठ में बाँधकर नदारद होता है। भीड़-भाड़ में कहता नहीं फिरता कि हीरा मिल गया। जिसको सुख मिलता है, वह गाँठ में बाँधकर नदारद हो जाता है। दुःखी आदमी चिल्लाता है कि बड़ा दुःखी हूँ। दुःखी चिल्लाता है, क्योंकि सोचता है शायद कहने से दुःख कम हो जाए। सुखी सँभालता है, क्योंकि सँभालने से सुख बढ़ता है।

सुख तो बीज है। उसे छिपा लो गहरे में, अपने अंतस् में--फूटेगा, बढ़ेगा, उसमें बड़े फल आएँगे, बड़े फूल लगेंगे।

अगर सहजो ने कहा होता--'मैं सुखी सहजो कहै', तो मैं सहजो पर बोलने-वाला नहीं था। बात ही बेकार हो गयी। नहीं, उसने अपनी तो बात ही नहीं कही है। वह तो सिर्फ एक शुद्ध वैज्ञानिक परिभाषा कर रही है--'साध सुखी सहजो कहै'--'साधु सुखी होता है, ऐसा सहजो का कहना है'।

अगर इसका तुम गहनतम अर्थ समझो तो इतना ही है कि तुम सुखी हुए, तुम

साधु हुए । और, सुख की क्या परिभाषा है वह मैं तुमसे कहता हूँ । सुख की परिभाषा है, जहाँ तुम्हें पता ही न चले; क्योंकि पता ही दुःख का चलता है । सुख का कहीं पता चलता है ?

सिर में दर्द होता है, सिर का पता चलता है । जब सिर में दर्द नहीं होता तब सिर का पता चलता है ? अगर सिर बिल्कुल स्वस्थ होता है तो पता ही नहीं चलता कि कहाँ है । वह तो थोड़ा बोझ हो, भारी हो, दर्द हो, कुछ तकलीफ हो, कोई चिंता हो भीतर, अड़चन हो, तो सिर का पता चलता है । सिर याने सिरदर्द । सिरदर्द से अलग और सिर कहीं होता नहीं । जिसका सिरदर्द बिलकुल ही नहीं है वह बिना सिर का है, उसका कोई सिर नहीं है । जब शरीर का पता चले तो शरीर रुग्ण है । स्वाँस का पता चलता है जब कोई तकलीफ होती है स्वाँस में । नहीं तो स्वाँस चलती जाती है, किसको पता चलता है ? जितना ही तुम स्वस्थ हो, उतना ही शरीर का पता नहीं चलता ।

और यही, मैं तुमसे कहता हूँ, भीतर का भी सूत्र है । तुम्हें अगर बहुत पता चलता है कि मैं हूँ, तो तुम समझना कि तुम्हारी आत्मा बीमार है । मैं का पता चलना आत्मा की बीमारी है । जब तुम होते हो--पता ही नहीं चलता मैं का--तब आत्मा स्वस्थ हुई, तब तुम घर लौट आए ।

इसलिए बुद्ध ने भी ठीक ही कहा कि आत्मा है ही नहीं । वह स्वस्थ आत्मा की परिभाषा है--'अनत्ता'--अनात्मा । आत्मा कहने में ही रोग आ गया । वे कहते हैं कि मैं--आत्मा का अर्थ मैं--तो मैं का पता चलता है, अभी थोड़ी गड़बड़ है । बिलकुल पता नहीं चलता, कोरा आकाश रह जाता है, शून्य ।

'साध सुखी सहजो कहै' ।

चौथा प्रश्न : अद्वैत को उपलब्ध सहजो कहती है--'भक्ति करै निहकाम' । पर, प्रश्न उठता है कि भक्त और भगवान अलग कैसे रहे ? कृपापूर्वक इसे स्पष्ट करें ।

'भक्ति करै निहकाम'--निष्काम भक्ति । तो भक्ति दो तरह की हो सकती है । एक सकाम, एक निष्काम । सकाम का अर्थ है, कोई माँग । निष्काम का अर्थ है, कोई माँग नहीं । निष्काम का अर्थ है, भक्ति में ही आनंद है । नाचते हैं, गीत गाते हैं, नर्तन, कीर्तन, भजन अपने-आप में ही लक्ष्य है । गीत गाते हैं, गीत गाने में मजा है इसलिए । नाचते हैं, नाचने में मजा है इसलिए । नाचने के पार कोई पुरस्कार नहीं है । नाचने के बाद परमात्मा से हम प्रतीक्षा न करेंगे कि इतनी देर नाचे अब पुरस्कार मिल जाए, अब घर जाएँ ।

भक्त का नृत्य कोई नर्तकी का नृत्य नहीं है, जो नाच रही है और राह देख रही

है, कुछ मिल जाए । भक्त का नृत्य अस्तित्व का नृत्य है, जो कुछ माँगने को है ही नहीं आगे । नृत्य आखिरी घड़ी है आनंद की, अहोभाव है ।

तो निष्काम भक्ति का अर्थ है, भक्ति ही आनंद है । सकाम भक्ति का अर्थ है, भक्ति साधन है पाना कुछ और है; अगर वह मिलेगा तो आनंद मिलेगा । लड़का पैदा नहीं होता, लड़का हो जाए; मुकदमा जीत जाएँ अदालत में; धन पास में नहीं, धन मिल जाए । पद मिल जाए, चुनाव जीत जाएँ, कुछ हो जाए । चुनाव के वक्त सभी राजनेता सद्‌गुरुओं की तलाश में निकल जाते हैं, किसी का आशीर्वाद मिल जाए ! मंदिरों में पहुँच जाते हैं, मंत्र-तंत्र करने लगते हैं, ज्योतिषियों से मिलने लगते हैं । दिल्ली में ऐसा एक राजनेता नहीं जिसका अपना ज्योतिषी न हो । जो उससे पूछताछ न करता हो कि जीतेंगे कि नहीं--कौन सा मंत्र बाँधें, कौन सा ताबीज बाँधें, कहाँ से राख लाएँ, किस साईंबाबा के चरण में पड़ें ? कहीं से कोई तरकीब मिल जाए । लेकिन, यह जो भक्ति है, इसको भक्ति कहोगे ? यह तो नाम-को भक्ति है । यह तो भक्ति को बदनाम करना है, नाम भी न हुआ ।

सहजो कहती है, 'भक्ति करै निहकाम' । 'जो बोलै सो हरिकथा, भक्ति करै निहकाम ।' बोलना ही हरिकथा--शब्द-शब्द उसीकी याद है । चुप रहे तो भी उसीकी याद है । बोले तो, न बोले तो । और, भक्ति अब जीवन का ढंग है, वह जीवन का आनंद है ।

अब तुम्हें समझना है तुम्हारा प्रश्न ।

प्रश्न उठता है कि भक्त और भगवान अलग कैसे रहे ? जब निष्काम भक्ति हो गयी और सहजो अद्वैत को उपलब्ध हो गयी, एक को पा लिया, तो अब किसकी भक्ति ?

निष्काम भक्ति में माँग तो चली ही जाती है, वह किसकी भी पूछना गलत है । निष्काम भक्ति में भगवान भी नहीं है । भक्ति ही भगवान है । निष्काम भक्ति का अर्थ यह नहीं कि वह भगवान के लिए भक्ति हो रही है, कि भगवान के सामने भक्ति हो रही है । निष्काम भक्ति--जब तुम्हारी ही कोई कामना ही न रही, तो कौन भक्त और कौन भगवान; कौन लेनेवाला, कौन देनेवाला ? वह तो तुम्हारी कामना के कारण तुम भिखारी थे और कोई भगवान था । जब तुम्हारी कामना ही चली गयी, तो अब कौन भगवान है और कौन भक्त है ? भक्त उसी दिन मिट जाता है जिस दिन कामना मिट जाती है । तब तो दोनों किनारे खो जाते हैं, बीच की धारा रह जाती है । वह बीच की धारा का नाम भक्ति है ।

प्रेमी भी खो जाता है, प्रेमिका भी खो जाती है, प्रेम रह जाता है । ध्यानी खो जाता है, ध्यान का विषय खो जाता है, ध्यान रह जाता है । जिसको हम अद्वैत कहते

हैं उससे तुम यह मत समझना कि भक्त बचता है, या भगवान बचता है। वे तो दोनों द्वैत के ही हिस्से थे, भक्त और भगवान। न तो भक्त बचता, न भगवान बचता। दोनों के बीच कोई एक नयी ही घटना घटती है, वह भक्ति है।

'भक्ति करै निहकाम'। अब सहजो--नाचती तुम अगर कहीं उसे पाओ--मिल जाए, तो उससे यह मत पूछना, किस भगवान के लिए नाच रही है? वह कहेगी, नाचना भगवान है। तुम उससे यह मत पूछना कि तू किसलिए नाच रही है? वह कहेगी, मैं नहीं हूँ, नाचना ही बचा है।

नाचने में उस तरफ से भगवान भी खो गया, इस तरफ से भक्त भी खो गया। भक्ति अब निष्काम हो गयी। जब तक मैं रहूँगा, तब तक थोड़ी कामना तो रहेगी। मेरे मिटने पर ही कामना मिटेगी। और, अगर कामना पूरी मिट जाए तो मेरे बचने का कोई उपाय न रहेगा।

तो, पहले तो भक्ति के दो रूप--सकाम भक्ति, जिसको भक्ति कहना ठीक नहीं; फिर निष्काम भक्ति। फिर निष्काम भक्ति के भी दो चरण हैं। एक, जब भक्त कुछ भी नहीं माँगता सिर्फ भगवान को माँगता है। लेकिन वह भी माँग है। भक्त कहता है, न धन चाहिए, न पद चाहिए, न प्रतिष्ठा चाहिए, बस तुम्हीं को चाहिए। यह कामना बड़ी शुद्ध हो गयी है, कोई अशुद्धि न रही इस कामना में, लेकिन कामना फिर भी कामना है।

मैंने सुना है, एक सम्राट युद्ध के लिए गया। जब वह वापस लौटने लगा देशों को जीतकर, अनंत-अपार संपदा को लेकर, तो उसने अपने घर खबर भेजी। उसकी सौ पत्नियाँ थीं, उसने खबर भेजी कि तुम्हारे लिए क्या ले आऊँ? प्रत्येक अपनी-अपनी आकांक्षा जाहिर कर दे। किसीने कहा कि हीरे-जवाहरात लाना, किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ कहा। अलग-अलग स्त्रियों की अलग-अलग रुचियाँ थीं।

लेकिन, एक रानी ने कहा कि बस, तुम आ जाओ। और कुछ भी नहीं चाहिए। तुम जल्दी घर लौट आओ।

निश्चित ही सभी रानियों के लिए वह सब कुछ लाया। लेकिन, यह रानी उसे बड़ी प्रीतिकर हो गयी। इसने कुछ भी न माँगा। उसने सिर्फ उसीको माँगा।

इसका प्रेम उन सबसे ज्यादा शुद्धतम है, लेकिन माँगा तो।

अगर इतनी माँग भी परमात्मा से रह गयी तो भी भक्त मिटेगा नहीं। दोनों के बीच बड़ी शुद्ध रोशनी जलने लगेगी, भक्त और भगवान के बीच बड़ी शुद्धता आ जाएगी, लेकिन दोनों बने रहेंगे अभी। अभी पिघलकर बिल्कुल मिट न जाएँगे।

लेकिन जब भक्त इतना भी नहीं माँगता। क्योंकि भक्त जानता है, माँगना क्या

है, भगवान मिला ही हुआ है! माँगते थे यही भूल थी, माँगते थे इसीलिए नहीं मिलता था, मिला ही हुआ है। जिस दिन इस अहोभाव का जन्म होता है, उस दिन न तो कोई भक्त है, न कोई भगवान है। उसदिन भक्त में भगवान नाचता है। उस दिन नाचने में भक्त और भगवान दोनों लीन हो जाते हैं।

'बोलौं सो हरिकथा'--कहै सो हरिकथा। कबीर ने कहा है: 'उठूं बैठूं परिकरमा'। अब मंदिर में नहीं जाता परिक्रमा करने, उठना-बैठना परिक्रमा है।

ऐसी अवस्था है आखिरी। सब अवस्थाओं के पार। ऐसी अवस्था है, परमानंद।

पाँचवाँ प्रश्न : कामकेंद्रित प्रेम और प्रेमकेंद्रित काम की भिन्नता हमें समझाने की कृपा करें।

कामकेंद्रित प्रेम सीढ़ी से नीचे उतरना है, सीढ़ी वही है। प्रेमकेंद्रित काम सीढ़ी-पर ऊपर चढ़ना है, सीढ़ी वही है। लेकिन, दिशा का भेद है।

जब तुम किसी को इसलिए प्रेम करते हो कि उससे कोई कामना, वासना पूरी करनी है तब प्रेम तो सिर्फ बहाना होता है, फुसलावा होता है, असली नहीं होता। नजर तो काम पर लगी होती है।

रामकृष्ण ने कहा है, चील उड़ती है आकाश में, नजर नीचे घूरे पर लगी होती है; कूड़े-करकट में मरा चूहा पड़ा है, नजर वहाँ लगी है। तुम चील को आकाश में उड़ता देखकर यह मत समझ लेना कि चील बड़ी ऊँची उड़ रही है। वह ऊँची कितनी ही उड़ रही हो, नजर उसकी बड़े नीचे लगी है।

कामकेंद्रित प्रेम आकाश में उड़ती चील है--नजर मरे चूहे पर लगी है। तैयारी कर रही है, जैसे ही मौका मिल जाए झपट जाए।

रामकृष्ण ने कहा है, 'एक दिन मैंने देखा, एक चील एक चूहे को ले भागी। और चीलों ने झपट्टे मारे, चील पर हमले होने लगे। उस चील ने सब तरह के बचाव के उपाय किये, लेकिन कोई बचाव नहीं। क्षत-विक्षत। घबड़ाहट में, संघर्ष में, उसके मुँह से चूहा छूट गया। चूहा छूटते ही बाकी चीलें भी उसे छोड़कर भाग गयीं। वे चूहे के पीछे थीं, उन्हें कोई चील से लेना-देना न था। अब वह चील एक वृक्ष पर बैठकर विश्राम कर रही है।'

रामकृष्ण ने कहा, ऐसी ही दशा उसकी है जो काम को छोड़ देता और प्रेम के विश्राम में बैठ जाता है। फिर उसका कोई पीछा नहीं करता, कोई प्रतिस्पर्धा ही नहीं है फिर, कोई संघर्ष नहीं है। काम में प्रतिस्पर्धा है।

काम में प्रतिस्पर्धा है। प्रेम में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। तुम जैसे ही प्रेम में उठना शुरू होते हो, तुम्हारी नजर नीचे नहीं है अब। सीढ़ियाँ वही हैं, उन्हीं पाय-

दानों पर पैर रखकर ऊपर बढ़ रहे हो, लेकिन ऊपर जा रहे हो। उन्हीं पायदानों पर पैर रखकर कोई तुम्हारे पड़ोस से नीचे जा रहा है। पायदान वही हैं। यह भी हो सकता है। समझो कि नंबर तीन के पायदान पर तुम खड़े हो, और नंबर तीन के ही पायदान पर एक दूसरा आदमी भी खड़ा है। दोनों एक ही पायदान पर खड़े हो। लेकिन, हो सकता है तुम्हारी अवस्था एक न हो। क्योंकि वह दूसरा आदमी नीचे की तरफ जा रहा है, तुम ऊपर की तरफ जा रहे हो। तुम एक ही पायदान पर खड़े हो। कोई भेद नहीं है। लेकिन, नजर अलग-अलग है। और दोनों में बड़ा भेद है, क्योंकि एक ऊपर की तरफ देख रहा है--एक का काम प्रेम बनेगा, प्रेम से करुणा बनेगा। तुम्हारी करुणा का तो तुम्हें पता ही नहीं है। प्रेम भी तुम्हारा नाममात्र को है, वह भी काम बनने के लिए तत्पर है--वह नीचे उतर रहा है।

काम प्रेम को भी डुबा लेता है, प्रेम काम को भी उबार लेता है।

तो ध्यान यह रखना कि तुम्हारे जीवन में प्रेम प्रमुख हो। अगर काम प्रवेश भी करे, तो वह प्रेम का अंग हो। तुम्हारे जीवन में अगर किसीसे शरीर के संबंध भी हों, तो वह तुम्हारे आत्मिक संबंधों की छाया हो। उससे ज्यादा नहीं।

अगर आत्मिक संबंध हो तो शरीर के संबंध भी पवित्र हो जाते हैं--छाया की भाँति। और, तुम्हारे जीवन में अगर शरीर का संबंध ही सब कुछ हो, और आत्मा का संबंध केवल छाया हो शरीर के संबंधों की, तो आत्मा का संबंध भी झूठा हो जाता है। वह भी गंदा और अपवित्र हो जाता है।

ध्यान रखना, दिशा महत्त्वपूर्ण है। श्रेष्ठ के साथ निकृष्ट में भी एक श्रेष्ठता आ जाती है। निकृष्ट के साथ श्रेष्ठ भी डूबने लगता है। स्मरण यही रखना कि श्रेष्ठ की परिधि में तुम्हारी निकृष्टता समाए, निकृष्ट की परिधि में तुम्हारी श्रेष्ठता न समाए। तुम्हारी श्रेष्ठता की परिधि बड़ी हो, उसमें अगर छोटी बातें भी आएँ तो वे उसके भीतर आएँ।

तुमने कभी खयाल किया। एक गरीब आदमी, एक भिखमँगा, उसे तुम एक हीरे की अँगूठी दे दो। कोई देखेगा ही नहीं उसकी अँगूठी की तरफ। लोग समझेंगे, होगा कोई काँच का टुकड़ा। और तुम एक अमीर को, एक सम्राट को काँच के टुकड़े की अँगूठी दे दो, और उसकी अँगूठी पर हजारों लोगों की नजर जाएगी, क्योंकि वे सोचेंगे, होगा कोई कोहनूर हीरा। सम्राट के साथ काँच का टुकड़ा भी कोहनूर हो जाता है, भिखारी के साथ कोहनूर भी काँच का टुकड़ा हो जाता है।

ऐसा ही है। प्रेम के साथ काम भी कोहनूर हो जाता है, काम के साथ प्रेम भी काँच का टुकड़ा हो जाता है।

एम्फॅसिस, जोर, दिशा, उस पर ध्यान देना जरूरी है। तुम क्या करते हो यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, तुम जो करते हो वह किस बृहत्तर योजना का अंग है, वह महत्त्वपूर्ण है। तुम्हारे प्रत्येक कृत्य की अर्थवत्ता, तुम्हारे जीवन की वृहत शैली का परिणाम है। तुम क्या करते हो यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, तुम क्या हो यह महत्त्वपूर्ण है।

एक पुरानी सूफी कथा है।

एक सम्राट गुजर रहा है, वह जंगल में रास्ता भटक गया है। प्रसन्न हुआ देखकर कि एक वृक्ष के नीचे एक आदमी सोया है: शायद इससे रास्ता मिल जाएगा। वह उसके जब पास पहुँचता था, तब उसने देखा उस आदमी का मुँह खुला है—कुछ लोग मुँह खोलकर सोते हैं--और एक साँप उसके मुँह में चला जा रहा है। आखिरी पूँछ ही साँप की सम्राट को दिखायी पड़ी। उसने उठाया अपना कोड़ा और उस आदमी को पीटना शुरू किया। वह आदमी तो नींद से चौंका, और उसे कुछ समझ में न आया, वह हाथ-पैर जोड़े, चिल्लाए, कि ये क्या कर रहे हैं आप? किसलिए मार रहे हैं? मैंने किसीका क्या बिगाड़ा है? हे भगवान! ये कहाँ के दुष्ट से मिलना हो गया! और ये आदमी बलशाली है, बड़े घोड़े पर बैठा है, शक्तिशाली है, इससे लड़ा भी नहीं जा सकता! और उस सम्राट ने उसको मजबूर किया कि आसपास जो भी गंदे फल पड़े थे, सड़े फल पड़े थे, खाओ। तो वह मानता ही नहीं है, वह कोड़े ही लगाए जाता है उस आदमी को जबरदस्ती, वह रो रहा है और खा रहा है; और वह सड़े-गले हैं, दुर्गंध आ रही है; और उसने इतना उसको पीटा और इतने उसको खिला दिये सड़े फल कि उसे वमन हो गया, वह गिर पड़ा। जब उसे वमन हुआ तो उसका साँप उस वमन के साथ बाहर आ गया।

जब उसने साँप देखा तब ..... उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि ये क्या हुआ? तब उसने सम्राट के पैर पकड़ लिए कि तुम्हारी बड़ी कृपा कि तुमने मुझे मारा, और ये गंदे फल खिलाए, लहूलुहान कर दिया मेरे शरीर को। धन्यभाग मेरे! परमात्मा ने तुम्हें ठीक समय पर भेजा अन्यथा मैं मर जाता। लेकिन एक बात मुझे पूछनी है। अगर तुम कह देते कि मैंने साँप खा लिया है, या साँप को निगल गया हूँ, साँप मेरे भीतर चला गया है, तो मैंने तुम्हें गालियाँ न दी होतीं, अभिशाप न दिये होते।

सम्राट ने कहा, अगर मैं कह देता तो साँप का निकालना असंभव हो जाता। तुम घबराहट में ही मर जाते। मेरे मारने से तू मर नहीं गया। अगर मैं कह देता कि तू साँप निगल गया है, तो फिर मैं तुझे फल खिलाने में समर्थ न हो पाता, तू बेहोश ही हो जाता, ये बात ही मुश्किल हो जाती। इसलिए मुझे अपने को संयम

रखना पड़ा कि तुझसे कहूँ न, तुझे मारूँ। वमन पहली चीज है, तेरी फिकर छोड़ दूँ। किसी तरह अगर उल्टी हो जाए तो साँप बाहर फिंक जाए।

इस कहानी के आधार पर सूफियों में कहावत है। वह कहावत तुमने सुनी होगी, कहानी शायद तुमने यह न सुनी हो।

कहावत है: 'नादान दोस्त से दाना दुश्मन बेहतर।'

'नादान दोस्त से दाना दुश्मन बेहतर।' नासमझ दोस्त से समझदार दुश्मन बेहतर। यह आदमी समझदार था। दुश्मन की तरह मालूम पड़ा, क्योंकि दुश्मनी की—मारा, लहूलुहान कर दिया, लेकिन समझदार था। इसकी दुश्मनी के भी फल आए। नासमझ दोस्त होता, जान जाती। असली सवाल दोस्ती-दुश्मनी का नहीं है, असली सवाल समझदारी का है।

मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि समझदारी के बड़े वर्तुल में दुश्मनी भी महत्त्वपूर्ण और कीमती, बहुमूल्य हो जाती है।

प्रेम के संग लग जाए काम, तो काम भी राम तक ले जाने का कारण हो जाता है। और काम के संग लग जाए प्रेम, तो प्रेम जो सदा ऊपर ले जानेवाला है, वह भी नीचे उतारने में कारण बन जाता है। और इस जीवन की कीमिया और गणित को ठीक से समझना जरूरी है, क्योंकि ये जरा नाजुक बात है। इसे तुम ठीक से समझोगे तो ही तुम्हारे जीवन पर इसका परिणाम होगा। सदा ध्यान रखो, तुम जो कर रहे हो वह किसी वृहत्तर इकाई में किस भाँति बैठता है; वह कृत्य तुम जो कर रहे हो वह मूल्यवान नहीं है, वृहत्तर इकाई में उस कृत्य की क्या सार्थकता है, वह कहाँ ले जाएगा अंततः, वह कहाँ पहुँचाएगा अंततः, क्या उसका आत्यंतिक परिणाम होगा? फिर, कई बार तुम ऐसे कृत्य भी कर सकते हो जिन्हें दूसरे गलत कहेंगे, लेकिन तुम जानते हो वह गलत नहीं है। क्योंकि उनसे तुम एक यात्रा कर रहे हो जो तुम्हें श्रेष्ठ की तरफ ले जाएगी। तब जहर का भी उपयोग आदमी अमृत की तरह कर लेता है। तब भले दूसरे ठीक कहें, गलत कहें, यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती; तुम्हारे भीतर एक परिप्रेक्ष्य होता है, एक दृष्टि होती है। तुम जानते हो कि यह जो मैं कर रहा हूँ यह उस वृहत्तर आकाश से जुड़ा है, फिर कोई भय नहीं।

तुम परमात्मा को ध्यान में रखकर करना, क्योंकि उससे बड़ी कोई इकाई नहीं है। परमात्मा याने बड़ी से बड़ी इकाई की हमारी धारणा। तुम उसको ध्यान में रखकर करना तो चोरी भी पुण्य हो जाएगी। और, तुम पुण्य भी करो और अहंकार को ध्यान में रखकर करो, तो पुण्य भी पाप हो जाएगा। छोटी इकाई के साथ मत बाँधना, क्षुद्र के साथ मत बाँधना। क्षुद्र डुबाता है। विराट उबारता है।

इसलिए मैं निरंतर जोर देता हूँ कि संभोग भी करना तो समाधि को ध्यान में रखना। मेरी बात के स्वभावतः भयंकर परिणाम हुए। लोग समझने में असमर्थ हुए। उन्होंने तो समझा कि शायद मैं संभोग की शिक्षा दे रहा हूँ लोगों को।

उन्हींसे तो जीसस भाग रहे थे, जिन्होंने ऐसा समझा।

मैं सिर्फ यह कह रहा हूँ कि तुम अपने क्षुद्र को भी विराट के साथ बाँध देना। बड़ी नाव तुम्हारे क्षुद्र को भी पार ले जाएगी, और अंतिम अर्थों में तुम्हारा क्षुद्र भी निखर आएगा। और, यही तो जीवन की कला होनी चाहिए कि उसमें क्षुद्र भी निखर आए और पवित्र हो जाए। उसमें बुरा भी शुभ हो जाए, और पाप का भी उपयोग हो जाए। कुछ भी फेंकना न पड़े। कहते हैं असली शिल्पी आड़े-टेढ़े पत्थर को भी फेंकता नहीं, उसका भी उपयोग कर लेता है। शिल्पी पर निर्भर है। और अगर तुम्हारे पास जो है उसका तुम उपयोग नहीं जानते, तो तुम आगे कैसे बढ़ोगे? चलना तो वहीं से पड़ेगा जहाँ तुम हो।

संभोग तुम्हारी दशा है, समाधि संभावना है।

संभोग से ही एक-एक कदम समाधि की तरफ रखोगे तो ही पहुँच पाओगे। अगर तुमने ऐसा सोच लिया कि संभोग और समाधि के बीच कोई सेतु नहीं, तो तुम पहुँचोगे कैसे? निश्चित ही अज्ञान और ज्ञान के बीच कोई सेतु होना चाहिए। क्षुद्र और विराट के बीच कोई सेतु होना चाहिए। नहीं तो क्षुद्र तो क्षुद्र ही रह जाएगा, फिर विराट तक जाएगा कैसे? तुम और परमात्मा के बीच कोई रास्ता होना ही चाहिए। परमात्मा तुमसे कितना ही दूर हो लेकिन जुड़ा तो होना ही चाहिए, इतना ही मेरा कहना है। बिना जुड़े तो फिर बात ही खतम हो गयी। तुम कितने ही दूर हो परमात्मा से लेकिन किसी न किसी तरह से तुम उसके पास भी होने चाहिए, अन्यथा फिर भटकाव का अंत ही नहीं हो सकता। फिर तुम घर कैसे वापस लौटोगे? एक धागा भी जुड़ा रह गया हो तो भी काफी है। बस इतना ही मेरा कहना है। समाधि का एक धागा संभोग तक से जुड़ा है। तुम संभोग पर ध्यान मत देना, उस धागे पर ध्यान देना। वही धागा तुम्हें उठा लेगा। एक दिन तुम पाओगे संभोग विसर्जित हो गया, समाधि फलित हो गयी।

काम में भी प्रेम को खोजना। काम में भी प्रेम पर ही ध्यान देना। तुम्हारा ध्यान जिस तरफ होगा वही जीत जाता है। ध्यान भोजन है, ध्यान ऊर्जा है। बुरे से बुरे में भी शुभ को देखने की चेष्टा करना, वही शुभ अतिक्रमण करा देगा।

बड़ा भेद है कामकेंद्रित प्रेम और प्रेमकेंद्रित काम में।

शब्द तो वही के वही हैं दोनों में। कामकेंद्रित प्रेम में भी तीन शब्द हैं: काम,

केंद्रित, प्रेम। प्रेमकेंद्रित काम में भी तीन ही शब्द हैं, वही तीन : प्रेम, केंद्रित, काम। पर कितना अंतर है। एक से संसार बनता है, एक से मोक्ष निर्मित होता है। सीढ़ी वही है। उतरो, संसार मिल जाता है। चढ़ो, परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।

आखिरी प्रश्न : ज्ञानियों ने, बुद्धों ने, भक्तों ने परमात्मा को अनेक रूप, अरूप में देखा और अपने ढंग से नाम भी दिये, जिनमें 'अनाम' और 'नेति-नेति' भी सम्मिलित हैं। दर्शन की यह भिन्नता क्या दृष्टा के व्यक्तित्व की भिन्नता पर निर्भर है?

दर्शन की कोई भिन्नता नहीं है। अभिव्यक्ति की भिन्नता है। जो देखा है, वह तो एक ही है। हाँ, जो कहा है वह अनेक है। 'एकम् सद्विप्रा: बहुधा वदंति'। ज्ञानियों ने उस एक को ही देखा है, कहा बहुत ढंग से है। क्योंकि कहा बहुत ढंग से जा सकता है। देखने के बहुत ढंग नहीं हैं, क्योंकि जब तक देखने का ढंग शेष है तब तक तो वह दिखायी ही न पड़ेगा।

इसे समझना।

जबतक दृष्टि शेष है तबतक दर्शन न होगा। जबतक तुम्हारे पास कोई दृष्टि है, देखने का ढंग है, कोई चश्मा है, तबतक तुम उसे रंग लोगे, तुम वही न देखोगे जो है। तुम वही देखोगे जो तुम देख सकते थे, देखना चाहते थे। तुम अपने को ही आरोपित कर लोगे।

दृष्टिमुक्त होते ही 'दर्शन' उपलब्ध होता है।

जब तुम्हारी कोई आँख न रही। इसका अर्थ जब तुम्हारी आँख शुद्ध हो गयी। जब तुम न हिंदू रहे, न मुसलमान; न जैन, न ईसाई; न पारसी, न सिक्ख। जब तुम्हारी कोई दृष्टि न रही। जब तुम परमात्मा के समक्ष बिलकुल शुद्ध, शून्य हो कर खड़े हुए, कि मेरे पास कुछ दृष्टि नहीं है। मैं सिर्फ दर्पण हूँ, तू जैसा हो वैसा ही झलक। मैं कुछ भी न जोडूँगा, कुछ भी घटाऊँगा न। मेरे पास कुछ है ही नहीं जोड़ने-घटाने को, अब मैं हूँ ही नहीं। अब तू है, और मैं दर्पण हूँ।

जिस दिन दृष्टि मिट जाती है, नय जिसको महावीर ने कहा है वह मिट जाता है, उस दिन उस शुद्ध नय की अवस्था में, उस शुद्ध दृष्टि में 'दर्शन' उपलब्ध होता है। 'दर्शन' तो एक ही है। लेकिन, जब हम उसे कहने जाते हैं तब फर्क आ जाता है। समझो, परमात्मा को देखा किसीने, जाना सत्य को, परम आनंद की वर्षा हुई—'बिन घन परत फुहार'—अमृत बरसने लगा, अब इसको कैसे कहना? जो हुआ है वह इतना बड़ा है, जो हुआ है वह इतना विराट है, समाता नहीं—यह हृदय बहुत छोटा है। सागर ने छलाँग ले ली बूँद में। बड़ी मुश्किल हो गयी है।

अब इसको कहना है।

मीरा नाचकर कहेगी, क्योंकि मीरा को नाच सुगम है, वह उसके व्यक्तित्व में है। यह आनंद की घटना घटी है, मीरा इसे शब्दों में नहीं कहेगी, वह शब्द की मालकिन नहीं है। उसके रोएँ-रोएँ से प्रगट होगा यह आनंद। वह नाचेगी। 'पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे'। और कुछ सूझा नहीं तो उसने पैर में घुंघरू बाँध लिए और नाचने लगी। कोई और उपाय न था। यही उसके लिए आसान था। यही उसके पूरे जीवन का संस्कार था। जब इस पर चोट पड़ी आनंद की तो नाच पैदा हुआ।

बुद्ध नहीं नाचे। वह उनके व्यक्तित्व में न था। जब यह चोट पड़ी आनंद की तो वे चुप हो गये, सन्नाटा छा गया; सात दिन तक बोले ही नहीं। कहते हैं देवताओं ने प्रार्थना की। ब्रह्मा स्वयं आए, चरणों पर गिरे और कहा, 'आप बोलो। क्योंकि ऐसा सदियों में कभी कोई जागता है। वे जो अँधेरे में भटक रहे हैं, उनके लिए तुम्हारी वाणी दीया बनेगी। उनके लिए तुम्हारे शब्द बाहर निकालने का कारण हो जाएँगे। तुम चुप मत रहो।'

लेकिन बुद्ध ने कहा, 'बोलने का कोई मन नहीं है। उस आनंद को मैं चुप रहकर ही कह सकता हूँ। कहने से बिगड़ जाएगी बात। कहने से कह न पाऊँगा। और, मुझे भरोसा नहीं है कि सुननेवाले समझ पाएँगे। मुझसे भी कोई कहता यह बात जो मैंने नहीं जानी थी तब, मैं भी नहीं समझ पाता। यह कही तो जा ही नहीं सकती। इसमें तो चुप ही रहा जा सकता है। जो समझेगा, वह चुप्पी में भी समझ लेगा। और जो नहीं समझेगा, वह कहने से भी नहीं समझेगा।'

बुद्ध ने बड़ी जिद की चुप रहने की। न तो वे नाचने को तैयार थे, न बोलने को तैयार थे। देवताओं ने बड़ा विचार-विमर्श किया कि बुद्ध को किसी तरह बोलने के लिए राजी करना ही होगा। और वे एक तर्क ले आए, जिसका जवाब बुद्ध न दे सके, तो राजी हुए। उन्होंने कहा, 'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। सौ लोग सुनेंगे, निन्यान्नबे नहीं समझेंगे। लेकिन, क्या आप कहते हैं कि एक भी न समझेगा सौ में से?'

बुद्ध ने कहा कि 'जो समझ सकता है मुझे सुनकर, वह मुझे बिना सुने भी देर-अबेर समझ ही लेगा। और, जो समझ ही नहीं सकता मुझे सुनकर, उसे मैं लाख सिर पटकता रहूँ, कुछ परिणाम न होगा।'

देवताओं ने कहा, 'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। लेकिन इन दोनों के मध्य में भी एक व्यक्ति हो सकता है कि जो न सुने, तो बहुत देर तक भटकता रहे, और सुन ले, तो पार लग जाए। उस एक के लिए बोलें। माना कि वह करोड़ में एक

होगा। लेकिन बुद्धत्व तो करोड़ों में एक को ही मिलता है। एक को भी मिल जाए तो बहुत है। उस एक के लिए बोलें।'

तो बुद्ध बोले।

बुद्ध का बोलना बड़ा ही परिमार्जित है। उन्होंने एक भी ऐसी बात नहीं कही जिसको कहने में अड़चन मालूम पड़े। इसलिए उन्होंने परमात्मा की बात नहीं कही। वे बड़े तर्कनिष्ठ हैं, कि परमात्मा की बात कहना ठीक नहीं। कहने से गड़बड़ होता है। और, जिन्होंने अब तक कही है उनको भी शर्त लगानी पड़ती है। जैसे लाओत्से ने कहा--'जो सत्य कहा जा सके वह सत्य ही नहीं है', और फिर कहना पड़ा। तो बुद्ध कहते हैं, जो कहा ही न जा सके उसे कहना ही नहीं। इतना भी मत कहना कि उसे कहा नहीं जा सकता, क्योंकि यह भी तो कहना हो गया। उन्होंने फिर बड़ी परिमार्जित बात कही। शुद्धतम वक्तव्य है बुद्ध का। लेकिन, उसे वे ही समझ पाएँगे जो उतनी शुद्ध प्रज्ञा से भरे हैं।

कोई दूसरा मीरा को समझ पाएगा। उसके नाच से किसीको नाच पकड़ जाएगा। कोई तीसरा किसी तीसरे ढंग से।

नानक को जब ज्ञान हुआ तो अपने एक संगी-साथी को, मरदाना को लेकर निकल पड़े, गाने लगे। कोई प्रश्न पूछता नानक से आकर, कोई पूछता, 'परमात्मा है ?' नानक कहते, 'मरदाना, छेड़।' तो मरदाना अपना वाद्य छेड़ देता और नानक गाते। ये उत्तर होता। पूछता कोई ईश्वर की बात, कर्म की, सिद्धांत की, इसकी, उसकी; वे जब भी कोई कुछ पूछता, वे कहते, 'मरदाना, छेड़।'

ये उनका उत्तर था, गीत उनका उत्तर था। क्योंकि वे कहते कि बात वह इतनी बड़ी है पद्य से न कही जा सकेगी, तर्क से न समझायी जा सकेगी, गाकर ही कही जा सकती है। शायद गीत तुम्हें कहीं चोट कर दे।

तो फिर अनंत-अनंत रूप प्रकट होते हैं। अभिव्यक्ति के वे रूप हैं, 'दर्शन' के नहीं, ध्यान रखना। 'दर्शन' तो एक का ही होता है। लेकिन उस एक की खबर लेकर जब लोग उतरते हैं उस परम आलोक के जगत से, जब आते हैं पृथ्वी पर, जब तुम्हारे बाजार, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद में आते हैं, जब वे तुम्हें देखते हैं—परमात्मा को देखा और फिर जब तुम्हें देखते हैं--तुम दोनों के बीच जब वे माध्यम बनते हैं, तब माध्यम अलग होगा, क्योंकि हर व्यक्ति की अपनी सामर्थ्य है। मीरा नाच सकती है, नानक गा सकते हैं, बुद्ध बोल सकते हैं, शंकर तर्क कर सकते हैं। शंकर ने उठा लिया झंडा और पूरे मुल्क में घूम गये, वे तर्क ही करते रहे। शंकर से बड़ा तार्किक व्यक्ति खोजना कठिन है, परमात्मा को तर्क से समझाते रहे। नास्तिकों

के तर्क का खंडन करते रहे। वह उनकी क्षमता थी। वह तर्कनिष्ठ व्यक्तित्व है।

इस तरह हजार-हजार लोग हुए। उनका दर्शन एक, उनकी अभिव्यक्ति अलग-अलग है। उनकी अभिव्यक्ति पर तुम ज्यादा ध्यान मत देना। अभिव्यक्ति में जो छिपा है--नानक जो गाकर कह रहे हैं, मीरा जो नाच कर कह रही है, बुद्ध जो बोल कर कह रहे हैं, शंकर जिसके लिए तर्क दे रहे हैं--उसके लिए न तो तर्क दिया जा सकता है, उसके लिए न तो बोलकर समझाया जा सकता है, उसे न गाकर समझाया जा सकता है, उसे न नाचकर बताया जा सकता है; वह अवक्तव्य है--उसके संबंध में कोई वक्तव्य नहीं हो सकता। लेकिन, परमात्मा की तरफ देखो, तो वक्तव्य नहीं हो सकता; तुम्हारी तरफ देखो, तो वक्तव्य देने की जरूरत मालूम पड़ती है। परमात्मा की तरफ देखो, तो चुप रह जाओ--कुछ कहने को नहीं है; तुम्हारी तरफ देखो, तो लगता है बहुत कहने को है--शायद कोई सुन ले। शायद ही है वह बात--शायद, कोई सुन ले। पर वह 'शायद' प्रयोग करने जैसा है।

अज्ञानी 'यदि' में जीता है और ज्ञानी 'शायद' में।

इसे तुम समझो। अज्ञानी अक्सर सोचता रहता है, यदि ऐसा होता, यदि वैसा होता—अतीत के बाबत, कि यदि मैंने ऐसी बात की होती, तो ऐसा परिणाम हो जाता। यदि मैंने यह जुआ खेल लिया होता तो इतना पैसा पा जाता, यदि मैंने लाटरी की यह टिकट खरीद ली होती तो आज लाख रुपये होते। 'यदि'!

मुहम्मद कहते थे कि 'यदि' से तुम पहचान सकते हो आदमी कितना अज्ञानी है। मुहम्मद ने उल्लेख किया है कि एक आदमी को मकान खोजना था। एक मित्र मिला रास्ते पर तो उसने कहा, 'मकान खोजना है, कुछ सहायता करो।' उसने कहा, 'अरे! एक मकान खाली पड़ा है बहुत दिनों से। अभी दिलवा देते हैं। चलो।' वह आदमी बड़ा प्रसन्न हुआ, परेशान था, मकान नहीं मिल रहा था। उसने कहा, 'सौभाग्य से तो यह मित्र मिल गया, और मकान खाली पड़ा है। मकान मिलते कहाँ हैं ?' लेकिन जब वह पहुँचा मकान पर, तब उसकी आत्मा बैठ गयी मकान को देखकर। वह तो एक खंडहर था।

वह मित्र जाकर कहने लगा कि देखो, यदि छप्पर होता इस पर तो तुम मजे से रह सकते थे। और अगर दीवाल भी ठीक-ठीक होती, जरा द्वार-दरवाजे भी लगे होते तो कोई चोरी वगैरह का भी डर नहीं था। और, यदि इसके पास एकाध कमरा और होता तो इतने दिनों के पुराने मित्र हो, मैं भी यहीं तुम्हारे पास रहने आ जाता।'

उस आदमी ने कहा, 'भाई, तुम्हारी बड़ी कृपा है। लेकिन, 'यदि' में रहना

बहुत मुश्किल है। 'यदि' में कोई रहे कैसे? मित्रों के पास रहना सदा सुखद है, और तुम मिल गये बड़ा सौभाग्य है, लेकिन 'यदि' में रहना बहुत मुश्किल है।'

अज्ञानी 'यदि' में रहता है और ज्ञानी 'शायद' में। शायद में भी अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए। अपने लिए तो अस्तित्व में। लेकिन, तुम्हारे लिए एक 'शायद' में। 'शायद' सुन लो, 'शायद' किसी क्षण में तुम्हारा अंतस् जग जाए, चौंक जाए; 'शायद' कोई बात चोट कर जाए; 'शायद' तुम्हारी नींद में कोई चीज खलल बन जाए और तुम आँख खोल दो; 'शायद' तुम्हारा सपना टूट जाए।

तो बुद्ध चालीस वर्ष तक इसी 'शायद' में मेहनत करते हैं। मीरा नाचती है; नानक गाते हैं। अगर वे अपनी तरफ देखें तो अब कुछ करने को नहीं बचा है, बात खतम हो गयी। न कोई 'यदि' बची है, न कोई 'शायद' बचा है। अगर तुम्हारी तरफ देखते हैं तो लगता है, एक महाकरुणा जनमती है। वही शक्ति जो तुम्हारे भीतर वासना है, ज्ञानी में करुणा बन जाती है। वह रोक नहीं पाता, वह बहने लगती है। और, फर्क भी क्या है? अगर कोई न भी जागा तो कोई हर्ज नहीं है, कोई जाग गया तो बहुत बड़ी घटना है। कोई न जागा तो कोई हर्ज नहीं है।

इस 'शायद' के कारण इतनी अभिव्यक्तियाँ हैं। अगर यह 'शायद' न होता, तो तुम ज्ञानियों की कोई अभिव्यक्ति न पाते। सभीको मौन बैठा पाते। उन्होंने जो जाना है वह तो एक है, लेकिन जिनसे कहना है वे अनेक हैं। और, जिसके द्वारा कहना है उसकी सीमा है। इसलिए भेद हैं। भेद अपनी सीमा के कारण, भेद तुम्हारी समझ के कारण। अनेक को समझाना है। जाना एक को है, बताना अनेक को है। जाना तो एक ही है, लेकिन बताना अनेक तरह से पड़ेगा। और, फिर व्यक्ति की सीमा है। ऐसा ही समझो कि बिजली दौड़ती है पंखे से तो पंखा चलता है; बिजली दौड़ती है बल्ब से तो प्रकाश होता है; बिजली दौड़ती है रेडियो से तो रेडियो में आवाज होती है। बिजली एक है, लेकिन माध्यम जिससे दौड़ती है.....। परमात्मा की बिजली जब दौड़ी मीरा से—'पद घुंघरू बाँध मीरा नाची रे'; परमात्मा की बिजली जब दौड़ी शंकर से, तर्क का बड़ा तूफान उठा। न तो तर्क समर्थ है, न नृत्य समर्थ है, क्योंकि परमात्मा इतना बड़ा है किसी में भी नहीं समाता।

लेकिन कितनी ही छोटी अँगुली हो, चाँद की तरफ इशारा तो हो ही सकता है। फिर अँगुली सुंदर हो तो भी हो सकता है, अँगुली पर हीरे जड़ी अँगूठियाँ हों तो भी हो सकता है, अँगुली दीन-दरिद्र की काली-कलूटी हो तो भी हो सकता है। चाँद की तरफ इशारे में अँगुली के ढंग से क्या फर्क पड़ता है? फर्क तब पड़ता है

जब अँगुली पकड़ लेते हो, और चाँद को भूल जाते हो।

अँगुली मत पकड़ना। सदा ध्यान चाँद की तरफ रखना, अँगुली को भूलना। जो कहा है उसे भूलना, जो नहीं कहा जा सकता उसे याद रखना। जो लिखा है उसे विस्मृत करना, जो नहीं लिखा जा सकता उसे पढ़ना। जो बताने के पार है, फिर भी महाकरुणावान व्यक्तियों ने बताने की कोशिश की है, तुम उनके इशारे को जोर से मत पकड़ लेना, इशारे को भूल जाना। आँख उठाना आकाश की तरफ, देखना आकाश के चाँद को, तब तुम पाओगे मुहम्मद की अँगुली, महावीर की अँगुली कृष्ण की अँगुली, क्राइस्ट की अँगुली––अँगुलियों के भेद हैं, चाँद तो आकाश में एक ही है।

'दर्शन' तो एक है, अभिव्यक्ति अनेक है।

आज इतना ही।

★ ★ ★

पारस नाम अमोल है

प्रवचन ७, प्रातः, दिनांक ७-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत ।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत ।।

प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होइ ।।

सदा रहै चितभंग ही, हिरदे थिरता नाहिं ।
रामनाम के फल जिते, काम लहर बहि जाहिं ।।

पारस नाम अमोल है, धनवंते घर होय ।
परख नहीं कंगाल हूँ, सहजो डारे खोय ।।

सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदै माँहि दुराय ।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ।।

रामनाम यूँ लीजिए, जानै सुमिरनहार ।
सहजो कै करतार ही, जानै ना संसार ।।

एक अति प्राचीन कथा है ।

एक महानगर था । बड़ा उसका विस्तार था । दूर क्षितिज तक फैली हुई उसकी सीमाएँ थीं । लेकिन कहते हैं, हाथ की हथेली में समा जाए इतना बड़ा ही था वह । ऊँचे उसके भवन थे । आकाश को छूती गगनचुंबी इमारतें थीं । लेकिन, प्याज की गाँठ से ज्यादा उसकी ऊँचाई न थी । करोड़ों लोगों का वास था उसमें । लेकिन, जो ठीक से गिनती कर सकते थे, उन्होंने सदा उसकी गिनती तीन मानी । तीन से ज्यादा लोग वहाँ नहीं थे ।

संकट के क्षण थे । अफ़वाह थी कि दुश्मन हमला कर रहा है । तो सारी जनता इकट्ठी हुई, नगर के मध्य के विशाल मैदान में, निर्णय करने को––क्या करना है । लेकिन, जिनके पास आँखें थीं उन्होंने देखा, तीन लोग ही आए । और वे तीन लोग भी बड़े अजीब से थे । भिखमंगे मालूम पड़ते थे । चेहरे उनके विक्षिप्त जैसे लगते थे, जैसे वर्षों से नहाए-धोए न हों ।

और उन तीनों ने विचार-विमर्श किया ।

पहला बड़ा दूरदृष्टि था । एक महाविचारक की तरह उसकी ख्याति थी । उसे चाँद-तारों पर चलती चींटियों के पैर भी दिखायी पड़ते थे, यद्यपि आँख के सामने खड़ा हिमालय दिखायी नहीं पड़ता था । कहते हैं, वह जो दूरदृष्टि व्यक्ति था, वह निपट अंधा था । उसने दूरदृष्टि के नाम से अपने अंधेपन को छिपा लिया था । पास का तो दिखायी नहीं पड़ता था, इसलिए वह दूर का दावा करता था । दूर का किसी को भी दिखायी नहीं पड़ता था, इसलिए कोई विवाद खड़ा नहीं होता था । छोटी-मोटी बातों में वह न पड़ता था । बड़े सिद्धांतों की उसकी चर्चा थी । जीवन के काम आ सके, ऐसी उसने कोई बात कभी कही ही नहीं । परमात्मा, स्वर्ग, मोक्ष, इनसे नीचे वह उतरता ही न था । था परिपूर्ण अंधा, लेकिन ख्याति थी दूरदृष्टि दार्शनिक की ।

उनमें जो दूसरा व्यक्ति था, उसे चाँद-तारों का संगीत सुनायी पड़ता था;

यद्यपि सिर के ऊपर गरजते बादलों की उसे कोई खबर न होती थी। वह महा-बधिर था। उसे सुनायी पड़ता ही नहीं था। और, अपने बहरेपन को छिपाने के लिए उसने सूक्ष्म-संगीत के शास्त्र खोज लिए थे, जो किसीको भी सुनायी नहीं पड़ते थे, बस उसे ही सुनायी पड़ते थे।

और उनमें जो तीसरा आदमी था, वह बिल्कुल नंगा था। कहने को उसके पास एक लंगोटी भी न थी। लेकिन वह सदा एक नंगी तलवार अपने हाथ में लिए रहता था, क्योंकि उसे डर था, कोई उसकी संपत्ति न छीन ले। चोरों से वह सदा भयभीत था।

इन तीनों ने विचार-विमर्श किया।

पहले ने अपनी अंधी आँखें दूर आकाश की तरफ लगायीं। उन आँखों में प्रकाश की कोई एक किरण भी न झलकती थी। पर, उसने कहा कि मैं देख रहा हूँ, दूर पहाड़ों में छिपा हुआ दुश्मन बढ़ रहा है, संकट करीब है। न केवल मैं यह देख रहा हूँ कि किस जाति के लोग हमला करने आ रहे हैं, मैं उनकी संख्या भी बता सकता हूँ। खतरा बहुत करीब है और जल्दी कुछ व्यवस्था करनी आवश्यक है।

बहरे ने अपने कान उस तरफ लगाए, जहाँ अंधे ने अपनी आँखें लगा दी थीं। न अंधे के पास आँखें थीं, न बहरे के पास कान थे। और उसने कहा कि मुझे उनकी आवाज सुनायी पड़ती है, पैरों की पगध्वनि सुनायी पड़ती है। इतना ही नहीं, वे क्या बात कर रहे हैं वह भी मुझे सुनायी पड़ रहा है। और इतना ही नहीं, कौन सी बातें उन्होंने हृदय में छिपा रखी हैं और किसीसे भी नहीं कहीं, उन्हें भी मैं सुन पा रहा हूँ। प्रगट तो मुझे सुनायी पड़ रहा है, अप्रगट भी मुझे सुनायी पड़ रहा है। खतरा भयंकर है।

नंगा आदमी उछलकर खड़ा हो गया। उसने अपनी तलवार घुमानी शुरू कर दी। उसने कहा कि मैं निश्चित जानता हूँ दुश्मन किसलिए आ रहा है। हमारी संपत्ति पर उनकी नजर लगी है। चाहे प्राण रहें कि जाएँ, लेकिन संपत्ति की रक्षा करनी ही होगी। और तुम बेफिकर रहो, ये मेरी तलवार, ये तलवार किसलिए है!

ऐसी एक बड़ी प्राचीन कथा है। इसे जब भी मैंने पढ़ा है, तभी बड़ी मधुर और प्रीतिकर लगी है। बड़े इंगित इसमें छिपे हैं, बड़ी अर्थपूर्ण है।

वे तीन आदमी तुम हर एक आदमी के भीतर पाओगे। मनुष्य को हमने पुरुष कहा है। पुरुष का अर्थ होता है : महानगर। 'पुर' से बना है पुरुष। 'पुर' का अर्थ होता है : नगर। मनुष्य एक नगर है। बड़ी वासनाएँ हैं उसकी, बड़ी कामनाएँ हैं, तृष्णाओं का जाल क्षितिज के आगे निकल जाता है। लेकिन एक हथेली में समा

जाए, इतना ही उसका विस्तार है। और बड़े ऊँचे स्वप्न उठते हैं उसमें—आकाश को छू लें—लेकिन प्याज की गाँठ से ऊँचाई ज्यादा नहीं जाती। और इस नगर में करोड़ों-करोड़ों जीवन हैं—एक व्यक्ति में कोई सात करोड़ जीवित अणु हैं। लेकिन, अगर तुम गिनती करने जाओगे, तो तुम तीन ही पाओगे। उन तीन के नाम तुम्हें परिचित हैं। एक का नाम है काम, एक का नाम है लोभ, एक का नाम है मोह। और अगर इन तीन में भी तुम और गहरे झाँकोगे, तो जैसे त्रिमूर्ति तो विदा हो जाती है और सिर्फ परमात्मा रह जाता है, ऐसे काम, लोभ, मोह इन तीनों में गौर से झाँकोगे, तो ये सब भय की ही त्रिमूर्तियाँ हैं। इनके भीतर तुम भय को छिपा पाओगे।

भय ही लोभ बन जाता है। भय ही काम बन जाता है। भय ही मोह बन जाता है। क्योंकि भयभीत आदमी अकेले होने में डरता है, इसलिए मोह के संबंध निर्मित करता है। पत्नी, पति, भाई, मित्र, बंधु, बेटा, माँ, जाति, वर्ण, समाज, देश ऐसे बनाता जाता है। ये मोह के फैलाव हैं। अकेले में डर लगता है। अकेले में भीतर का भय प्रगट होता है। किसी के साथ होते हैं, साथ-संग में भूल जाता है, डूब जाते हैं।

इसी भीतर के भय के कारण कामवासना का जन्म होता है। कामवासना का अर्थ है, भय चेष्टा कर रहा है कुछ पाने की, जिससे कि भय से साक्षात्कार न हो। धन पाने की, पद पाने की, प्रतिष्ठा पाने की, प्रेम पाने की चेष्टा कर रहा है ताकि भीतर का खालीपन जो भयभीत कर देता है, वह भर जाए। बाहर भरने की कोशिश मोह, भीतर भरने की कोशिश काम। और, लोभ पैदा होता है भय से। जो है यह छूटे न, जो नहीं है वह मिल जाए। जो है उसे पकड़े रहूँ, उसमें से रत्ती भर खो न जाए; और जो नहीं है वह सब मिल जाए, उसमें से रत्ती भर छूट न जाए।

इस त्रिमूर्ति के पीछे—काम, मोह, लोभ के पीछे, तुम भय को छिपा पाओगे। और बड़े आश्चर्य की तो बात यह है, जब तुम जनमते हो कुछ लेकर नहीं आते, जब तुम मरोगे कुछ लेकर न जाओगे—नग्न आते हो तुम, नग्न जाते हो तुम—और बीच में नाहक ही तलवार घुमाते हो। पास कुछ भी नहीं है, लेकिन चोर से बड़े भयभीत हो। कोई छीन न ले।

जो तुम्हारे पास है ही नहीं, उसके छीनने का तुम्हें डर क्यों पैदा होता है? इसके पीछे बड़ी गहरी बात छिपी है। उस डर को पैदा करके तुम यह मान लेते हो, तुम्हारे पास जरूर कुछ है। अन्यथा, लोग छीनने को उत्सुक क्यों हैं? इस जटिल

तर्क को समझने की कोशिश करो।

पहले तुम सोचते हो कि दूसरा छीनने आ रहा है, बिना यह सोचे, कि मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो कोई छीन ले। खाली हाथ हूँ। है क्या तुम्हारे पास? किसके पास क्या है? और जो है, वह कभी छीना जा सकता है? तुम ही हो वह। उसे छीनने का कोई उपाय नहीं। जो नहीं है वही छीना जा सकता है, क्योंकि वह भ्रांति है। लेकिन दूसरा पास आता है, तुम डरते हो कि शायद कुछ छीनने आ रहा है; ऐसे ही डर के कारण तुम्हें एक एहसास, एक भ्रांति पैदा होती है कि जरूर मेरे पास कुछ होना चाहिए, अन्यथा वह छीनने क्यों आ रहा है? तुम बचाने में लग जाते हो। तुम बचाने में लगते हो तो दूसरा आदमी भी सोचता है, वही जैसा तुम सोचते हो, कि जरूर तुम छीनने का इंतजाम कर रहे हो।

बड़ी पुरानी मुल्ला नसरुद्दीन की कहानी है। गुजर रहा था एक गाँव के पास से, कि उधर से एक बारात आते देखी--बैंड-बाजे, नंगी तलवारें चमकती हुई, लोग गाते-नाचते--डरा। समझा कि दुश्मन आ गया। तलवारें, बैंड-बाजे! और फिर जब भय होता है तो आँखें वह नहीं देखतीं जो है। उसे फिर युद्ध के ही सब साज-सामान दिखायी पड़े।

वैसे भी जब दूल्हा जाता है तो साज-सामान सब युद्ध का ही होता है। छुरा लटका देते हैं दूल्हे के पास, क्योंकि पुराने दिनों में दूल्हन को लाना एक तरह का बलात्कार था। वह कोई प्रेम तो नहीं था, वह तो जबरदस्ती थी। घोड़े पर बैठ-कर, छुरी-तलवार लटका कर, पागल दूल्हन को लेने जाएँगे। ये कोई समझ की बात है? वो बैंड-बाजे—युद्ध का सबूत, और बाराती जो थे सब लफंगे गाँव के। तो अभी भी बाराती में लफंगापन होता है; भला आदमी भी जाता है बारात में तो लफंगापन आ जाता है। क्योंकि बारात में प्राचीन समय से लफंगे ही जाते रहे। कोई सज्जन आदमी बारात में किसलिए जाएगा? और जाएगा तो उसमें लफंगा-पन उभर आएगा। अच्छे से भले लोग, भले से भले आदमियों को ले जाओ बारात में--मिनिस्टर हों, डॉक्टर हों, इंजीनियर हों--अचानक तुम पाओगे कि बारात कुछ बदल देती है. बारात में सम्मिलित होते से ही बाराती में कुछ गड़बड़ हो जाती है। वह बाराती लिया ही इसलिए जाता था कि वह दूल्हे के साथ लड़ने को तैयार था। लड़की को छीनना था। इसलिए लड़की का बाप झुकता है। वह पुराना हिसाब है। वह झुकने के पीछे इतना ही कारण है, कि छीनने की कोई जरूरत नहीं, हम वैसे ही झुकने को राजी हैं। हम हार गये। इसलिए लड़कीवाला नीचे, और लड़केवाला ऊपर। वे विजेता, और लड़कीवाला हारा हुआ।

आ रही थी बारात। नसरुद्दीन अकेला था। शांत, एकांत क्षण। गाँव के मर-घट के पास था, घबड़ा गया। एक तो मरघट। वैसे ही डर रहा था, और दूसरे ये दुश्मन चले आ रहे हैं। उचका, छलाँग लगाकर मरघट की दीवाल से एक नयी, ताजी खोदी कब्र में लेट कर सो गया। मरे को कौन मारता है। वे लोग निकल जाएँगे, पता भी नहीं चलेगा। जहाँ इतने मुर्दे सो रहे हैं, एक और पड़ा है; कौन फिक्र करता है? और दीवाल भी है।

लेकिन, उन्होंने भी इस आदमी को देख लिया, कि एकदम से ये चौंका, छलाँग लगायी, दीवाल के पार गया—वे भी शंकित हो गये कि कोई दुश्मन है। मालूम होता है छिपा है। बम फेंक दे, कुछ भी कर दे! बैंड-बाजे उन्होंने बंद कर लिए। जब उन्होंने बैंड-बाजे बंद किये तब तो नसरुद्दीन को पक्का भरोसा आ गया, कि बात ठीक है, इन्होंने देख लिया मालूम होता है। वह साँस रोककर पड़ रहा। बाराती सब आ गये, दीवाल पर चढ़कर देखने लगे कि आदमी कहाँ गया। नसरु-द्दीन के प्राण में और संकट पड़ गया, कि जरूर मेरे ही पीछे पड़े हैं। अब तो बिल-कुल पक्का है। अपने रास्ते से जाओ! तुम्हें दीवाल पर चढ़ने की क्या जरूरत है! और जब उन्होंने देखा, कि ये आदमी एक ताजी खुदी कब्र में, जिंदा आदमी, लेटा है--पेट हिल रहा है, साँस हिल रही है--उन्होंने कहा कोई शरारती है। पता नहीं इसका क्या इरादा है! घेर ली कब्र, नीचे झुक गये चारों तरफ से। अब नसरुद्दीन कब तक साँस रोके? आखिर, उसने भी खोली। तो उन्होंने पूछा, 'यहाँ क्या कर रहे हो?' नसरुद्दीन ने कहा, 'यही हम पूछना चाहते हैं। आप यहाँ क्या कर रहे हो?'

उन्होंने पूछा, 'तुम ठीक-ठीक जवाब दो, तुम यहाँ आए कैसे?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'वही मैं भी पूछना चाहता हूँ। तुम अपने रास्ते से जा रहे थे। तुम यहाँ आए कैसे?'

तब तक नसरुद्दीन को भी बात साफ हो गयी कि न तो ये मारनेवाले हैं, न मैं मारनेवाला हूँ, हम एक-दूसरे से भयभीत हो गये हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं अब तुम्हें बता देता हूँ। अपनी तरफ से भी जवाब दे देता हूँ, तुम्हारी तरफ से भी। तुम मेरे कारण यहाँ हो, मैं तुम्हारे कारण यहाँ हूँ।'

जीवन ऐसे ही चल रहा है। तुम दूसरे से डरते हो, दूसरा तुमसे डरा है। और ऐसा डर पे डर बढ़ता चला जाता है।

अमरीका रूस से डरता रहता है, रूस अमरीका से डरता रहता है। भारत पाकिस्तान से डरता रहता है, पाकिस्तान भारत से डरता रहता है। रोज नेतागण

वक्तव्य देते रहते हैं, कि तुमने हथियार खरीद लिए, तुमने यह कर लिया, तुमने वह कर लिया, तुम्हें यह सहायता वहाँ से कैसे मिली? जैसे कि प्राण कँप रहे हैं। जैसे भय के अतिरिक्त जीवन में कुछ अर्थ नहीं है और।

और इस भय के पीछे वे तीन चीजें छिपी हैं। जो नहीं है उसे मान लिया है, है। जो है——ना-कुछ, नंगापन, उसको जोर से पकड़ते हो कि कहीं कोई छीन न ले। एक तो वह है ही नहीं, हो भी तो दो कौड़ी का है। उसको इतने जोर से पकड़ते हो कि कहीं कोई छीन न ले! तुम्हारी पकड़ के कारण ही दूसरे को लगता है, कोहनूर हीरा होगा हाथ में। कोई कौड़ियों को इस तरह मुट्ठी बाँधता है? कौड़ियाँ तो आदमी ऐसे ही छोड़ देता है।

दूसरा छीनने आता है, तुम्हें और भरोसा बढ़ता जाता है कि कोहनूर के पीछे पड़ा है। नहीं तो इतनी जान कोई जोखिम में डालता है? तुम खुद ही भूल जाते हो कि तुम्हारे हाथ में कौड़ियों के सिवाय कुछ भी नहीं है।

फिर लोभ है, जो ऐसी बातें सुन लेता है जो कही ही नहीं गयीं। ऐसी धारणाएँ बना लेता है जिनके लिए तथ्य में कोई सहारा नहीं है।

मेरे पास लोग आते हैं। यद्यपि ध्यान करने आते हैं, लेकिन आते तो बाजार से ही हैं। तो उनका लोभ तो भीतर होता ही है। वस्तुतः ध्यान में भी लोभ के कारण ही उत्सुक होते हैं। धन से नहीं मिला, शायद ध्यान से मिल जाए। घर बनाने से नहीं मिला, शायद मंदिर बनाने से मिल जाए। रुपये गिनने से नहीं मिला, शायद माला के मनके गिनने से मिल जाए। मगर गिनती वही है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि मैं किसीको कहता हूँ कि मिल जाएगा, लेकिन ये मिलने की आकांक्षा बाधा है। परमात्मा से मिलने में बड़ी से बड़ी आकांक्षा जो बाधा बन सकती है, वह उसे पाने की। जरूरत से ज्यादा अधैर्य——कि मिल जाए, अभी मिल जाए। योग्यता के बिना शोरगुल मचाते हो। योग्यता होगी, उस दिन मिल जाएगा। ऐसे लोभियों को मैं एक कहानी कहता हूँ——

मैं कहता हूँ, एक फकीर परमात्मा को उपलब्ध हुआ। जब वह उपलब्ध हुआ, लोगों ने पूछा, 'कैसे पाया?' उसने कहा, मैं तुम्हें अपनी कहानी कह देता हूँ——

मेरे पास बहुत धन था, बहुत संपदा थी। और मैं परमात्मा को पाने की आकांक्षा करता था। एक रात मैंने देखा, एक देवदूत उतरा मेरे स्वप्न में और कहने लगा, 'तुम किस चेष्टा में लगे हो?' तो मैंने कहा, 'मैं परमात्मा को खोज रहा हूँ, बस, उसीकी तरफ जा रहा हूँ।'

तो उस देवदूत ने कहा, 'इतना बोझ-सामान लेकर तुम न पहुँच पाओगे। ये

तो बहुत भारी है। तुम आकाश में उड़ न सकोगे इसके कारण। ये सब छोड़ दो, तब तुम्हारी यात्रा हो सकती है। ऊँचाई पर चढ़ना हो तो बोझ लेकर नहीं जाया जाता। और परमात्मा से तो ऊँची कोई ऊँचाई नहीं। छोड़ो बोझ।'

सुबह जागा तो, उस फकीर ने अपने शिष्यों को कहा, कि मैं सुबह जागा तो मैंने सब धन छोड़ दिया, सिर्फ एक लंगोटी बचा ली। रात फिर सपना आया, फिर वही देवदूत। उसने पूछा, 'अब क्या इरादे हैं?' तो मैंने कहा, 'जो तुमने कहा वह मैंने पूरा किया। सब छोड़ दिया।' उस देवदूत ने कहा, लेकिन यह लंगोटी तुमने कैसे बचा ली?'

सब में लँगोटी न आयी।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, तुम्हारा 'सब' लँगोटी में बच जाएगा। तुम्हारी जितनी पकड़ थी धन पर, मकान पर, वह सारी की सारी पकड़ अब लंगोटी में आ जाएगी। मुट्ठी तो तुम्हारी वही रहेगी। तुमने हीरे छोड़ दिये, लंगोटी पकड़ ली। इससे न चलेगा। लंगोटी की क्या जरूरत परमात्मा के पास ले जाने की? नग्न उसने तुम्हें भेजा, नग्न वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा। वह कोई जमीन के कानून थोड़े ही मानता है कि नंगे कहाँ चले आ रहे हो? नहीं तो महावीर को प्रवेश ही नहीं करने देता। डायोज़नीज़ को बाहर निकाल देता।

उसने तुम्हें पैदा किया है, उससे क्या छिपाना है? लंगोटी किसलिए? या तो तुम कुछ छिपाना चाहते हो, या अपने मोह को छोड़ नहीं पाते हो, चलो लंगोटी पर ही लटका लेंगे।

इतनी खूँटी भी काफी है। यह भी छोड़ो। जिसको उसकी यात्रा करनी है, उसे परिपूर्ण शून्य होकर जाना होता है।

दूसरे दिन सुबह फकीर ने लंगोटी भी छोड़ दी। रात सोया, फिर स्वप्न आया, देवदूत दिखायी पड़ा। उसने पूछा, 'अब क्या इरादे हैं?' फकीर ने कहा, 'अब क्या इरादा है! वहीं जा रहा हूँ, परमात्मा को खोजने का।' उसने कहा, 'अब जाने की जरूरत नहीं। अब तुम जहाँ हो वहीं रहो, परमात्मा खुद आ जाएगा। अब तक जाने की जरूरत थी, क्योंकि तुम बोझ से लदे थे। इसलिए मैंने तुमसे कहा, बोझ छोड़ो अगर जाना है। और तुमने सभी छोड़ दिया। अब जाने का कोई सवाल ही नहीं है। अब उसे जब आना होगा, आ जाएगा।'

जिस दिन तुम्हारी पात्रता पूरी होती है, वह आ जाता है। उसमें क्षण भर देर नहीं होती। देर का कोई उपाय नहीं है।

तो मेरे पास आ जाते हैं ध्यान करने, वे कहते हैं, 'जल्दी है। कितने दिन में

हो जाएगा?' मूर्च्छा तुमने जन्मों-जन्मों तक साधी, ध्यान तुम पूछते हो कितनी देर में हो जाएगा? उनको मैं कहता हूँ कि 'मत घबड़ाओ, थोड़ा धैर्य रखो, ये जल्दी मत करो।' दो-चार दिन के बाद वे फिर पूछते हैं, 'अभी तक हुआ नहीं।' मैं उनको कहता हूँ, 'यही जल्दी बाधा है। चार दिन में परमात्मा को पाना चाहते हो, कुछ तो थोड़ा सोचो। कुछ हिसाब तो रखो। माँग की भी कोई सीमा तो हो।' उनकी बात समझ में आ जाती है। तो वे कहते हैं, 'याने, अगर हम बिल्कुल ही खयाल छोड़ दें पाने का, तो मिल जाएगा।' मैं कहता हूँ, 'निश्चित मिल जाएगा।' तो वे कहते हैं, 'अच्छा छोड़ा।'

लेकिन छोड़ रहे हैं वे पाने के लिए। फिर दो-चार-आठ दिन बाद कहते हैं, कि 'छोड़ के भी नहीं मिला। आपने कहा था छोड़कर..., छोड़ दिया, फिर भी नहीं मिला।'

अगर छोड़ ही दिया, तो अब मिलने का सवाल कहाँ से आता है। छोड़ा है ही नहीं। वह छोड़ा भी था लोभ के ही एक अंग की तरह, कि चलो, अगर यही शर्त पूरी करनी है ये भी पूरी किये देते हैं, लेकिन पा के रहेंगे।

तुम्हारे त्यागी, तुम्हारे संन्यासी-साधु बाजार के ही दूकानदार हैं। जैन-मुनियों के नाम बदलते नहीं वे। मुझे पसंद है ये बात एक लिहाज से। मैं अपने संन्यासियों के नाम बदलता हूँ, किसी और कारण से। लेकिन जैन-मुनियों की बात भी मुझे जँचती है। दुकानदार का नाम था छोटेलाल जैन, फिर वे हो जाते हैं 'मुनि छोटेलाल जी महाराज साहब'—मगर रहते दूकानदार ही हैं। ये बात मुझे जँचती है। कोई खाश फर्क नहीं पड़ रहा है, वही 'छोटेलाल जी महाराज साहब'। दूकान से उठ गये हैं। कुछ जुड़ भले गया हो, घटा कुछ भी नहीं है। छोटेलाल जी थे पहले, अब 'छोटेलाल जी महाराज साहब' हैं। कुछ जुड़ भले गया हो, घटा कुछ भी नहीं। छूटा कुछ भी नहीं, कुछ और भले पकड़ लिया हो। वही लोभ है, उसी लोभ की आकांक्षा है। तप करते हैं, उपवास करते हैं, व्रत करते हैं, लेकिन ये सब सौदा है। वे ये कह रहे हैं, देखो कितना कष्ट उठा रहा हूँ, अब तो देर मत करो, अब और क्या चाहिए? इतना जला रहा हूँ अपने को, अब कैसी देर हो रही है? वे दाँव लगा रहे हैं। वे सौदा पटा रहे हैं। वे मोल-भाव कर रहे हैं, कि सौ उपवास कर लिया, अब तक नहीं मिले; अच्छा, अगले वर्ष दो सौ करेंगे। ये सौदा चल रहा है। ये मन का हिसाब और गणित चल रहा है।

लोभ बड़े दूर तक पकड़ता है।

तो, या तो तुम भयभीत हो उस चीज के खो जाने से जो तुम्हारे पास नहीं,

या तुम लोभ से भरे हो उसे पाने को जिसे पाया नहीं जा सकता। और, या तुम मोह के संसार खड़े कर रहे हो, जिसको सहजो कहती है—मृगमरीचिका खड़ी कर रहे हो। एक झूठे सपने बना रहे हो, जो हैं नहीं। किसीको कहते हो 'मेरा'। कौन किसका है? यहाँ अपना ही कोई अपना नहीं। लेकिन तुम भरोसा कर लेते हो, 'मेरा' है। ऐसा 'मेरे' के भरोसे से 'मैं' को बल मिल जाता है, कि मैं भी हूँ। तुम्हारा 'मेरा' 'मैं' का ही भोजन और सहारा है।

इसलिए कहानी मुझे प्रीतिकर लगती है। ये तीन आदमियों की कहानी है। नंगे का तलवार लेकर खड़े हो जाना, अंधे का दूर से आती सेनाओं को देख लेना, बहरे का न केवल वे जो कह रहे हैं वह सुन लेना, बल्कि वह भी सुन लेना जो उनमें से किसीने अभी कहा नहीं है—ये आदमी की कथा है।

सहजो के वचन इस पृष्ठभूमि में समझने की कोशिश करें।

'मोह मिरग काया बसै'—मोह का मृग मेरे शरीर में बसा है। आदमी के शरीर में बसा है। शरीरमात्र में मोह का मृग बसा है—झूठा। है नहीं, प्रतीत होता है कि है। और तुम दौड़ाए चले जाते हो अपने को।

राम की कथा तुमने सुनी है। राम जंगल गये हैं। झोंपड़े के बाहर खड़े हैं, और देखा एक स्वर्णमृग। वह कहानी तुमने सुनी है। लेकिन, शायद उस कहानी के प्राणों के साथ तुम्हारा कभी कोई संबंध न हुआ हो। स्वर्णमृग होते नहीं। कहीं सोने का कोई हरिण होता है? लेकिन सीता पीछे पड गयी। वह राम से कहने लगी, मैं तो इसे लेकर रहूँगी। वह इतना आग्रह करने लगी कि राम ने कहा, अच्छा। राम है तुम्हारे भीतर का साक्षीभाव, राम है तुम्हारी आत्मा। सीता है तुम्हारा मन। सीता ने कहा, नहीं, लाकर रहो। पीछे पड गयी। स्त्री ने हठ किया होगा। राम भी उसके मोह में पड़ गये, और सोने के मृग को लेने चले गये। ऐसे ही सीता गँवायी। ऐसे ही सीता रावण के हाथ में पड़ गयी। ये तो जाल था।

जो नहीं है उसे अगर तुम खोजने जाओगे, तो जो है वह खो जाएगा। इतना ही सार है उस कथा का। जो नहीं है उसे तुम खोजने जाओगे, तो जो है वह खो जाएगा। स्वर्णमृग तो न मिला, हाथ की सीता भी खो गयी।

'मोह मिरग काया बसै'—वह मोह का हरिण भीतर बसा है, शरीर के रोएँ-रोएँ में बसा है। 'कैसे उबरैं खेत'—इससे पार कैसे होना होगा? यह बड़ा महत्वपूर्ण सवाल है, क्योंकि इसके भीतर पूरे जीवन का गणित छिपा है।

'जो बोवैं सोई चरैं, लगैं न हरि सूँ हेत'—कठिनाई यह है कि जो हम बोते हैं उसीको चरते हैं। जब उसी को हम चरते हैं, तो फिर हम उसी को बोने के लिए

तैयार हो जाते हैं। फिर उसे बोते हैं, फिर उसीको चरते हैं। तो जिसे हम बोते हैं, वह हमारे भीतर फिर आ जाता है भोजन से। फिर हम उसे बो देते हैं, फिर वह तैयार हो जाता है, फिर हम फसल काट लेते हैं——ऐसा कार्य-कारण की एक श्रृंखला बन जाती है। एक 'विसियस सर्कल', एक दुष्ट-चक्र बन जाता है।

तुमने किसीको गाली दी। तुमने बोयी गाली, वह आदमी नाराज हुआ। वह क्रोध से भर गया, उसने तुम्हें दुगुने वजन की गाली दी। जो तुमने बोया, अब चरना पड़ेगा। अब क्या करोगे? गाली दी तो गाली लेनी भी पड़ेगी। जब तुम गाली लोगे, तो फिर क्या करोगे? तुम फिर उपाय करोगे कि और वजनी गाली दें। इसका अंत कहाँ होगा? तुम क्रोध करोगे, क्रोध पाओगे। क्रोध पाओगे, और क्रोध करोगे। तुम लोभ करोगे, लोभ से भरोगे, लोभ बढ़ता चला जाएगा।

'मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत'——सहजो पूछती है, इससे पार कैसे होंगे? इस युद्ध का अंत कैसे होगा? क्योंकि इसके भीतर बड़ा गहरा जाल है——'जो बोवै सोई चरै'। तो अनंतकाल में जो बोया है उसको चर रहे हैं। और चर-चर के फिर उसे बोने के योग्य होते चले जाते हैं। तो इस दुष्ट-चक्र को तोड़ेंगे कैसे? श्रृंखला कहाँ से कटेगी? हम इसके बाहर कैसे आएँगे? अगर यही चलता रहा——और चलता रहा है——'लगै न हरि सूँ हेत', तो हरि से हेत कैसे लगे?

हरि तो कभी बोया नहीं, कभी चरा भी नहीं, तो वह बात तो आकाश में रह जाती है, उससे हमारा कोई संबंध नहीं जुड़ता। बोया हमने मोह, चरा हमने मोह। बोया हमने लोभ, चरा हमने लोभ। बोया हमने भय, चरा हमने भय। इससे तो हमारा संबंध है। संसार तो हमारे भीतर-बाहर हो रहा है। स्वाँस के साथ भीतर जाता है, स्वाँस के साथ बाहर जाता है। परमात्मा का स्मरण कहाँ होगा, जगह कहाँ खाली है?

सहजो ने बड़ा गहरा सवाल उठाया है। इन सवालों को मैं असली सवाल कहता हूँ। ईश्वर ने दुनिया बनायी या नहीं, यह तुम पागलों पर छोड़ दो। ये सवाल व्यर्थ हैं। दो कौड़ी के हैं। बनायी हो तो, न बनायी हो तो, कोई फर्क नहीं पड़ता। असली सवाल तो जीवन के हैं, जीवंत हैं।

'जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत'——बड़ी मुसीबत है, सहजो कहती है, करें क्या? बाहर जाने का रास्ता नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि हम जो कर सकते हैं, वही गलत है। और, गलत करके हमारा गलत होना और भी मजबूत होता है; फिर हम गलत करते हैं, फिर हम और गलत करने को राजी हो गये, कुशल हो गये। ऐसी ही जीवनकथा चली जाती है। इसमें से कहाँ से छलाँग लगे? इसमें

हम कहाँ से बाहर आएँ? 'लगै न हरि सूँ हेत'।

कार्य-कारण की श्रृंखला को समझें।

और, तब ये पूरी प्रवचनमाला तुम्हारे ख्याल में आ जाएगी। इसे मैंने नाम दिया है——'बिन घन परत फुहार'। जब भी आकाश में बादल होते हैं, तभी फुहार पड़ती है। 'बिन घन परत फुहार'? आकाश में बादल न हों तो फुहार कैसे पड़ेगी? लेकिन ऐसी भी फुहार है, जो बिना बादलों के पड़ती है। इसका मतलब हुआ, संसार में कार्य और कारण की श्रृंखला चलती है——बादल होते हैं तो पानी बरसता है। और भीतर एक परम लोक भी है चैतन्य का——वहाँ बिना बादल के भी फुहार पड़ती है। वहाँ बिना कारण के भी कार्य घटित होता है। वहाँ अकारण भी घटनाएँ घटती हैं।

तो बाहर के जगत में तो हर चीज का कार्य-कारण है। भीतर के जगत में सभी कुछ अकारण है। जिस दिन तुम अकारण में प्रवेश करोगे, उसी दिन तुम परमात्मा में प्रवेश करोगे। जब तक तुम कारण की खोज करते रहोगे, तुम संसार में रहोगे। इसलिए विज्ञान कभी संसार के पार न जा सकेगा, क्योंकि विज्ञान कारण की खोज करता है। धर्म कभी विज्ञान न बन सकेगा, क्योंकि धर्म अकारण की खोज करता है। उनकी दिशाएँ अलग, आयाम अलग——अलग ही नहीं बिलकुल विपरीत।

तुमने कभी सोचा, कोई तुम्हारे जीवन में ऐसी घटना कभी घटी है, जो अकारण घटी हो, जिसके लिए तुम कोई कारण न बता पाओ। नहीं, तुमने करीब-करीब सब चीजों के कारण सोच लिए हैं, जहाँ नहीं थे वहाँ भी सोच लिए हैं, क्योंकि आदमी का मन बिना कारण के बड़ा बेचैन होता है। अगर तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये हो, और मैं पूछूँ, 'क्यों?' तो तुम कहते हो, 'उसकी आँखें सुंदर हैं।' तुम यह कह रहे हो कि पहले हमने आँखें जाँचीं, सुंदर पायीं, इसलिए प्रेम में पड़ गये। क्या यह सही है? या बात इससे उल्टी है? तुम प्रेम में पड़ गये, इसलिए अचानक तुमने देखा, आँखें सुंदर हैं। दूसरे को हो सकता है तुम्हारी प्रेयसी की आँखें सुंदर न मालूम पड़ें। नहीं तो दूसरे लोग भी प्रेम में पड़ चुके होते। हो सकता है दूसरों को तुम्हारी प्रेयसी अति साधारण मालूम पड़े। पर तुम्हारे लिए महिमा-आविष्ट है। तुम प्रेम में पड़े तो महिमा-आविष्ट होने के कारण, या तुम्हारे प्रेम में पड़ जाने के कारण महिमा आविर्भूत हुई है?

लेकिन, आदमी का मन चूँकि हिसाब लगाना चाहता है, वह हिसाब बताता है। वह कहता है, इसलिए प्रेम में पड़ गये कि इसका चेहरा सुंदर है, आँख अच्छी है; देखो, इसकी वाणी में कितना माधुर्य है; इसके शरीर में कैसा लावण्य है, अनुपात

है। इसलिए प्रेम में पड़ गये। तुम यह कह रहे हो कि तुमने प्रेम भी कोई गणित के सवाल की तरह हल किया। सब कारण लिखे--इतने-इतने कारण, फिर निष्कर्ष निकाला, एक तर्क की निष्पत्ति ली, कि इतने कारण हैं, ठीक, तो प्रेम करना चाहिए। क्या तुम सोचते हो, इतने कारण जिस स्त्री में भी होंगे उसको तुम प्रेम करोगे ही। बहुत और स्त्रियों में भी यही कारण हैं। इनसे बेहतर कारण हो सकते हैं, लेकिन प्रेम का आविर्भाव नहीं होता।

प्रेम : अकारण। अकारण को तुम स्वीकार नहीं करते क्योंकि तुम डरते हो; अकारण के साथ संसार के बाहर चले। प्रेम का कोई कारण नहीं है, घटता है। बाकी सब कारण पीछे सोचे जाते हैं। तुम किसी व्यक्ति को देखते ही, प्रथम क्षण में ही प्रीतिकर हो उठते हो, या वह तुम्हें प्रीतिकर हो उठता है। न इसके पहले कभी देखा ....।

चार-छः दिन पहले एक मित्र मेरे पास आए, और उन्होंने कहा कि बड़ी अजीब सी हालत हो रही है। एक सज्जन से मिलना हो गया है। मिलते ही ऐसा लगा, जैसा सदा के संगी-साथी हैं। जरूर पिछले किसी जन्म में संग-साथ रहा होगा। अब ये कारण खोजना है। इस जन्म में न मिले, तो भी कारण की खोज बंद नहीं होती। पिछले जन्म में खोजेंगे। लेकिन कारण खोज लेंगे तभी मन को तृप्ति होगी। मैंने उनसे कहा, 'अकारण स्वीकार करने में कोई अड़चन है?' वे कहने लगे, 'बड़ी बेचैनी होती है। कोई तो कारण होगा ही। ऐसा सभी के साथ नहीं होता। इन्हीं के साथ हुआ है। कोई पिछले जन्म का संबंध होना चाहिए।'

इतना मैं कह दूँ कि हाँ, पिछले जन्म का संबंध है, फिर शांति हो गयी! वे इतना ही पूछने आए हैं। वे कहते हैं, 'आप कह दें तो निश्चित हो जाऊँ। एक बेचैनी की तरह अटकी है बात भीतर।'

मन को जब तक कारण न मिले तब तक मन बेचैन रहता है। क्योंकि मन कहता है, बिना कारण कहीं कुछ हो सकता है? 'बिन घन परत फुहार'? नहीं। हो सकता है तुमने बादल देखे न हों, हो सकता है बादल ओट में हों। लेकिन गिरेगी तो फुहार जब भी, तो बादल ही से गिरेगी। हो सकता है हवा का झोंका कुछ बूँदों को उड़ा लाया हो, लेकिन गिरेंगी तो वे मेघ से ही। तुम यह तो मत कहो कि बिना ही मेघ के और वर्षा होती है, हो ही कैसे सकता है?

और यही धार्मिक और अधार्मिक मन का भेद है। अधार्मिक मन बिना कारण के राजी ही नहीं होता।

तो मैंने उन को मित्र कहा, कि ये तुम्हारी अधार्मिक आकांक्षा है कि पिछले

जन्म में...., लेकिन कहीं न कहीं ...। लेकिन, मैं तुमसे पूछता हूँ कि पिछले जन्म में भी तो तुम इनसे पहली दफे मिले होओगे। अब? तब उसके पीछे जाना पड़े। फिर इसका कहाँ अंत होगा? कभी तो तुम पहली दफा मिले होओगे। कभी। अनंत-अनंत जन्मों के पीछे जा-जाकर भी, कभी तो एक दिन पहली मुलाकात हुई होगी, और उस पहली मुलाकात में प्रेम का जन्म हुआ होगा—अन्यथा जन्म होता ही कैसे? तो इतना उपद्रव क्यों करते हो, इसी जन्म को पहला क्यों नहीं मान पाते?

बेचैनी मालूम होती है। संसार है, तो परमात्मा ने बनाया होगा। बिना कारण के तुम परमात्मा को भी स्वीकार नहीं करते। तुम सोचते हो तुम धार्मिक आदमी हो। तुम कहते हो हम परमात्मा को मानते हैं, क्योंकि संसार है तो किसीने तो बनाया होगा। घड़ा होता है तो कुम्हार बनाता है। तुमने परमात्मा को कुम्हार बना दिया। तुम धार्मिक वगैरह कुछ भी नहीं हो!

अगर परमात्मा के बिना बनाए संसार नहीं बनता, कारण चाहिए, परमात्मा महाकारण है। फिर परमात्मा कैसे बनेगा? फिर तुम्हें बेचैनी शुरू होगी, तुम कहोगे परमात्मा की बात और। मगर तुम्हें बेचैनी रहेगी कि बात और हो नहीं सकती, नियम तो एक ही है। तुम्हारे भीतर भी सवाल तो उठेगा, कितना ही दबाओ। उठ-उठकर आएगा कि परमात्मा को किसने बनाया? भय के कारण न पूछो, पंडित-पुरोहित नाराज हो जाते हैं, नरक भेजने की धमकी देने लगते हैं; कोई नरक नहीं जाना चाहता, स्वीकार कर लेते हो कि ठीक है, होगा, हमें क्या लेना-देना, बनाया होगा। लेकिन, अगर तुम संसार को बिना कारण के नहीं मान सकते तो तुम परमात्मा को कैसे मान सकोगे? और, जो परमात्मा को बिना कारण मान सकता है वह फिर किसी भी चीज को बिना कारण मान सकता है।

बिना कारण मान लेना धार्मिक चित्त का लक्षण है। 'बिन घन परत फुहार'— वह धार्मिक चित्त की आत्यंतिक दशा है। वह यह नहीं कहता कि कारण की फिकर करनी। कारण का क्या लेना-देना? हो रहा है। होना अपने-आप में पूर्ण है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा उस दिन तुम पाओगे, जिन-जिन चीजों को कारण से किया जा सकता है वे चीजें तुम्हें संसार के बाहर न ले जाएँगी। जो चीजें अका-रण की जाती हैं वे ही तुम्हें बाहर ले जाएँगी। कारण से बाहर जाना है, अकारण में प्रवेश करना है।

तुम मेरे पास हो, तुम्हारा संबंध कारण का हो सकता है। तुम्हें मेरी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है इसलिए तुम मेरे पास हो, तो तुम्हारा मेरा संबंध सांसा-रिक है। इसमें कोई बहुत मूल्य नहीं है। तुम विद्यार्थी होओगे, मैं शिक्षक। लेकिन

गुरु-शिष्य की घटना नहीं घटी। तुम्हारा संबंध अगर अकारण है, कोई पूछे कि क्यों तुम मेरे पास हो और तुम कंधे हिलाओ, तुम कहो कि हमें खुद ही पता नहीं; कोई कारण नहीं सूझता, पर होना आनंदपूर्ण है; तब तुम्हारे मेरे बीच एक धार्मिक संबंध स्थापित हुआ। हालाँकि लोग तुम्हें पागल कहेंगे, वे कहेंगे कुछ तो कारण दो, बुद्धि खो दी क्या बिल्कुल? बात अच्छी लगती होगी इसलिए पास हो, कोई और कारण ठीक लगता होगा इसलिए पास हो, चिंतन की वैज्ञानिकता मालूम पड़ती होगी इसलिए पास हो, या आदमी ने तुम्हें 'हिप्नोटाइज' कर लिया होगा इसलिए पास हो। कुछ न कुछ कारण तो दो। अगर तुम कारण न दे सको तो लोग कहेंगे, तुम पगला गये हो। और, इसीलिए जहाँ कारण भी नहीं होते वहाँ भी तुम कारण देते हो, क्योंकि अपना पागलपन तो जाहिर नहीं करना है। जहाँ कारण बिल्कुल नहीं होते वहाँ तुम अति आतुरता से कारण देते हो, ताकि किसीको पता न चल जाए कि कोई कारण नहीं है।

श्रद्धा अकारण है। प्रेम अकारण है। परमात्मा अकारण है।

क्षुद्र चीजों के कारण होते हैं, विराट का कहीं कारण होता है! क्षुद्र चीजें एक-दूसरे की शृंखला से बँधी होती हैं, विराट अकेला है। किसी शृंखला से बँधा नहीं है। अपने में काफी है। कारण का मतलब है, तुम अपने में काफी नहीं हो।

तुम्हारे पिता, तुम्हारी माँ अगर न मिले होते प्रेम के एक गहन क्षण में, तो तुम्हारा शरीर पैदा न होता। शरीर का कारण है। शरीर संसार है। लेकिन, तुम्हारे माँ व पिता के मिलने से तुम्हारी आत्मा पैदा नहीं हुई। वह उनके मिलने के पहले भी थी। वह सदा थी।

बुद्ध घर लौटे, ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद। बाप नाराज थे। बाप को तृप्त करना असंभव है। बाप यानी महत्त्वाकांक्षा। बाप ने सोचा था बड़ा सम्राट बनेगा, ये भिखारी बन गया। बुद्ध तक बाप को राजी नहीं कर पाते, तो दूसरा तो कोई क्या राजी कर पाएगा? बाप की आँखों में आग थी। इकलौता लड़का, वह भी बुढ़ापे का—वह भी घर छोड़कर भाग गया। धोखा दिया। दगाबाज है। ये बुढ़ापे के क्षण में हाथ की लकड़ी बनना था; आँखें धुंधली हो गयी हैं, अब मेरी आँख देख नहीं सकती है, तुझे मेरी आँख से देखना था; अब मेरे पैर चलते नहीं, तुझे चलना था। अब मैं जाने के करीब आ गया, ये सब इतना बड़ा साम्राज्य फैलाया, बनाया, इसे किसके लिए छोड़ जाऊँ? आदमी मर के भी जाता है तो भी छोड़ नहीं पाता। अपने लड़के के लिए छोड़ जाता है, जैसे लड़के के माध्यम से मालकियत करेगा। छूट सब रहा है—लड़के को मिले कि न मिले; किसी को

मिले कि न मिले; लुट जाए; कोई फर्क नहीं पड़ता—मरते हुए आदमी के हाथ से सब छूट रहा है, किसको मिलेगा ये बात बेकार है, लेकिन वो भी अपनी वसीयत लिख जाता है। मरते दम तक चेष्टा रहती है कि कुछ कब्जा मरकर भी कायम रहेगा। कम से कम अपना खून, अपना ही एक विस्तार—एक्सटैंसन—वह मालिकियत करेगा।

'और तू घर छोड़कर भाग गया, बीच में अटका दिया। अब हम क्या करें?' बुद्ध के पिता ने कहा, 'देख, मैं बाप हूँ। इस छाती में बाप का हृदय है। तुमने कितनी ही बड़ी भूल की हो—ये भूल है—फिर भी मैं तुझे क्षमा करने को तैयार हूँ। मेरे द्वार बंद नहीं हैं, तू वापस लौट आ, छोड़ ये नासमझी। मेरे हृदय में कितनी पीड़ा होती है तुझे रास्ते पर भीख माँगते देखकर। तू सम्राट होने को हुआ, ये कैसा पागलपन तुझे छा गया।' 'हमारे परिवार में,' बाप ने कहा, 'कभी कोई भिखमंगा नहीं हुआ। सदियों का इतिहास है। हम सदा सम्राट रहे।'

बुद्ध हँसने लगे। उन्होंने कहा, 'आपको चोट लगेगी; लेकिन मैं आपसे कहूँ, आपके परिवार का मुझे पता नहीं मेरे परिवार का मुझे पता है, हम सदा के भिखारी।'

बाप ने कहा, 'बढ़-चढ़कर बात मत कर! मेरे सामने तू छोकरा है। मैंने ही तुझे बड़ा किया है, मेरा ही खून तेरी शरीर में दौड़ता है। मेरी हड्डियों ने तेरी हड्डियाँ बनायी हैं। तू मुझे समझाने की कोशिश मत कर। क्या तेरा मतलब है? तू कहाँ से आया? कौन सा तेरा परिवार? कैसी तू बातें कर रहा है?'

बुद्ध ने कहा, 'हम आपसे पैदा हुए, लेकिन आपसे आए नहीं। आपने शरीर दिया, आत्मा नहीं। आपने शरीर का संयोग निर्मित किया, हम प्रविष्ट हुए। आप एक चौराहा हैं जिससे हम गुजरे। लेकिन हम उसके पहले भी थे। आपके होने से हमारे होने का कोई संबंध नहीं है।'

आत्मा तो पैदा नहीं होती, शरीर ही पैदा होता है। इसलिए शरीर मरेगा, आत्मा मरेगी नहीं। आत्मा अकारण है। वह सिर्फ है। इस जगत में वही शाश्वत है जो अकारण है। वही जल अमृत है जो बिना मेघ के झरा हो। जिस चीज का भी कारण है वह खो जाएगा। क्योंकि कारण जितनी शक्ति देता है उतना ही चलेगा। तुमने एक पत्थर उठाया और फेंका। तुमने जितनी ताकत से फेंका उतनी दूर तक टिक जाएगा—दो सौ कदम, तीन सौ कदम, फिर गिर जाएगा। तुमने एक कारण दिया, तुम्हारे हाथ से शक्ति मिली। वह शक्ति चुक जाएगी, पत्थर गिर जाएगा। बच्चा पैदा हुआ, सत्तर साल चलेगा—माँ-बाप ने अपनी जीवन की ऊर्जा दी, सत्तर साल में चुक जाएगी, समाप्त हो जाएगा।

लेकिन, यह जगत तो चलता ही रहेगा। अनंत सृष्टियाँ होती हैं, मिटती हैं, बनती हैं। अस्तित्व बना रहता है। पृथ्वियाँ आती हैं, उजड़ जाती हैं। चाँद-तारे बसते हैं, खो जाते हैं। प्रतिपल, वैज्ञानिक कहते हैं, नये सूरज पैदा हो रहे हैं, पुराने सूरज खो रहे हैं। यह चलता ही रहता है। अस्तित्व कभी मिटता नहीं। ये अस्तित्व अकारण है; अन्यथा सनातन न हो सकेगा।

जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह अकारण है।

तो मैं तुमसे नहीं कहता, कि तुम सोचना कि परमात्मा ने संसार बनाया, इसलिए हम परमात्मा को स्वीकार करते हैं। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम इस तरह सोचना कि जो नहीं बनाया गया है वही परमात्मा है। ये संसार भी उसीका हिस्सा है, कभी बनाया नहीं गया। ये लहरें जो दिखायी पड़ती हैं उसी सागर के हिस्से हैं, जो सनातन है। और, यहाँ सभी कुछ अकारण घट रहा है। इसलिए धर्म एक रहस्य है। और विज्ञान रहस्य नहीं है। विज्ञान व्याख्या है, कारण की खोज है। और इसलिए विज्ञान कहता है, हम परमात्मा को स्वीकार न कर सकेंगे, क्योंकि अगर परमात्मा भी मिल जाए तो हम उसके भी कारण की खोज करेंगे, तभी मान सकेंगे। बिना कारण कुछ हो ही नहीं सकता, ये विज्ञान की मान्यता है। और, जो भी हुआ है बिना कारण है, यह धर्म की अनुभूति है।

'जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत'--बड़ी मुश्किल हो गयी है, सहजो कहती है। कारण में फँसे हैं। बो दी फसल, काटना पड़ती है। तुम बोओगे, काटेगा कौन? तुम्हीं काटोगे। जब काट ली, फिर बोना पड़ती है--करोगे क्या इस फसल का?

इसमें कहाँ से निकल भागें? कोई ऐसा छिद्र है, जिससे हम बाहर हो जाएँ? कोई ऐसा द्वार है, चोर-दरवाजा? सामने के दरवाजे से निकलते हैं, फँस-फँस जाते हैं। कोई चोर-दरवाजा है जीवन की व्यवस्था में, जहाँ से हम बाहर हो जाएँ, कार्य-कारण की श्रृंखला हमें पकड़े नहीं? उसको ही सहजो प्रेम कहती है। वही भक्ति है। भक्ति अकारण है। तुम कह न पाओगे, किसी के प्रति अगर भक्ति हो गयी तो क्यों हो गयी। जब सब क्यों गिर जाते हैं, तब भक्ति होती है। जब कोई कारण नहीं रह जाते, तब प्रेम-आविर्भाव होता है। जहाँ बुद्धि का कोई हिसाब नहीं रह जाता, वहाँ हृदय धड़कता है।

बेबूझ है। पहेली जैसी है। पर यही उसका स्वभाव है। 'जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत'

'प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ। अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होइ।।'

ये वचन तो महावाक्य है। इस एक वचन से तुम्हारे पूरे जीवन के ताले खुल सकते हैं। 'प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ'--प्रभुता को लोग सभी चाहते हैं, प्रभु को कोई भी नहीं चाहता। और इतना ही फर्क है धार्मिक-अधार्मिक में। अधार्मिक प्रभुता चाहता है--शक्ति, सत्ता। धार्मिक प्रभु को चाहता है--प्रभुताई नहीं। और क्रांतिकारी अंतर हो जाता है दोनों दिशाओं में। जब तुम प्रभुता चाहते हो, तब तुम अहंकार की आकांक्षा कर रहे हो। और जब तुम प्रभु को चाहते हो, तब तुम निरहंकार होने की यात्रा पर चल पड़े। प्रभुताई पानी हो तो अहंकार को मजबूत करना पड़ेगा--सिंहासन चाहिए। और प्रभु को चाहना हो तो झुकना पड़ेगा--समर्पण चाहिए।

दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं--प्रभुता और प्रभु। ऐश्वर्य और ईश्वर--एक ही चीज से बने हैं। पर कितना अंतर है। ऐश्वर्य सभी चाहते हैं, ईश्वर को कोई नहीं चाहता। प्रभुताई सभी चाहते हैं, प्रभु को कोई भी नहीं चाहता। 'प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ। अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होइ।'

जिसको मनोवैज्ञानिक 'इनफिरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स' कहते हैं, हीनता-ग्रंथि कहते हैं, सहजो उसकी तरफ इशारा कर रही है। 'अभिमानी घट नीच है'--जितनी भीतर हीनता हो, उतनी ही प्रभुता की आकांक्षा होती है, उसी मात्रा में। पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक एडलर ने इस सदी की एक बड़ी से बड़ी खोज जो की है, वह यही है--हीनता की ग्रंथि। एडलर कहता है कि जो लोग पद चाहते हैं उनके भीतर बड़ी हीनता है। अपने-आप में वे खुद को कोरा और खाली पाते हैं। अगर उन्हें पद न मिले, तो वे कभी अपने को पूरे अर्थों में स्वीकार न कर सकेंगे। उनको लगता ही रहेगा--हम निम्न हैं, दो कौड़ी के हैं। वे सिंहासन की आभा में ढँककर ही, अपनी भीतर की निम्नता को भूल पाएँगे।

राजनीतिज्ञ, राजनीति की दौड़ हीनता की दौड़ है।

श्रेष्ठ व्यक्ति राजनीति में उत्सुक नहीं हो सकता, क्योंकि प्रभुता में ही उत्सुक नहीं होगा। श्रेष्ठ व्यक्ति का अर्थ है, जिसने भीतर प्रभु को पा ही लिया, अब प्रभुता को क्या पाना है! और प्रभुता को पाने की दौड़ का अर्थ है, जिसका प्रभु से कोई संबंध नहीं जुड़ा है, वह प्रभुता पाने की कोशिश में लगा है। प्रभुता प्रभु का खोटा सिक्का है।

और, अगर तुम दुनिया के राजनीतिज्ञों का जीवन समझने की कोशिश करो, तो एडलर सही सिद्ध होता है। लेनिन के पैर छोटे थे, बाकी शरीर से। कुर्सी पर

बैठता था तो पैर जमीन पर नहीं लगते थे। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यही उसकी बेचैनी थी। साधारण कुर्सियों पर बैठता था, पैर नीचे नहीं लगते थे, लोग हँसने लगते थे। उसने रूस की सब से बड़ी कुर्सी पर बैठकर दिखा दिया कि तुम्हारे पैर भला नीचे लग जाते हों, लेकिन कुर्सी तुम्हारी कितनी ऊँची? उसने विपरीत करके दिखा दिया। उसने दिखा दिया कि देखो, बड़े से बड़े सिंहासन पर मैं बैठ सकता हूँ; तुम्हारे पैर जमीन से लगते होंगे, मेरा सिर आकाश से लग सकता है।

हिटलर एक असफल आदमी था। कहीं भी सफल नहीं हुआ। जो भी किया, वहीं हारा। सेना से भी निकाला गया। चित्रकार होना चाहता था, तीन दफे परीक्षा दी, प्रवेश-परीक्षा ही पास न हो सका—प्रवेश न मिला। आत्महत्या करने की चेष्टा की, उसमें भी असफल हुआ। फिर ये आदमी इतने जोर से सफल हुआ, सारी दुनिया को डगमगा दिया। एकबारगी तो लगा कि हिटलर जीत ही जा एगा। सारी दुनिया की कथा बदल देगा। क्या हुआ? वह जो हीनता की ग्रंथि थी, उसने इतना बल मारा, कि अब कुछ करके दिखाना ही पड़ेगा। अगर थोड़ी भी श्रेष्ठता हो तो आदमी पागल नहीं हो पाता, किसी भी दौड़ में। क्योंकि दौड़ से मिलना क्या है? अगर तुम बुद्ध के साथ दौड़ने में लगो, तो बुद्ध अपनी ही चाल से चलते रहेंगे। तुम्हीं दौड़ोगे। क्योंकि बुद्ध कहेंगे, जाना कहाँ है? जो पाना है वह मिला ही हुआ है। बैठे भी रहे तो भी मिला हुआ है। धीमे भी चले तो भी खो न जाएगा। कहीं न पहुँचे तो कोई अंतर नहीं पड़ता, पहुँच ही गये हैं। लेकिन तुम दौड़ोगे। तुम पागल की तरह दौड़ोगे। क्योंकि जीवन जा रहा है हाथ से और सब खाली है, कहीं कुछ भरा नहीं है।

जितनी रिक्तता भीतर मालूम होती है, उतना ही बाहर भरने की दौड़ शुरू होती है। जिसके जीवन में प्रेम नहीं, वह धन से भरेगा। जिसके जीवन में प्रभु नहीं, वह धन से भरेगा। जिसके जीवन में प्रभु नहीं, वह प्रभुता से भरेगा। जिसके जीवन में अंतर्प्रकाश नहीं, वह आचरण से भरेगा। जिसका भीतर खाली है, वह बाहर सजावट करेगा, ताकि दूसरों की आँखों को तो कम से कम धोखा दे दे; अपनी आँख को तो धोखा देना मुश्किल है। लेकिन दूसरे की आँख को अगर धोखा हो जाए, तो धीरे-धीरे अपनी आँख को भी धोखा हो जाता है। जो दूसरे कहते हैं, उसका आदमी खुद भी भरोसा कर लेता है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है एक गली से महल की तरफ, राजमहल की तरफ। कुछ आवारा छोकरों ने उसे घेर लिया। कोई कंकड़-पत्थर मारने लगा, कोई मज़ाक करने लगा। वह गाँव भर के लिए मजाक था। सो सोचा कि

इनसे कैसे छुटकारा हो! उसने कहा कि 'सुनो, तुम्हें कुछ पता है, आज राजमहल में सारे नगर को निमंत्रण मिला है। मैं वहीं जा रहा हूँ। कोई रोक-टोक नहीं है, जो भी जाएगा सभी के लिए है। छप्पन प्रकार के भोजन बनाए गये हैं।' और उसने ऐसा वर्णन किया भोजन का कि वे लड़के भागे उसको छोड़कर वहीं। उन्होंने कहा इसकी बकवास सुनने से क्या फायदा, महल जाना सार है। जब लड़के भागे, और उनकी धूल उड़ती देखी, तो उस एक क्षण तो वह ठिठका, फिर वह भी उनके पीछे दौड़ा। उसने अपने मन में सोचा, कौन जाने बात सही ही हो! जाने में हर्जा क्या है?

जब दूसरों को तुम भरोसा दिला देते हो, यद्यपि तुमने झूठ शुरू किया था, जब दूसरों को भरोसा आ जाता है, तो तुमको शक पैदा होता है, कौन जाने बात सही ही हो! इतने लोग जब मानते हैं कि तुम महापुरुष हो तो कौन जाने तुम महापुरुष हो ही! वैसे भीतर तुम जानते हो कि ये बात है नहीं। नहीं थी, इसीलिए तो महापुरुष का इतना आडंबर किया था। इतना शोर-शराबा किया, इतना प्रचार किया, इतनी व्यवस्था की थी। लेकिन मन बड़ा अद्भुत है। खुद को भी धोखा दे लेता है। जानते तो तुम रहोगे गहन में, कि बात गड़बड़ है, लेकिन मानने लगोगे कि ठीक ही होगी, इतने लोग थोड़े ही धोखे में हो सकते हैं। कोई एकाध हो तो धोखा दे ले, सारी दुनिया को कैसे धोखा दोगे?'

'प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ।'

'अभिमानी घट नीच है'—वह जो अभिमानी है, वह भीतर गहरे में तो बहुत निम्न है, हीन है। 'सहजो ऊँच न होइ'—और ये ऊँचा होने का रास्ता नहीं है। ऊँचे होने के दो रास्ते दिखायी पड़ते हैं: एक भ्रामक है, एक सही है। ऊँचे होने का एक रास्ता तो यह है, कि तुम भीतर की नीचता को तो भीतर ही पड़ी रहने दो, बाहर की ऊँचाई खड़ी कर लो। भीतर की नीचता दब जाएगी, किसीको पता न चलेगी; खुद तक को भी भूल जाएगी, झूठ बार-बार दोहराने से सच जैसा मालूम होने लगेगा। और जब हजारों कंठ उसकी प्रतिध्वनि करेंगे, तुम्हें भी भरोसा आ जाएगा। ये एक रास्ता है, जो हजार में से नौ सौ निन्यानबे लोग करते हैं। मरोगे तुम धन, पद, प्रतिष्ठा, यश, नाम इन माध्यम से। पर ये रास्ता व्यर्थ है। मरोगे तुम वैसे जैसे आए थे। तुम्हारे भीतर की नीचता, निम्नता नष्ट न होगी। तुम्हारी हीनता दब जाएगी, समाप्त न होगी।

एक दूसरा रास्ता है, कि तुम अंतर की नीचता को ही विदा कर दो। उसे बाहर से ऊँचा करने की चेष्टा मत करो, उसे भीतर से ही विदा कर दो। जड़ से ही उखाड़ डालो। और जिस दिन ये भीतर जड़ से उखड़ जाती है, दुनिया में कोई

जाने या न जाने कि तुम महान हो या नहीं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। इसके जड़ से उखड़ते ही तुम्हारे भीतर एक नये प्रकाश का जन्म हो जाता है। भीतर तुम जानते हो। किसी और को इस प्रकाश का पता चल जाए तो ठीक, न चले तो ठीक, उससे कोई प्रयोजन न रहा। दूसरे के मंतव्य का कोई अर्थ नहीं है फिर। 'अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होइ'।

'सदा रहै चितभंग ही, हिरदे थिरता नाहिं'—कितना ही तुम प्रभुताई खड़ी कर लो; पद, धन इकट्ठा कर लो—'सदा रहे चितभंग ही'—चित्त तो सदा खंड-खंड ही रहेगा। बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया है—'चितभंग'। जैसे दर्पण टूटा हो कई टुकड़ों में। जैसे चाँद का प्रतिबिंब बनता हो झील में और कोई कंकड़ फेंक दे, और चाँद टुकड़े-टुकड़े हो जाए, पूरी झील पर फैल जाए, खंड-खंड हो जाए।

'सदा रहे चितभंग ही' कितना ही छिपाओ बाहर से, जो भीतर है जबतक मिटेगा न, नहीं मिटेगा।

'हिरदे थिरता नाहिं'—और हृदय कँपता ही रहेगा। भीतर भय बना ही रहेगा। प्रभु के आए बिना भय जाता नहीं। प्रभुता से भय नहीं जाता। प्रभु से भय जाता है; अभय उत्पन्न होता है। 'हिरदे थिरता नाहिं'।

'राम नाम के फल जिते, काम लहर बहि जाहिं।' दो ही उपाय हैं। या तो तुम रामनाम में डूबो, और या, काम की लहर ले जाएगी। या तो वासना की लहर तुम्हें ले जाएगी, और या फिर राम का तूफान तुम्हें ले जाएगा। राम और काम, ये दो दिशाएँ हैं। होने के दो ढंग हैं। 'सदा रहै चितभंग ही, हिरदे थिरता नाहिं': अगर तुम कामवासना की लहर के साथ चलोगे तो यही होगा। 'राम नाम के फल जिते, काम लहर बहि जाहिं: या तो उस फल को जीत लो जो राम-नाम के स्मरण का है, और या फिर डूबो-उतराओ कामवासना की गर्त में, भटको। या तो उस चाँद को पा लो जो झील का नहीं है, आकाश का है, वास्तविक है। झील के चाँद के साथ तो गड़बड़ रहेगी। 'सदा रहै चितभंग ही'। जरा सा हवा का झोंका आ जाता है, चाँद खंडित हो जाता है। एक बच्चा कंकड़ फेंक देता है, एक नाव गुजर जाती है, वृक्ष से पत्ता गिर जाता है, झील कँप जाती है। आकाश में बादल घिर जाते हैं, चाँद खो जाता है। कामवासना के द्वारा पाया गया जो सुख है, वह झील में बने चाँद की तरह है। वह लगता ही है कि मिला, मिलता कभी नहीं। हमेशा कँपता ही रहता है—गया, गया।

'पारस नाम अमोल है, धनवंते घर होय।
परख नहीं कंगाल हूँ, सहजो डारे खोय॥'

प्रभुताई तो सोने जैसी है, प्रभु पारस जैसा। अगर तुम्हारे सामने पारस पत्थर रक्खा हो और सोने का ढेर रक्खा हो, तुम सोना चुन लोगे; क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं कि यह जो पत्थर है पत्थर नहीं है। ये तो जितने लोहों को छू देगा वे सभी सोने हो जाएँगे। और जो तुम चुन रहे हो वह भले ही सोने जैसा दिखायी पड़ता है, लेकिन इसके छूने से सोना नहीं होगा।

'पारस नाम अमोल है'—वह परमात्मा जो है, प्रभु जो है, वह पारस नाम अमोल है। 'धनवंते घर होय'—वह केवल सौभाग्यशालियों को मिलता है। उन सौभाग्यशालियों को मिलता है, जो कार्य-कारण की शृंखला के बाहर छिटकने में सफल हो जाते हैं। वे ही धनवंते हैं, जिनके पास पारस है। हालाँकि बाजार में तुम पारस बेचने जाओगे तो शायद कोई दो पैसे देने को तैयार न हो; या शायद कोई पुराने गाँव में जहाँ अभी भी शाक-सब्जी पत्थर से तौली जाती है, वहाँ कोई राजी हो जाए, कि चलो, दो पैसे में दे जाओ, बटखरे का काम आ जाएगा। अन्यथा कौन पारस को खरीदेगा? पारस पत्थर ही है आखिर! उसमें छिपा है कुछ, पर उसका तो पता जिसको हो उसीको पता होता है। सोना प्रगट दिखायी पड़ता है। पारस का कोई मूल्य नहीं आँक सकता, सोने का मूल्य आँका जा सकता है।

'पारस नाम अमोल है, धनवंते घर होय'—परमात्मा जिनके पास है उनके पास पारस है। वे जो छूते हैं वही सोना हो जाता है। उनके शब्द-शब्द में, आचरण-आचरण में, सोना ही सोना बिखर जाता है। जहाँ चलते हैं वहाँ धूल सोना हो जाती है। जहाँ तुम्हें नरक मालूम पड़ता है, वहाँ भी जिसके पास 'पारस नाम अमोल' है वह आ जाए, तो स्वर्ग हो जाता है।

मैंने एक सूफी कहानी सुनी है। एक पंडित रात सोया। स्वप्न देखा, स्वर्ग में पहुँच गया है। थोड़ा चकित हुआ, क्योंकि उसने ऐसा नहीं सोचा था। देखा कि स्वर्ग में कोई प्रार्थना कर रहा है, कोई कुरान की आयतें पढ़ रहा है। लोग बड़े तल्लीन हैं। लेकिन उसने कहा, हम तो सोचते थे कि ये प्रार्थना, और ये कुरान, ये सब संसार से मुक्त होने के उपाय हैं। अगर स्वर्ग में भी आकर इन्हीं को पढ़ना है तो सार ही क्या हुआ?

तुम्हारे साधु-संन्यासी, पंडित भी यही सोचते हैं कि थोड़े दिन की तकलीफ है, झेल लो। उपवास करना है, थोड़े दिन का है। स्वर्ग में तो कल्पवृक्ष मिलेगा, फिर क्या उपवास। असल में, मन ही मन में वे सोचते हैं कि जो नहीं उपवास कर रहे हैं, भटकेंगे नर्क में तब उनको पता चलेगा! यह हम थोड़ी सी तकलीफ झेल रहे हैं, सदा के लिए इंतजाम हो जाएगा। होशियार आदमी थोड़ी सी तकलीफ से सदा

का सुख कमाता है। नासमझ थोड़े से सुख के लिए सदा का दुःख कमा लेते हैं। तुम्हारे साधु-संन्यासी जानते हैं कि तुम नरक में जाओगे। वे जानते हैं कि तुम मूढ़ हो। बुद्धिमानी तो वे कर रहे हैं। वे तुमसे ज्यादा कुशल दूकानदार हैं। वे यह कह रहे हैं कि जरा सी तकलीफ है आज की, फिर कल स्वर्ग है। देर ही कितनी है, निकल जाएगी ऐसे राम-भजन कर-कर के। दो-चार-दस, पचास साल की बात है, फिर कल्पवृक्ष!

मगर वह पंडित हैरान हुआ कि यह क्या हो रहा है? यह तो हम जिंदगी में वहाँ कर रहे हैं, और यहाँ भी यही हो रहा है। स्वर्ग का सार क्या है, कहाँ है कल्पवृक्ष? कहाँ हैं शराब के झरने? कहाँ हैं अप्सराएँ? कोई दिखायी ही नहीं पड़तीं। ये क्या चल रहा है! लोग तो कुरान की आयत यहाँ भी पढ़ रहे हैं। तो फिर फर्क क्या है?

तो उसने किसी से पूछा, एक देवदूत से, कि ये मामला क्या है, मेरी समझ में नहीं आता। इससे मेरी बुद्धि बड़ी भ्रमित हो रही है। मैं तो इसीलिए कुरान पढ़ रहा हूँ कि थोड़े दिन की बात और है, पहुँच गये एक दफा भीतर, झंझट मिटी, कुरान-वुरान सब बाहर ही छोड़ जाएँगे। ये सब यहाँ कुरान चल रहा है! यहाँ भी क्या उपवास करने पड़ते हैं? रोज़ा, रमज़ान यहाँ भी रखना पड़ता है? तो फिर पृथ्वी में और इसमें फर्क क्या है? और अप्सराएँ कहाँ हैं? शराब के झरने कहाँ बह रहे हैं? कल्पवृक्ष कहाँ है? ये संत यहाँ स्वर्ग में ये क्या कर रहे हैं?

उस देवदूत ने कहा, 'क्षमा करें, आपके स्वर्ग की परिभाषा में कहीं भूल हो गयी। आप सोचते हैं संत स्वर्ग जाते हैं, तो आप गलत सोचते हैं। संत जहाँ होते हैं, वहाँ स्वर्ग है।' इसलिए संतत्व से कोई छुट्टी नहीं मिलती, कभी भी, ये ध्यान रखना। ऐसा मत सोचना कि थोड़े दिन की तकलीफ है, झेल ली, फिर संतत्व से छुट्टी लेकर मज़ा-मौज़ करेंगे। फिर स्वर्ग में जो एक दफे प्रवेश पा गये, तो फिर दिल खोल कर भोग लेंगे, यहाँ थोड़ा-थोड़ा बंधन रख लेना है--ऐसा मत सोचना। संतत्व से कोई छुट्टी नहीं है। और जिस संतत्व से छुट्टी लेने का मन हो, जानना कि वह तुम्हारे ऊपर-ऊपर है, भीतर नहीं। भीतर के संतत्व से कोई छुट्टी लेना चाहेगा? वही तो स्वर्ग है। संत स्वर्ग में जाते हैं ऐसा नहीं, संत स्वर्ग हैं। कुरान की आयत पढ़कर कोई स्वर्ग में जाता है ऐसा नहीं, कुरान की आयत स्वर्ग है। जिसको दिखायी पड़ गया, वह फिर पढ़ता ही रहेगा, उसको छोड़ना क्या है? उसका सुख तो रोज बढ़ता ही चला जाता है। प्रार्थना स्वर्ग जाने के लिए नहीं है, प्रार्थना स्वर्ग है। जिसने जान ली, वह सदा-सदा के लिए प्रार्थना में डूब गया। वह ऐसा

थोड़े ही चाहेगा कि कोई ऐसा दिन आए, छुट्टी मिल जाए, जिस दिन प्रार्थना न करनी पड़े। तब तो तुम प्रार्थना को पहचाने ही न! वह तो काम, संसार की ही बात रही, वह तुम्हारा प्रेम न बना। प्रेम से कभी कोई छुटकारा चाहता है? प्रार्थना से कभी कोई मुक्ति चाहता है? परमात्मा को कभी कोई भूलना चाहता है? जान लिया वो कभी नहीं।

'पारस नाम अमोल है, धनवंते घर होय'--परमात्मा का नाम उसी की समझ में आता है जो परम सौभाग्यशाली है। या परमात्मा का नाम समझ में आ जाए, वो परम सौभाग्यशाली है। उससे बड़ा फिर कोई सौभाग्य नहीं। वही धनवंत है। किसी और धन में मत उलझ जाना। रामनाम के धन बिना सब धन गरीबी है। रामनाम का धन न मिले तब तक तुम नंगे हो, नाहक तलवार लिए खड़े रक्षा कर रहे हो कि कोई चोरी न कर ले जाए। तुम्हारे पास कुछ है नहीं।

'परख नहीं कंगाल हूँ'--वह जो अभागा है उसे परख नहीं है। पारस रखा है, वह सोना चुनता है। 'परख नहीं कंगाल हूँ, सहजो डारे खोय'--सहज ही खो देता है उसको जो सदा उपलब्ध है, और उसके पीछे पड़ जाता है--जो कितना ही पीछे पड़े रहो--कभी मिलेगा नहीं। राम सदा उपलब्ध है। काम कभी उपलब्ध नहीं है। राम अभी मिला है--आँख खोलने की बात है। काम तुम जन्मों-जन्मों तक भटकते रहो--कभी न मिलेगा। क्योंकि काम का स्वभाव ही यही है कि वह नहीं मिलता। वह उसके स्वभाव का अंग है। काम कभी तृप्त नहीं होता--तृष्णा दुष्पूर है, वह उसका स्वभाव है। राम सदा उपलब्ध है, वह उसका स्वभाव है। एक के पीछे दौड़ना होता है, सिर्फ दौड़ना। उपलब्धि कभी नहीं। और एक सदा उपलब्ध है। रुके, ठहरे, कि जाना। 'परख नहीं कंगाल हूँ, सहजो डारे खोय।'

'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदे माहिं दुराय।' लेकिन सहजो कहती है परमात्मा का स्मरण इस भाँति करना है--हृदय में दोहराना, किसी और को बताना मत; क्योंकि बताने की आकांक्षा तो हीनग्रंथि से पैदा होती है। वह जो आकांक्षा है कि दूसरों को पता चल जाए कि मैं धार्मिक हूँ--देखो, मंदिर जा रहा, मस्जिद जा रहा; गुरुद्वारा जाता हूँ; देखो, रविवार कभी चूकता नहीं चर्च जाने से--दुनिया को पता चल जाए कि मैं धार्मिक हूँ, ये तो दुनिया का ही हिस्सा हुआ।

परमात्मा को दिखाने की कोई भी जरूरत नहीं है। और अंधों को दिखाओगे भी कैसे? जो काम में दौड़ रहे हैं, तुम्हारे राम को देख भी कैसे सकेंगे? तुम दिखाओगे, वे कहेंगे कि रखो ये अपना सामान अपने पास, अभी हमें ये खरीदना नहीं। हमारे किस काम का, ये पत्थर ले आए! पारस कहानियों में होता है,

असलियत में थोड़े ही; हटो, अभी हम सोने की दौड़ में लगे हैं। तुम दिखाना मत। क्योंकि दिखाने से कोई संबंध ही नहीं है, उसे पाना है।

परमात्मा कोई प्रदर्शन नहीं है; वह कोई 'एक्ज़िबिशन' नहीं है। संसार प्रदर्शन है। अगर तुम्हारे पास धन है और तुम न दिखाओ, तो होने का सार ही क्या? तुम्हारे पास हीरे-जवाहरात हैं, तुम जमीन में गाड़े रखे रहो, क्या फायदा? उनको दिखाना पड़ेगा। मौके-बेमौके उनको निकालना पड़ेगा—शादी-विवाह में, मंदिर में, क्लब में, कहीं न कहीं उनको दिखाना पड़ेगा। नहीं तो सार ही क्या है? तुम जमीन में रखे रहो हीरे-जवाहरात करोड़ों के, और किसी को पता न चले, तो हीरे-जवाहरात हैं कि कंकड़-पत्थर हैं, क्या फर्क पड़ता है?

मैंने सुना है कि एक बूढ़ा आदमी अपनी तिजोरी में पाँच सोने की ईंटें रखे था। उसका बेटा जरा फक्कड़ तबीयत का था—मस्ती-मौज...। उसने धीरे-धीरे वो पाँचों ईंटें खिसका लीं। मजा कर लिया। और हर ईंट की जगह एक लोहे की ईंट उसी वजन की रख दी। बाप को बुढ़ापे में दिखायी भी कम पड़ता था, और अँधेरे में तिजोरी थी। वह उसको ऐसा खोल के, हाथ फेर के देख लेता था। ईंट थी, बात खतम थी। दरवाजा लगा के प्रसन्न था।

वह तो मरने के पहले अड़चन हो गयी। मरने के पहले उसने आँख खोली और उससे कहा कि मेरी ईंटें ले आओ, कोई गड़बड़ तो नहीं हुई। तो ईंटें लायी गयीं। पत्नी ईंटें निकाल कर लायी तो हैरान हुई, क्योंकि वह तो लोहे की थीं। समझ गयी कि बेटे की करतूत है। मरते आदमी ने जब ईंटें देखीं, वे लोहे की थीं। एक क्षण को तो धक्का लगा। एक क्षण को तो लगा, कि ये तो लुट गया! लेकिन अब मौत करीब आ रही थी, तब लुटने से भी क्या फर्क पड़ता था? फिर एक हँसी भी आ गयी। और हँसी ये आयी, कि ये भी बड़ा मज़ा रहा। जिन्दगी इसी मजे में गुजार दी, कि सोने की ईंटें हैं। 'ईंटें' तो लोहे की थीं।

तुम्हारे घर में तुमने अगर धन गड़ा के रखा है, क्या सार? धन दिखावा है। उसका मज़ा ही दिखाने में है। इसलिए तो लोग जितना उनके पास नहीं है उससे ज्यादा दिखलाते हैं। सिर्फ इनकॅम-टैक्स ऑफिस वालों को नहीं दिखलाते। बाकी सबको दिखलाते हैं। जो नहीं है वह भी दिखलाते हैं। टेबल पर फोन रखे रहते हैं, उसका कहीं कनेक्शन ही नहीं है!

मैंने तो एक बार ऐसा सुना, कि नसरुद्दीन ने ऐसा फोन रख लिया। दफ्तर जमाया था, तो बिना फोन के दफ्तर तो जँचता भी नहीं। एक आदमी भीतर आया। उस पर प्रभाव बाँधने के लिए उसने कहा, जरा एक मिनट रुकें। फोन

उठा कर उसने बातचीत की, फिर उसने पूछा—उस आदमी को प्रभावित करने के लिए, फोन तो कहीं जुड़ा ही न था। पर बातचीत की, दो-चार शब्द कहे-सुने, फोन रक्खा, उससे पूछा, 'कहिए, कैसे आए?' उसने कहा, मैं फोन कंपनी से आया हूँ, जोड़ने के लिए।' उसको पता नहीं कि ये फोन कंपनी से आए हुए हैं!

धन का तो मजा दिखावे में है। जो नहीं है वह भी आदमी दिखाता है। दूसरों से उधार चीजें लोग माँग लाते हैं। उनको भी दिखाते हैं कि उनकी हैं—अपनी है।

संसार दिखावा है। परमात्मा दिखावा नहीं है; उसे तुम सँभालना भीतर।

सहजो कहती है, 'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदै माहिं दुराय'—हृदय में ही दोहराना। 'होठ होठ सूँ ना हिलै'—होंठ-होंठ को भी पता न हो पाए कि तुम हृदय में क्या दोहराते हो। 'सकै नहीं कोइ पाय'—और किसीको पता न चल सके। कोई लाख खोजे, तो तुम्हारे भीतर क्या छिपा है उसका पता न चल सके। छिपाना। क्योंकि जितना तुम छिपाओगे, उतना ही गहरा चला जाएगा। दिखाना, तुम जितना दिखाओगे उतना बाहर-बाहर फैल जाएगा। दिखावा परिधि का होता है, केंद्र को तो छिपाना होता है। जो गहनतम है वो तो गहनतम में छिपाना चाहिए। छिपाए चले जाना, और भीतर... और भीतर... और भीतर...। जितनी जगह मिले, भीतर लेते जाना। एक दिन आएगा कि तुम्हारे आत्यंतिक केंद्र पर परमात्मा का नाम होगा; स्मरण होगा, शब्द नहीं। ऐसा नहीं कि तुम भीतर राम-राम दोहराओगे। राम-राम दोहराओगे तब तो ओंठों को खबर हो जाएगी। तभी तुम चुपचाप भी दोहराओ तो तुम पाओगे धीरे-धीरे ओंठ भीतर हिल रहे हैं। कंपन चलेगा। जीभ को पता चल जाएगा, कंठ को पता चल जाएगा।

सहजो का मतलब ये है, कि ये कोई शब्द का दोहराना नहीं है परमात्मा का स्मरण, ये हृदय की प्रतीति है। 'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदै माहिं दुराय। होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय॥' किसी को पता न चले। क्योंकि मन, अहंकार, बड़ा चालबाज है। अगर उसको ये भी मजा आने लगे कि लोगों को पता चल जाए कि मैं राम-स्मरण करता हूँ, तो वह जरा जोर से करने लगेगा। जब कोई निकलेगा तो जरा जोर से करेगा। कोई नहीं होगा तो जरा धीरे कर लेगा। कोई सुननेवाला नहीं होगा तो पोथी रख कर बैठ जाएगा, दूकान की बात सोच लेगा। फिर कोई आ जाएगा, फिर पोथी उठा लेगा, फिर किताब पढ़ने लगेगा। मन बड़ा धोखेबाज है। इस मन के धोखे से सजग रहना। इसीलिए, जीवन की जो परम साधना है वह आंतरिक है, गुह्य है।

तुम तो उपवास भी करते हो तो इसलिए कि जुलूस निकलेगा अब। दस-दस

दिन के लोग उपवास कर लेते हैं, सिर्फ इसी आशा में कि अब जुलूस निकलने को ही है, एकाध-दो दिन की देर और है। उपवास को भी शादी-विवाह जैसा उत्सव बना लेते हैं—बैंड-बाजा बजने लगता है, भीड़ चलने लगती है, प्रॉसेसन निकलता है, शोभा-यात्रा बनती है। तुमने उपवास खराब ही कर दिया। और उस आदमी के मन में उपवास भी दिखावा हो गया। ये किसी से कहने की बात है? और, अगर तुमने संसार से कह दी, तो समझ लेना परमात्मा से अब कहने की कोई जरूरत न रही। बात खतम हो गयी। चुकतारा हो गया। तुम्हें जो मिलना था तुम्हारे उपवास से, मिल गया। बाजार में प्रॉसेसन निकल गया, बैंड-बाजे हो गये, अखबार में खबर छप गयी, खतम। लोग अहोगान कर गये आकर, कि तुम महातपस्वी हो! चुकतारा हो गया। जो मिलना था मिल गया, उपवास से। अब कोई आगे बात मत उठाना और कुछ पाने को।

धर्म से तुम इस संसार में कुछ भी मत लेना। तो ही तुम परमात्मा को उससे पा सकोगे। तुम यहाँ कोई पुरस्कार स्वीकार मत करना। तो ही तुम्हें उसका पुरस्कार मिल सकेगा। 'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदै माहिं दुराय। होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय॥'

'राम नाम यूँ लीजिए, जानै सुमिरनहार।' सिवाय परमात्मा के और किसको सुनाना है? उसने सुन लिया बात हो गयी। और वह कोई बहरा थोड़े ही है कि तुम मस्जिद के ऊपर खड़े होकर चिल्लाओ जब सुनेगा। कबीर कहते हैं, 'क्या बहरा हुआ खुदाय?' इतनी जोर से क्यों चिल्ला रहे हो? क्या खुदा को तुमने बहरा समझा है? वह सुन ही लेगा। तुम क्या कहते हो, वह थोड़े ही सुनता है। तुम क्या हो, उसे सुनता है। तुम जो शब्द दोहरा रहे हो, उन्हें थोड़े ही सुनता है। तुम्हारे ऊपर-ऊपर जो तुम आवरण बनाते हो, वह थोड़े ही सुनता है। तुम्हारे हृदय में जो छिपा है, उसे सुनता है।

'राम नाम यूँ लीजिए, जानै सुमिरनहार। सहजो कै करतार ही, जानै ना संसार।' संसार को कोई पता न चले। बस उसे पता चल गया, काफी है। बात खतम हो गयी। वो लेन-देन दो के बीच का है। साधारण जीवन में भी तुम इस सूत्र को याद रखते हो। प्रेमी अकेले में मिलना चाहते हैं, बाजार में नहीं। और अगर प्रेमी बाजार में भी मिलें, तो बाजार को भूल जाते हैं, अकेले हो जाते हैं। इसलिए तो दो प्रेमी जहाँ भी मिल जाएँ वहाँ उनके लिए एकांत हो जाता है। और प्रेमी एकांत में मिलना चाहते हैं, क्योंकि प्रेम बड़ी निजता चाहता है। ये कोई दुनिया को दिखाने की बात थोड़े ही है। ये कोई नाटक थोड़े ही है, कि तुम घुटने

टेक कर अपनी प्रेयसी के सामने खड़े हो और मजनूँ की भाषा दोहरा रहे हो। नाटक में ठीक है। क्योंकि वह दिखावा है, कि तुम जंगल-जंगल—जैसा राम घूमते हैं रामलीला में, वृक्षों से पूछते, 'मेरी सीता कहाँ है'—ऐसे घूम रहे हो, और ध्यान रखे हुए हो कि फोटोग्राफर आया है कि नहीं अब तक, अखबारवालों को खबर हुई कि नहीं? और चिल्ला रहे हो: 'मेरी सीता कहाँ है?' नाटक में ठीक है।

राम ने जरूर वृक्ष-वृक्ष से पूछा होगा। लेकिन चिल्ला के? वृक्ष कहीं आदमी की भाषा समझते हैं? हृदय की समझते हैं। राम रोये होंगे शायद किसी वृक्ष पर सिर टेक कर। प्राणों से एक हूक उठी होगी—हूक कहता हूँ, आवाज नहीं—एक आह उठी होगी: 'कि मेरी सीता कहाँ है?' लेकिन क्या ऐसे शब्द बने होंगे कि—'मेरी सीता कहाँ है?' आकाश ने सुना होगा, वृक्षों ने सुना होगा, कि राम रोते हैं, तड़पते हैं। परमात्मा ने सुना होगा। लेकिन ये कोई चिल्लाना थोड़े ही था? ये कोई बाजार में फेरी थोड़े ही लगानी थी?

'सहजो कै करतार ही, जानै ना संसार'। जैसे प्रेम में प्रेमी एकांत चाहते हैं। नहीं चाहते भीड़-भाड़ खड़ी हो। दो प्रेमी बैठे हों और तीसरा आदमी आ जाए, तो प्रेम की धारा टूट जाती है। तीसरे की मौजूदगी बाधा बन जाती है। तीसरे की मौजूदगी में जो आत्यंतिक है, हार्दिक है, वह कैसे निवेदन किया जा सकता है? तीसरे की मौजूदगी उथला कर देती है चीजों को। दो चाहिए, और दो भी जब बहुत गहरे होते हैं तो एक ही बचता है। कहाँ दो बचते हैं? उस एकता में ही, बिना कहे प्रेम निवेदन हो जाता है। भीड़-भाड़ में, चिल्ला-चिल्ला कर कहो तो भी प्रेम निवेदन नहीं होता।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि जो लोग निरंतर कहते हैं कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूँ... मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूँ... उनसे जरा सावधान रहना। वे धोखा दे रहे हैं। प्रेम कहीं कहा जाता है? होता है, तो पता चल जाता है। नहीं होता तो आदमी दोहराता है। पति पत्नी से कहता है, तुझे प्रेम करता हूँ, तेरे बिना एक क्षण न रह सकूँगा। ठीक उलटा सोच रहा है भीतर, कि कब छुटकारा मिले इस देवी से! 'मैं तेरे बिना रह ही न सकूँगा।' हालाँकि जब भी पत्नी नहीं होती तब तुम उसे प्रसन्न पाओगे। जैसे ही पत्नी आयी, कि सब गड़बड़ हो जाता है। पत्नियाँ कहे जा रही हैं, कि हमें तुम पर श्रद्धा है, समर्पण है।

मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने एक दिन बाजार में देखा। एक आदमी उसे चाकू-छुरे बेचने की कोशिश कर रहा था। उस आदमी ने कहा, 'कुछ भी जरूरत न हो नसरुद्दीन, तो भी लिफाफा, चिट्ठी-पत्री काटने के काम आ जाता है।' उसने कहा,

'हमें जरूरत ही नहीं। हमें चिट्ठी कटी-फटी ही मिलती है। हम विवाहित हैं।'

किसी पत्नी को भरोसा थोड़े ही है पति पर कि चिट्ठी उसको बिना खुली मिल जाए। काटके पहले पढ़ती है। कहती है, श्रद्धा। तुम भगवान हो। पति परमात्मा है। लेकिन इतना भी भरोसा नहीं है। श्रद्धा, भरोसा, प्रेम बातचीत हो गये हैं। दिखावा हो गये हैं। कहते हैं हम कुछ और, करते हैं कुछ और।

यही हमने परमात्मा के साथ भी कर लिया है। हमारी प्रार्थना-पूजा भी दिखावा हो गयी है। मंदिर में ज्यादा लोग आ जाते हैं तो देखो, प्रार्थना करने वाला कैसा मस्ती में आ जाता है! ज्यादा उछल-कूद करने लगता है। एकांत हो, कोई न हो; इधर-उधर देखता है--कोई भी नहीं है, भगवान को कहता है, 'जयराम जी'। अपने घर जाएँ। कोई सार क्या है? देखने वाले ही नहीं आए हैं आज। प्रार्थना तो अत्यंत निजी घटना है। उससे ज्यादा निजी कुछ भी नहीं। वह तो प्रेम का भी गहनतम प्रेम है। प्रेम का भी हृदय है, प्राण है।

इसलिए सहजो ठीक कहती है, 'रामनाम यूँ लीजिए, जानै सुमिरनहार। सहजो कै करतार ही...'। या तो सहजो को पता चले, और इससे भी अच्छा होगा कि सिर्फ करतार को ही पता चले। ये बड़ी गजब की बात है। 'सहजो कै करतार ही।' ज्यादा से ज्यादा सहजो को पता चले, ये भी मजबूरी है। क्योंकि जब प्रेम आह्लादित होगा, तो सहजो को तो पता चलेगा। लेकिन इससे भी अच्छा होगा कि सहजो को भी पता न चले; 'कै करतार'--कि बस, करतार को ही पता चले। उसे ही पता चले, बात खतम हो गयी। क्योंकि सहजो भी संसार का ही अंग है। वह तुम जो हो, तुम्हारा मन जो है, तुम्हारा अहंकार जो है, वह भी संसार का ही अंग है। उसको भी दिखाने की जरूरत नहीं। ये बात आखिरी हो गयी। इससे आगे जाना अब असंभव है। बस उसको पता चल जाए। किसी और से निवेदन नहीं करना है। और उसे पता चल गया, तो वह जो पारस उपलब्ध है उसे छिपा रखना है। उसे ऐसे छिपा रखना है कि किसी को भी पता ही न चले। यद्यपि लोगों को उसका पता चलेगा।

अब ये अंतिम बात तुमसे कह दूं--

जो लोगों को दिखाना चाहते हैं वे आखिर में पाएँगे, उनका दिखावा लोगों को पता चल गया कि दिखावा था। तुम अंधे हो, और तुम लोगों को दिखाना चाहो तुम्हारे पास आँख है, कितनी देर तुम दिखा पाओगे?

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में पड़ा। और तो सब ठीक था, आँख उसकी कमजोर थी। तो अपने आँख के डॉक्टर को उसने कहा कि, 'क्या करूँ, कहीं ये

आँखों की वजह से, और ये चश्मा भारी नंबर का--कहीं वो स्त्री इसी वजह से गड़बड़ा न जाए। क्योंकि मैं तो उसको भी ठीक से देख नहीं पाता। ऐसा टटोलता हूँ, तब पता चलता है कहाँ सिर, कहाँ हाथ। ये तो बड़ी...। अगर बिना चश्मा के देखूँ तो समझ में नहीं आता कि कौन कौन है। और चश्मे की वजह से कहीं बाधा न आ जाए? कहीं वह स्त्री ये न सोचे, कि तुम बिलकुल नीम अंधे, आधे अंधे हो, तुमसे क्या शादी करनी! कुछ उपाय है? तो डॉक्टर ने कहा, 'तू एक काम कर। दिखावा कर कि तुझे दिखायी पड़ता है। कोई भी ऐसा काम कर, जिससे उसको समझ में आ जाए कि तुझे दूर का दिखायी पड़ता है।'

तो जैसी कहावत है—'अंधे को बड़ी दूर की सूझी।' नसरुद्दीन ने सोचा। साँझ बैठा है, उसने क्या किया, एक सुई—कपड़ा सीने की सुई--एक वृक्ष में खोंस आया, बड़े से बड़ी आँख वाले को भी न दिखायी पड़े। कोई सौ कदम दूर बैठे, रात चाँदनी। और उसने कहा कि 'अरे! ये वृक्ष में एक सुई मालूम पड़ती है।' जरा, लड़की भी थोड़ा हैरान हुई। शक तो इसकी आँख पर उसे था। लेकिन इसको, और सुई दिखायी पड़ती है! और उसको दिखायी ही नहीं पड़ रही--वृक्ष मुश्किल से दिखायी पड़ रहा है। और उसमें उसको--एक सुई खपी है, कोई सुई लगा गया है--वो दिखायी पड़ रही है। तो उसने कहा, 'मुझे तो दिखायी नहीं पड़ती, नसरुद्दीन।' नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं अभी निकाल लाता हूँ।' वो उठे, और धड़ाम से गिरे, क्योंकि सामने एक भैंस खड़ी थी। भैंस उन्हें दिखायी न पड़ी।

दिखावा ज्यादा देर नहीं चल सकता। कितनी देर चलेगा? दिखावा जल्दी ही पकड़ में आ जाता है। यद्यपि लोग चाहे न कहें, क्योंकि वो भी अभद्र मालूम पड़ता है कि कोई तुमसे कहे, कि ये दिखावा है। और अभद्र इसलिए भी मालूम पड़ता है कि वे भी तो यही कर रहे हैं। इसलिए साँठ-गाँठ है, एक षड्यंत्र है सामूहिक, पारस्परिक लेन-देन है। हमारा दिखावा तुम नहीं मिटाते, तुम्हारा दिखावा हम नहीं मिटाते, ऐसे संसार चलता है। तुम दिखाने की कोशिश कर रहे हो कि बड़े ज्ञानी हैं, और हम दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि बड़े त्यागी हैं। दोनों को एक-दूसरे का खयाल रखना पड़ता है। अगर तुमने गड़बड़ की, तो हम भी गड़बड़ कर सकते हैं। इसलिए संसार में ऐसा चलता है। लेकिन सभी को पता है कि दिखावा दिखावा है। दिखा-दिखा कर तुम किसी को धोखा नहीं दे पाते।

और, दूसरी बात जो तुम समझ लो, वह यह कि जो अपने भीतर छिपा लेता है, वह छिपाए छिपती नहीं। अपनी तरफ से छिपाता है, लेकिन बात प्रगट हो जाती है। वह ऐसे ही जैसे कोई स्त्री गर्भवती हो जाए। छिपाओगे?

चाल बदल जाती है, चेहरे का ढंग बदल जाता है, आँखों का भाव बदल जाता है। साधारण स्त्री साधारण स्त्री है। माँ, गर्भवती, बात और है! एक क्रांति घट गयी। एक नये जीवन का आविर्भाव हुआ है भीतर। वो गरिमा सँभाले नहीं सँभलती। इसलिए गर्भवती स्त्री में जैसा सौंदर्य प्रगट होता है, वैसा किसी स्त्री में कभी प्रगट नहीं होता। क्योंकि अब एक आत्मा नहीं, दो आत्माएँ एक ही शरीर से झलकती हैं। एक ही घर में जैसे दो दीये जलते हैं तो प्रकाश सघन हो जाता है। छिपा न सकोगे। जब तुम्हारे भीतर पारस होगा, और परमात्मा को तुम अपने गर्भ में लेकर चलोगे—कहाँ छिपाओगे? साधारण सा बच्चा नहीं छिपता।

सहजो तो ये कह रही है कि तुम छिपाना। तुम छिपा न सकोगे, ये मैं तुमसे कहता हूँ। कोई कभी नहीं छिपा पाया। अंधों को दिखायी पड़ने लगेगा, बहरों को सुनायी पड़ने लगेगा तुम्हारे भीतर का परमात्मा। जिन्हें किसी तरह की गंध नहीं आती, उनके नासापुट तुम्हारे भीतर के परमात्मा की गंध से भर जाएँगे। परमात्मा बड़ी उजागर घटना है। हाँ, जो छिपाता है उसका उजागर हो जाता है। और जो उसे उजागर करना चाहता है, उसके पास तो वह है ही नहीं। इसलिए जल्दी ही पता चल जाता है कि दिखावा था। तुम इसे परमात्मा पर छोड़ देना। तुम अपनी तरफ से छिपाना, वह ही प्रगट हो तो तुम क्या करोगे? वह प्रगट होता है। नहीं तो बुद्ध कैसे प्रगट हों? नहीं तो सहजो कैसे गाये? नहीं तो फरीद कैसे पहचाना जाए? असंभव है।

इस जगत में जब भी परमात्मा की घटना घटी है, तो जिनको घटी है उन्होंने लाख उपाय किये छिपाने के, और उनके सब उपाय असफल हुए। वो परमात्मा तो पता चला ही है। और जिनको नहीं मिला, उन्होंने लाख उपाय किये बतलाने के, कभी कुछ हुआ नहीं। उनके बताने से सिर्फ उनकी मूढ़ता ही पता चली। उनके बताने से सिर्फ उनका धोखा ही प्रगट हुआ है। उनके बताने से केवल उनके भीतर की रिक्तता का ही लोगों को अनुभव हुआ है।

आज इतना ही।

* * *

जलाना अंतर्प्रकाश को

प्रवचन ८, प्रातः, दिनांक ८-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्न : आपने कहानी कही कि किसी राजा ने कैसे क्रूरता के द्वारा एक आदमी को उसके उदरस्थ साँप से उबारा। हम भी तो ऐसे ही मद-मत्सर का साँप उदरस्थ किये बैठे हैं। उससे हमें बचाने के लिए आप भी क्यों नहीं कोई क्रूर उपाय करते ?

जो काम सुई से हो जाए उसे तलवार से करने की कोई जरूरत नहीं है। और जो काम सुई से हो सकता है, वह तलवार से करने से हो भी न सकेगा। वस्तुतः, सुई के काम को तो तलवार और बिगाड़ देगी। जो कहानियाँ मैं कहता हूँ उनके शब्दों को मत पकड़ना। उनके सार को समझना।

निश्चित ही रोग ने तुम्हें पकड़ा है। लेकिन रोग स्थूल नहीं है, बहुत सूक्ष्म है। साँप तो उदरस्थ हुआ है मोह-मत्सर का, लेकिन शरीर को पीटने से अलग न हो जाएगा। उतनी ही सूक्ष्म प्रक्रिया से गुजरना होगा। साँप अगर साधारण होता, तो राजा ने जो कहानी में किया उससे काम हो सकता था। कोड़े मारे, जबरदस्ती सड़े फल खिलाए; कंठ तक भर गये फल, उनकी सड़ाँध—वमन शुरू हो गयी। वो मारता ही गया। उस घबड़ाहट-बेचैनी में, उलटी में फल तो बाहर गिरे ही साँप भी बाहर गिर गया।

इस कहानी को अगर तुम सीधा का सीधा पकड़ लो, और आश्चर्य न होगा कि तुम पकड़ लो, क्योंकि बहुत से तुम्हारे साधु-संन्यासियों ने ऐसे ही पकड़ा हुआ है। रोग भीतर है, शरीर को पीट रहे हैं। बीमारी अंतस् में है, आचरण को बदल रहे हैं। अहंकार गहन में छिपा है, धूप में खड़े शरीर को तपा रहे हैं। कोड़े शरीर पर मार रहे हैं। काँटों पर लेटे हैं। और अहंकार ऐसा सूक्ष्म है कि कोई काँटा उसे छू न सकेगा। वरन्, काँटों पर लेट के भी वह मजबूत होता रहेगा। तुम्हारे शरीर को पीटने से साँप निकलता होता तब तो बड़ी आसान बात थी। शरीर में साँप नहीं है, साँप मन में है। मन के सूक्ष्म अचेतन पर्तों में है। और, अगर तुम समझ सको तो मैं तुमसे कहूँगा, कि साँप अगर वास्तविक होता तो भी कुछ आसान बात हो जाती। साँप काल्पनिक है। है नहीं, तुमने माना है कि है। इसलिए बड़े सूक्ष्म उपाय चाहिए।

मैं तुम्हें एक और कहानी कहूँ, शायद उससे समझ में आ जाए।

एक आदमी को, रात सोया, सपना आया। सपने में उसने देखा कि वह साँप

लील गया है। घबड़ा के उठ बैठा। सपना इतना वास्तविक था, इतना साकार था, और घबड़ाहट ने इतने जोर से पकड़ा था कि वह चिल्लाने लगा। पत्नी उठी, घर के लोग उठे, उन्होंने बहुत समझाया कि सपना देखा होगा। उसने कहा कि नहीं, सपना नहीं देखा, मैं अनुभव कर रहा हूँ अभी कि वह भीतर है : उसे मैं पेट में चलता हुआ अनुभव करता हूँ।

उसे वमन करवायी गयी। कुछ न हुआ, कोई साँप न निकला। साँप होता तो निकलता। लेकिन जब उलटी भी हो गयी और साँप न निकला, तो उस आदमी के तर्क ने स्वभावतः कहा, कि साँप बहुत गहरे है, ये उलटी ऊपर-ऊपर हो रही है। साँप तो अँतड़ियों में चला गया है। सब उपाय किये गये। चिकित्सक हार गये। एक्स-रे लिए गये, साँप न था। लेकिन वह आदमी मानने को राजी न था। वह कहता, मैं अपने पर भरोसा करूँ कि तुम्हारी मशीनों पर? मशीनों से क्या भूल नहीं हो सकती? तुम्हारे विश्लेषण को सुनूँ या अपनी प्रतीति को? साँप चल रहा है। मैं उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, खा-पी नहीं सकता। आदमी करीब-करीब पागल हो गया।

फिर उसे एक मनस्विद् के पास ले जाया गया, क्योंकि शरीर में साँप नहीं था, मन में था। उस मनस्विद् ने क्या किया? उसने उस आदमी की सारी बातें सुनीं, और कहा कि निश्चित ही साँप है। एक्स-रे गलत हो गया होगा, चिकित्सक समझ नहीं पाए। लेकिन मैं तो देख रहा हूँ। हाथ फेरा उसके पेट पर, उसने कहा कि साँप है, तुम सही हो। इस चिकित्सक पर उसे भरोसा आया। उसने कहा, आदमी तुम इस गाँव में समझदार हो। यद्यपि चिकित्सक झूठ बोल रहा था। क्योंकि झूठ को काटना हो तो झूठ के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

तुमने कभी सोचा, झूठ को सच से नहीं काटा जा सकता। क्योंकि झूठ और सच का कहीं मेल ही नहीं होता। कटेंगे कैसे? अगर झूठी बीमारी हो तो भूल के भी एलोपैथी की दवा मत लेना अन्यथा नुकसान होगा। क्योंकि वह दवा सच है। झूठी बीमारी के लिए होमियोपैथी सही है। वो दवा झूठ है। वो मान्यता की दवा है, मान्यता की बीमारी है। इसलिए होमियोपैथी से कभी किसी को नुकसान नहीं होता। फायदा हो तो हो जाए, नुकसान कभी नहीं होता। क्योंकि नुकसान होने के लिए तो दवा असली होनी चाहिए। वो तो शक्कर की गोलियाँ हैं। ऐसा नहीं है कि होमियोपैथी काम नहीं करती। करती है, क्योंकि आदमी गड़बड़ है। होमियोपैथी की खूबी नहीं है वह, आदमी की बीमारी की खूबी है। आदमी की सौ में से नब्बे बीमारियाँ झूठ हैं। जो झूठ बीमारी है, उसके लिए सही दवा खतरनाक

है। क्योंकि सही दवा कुछ करेगी। और, अगर बीमारी न हुई तो तुम्हें काटेगी। अगर बीमारी होती तो बीमारी को काटती। उससे घातक परिणाम हो सकते हैं। जहर है। अगर बीमारी होती तो जहर बीमारी को मिटा देता, लेकिन बीमारी नहीं है तो जहर तुम्हारे शरीर में फैल जाएगा। इसलिए झूठे मरीजों के लिए एलोपैथी नहीं है। झूठे मरीजों के लिए होमियोपैथी। और झूठे मरीज सच्चे मरीजों से ज्यादा हैं। इसलिए दुनिया में एलोपैथी के साथ-साथ होमियोपैथी का काफी प्रचार होना चाहिए। जानते हुए कि दवा झूठी है। पर करोगे क्या? बीमार झूठे हैं। उनको कभी बीमारी हुई नहीं है, और ठीक होने का खयाल है।

उस चिकित्सक ने कहा कि साँप निश्चित है। भरोसा आया। ये आदमी समझदार मालूम हुआ। उस चिकित्सक ने कहा हम इसे निकाल लेंगे। ये तुम दवा लो, रात भर विश्राम करो, सुबह जब तुम मल-विसर्जन करोगे साँप निकल जाएगा। वह आदमी रात निश्चिंतता से सोया। ठीक चिकित्सक मिल जाए तो आधी बीमारी तो वैसे ही ठीक हो जाती है। चिकित्सक ने एक साँप पकड़वाया। और वह आदमी सुबह-सुबह जब मल-विसर्जन के लिए गया तो वह साँप उसके पाखाने में डलवा दिया, उसके पहले। जब वो आदमी बाहर आया, चिकित्सक ने कहा अब चल के देखना चाहिए, साँप निश्चित निकल गया होगा। साँप पाया गया पाखाने में पड़ा हुआ। वह आदमी प्रफुल्लित हो गया। उसने कहा कि सब अंतर की बेचैनी चली गयी। साँप निकल गया। मगर ये नासमझ कहते थे साँप है ही नहीं।

तुम्हारी बीमारी दूसरी कहानी जैसी है। तुम बीमार हो नहीं, तुम्हें ख्याल है। तुम्हें अहंकार का भ्रम है। अहंकार तो हो नहीं सकता। अहंकार तो एक झूठी धारणा है। सिर्फ खयाल है, विचारों की तरंग है। इसलिए ध्यान से मिटेगा, तप से नहीं मिटेगा। इसलिए तो मैं तप के पक्ष में नहीं हूँ, कि तुम उल्टे-सीधे आसन करो, शीर्षासन करो, धूप में खड़े रहो, नाहक शरीर को सताओ, उपवास करो, कोड़े मारो। इससे न मिटेगा। तुम पहली कहानी को जरूरत से ज्यादा पकड़ लिए। दूसरी कहानी को समझो। सूक्ष्म है। सूक्ष्म ही उपाय करना होगा। और सूक्ष्म भी कहना ठीक नहीं है। है ही नहीं। इसलिए कुछ होमियोपैथिक उपाय चाहिए। ध्यान होमियोपैथी है। जो नहीं है, उसको मिटाने की व्यवस्था है। सिर्फ तुम्हें जगाना है। नींद में तुमने जो सपने की तरह देखा है और सच माना है, जागते ही तुम पाओगे वह सच था ही नहीं। उसे मिटाना न था, सिर्फ जानना था।

इसलिए कठोर होने का मेरे पास कोई उपाय नहीं। तुम चाहोगे कि मैं कठोर हो जाऊँ, तुम्हें अच्छा भी लगेगा। क्योंकि तुम्हें लगेगा कुछ हो रहा है। जब मैं

तुमसे कहता हूँ ध्यान करो, तभी तुम्हारे भीतर से मेरा संबंध टूट जाता है। तुम कहते हो ध्यान! कुछ ऐसी बात बताओ जो हम कर सकें। उपवास हम कर सकते हैं। भूखे मरने में क्या कठिनाई है? विचार न करना हो तो मुसीबत है। मैं तुमसे कहता हूँ अहंकार छोड़ दो। तुम कहते हो ये बड़ा मुश्किल है। कोई ऐसी बात बताओ दान, धर्म, शास्त्र पठन-पाठन, त्याग, तप, हम करेंगे। लेकिन उस सबसे तो तुम्हारा अहंकार ही बढ़ेगा। हाँ, तुम्हारा अहंकार धार्मिक-लिबास पहन लेगा। तुम्हारा अहंकार पवित्र हो जाएगा। लेकिन पवित्र अहंकार और भी खतरनाक है। अपवित्र में तो थोड़ा सा कुछ और भी मिला है। पवित्र तो बिलकुल शुद्ध जहर है। और इसलिए तुम्हारे सब इलाज असफल हो जाते हैं। क्योंकि तुम इलाज तो असली करते हो और बीमारी पर तुमने कभी ध्यान नहीं दिया है, कि वह झूठ है।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन की दूकान पर बैठा हुआ था। एक आदमी ने आकर खटमल मारने की दवा चाही। नसरुद्दीन ने उसे दवा दी। उस आदमी ने कहा, 'बड़े मियाँ, खटमल तो मरेंगे लेकिन पाप किसको लगेगा? मुझे लगेगा कि तुम्हें लगेगा? दवा तो मैं डालूँगा, दवा बनायी तुमने है। या कि पाप आधा-आधा पड़ेगा?' नसरुद्दीन ने कहा, 'पाप किसीको भी नहीं लगेगा, तुम बेफिकर रहो।' उस आदमी ने कहा, 'मतलब?' नसरुद्दीन ने कहा, 'खटमल मरेंगे तभी पाप लगेगा न? ये दवा शुद्ध भारतीय है। देसी है बिलकुल। ग्रामोद्योग से बनी है। इससे कभी कुछ खटमल मरता नहीं है। ये तो बहाना है।'

तुम्हारी तपश्चर्याएँ व्यर्थ चली जाती हैं, क्योंकि तुमने ये ठीक से देखा ही नहीं कि तुम किसे मारने चले हो। वह इनसे मरेगा? इनसे उसके मरने का कोई संबंध ही नहीं है। तुम्हारी सब तपश्चर्याएँ नुकसान तो पहुँचा सकती हैं भला, मिटा कुछ भी नहीं सकतीं। मेरा सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान का मतलब क्या होता है? ध्यान का मतलब इतना ही होता है—'मन को इतना शून्य और शांत कर लेना ताकि जो तुम देखो उसमें तुम्हारा मन कुछ मिश्रित न कर पाए। अगर तुम गुलाब के फूल को देखो, तो तुम सिर्फ गुलाब के फूल को ही देखो। तुम्हारा मन ये न कह पाए, बड़ा सुंदर है, कितना प्यारा है! या, कुछ भी नहीं ये, इससे अच्छे फूल देखे हैं! तुम्हारा मन कुछ भी न कहे। कोई वक्तव्य न दे। जब तुम्हारा मन वक्तव्य नहीं देता, तब ध्यान है।' तब तुम्हारा मन एक निर्मल दर्पण हो जाता है। तब तुम्हें वही दिखायी पड़ता है, जो है। अभी तुम्हें वही दिखायी पड़ता है, जो नहीं है—जो तुम जोड़ते हो। जो तुम्हारा मन अस्तित्व के साथ जोड़ देता है। अभी तुम्हारी मान्यताएँ तुम्हें दिखायी पड़ती हैं। तुम्हारी मान्यताएँ भी माया हैं। अभी

तुम हर जगह वही देख लेते हो जो तुम देखने को तैयार हो।

जब तुम ध्यान से देखोगे, तब चीजें कुछ और हो जाती हैं।

समझो राह से जाते हो। एक आदमी गाली देता है। अभी भी तुम कुछ देखते हो जब वो गाली देता है तो। तुम ऐसा नहीं कि नहीं देखते। तुम देखते हो कि ये आदमी दुष्ट है, कि ये आदमी बुरा है, कि इस आदमी को दंड मिलना चाहिए। लेकिन जब तुम ध्यान से किसी दिन देखोगे तो शायद तुम्हें पता चले, ये आदमी ठीक है। ये जो कह रहा है ये मेरा वास्तविक वर्णन है, ये गाली नहीं है। इसने कहा, चोर। मैं चोर हूँ। तुम झुक के शायद इस आदमी के पैर पड़ो, कि धन्यभाग, आप मिल गये! आपने एक तथ्य की घोषणा कर दी। चोर मैं हूँ। तुमने मुझे जगाया। तुमने मुझे होश से भर दिया। मेरा धन्यवाद! और, ऐसी ही कृपा करते रहना। जब तुम्हें कोई चीज मुझमें दिखायी पड़ जाए तो बता देना।

मित्र तो वही है जो तुम्हारे दोष को प्रगट कर दे। दुश्मन वही है जो तुम्हारे दोष को ढाँक दे।

लेकिन अब तक तुम्हारी परिभाषा अलग है। तुम मित्र उसे कहते हो जो तुम्हारे दोष ढाँके। दुश्मन उसे कहते हो जो तुम्हारे दोष उभारे। लेकिन ध्यान की स्थिति में तो बात बदल जाएगी। कबीर ने कहा है—'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय'। जब भी कहीं कोई निंदक मिल जाए, तुम्हारी निंदा करने वाला मिल जाए, उसे तो घर ही बुला लेना—कि अब तुम कहीं जाओ मत। यहीं पास ही रहो। यहीं आँगन कुटी छवा देते हैं, तुम्हारे ठहरने का इंतजाम कर देते हैं। क्योंकि तुम दूर-दूर रहो, कभी-कभी मिलो, न मालूम कितनी चूक जाएँ भूलें। तुम पास ही रहो, और तुम नजर मुझ पर रखो, और जब भी तुम्हें कुछ बुराई दिखायी पड़े पूरे मन से कह देना, छिपाना मत। सभ्यता-संस्कृति का खयाल मत करना। तुम बिलकुल कठोर होकर साफ-साफ कह देना। क्योंकि तुम्हारे बिना तो मैं भटक जाऊँगा।

'निंदक नियरे राखिए'—ये ध्यान से देखी गयी बात है।

गाली बिना ध्यान के सुनो, तुम उस आदमी को मारने को उतारू हो जाओगे। गाली ध्यान से सुनो, तुम उस आदमी को धन्यवाद दोगे। और जीवन के सभी रूप बदल जाते हैं। जीवन को देखने के दो ढंग हैं। एक विचार से और एक ध्यान से। विचार से देखा गया जीवन संसार है। ध्यान से देखा गया संसार ही परमात्मा है। परमात्मा और संसार दो चीजें नहीं हैं, तुम्हारे देखने के दो ढंग हैं।

मुझे पता है तुम्हारी बीमारी झूठ है। इसलिए तो तुमसे मैं निरंतर कहता हूँ कि अगर तुम चाहो तो इसी क्षण परमात्मा को पा सकते हो। एक क्षण भी स्थगित

करने की जरूरत नहीं है। अगर बीमारी असली हो, तब तो ये नहीं हो सकता। तब तो समय लगेगा। एक आदमी पड़ा है, बीमार। वस्तुतः बीमार है। तब तो वर्षों लगेंगे इलाज में। चिकित्सा होगी, बीमारी कटेगी। लेकिन एक आदमी सिर्फ सम्मोहित पड़ा है। खयाल है कि बीमार हूँ, है नहीं बीमार। लोगों ने धारणा दे दी है कि बीमार है, है नहीं बीमार।

मेरे एक प्रोफेसर थे। उनसे मेरा बड़ा लगाव था। उनसे मैं एक दिन यही बात कह रहा था। पर उन्होंने मेरी बात मानी नहीं। उन्होंने कहा कि ये कैसे हो सकता है। तुम मुझे कोई झूठी बीमारी पकड़ा के दिखलाओ। मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। यह भी नहीं कहा कि पकड़ा के दिखलाएँगे, क्योंकि उससे भी बाधा पड़ती। मैं--बात आयी, गयी--भूल गया।

कोई दो-तीन महीने बाद मैंने उनकी पत्नी से जाकर कहा, कि तुम एक कृपा करना। सुबह उठते ही उनसे सिर्फ इतना पूछ लेना--कि रात नींद नहीं आयी क्या? आँखें लाल मालूम पड़ती हैं। जरा हाथ देखूँ, बुखार तो नहीं है? और, हाथ रख के देख लेना और कहना--अरे! दो-तीन डिग्री से कम बुखार न होगा। तुम उठा क्यों न लिए रात में मुझे? पत्नी ने कहा, तुम्हारा मतलब क्या? मैंने कहा कि मैं एक प्रयोग कर रहा हूँ। तुम कुछ बताना मत। इतनी मुझ पर कृपा करना। चिट लिखकर दे आया कि ये-ये तुम्हें बोलना है। और, वे जो कुछ भी कहें चिट के पीछे लिख देना। उसमें शब्द भी मत जोड़ना, अपनी तरफ से। उनके नौकर से कह आया। माली से कह आया। उन सबको चिट दे आया, कि वे बाहर जब आएँ तो नौकर से मैंने कहा तुम बुहारी लगाते उनसे कहना--कि मालिक, कुछ तबीयत ठीक नहीं मालूम होती।

वे जो भी कहें तुम लिख लेना। माली से--जब वे दरवाजे के पास यूनिवर्सिटी जाने लगें, तो तुम जरा दरवाजे पर आकर कह देना-- कि आप चल कुछ डगमगाते से रहे हैं। तबीयत ठीक नहीं है? वे क्या कहते हैं। ऐसा मैं यूनिवर्सिटी-डिपार्टमेंट तक--उनके चपरासी से, उनके क्लर्क से, सबसे कह आया। रास्ते में पोस्ट-ऑफिस पड़ता था। पोस्ट-मास्टर से कह आया कि यहाँ से निकलें तो उनको जरा इतना तुम पूछ लेना। यूनिवर्सिटी तक आते-आते--ज्यादा फासला नहीं था, मुश्किल से आधा मील का फासला था उनके घर से--उनकी आँखें लाल थीं, शरीर कँप रहा था। मैं दरवाजे पर ही मिला। उन्होंने कहा कि सुनो, किसी की कार ले आओ। मेरी गाड़ी तो ठीक हालत में नहीं है। और पैदल अब मैं न जा सकूँगा। बुखार चढ़ा है। रात भर तबीयत खराब रही। वे बाहर ही डिपार्टमेंट की कुर्सी

पर बैठ गये, आँख बंद कर ली।

मैं किसी की गाड़ी लाया, उनको बिठा कर उनके घर पहुँचा आया। साँझ गया। वे पड़े थे बिस्तर में। उनका टेम्परेचर लिया, एक सौ तीन था। मैं सब चिटें लेकर पहुँचा था। पत्नी ने जब उनसे सुबह पूछा कि आप की तबीयत ठीक नहीं? उन्होंने कहा, कौन कहता है ठीक नहीं? मैं बिलकुल मजे से सोया रात भर। तुझे भी वहम पकड़ जाते हैं। बाहर नौकर से उन्होंने कहा, कि हाँ--ज्यादा फासला नहीं है पत्नी और बाहर के नौकर में--उन्होंने कहा कि हाँ, जरा रात ठीक से नींद नहीं आयी। नहीं, तबीयत वगैरह ठीक है। लेकिन उस हिम्मत से इनकार नहीं किया जिस हिम्मत से इनकार पत्नी को किया था। माली से उन्होंने कहा कि हाँ, थोड़ा सा ताप मालूम पड़ता है। लेकिन कुछ खास नहीं--आया, चला जाएगा। पोस्ट-मास्टर से उन्होंने कहा, कि सिर में दर्द है। और रात तबीयत जरा ज्यादा ही खराब रही। डिपार्टमेंट के चपरासी से उन्होंने कहा कि हाँ, रात बहुत तबीयत खराब रही। और आज क्लास न ले सकूँगा। तुम खबर कर देना। और जब वे मुझे मिले, तब तो वे कुर्सी पर एकदम गिर पड़े थे। रात एक सौ तीन डिग्री बुखार था। मैंने सब चिटें उन्हें बता दीं कि ये-ये आपके वक्तव्य हैं। इनमें कौन सा सच माना जाए। आप धीरे-धीरे बीमारी की तरफ झुकते गये। सुबह आप बिलकुल बीमार नहीं थे। ये पत्नी सामने मौजूद है। वह भी कहती है, ये भी चमत्कार है कि ये कैसे बीमार हुए? क्योंकि उसने सिर्फ दोहराया था। आपका माली मौजूद है, आपका चपरासी मौजूद है, मैं उनको बुला लेता हूँ। वे मेरे वचन दोहरा रहे थे। आप बीमार हो गये हैं। बुखार असली है, और बीमारी झूठ है। ताप असली चढ़ा है, आधार बिलकुल झूठ है। मान्यता है। जैसे उन्होंने चिटें पढ़ीं--एक के बाद एक--बुखार उतरता गया। जब सारी चिटें पढ़ लीं और उन्होंने सारी स्थिति समझी, वे उठकर बैठ गये। बिस्तर के बाहर। कहा कि देखूँ, फिर से थर्मामीटर लाओ। बुखार वापिस नॉर्मल हो गया। ये जो पाँच डिग्री का फर्क पड़ा, ये मान्यता थी। ये असली बुखार होता तो चिटें देखने से ठीक नहीं हो सकता था। ये बुखार नकली था।

इसलिए मैं कहता हूँ तुम परमात्मा को अभी पा सकते हो--इसी क्षण। तुम्हारी धारणा कि तुमने उन्हें खोया है बस धारणा ही है। कोई खो सकता है परमात्मा को कभी? जो खो जाए वो भी परमात्मा हो सकता है? परमात्मा का अर्थ है तुम्हारा स्वभाव। उसे तुम खोओगे कैसे? दबा सकते हो, ढाँक सकते हो। लेकिन मिटा नहीं सकते। स्थगित करने की धारणा तुम्हारे मन में पैदा होती है--तुम

कहते हो जनम-जनम तपश्चर्या करेंगे तब पाएँगे, इतनी जल्दी कैसे होगा? ये भी चालबाजी है। ये सिर्फ टालना है। तुम पाना नहीं चाहते। अन्यथा अभी भी तुम्हें कोई रोक नहीं रहा है।

मैं तुम्हें एक फ्रेंच कहानी कहता हूँ।

बड़ी पुरानी कहानी है कि एक आदमी के पास बड़ा बगीचा था, और एक सरोवर था। उसको सफेद लिली के फूलों से बड़ा प्रेम था। तो उसने अपने सरोवर में सफेद लिली के फूल लगाए। लेकिन लिली बड़ी तेजी से बढ़ती थी—चौबीस घंटे में दुगुनी जगह घेर लेती थी। तो वह थोड़ा घबड़ाया। क्योंकि सरोवर में उसने मछलियाँ भी पाल रखी थीं। बड़ी सुस्वादु मछलियाँ। अगर लिली पूरे सरोवर को घेर ले तो मछलियाँ मर जाएँगी। उनके लिए खुला आकाश, सूरज की रोशनी, हवा, सब चाहिए। अगर लिली पूरे सरोवर को ढाँक ले, तो और सब तरह का जीवन सरोवर से नष्ट हो जाएगा। लेकिन उसे लिली के सफेद फूलों से भी बड़ा लगाव था।

वह बड़ी मुश्किल में पड़ा। उसने जाकर एक विशेषज्ञ की सलाह ली, कि मैं क्या करूँ? विशेषज्ञ ने कहा कि वह लिली चौबीस घंटे में दोगुनी हो जाती है। तुम्हारे सरोवर का माप देखकर मैं कह सकता हूँ कि तीस दिन में पूरा सरोवर लिली से ढँक जाएगा। फिर तुम्हें जो करना हो तुम करो। वो आदमी बड़े पशोपेश में पड़ा। लिली के फूल बड़े प्यारे थे। वह लिली को उखाड़ना न चाहता था। मछलियाँ भी बड़ी सुस्वादु थीं। बड़ी मुश्किल से पाली थीं। बड़ी बेजोड़ मछलियाँ थीं, दूर-दूर देशों से इकट्ठी की थीं। वे मर न जाएँ। तो फिर उसने सोचा, ऐसा करें अभी कोई जल्दी तो है नहीं, तीस दिन हैं। जब सरोवर आधा डूब जाएगा लिली से तब कुछ करना शुरू करेंगे। तब तक रुकें। तब तक मछलियाँ भी रहें, फूल भी रहें; कोई हानि नहीं है। जब आधा डूब जाएगा तब काटना शुरू करेंगे।

अब कहानी की पहेली ये है कि सरोवर कब आधा डूबेगा? उनतीसवें दिन आधा डूबेगा। ये मत सोचना कि पन्द्रह दिन में आधा डूबेगा। लिली आधा—अपने को दुगना करती है रोज—उनतीसवें दिन सरोवर आधा डूबेगा। और तब एक ही दिन बचेगा सफाई करने के लिए। शायद सफाई हो न सकेगी! और यही हुआ। उसने सोचा, आधा डूबेगा तब देख लेंगे। अभी बिगड़ा क्या है? अभी जल्दी क्या है? पहले तो लिली कुछ बहुत ज्यादा बढ़ती मालूम न पड़ी। सरोवर के कोने में बनी रही। उनतीसवें दिन जब वह सुबह जागा, तो उसने देखा आधा

सरोवर हो गया। तब वह थोड़ा घबड़ाया। तब उसे गणित का हिसाब आया। उसने कहा ये तो मारे गये! ये तो एक ही दिन बचा है अब सफाई के लिए। कहानी कुछ कहती नहीं, सफाई हो पायी कि नहीं हो पायी। लेकिन जीवन में भी यही हो रहा है। तुम सोचते हो अभी जल्दी क्या है? आधा जब जीवन जा चुका होगा तब देख लेंगे। इसीलिए लोग कहते हैं धर्म जवान के लिए थोड़े ही है, बूढ़े के लिए है। लेकिन तब इतनी कम शक्ति बचती है और इतना कम समय बचता है, और जीवन सारा का सारा ढँक जाता है व्यर्थ बोझों से, व्यर्थ विचारों से, कि आखिरी क्षण में मरते हुए बिस्तर पर तुम शायद कुछ कर न पाओगे। शायद राम नाम भी तुम्हारे मुँह से न निकल सके। क्योंकि तुम्हारे मुँह से वही निकल सकता है, जो कंठ में हो। कंठ से वही आ सकता है, जो हृदय में हो। जो हृदय में नहीं, कंठ में नहीं, वह मुँह से कैसे निकलेगा? मरते वक्त शायद तुमसे वही निकलेगा जो तुमने जीवन भर अर्जित किया है।

एक आदमी मर रहा था। उसने पूछा आँख खोल के कि मेरा बड़ा बेटा कहाँ है? पत्नी ने कहा वह तुम्हारे पास ही खड़ा है। तुम्हारे पैरों के पास। उससे छोटा कहाँ है? वह भी पास बैठा था। आदमी की आँखें धुँधली हो गयी हैं। साँझ हो रही है और मरने के वह करीब है। उसने टेक लगाकर उठने की कोशिश की, और कहा कि तीसरा बेटा कहाँ है? पत्नी ने कहा आप उठने की कोशिश मत करें, वह तुम्हारे बाएँ बैठा है। हम सब यहीं मौजूद हैं। कोई कहीं नहीं है, सब यहीं मौजूद हैं।

वह बहुत घबड़ा गया। वह उठ कर बैठ गया, और उसने कहा कि इसका क्या मतलब? फिर दूकान पर कौन है? वह मर रहा है! वह यह पूछ भी नहीं रहा है कि बेटे यहाँ मेरे पास हैं? वह असल में यह पूछ रहा है कि दूकान चल रही है? सब बंद करके तो नहीं आ गये हैं यहीं?

मरते क्षण भी दूकान ही ओंठ पर होगी। अगर सारे जीवन दूकान ओंठ पर रही, स्वाभाविक है। मृत्यु तो वही लाएगी जो तुमने जीवन में कमाया है। मृत्यु तुम्हें वही प्रगट कर देगी जो जीवन भर की तुम्हारी संपदा है, अर्जन है। टालना मत। टालने की तरकीबें हैं बहुत। बड़ी तरकीब यही है, कि कोई आज तो परमात्मा मिलना नहीं, कल मिलेगा। इस जनम में तो मिलना नहीं, अगले जनम में मिलेगा। तो अभी तो जो तुम कर रहे हो वह करते रहो, थोड़ा-थोड़ा उस तरफ भी यात्रा करते जाओ—कभी उपवास कर लो, कभी मंत्र-जाप कर लो, कभी मंदिर हो आओ—ऐसे धीरे-धीरे करते करते कभी मिल जाएगा। तुम भी जानते

हो कि तुम पाना नहीं चाहते। क्योंकि मैं तुमसे कहता हूँ, अगर पाना है, तो अभी मिलने का उपाय है। ऐसा सोचो मत कि परमात्मा उपलब्ध नहीं है। तुम अभी उसे उपलब्ध होने को तैयार नहीं हो। उसका आकाश तो खुला है, लेकिन तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद करके बैठे हो। तुम परमात्मा से भयभीत हो। इसलिए तुम ऐसे सिद्धांतों को मान लेते हो जिनसे स्थगित करने में सुविधा मिलती है। सार? सार इतना है कि तुम एक स्वप्न देख रहे हो कि तुमने परमात्मा को खो दिया है।

इस स्वप्न से जागना है, होश लाना है। अचानक तुम पाओगे उसे खोया ही नहीं जा सकता। जैसे सागर की मछली सागर को नहीं खो सकती। सागर में ही पैदा होती, सागर में ही जीती, सागर में ही समाप्त होती। फिर भी सागर की मछली तो कभी सागर के बाहर भी फेंक दी जा सकती है। कोई बड़ी लहर फेंक दे, कोई मछुआ खींच ले। लेकिन परमात्मा के बाहर तो तुम फेंके ही नहीं जा सकते। कोई लहर फेंक नहीं सकती, क्योंकि उसके बाहर कोई तट नहीं है। और कोई मछुआ नहीं खींच सकता, क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई मछुआ नहीं है। किसी रेत पर तुम्हें नहीं फेंका जा सकता, क्योंकि उसकी ही रेत है, उसका ही सागर है। परमात्मा के बाहर होने के लिए न तो जगह है, न कोई समय है, न कोई सुविधा है। परमात्मा के भीतर होना एकमात्र होने का ढंग है। फिर, तुमने कैसे उसे भूला है? फिर तुम कैसे उससे चूके हो? जरूर तुम्हारी धारणा होगी। खयाल है, कि तुम परमात्मा को खो बैठे हो। विचार है। एक मूर्छा है।

इसलिए क्रूर उपाय करने की कोई जरूरत नहीं है। बड़ी सीधी सी बात है। छोटी सी सुई से तुम्हारे विचार का बबूला टूट जाएगा। तलवारें उठा कर और बबूले पर हमला करने की कोई जरूरत नहीं। उसमें सिर्फ हमला करनेवाला ही पागल सिद्ध होगा। बबूले से ज्यादा नहीं है तुम्हारी स्थिति। तुम्हारा अहंकार पानी का बबूला है। सुई से भी टूट जाएगा। एक फूंक भी हवा की, और फट जाएगा। आश्चर्य तो यह है कि तुम कैसे उसे सँभाले हो? आश्चर्य ये नहीं है कि वह क्यों नहीं मिटता। मिट तो अभी सकता है। सँभाले हो तुम। पानी के बबूले की चादर सँभाले हो। सँभाले रहते हो पूरे जिंदगी, ये चमत्कार है।

परमात्मा को जो पा लेते हैं उन्होंने कुछ भी नहीं पाया है। जो मिला था, उसीको जान लिया है। परमात्मा को जिन्होंने खो दिया, उनकी उपलब्धि बड़ी आश्चर्यजनक है। वे चमत्कारी हैं। क्योंकि जो मिला है, उसे जिसे खोया नहीं जा सकता, उन्होंने खोने की भ्रांति बना ली है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ तो किसीने पूछा, क्या मिला? बुद्ध ने कहा मिला कुछ भी

नहीं, उल्टा कुछ खो गया। मिला तो वही जो मिला ही हुआ था। उसको मिलना कहना ठीक नहीं है। और जो कभी मिला नहीं था लेकिन खयाल था कि है, वह खो गया। जो नहीं था वह खो गया, जो था वह प्रगट हो गया है।

दूसरा प्रश्न : आपका ही वचन है, हम जो हैं उसे छिपाने में और जो नहीं हैं उसे दिखाने में लगे हैं। अपने अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि साधारण मनुष्यों के लिए यह बात कितनी सच है। मगर क्या कारण है कि समस्त पशुओं में केवल मनुष्य नाम का पशु इस दिखावे के रोग का शिकार होता है?

मनुष्य भटकता है, क्योंकि पहुँच सकता है। पशु भटकते नहीं, क्योंकि पहुँच नहीं सकते। पहुँचने की संभावना के साथ ही भटकने की संभावना भी खुल जाती है। गिरेगा तो वही जो चढ़ेगा। जो चढ़ेगा ही नहीं, वह गिरेगा भी नहीं। छोटा बच्चा जमीन पर सरकता है, तब गिरता नहीं। लेकिन जब खड़ा होने लगता है, तब गिरता है और घुटने तोड़-तोड़ लेता है। जो खड़ा होगा, वह गिरने की जोखिम लेता है। मगर खड़े होने का मजा ऐसा है कि वह जोखिम लेने जैसी है।

पशु में कोई दिखावा नहीं है। क्योंकि पशु को इतना भी होश नहीं है कि दूसरे को दिखाए कि मैं क्या हूँ। उसे पता ही नहीं है। वह बिलकुल अँधेरे में जी रहा है। उसे ये कभी विचार-तरंगें भी नहीं उठीं कि दूसरे मेरे संबंध में क्या सोचते हैं। मनुष्य उठा है। उठते ही उसे दूसरे भी दिखायी पड़े। दूसरे पहले दिखायी पड़ जाते हैं अपने बजाय। जब भी तुम जागते हो सुबह तो तुमने एक खयाल किया, तुम्हें अपना पता नहीं चलता, पहले कमरा दिखायी पड़ता है, चीजें दिखायी पड़ती हैं—कहाँ हो। घड़ी दिखायी पड़ती है दीवाल पर। जब तुम सुबह उठते हो तो तुम्हें बाहर दूधवाले की आवाज सुनायी पड़ती है, पत्नी के बरतन रखने की आवाज सुनायी पड़ती है, बच्चा स्कूल जाने की तैयारी कर रहा है, उसका बस्ता भरा जा रहा है उसकी आवाज आती है। तुम्हें अपना पता तो नहीं चलता, दूसरी चीजों का पता तत्क्षण चलता है।

मनुष्य जागा है पशुओं से। जागते ही उसे सारी दुनिया का पता चलेगा। वही जागरण तो सहजो, कबीर, नानक, दादू, उनको घटा है। एक जागरण है पशु के बाहर, फिर एक और जागरण है मनुष्य के बाहर। तब पूर्ण जागरण है। पशु से जागना आधा जागना है। पशु से जागने का अर्थ है दूसरों का तो हमें पता चल रहा है, अपना कोई पता नहीं चल रहा है। अभी आधी-आधी नींद टूटी है। प्रकाश दूसरों पर पड़ रहा है, अपने पर नहीं लौटा है। अगर तुम जागते ही चले गये, तो प्रकाश अपने पर भी लौटेगा। तुम्हें दूसरों की ही आवाज नहीं सुनायी पड़ेगी,

अपना भी बोध होगा। वही बोध तो मनुष्य को धार्मिक बनाता है।

पशुओं में कोई दिखावा नहीं है। न तो वे गहने सजाते हैं, न वे वस्त्र पहनते, न वे उत्सव में जाते तैयार होकर। उन्हें पता ही नहीं है कि दूसरे की आँख है, कि दूसरे की आँख निर्णय लेती है कि तुम कैसे दिखायी पड़ रहे हो। उन्हें कोई अनुभव नहीं है। वे एक गहन मूर्छा में सोये हैं।

पशुओं में और संतों में एक समानता है।

समानता यही है कि पशु गहरी मूर्छा में सोये हैं, कोई विजातीय स्वर नहीं है—मूर्छा ही मूर्छा है। संत में भी कोई विजातीय स्वर नहीं है—जागरण ही जागरण है। पशु इसलिए दिखावे में उत्सुक नहीं है क्योंकि उसे दूसरे का पता नहीं है। संत इसलिए दिखावे में उत्सुक नहीं है क्योंकि उसे अपना पता है। इन दोनों के बीच में आदमी है—त्रिशंकु—मध्य में लटका। आधा पशु है—अंधेरे में डूबा है, आधा जाग गया है—रोशनी हो गयी है। वह जो आधा जागा है उससे दूसरे दिखायी पड़ रहे हैं, दूसरे की आँख का निर्णय दिखायी पड़ता है। कोई देख कर प्रसन्न हो जाता है, उसे लगता है हमें स्वीकार किया गया। कोई देख कर मुँह फेर लेता है, उसे लगता है मेरा तिरस्कार किया गया। क्या करूँ कि मेरा तिरस्कार न हो? क्या करूँ कि मुझे इस तरह की चोटें न पड़ें, लोग मेरा सम्मान करें? क्या करूँ कि लोग मुझे प्रेम करें? तो वह दूसरे को देख रहा है। पशु एक तरह के सुख में हैं, पर वह सुख मूर्छित है। उन्हें खुद भी पता नहीं है कि वे सुखी हैं। संत महासुख में है। उसे पता है सुख ही सुख है, और कुछ भी नहीं है।

पशु भी शांत हैं, संत भी शांत हैं। बीच में आदमी है जो अशांत है। आधा पशु, आधा परमात्मा—ऐसी बेचैनी है। आदमी नरसिंह का अवतार है। नरसिंह के अवतार से ज्यादा मूल्यवान प्रतीक हिंदुओं के किसी दूसरे अवतार की धारणा में नहीं है। आधा पशु, आधा मनुष्य। बड़ी बेचैनी है आदमी के भीतर, क्योंकि आधा पत्थर की तरह खींच रहा है मूर्छा की तरफ, आधा जाना चाहता है, उड़ना चाहता है आकाश की तरफ। पत्थर उड़ने नहीं देता। उड़ने की आकांक्षा के कारण पत्थर का भी सुख मिल नहीं पाता। पत्थर पड़ा है, सुखी है। पक्षी उड़ रहा है, सुखी है। तुम एक ऐसे पक्षी की कल्पना करो जो आधा पत्थर है आधा पक्षी। वह तड़पेगा। तुम उसे देखोगे तो तड़प रहा है, उसे कोई चैन नहीं। पत्थर होता तो भी पड़ा रहता एक वृक्ष की छाया में, विश्राम करता, सपने देखता। पूरा पक्षी होता, आकाश में उड़ता, सूरज से मिलने की आकांक्षा बाँधता। ये आधा पक्षी, आधा पत्थर। आधा पड़ा है जमीन में, आधा आकाश की तरफ अभीप्सा से भरा है। उड़ नहीं पाता।

विश्राम भी संभव नहीं है, उड़ान भी नहीं संभव है। सिर्फ बेचैनी में तड़पता है, फड़फड़ाता है पंख। ऐसा ही आदमी है।

दो उपाय हैं। या तो वापिस लौट के पशु बन जाओ—पूरे पत्थर हो जाओ। या, वह जो पत्थर की तरह अभी अधूरा अटका है उसे भी जगाओ—उसमें भी पंख लग जाएँ, उसे भी पक्षी बना लो।

अधिक लोग पत्थर बनने की तरफ झुकते हैं। यद्यपि वह संभावना संभव नहीं है, वह मात्र धोखा है। वह रास्ता कहीं ले जाता नहीं। शराब पीने वाला क्या कर रहा है? वह यही कह रहा है कि भूल जाऊँ ये पंख, और ये आकाश, और ये सूर्य। ये उड़ने की अभीप्सा भूल जाऊँ। जैसा हूँ, ठीक। पत्थर बना रह जाऊँ। तो शराबी को तुम रास्ते पर नाली में पड़ा हुआ देख रहे हो। उड़ने की तो बात दूर, चलने की भी आकांक्षा नहीं रह गयी। दूसरे की फिक्र की तो बात ही और, किसी की कोई फिक्र का सवाल ही नहीं रहा है। कुत्ता उसका मुँह चाटता रहे, उसे मतलब नहीं। मक्खियाँ भिनभिनाती रहें उसके ऊपर, उसे मतलब नहीं है। लोग निंदा करते हुए पास से गुजरते जाएँ, उसे मतलब नहीं। उसे कुछ सुनायी ही नहीं पड़ रहा। उसने वो जो पंख वाला आधा हिस्सा था उसको शराब पीकर बेहोश कर लिया। लेकिन कितनी देर बेहोश रहोगे? सुबह होगी, होश आएगा। तब बड़ी निंदा से मन भरेगा। तब तुम और भी ज्यादा पछताओगे, जितने तुम कभी भी न पछताए थे। तब तुम्हें और भी पीड़ा पकड़ेगी कि ये मैं क्या कर रहा हूँ? ये मुझसे क्या हो रहा है? उस पीड़ा के कारण, उस बेचैनी के कारण तुम और, दूसरे दिन और ज्यादा शराब पियोगे। क्योंकि अब उस बेचैनी को डुबाने का और कोई रास्ता दिखायी नहीं पड़ता। एक दुष्चक्र पैदा होगा। भुलाने के लिए शराब पियोगे। होश में आओगे तब पीड़ा और भी गहन हो जाएगी, संताप और भी पकड़ेगा कि ये मैं क्या कर रहा हूँ अपने जीवन का? तब इस चिंता को भुलाने के लिए और शराब पियोगे। फिर इसका कोई अंत नहीं है।

शराब और ध्यान—जैसा मैंने कहा, पशुओं और संतों में एक तरह की समानता है—वैसी समानता शराब और ध्यान में भी है। शराब पीछे लौटना है, ध्यान आगे जाना है। शराब पत्थर के साथ राजी होना है, ध्यान पत्थर को भी पक्षी बना लेना है। इसलिए समस्त ध्यानियों ने शराब का विरोध किया है। उसका और कोई कारण नहीं है। कोई शराब से दुश्मनी नहीं है। शराब से क्या लेना-देना? समस्त ध्यानियों ने शराब का विरोध किया है। उस विरोध का इतना ही कारण है कि तुम पीछे जाने की कोशिश कर रहे हो, जो हो ही नहीं सकता। तुम

असंभव को संभव बनाने में लगे हो। इस जगत में जो जान लिया गया उसे भुलाया नहीं जा सकता। जितना ज्ञान हो गया उसे मिटाया नहीं जा सकता। जो अनुभव में आ गया उसे अनुभव में बाहर फेंकने का कोई उपाय नहीं है। पीछे लौटना होता ही नहीं। बच्चा जवान हो गया, फिर उसको बच्चा कैसे करोगे? तुम गर्भ के बाहर आ गये, फिर तुम्हें गर्भ में कैसे रखा जा सकेगा? जीवन आगे की तरफ ही जाता है। पीछे की तरफ कोई सीढ़ी नहीं है। इसलिए ध्यानी शराब के विरोध में हैं। वह विरोध शराब का नहीं है। वह विरोध तुम्हारी इस चेष्टा का है कि तुम पीछे गिरना चाहते हो। और गिर नहीं सकते, उठना पड़ेगा। और हर बार तुम उठोगे तो और भी ज्यादा लड़खड़ा जाओगे, चलना मुश्किल हो जाएगा। गिरना संभव नहीं होगा, पीछे लौट न सकोगे, आगे जाना असंभव होने लगेगा, तब तुम्हारी दुविधा भयंकर हो जाएगी। तुम्हारे भीतर संताप और तनाव भारी होगा। तुम खंड-खंड हो जाओगे। जिसको सहजो ने कहा है चित्त-भंग। तुम्हारा चित्त खंडित हो जाएगा, तुम्हारा दर्पण टूट-फूट जाएगा। फिर उस टूटे-फूटे दर्पण में तुम सत्य की छाया भी न पा सकोगे। फिर परमात्मा के सामने तुम प्रतिबिंब भी न बना सकोगे।

ध्यान भी शराब है। होश की शराब है। बेहोशी की एक मस्ती है, लेकिन होश की मस्ती से उसकी क्या तुलना करोगे! होश की भी एक मस्ती है। कहती है सहजो, 'पाँव पड़ै कित कै किती, हरि सँभाल तब लेह'। एक होश की मस्ती है कि पैर कहीं के कहीं पड़ रहे हैं। परमात्मा सँभालता है। अब खुद तो सँभालने वाला कोई बचा ही नहीं। ध्यानी भी मस्ती में डोलता है, नाचता है। शराबी भी डोलता है, नाचता है। लेकिन ध्यानी के नाच में तुम सुरभि पाओगे अज्ञात की, सुगंध पाओगे सत्य की। शराबी के नाच में तुम दुर्गंध पाओगे बेहोशी की, तन्द्रा की, मूर्छा की। बड़ा फर्क है। शराबी ऐसे है जैसे सड़ गया फूल। ध्यानी ऐसे है जैसे खिल गयी कली—अपने पूर्ण निखार पर आ गयी।

ठीक है सवाल कि मनुष्य ही दिखावे में उत्सुक है। क्योंकि मनुष्य थोड़ा जाग गया है, पशु सोये हैं। इसे तुम दुर्भाग्य मत समझो। ये सौभाग्य है। ये संतत्व की तरफ पहला कदम है। यद्यपि इसी को तुम सब मत समझ लेना। इसी पर रुक मत जाना। अन्यथा ये दुर्भाग्य हो जाएगा। सीढ़ी चढ़ाती है, अगर तुम छोड़ते जाओ। एक पायदान पर पैर रखो, छोड़ो, तो सीढ़ी सौभाग्य है। लेकिन सीढ़ी के पायदान को पकड़कर बैठ जाओ तो सीढ़ी दुर्भाग्य है। फिर वह तुम्हें कहीं का न रखेगी। न नीचे के रहे न ऊपर के। न घर के न घाट के।

दिखावे की आकांक्षा सुंदर होने की आकांक्षा का पहला कदम है। अभी

उत्सुकता इसमें है कि दूसरे तुम्हें सुंदर जानें। थोड़े और जागोगे तब उत्सुकता इसमें होगी कि मैं सुंदर होऊँ। दूसरे जानें या न जानें, इससे क्या लेना-देना है। क्योंकि सुंदर होना इतना सुखद है। मेरे भीतर एक शांति हो। दूसरे जानें या न जानें, इससे क्या लेना-देना है। मैं भीतर अशांत होऊँ और तुम जानते रहो कि मैं शांत हूँ, इससे मुझे क्या मिलेगा? इससे क्या सार है? इससे मेरी अशांति कटती नहीं, घटती नहीं। बल्कि मेरे भीतर और एक उपद्रव खड़ा हो जाता है, कि भीतर अशांति चलती है, बाहर से शांति को थोपने की चेष्टा करता हूँ। अशांत तक होने की शांति नहीं रह जाती, कि अशांति भी प्रकट कर दूँ। वो भी नहीं हो सकता। अब क्रोध उठता है, उबलता है, मैं मुस्कुराता हूँ कि ये क्रोध किसी को पता न चल जाए। कहीं ये न पता चल जाए कि मैं क्रोधी हूँ। तो क्रोध की अशांति तो चल ही रही है भीतर, अब ये मुस्कुराहट को और थोपना है। ये झूठी मुस्कुराहट और अशांत कर देती है।

दूसरे को दिखावे से तो कुछ सार नहीं है। लेकिन सीढ़ी का एक पायदान है। दूसरे को दिखाने का इतना ही अर्थ है कि तुम्हें होश थोड़ा आया है, कि भीतर परमात्मा की वीणा बजनी चाहिए। ये होश अच्छा है। इसे आगे ले चलो। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि ये होश तुम्हें उस जगह ले आएगा जहाँ तुम भीतर सुंदर को जगाओगे, बाहर की चिंता छोड़ दोगे। भीतर शांति को निर्मित करोगे, बाहर की चिंता छोड़ दोगे। अंतस् को रूपांतरित करोगे, आचरण की फिकर भूल जाओगे। और आचरण तो अपने-आप छाया की तरह पीछे चला आता है। बुद्ध ने कहा है, जैसे गाड़ी चलती है तो चाक के निशान पीछे छूटते चले जाते हैं, ऐसे ही जब भीतर की अंतर्क्रांति होती है तो तुम्हारे जीवन में आचरण पीछे आता है। जैसे गाड़ी के पीछे चके के निशान आते हैं। 'एस धम्मो सनंतनो'। ऐसा ही सनातन धर्म है। ऐसा ही सदा का नियम है। जब भीतर बदल जाता है तो बाहर कैसे बिना बदला रहेगा। जब तुम अंतस् में सुंदर हो जाते हो तो उस सौंदर्य की किरणें तुम्हारे जीवन में सब तरफ प्रगट होने लगती हैं। अन्यथा असंभव है। जब घर का दीया जलेगा तो खिड़की से, रंध्र से, द्वार से, रोशनी बाहर भी पड़ने लगेगी। दूर से भी लोग देख लेंगे कि घर के भीतर दीया जला है। अँधेरे में भी रोशनी उनके रास्ते तक पहुँच जाएगी।

जब भीतर की चेतना जगती है तो आचरण अपने-आप बदल जाता है। वह तो बाहर जाती रोशनी है। लेकिन तुम उल्टा काम कर रहे हो। भीतर तो दीया अँधेरा है, तुम रोशनी को चिपका रहे हो—खिड़की में, दीवाल पर, बाहर—कि

लोगों को पता चल जाए कि घर अँधेरा नहीं है। रोशनी चिपका रहे हो बाहर। इस चिपकाने के कारण तुम्हारे भीतर का अँधेरा तो मिटता ही नहीं, और भी अँधेरा मालूम होता है। तुम और भी चिंता में डूबते चले जाते हो। तुम्हारा जीवन नर्क हो जाता है। नहीं, आकांक्षा तो शुभ है कि तुम सुंदर होना चाहते हो। उसने जरा गलत पहलू पकड़ लिया है। तुम दूसरे की आँख में सुंदर होना चाहते हो, ये गलत पहलू है। ये अधार्मिक आदमी की दृष्टि है। धार्मिक आदमी भी सुंदर होना चाहता है, लेकिन दूसरे से प्रयोजन नहीं है। वह अपनी आँख बंद करता है और भीतर उस परम सौंदर्य की प्रतिमा को निहारता है। उसमें डूबता है, रसलीन होता है।

अच्छा है कि तुम पशु नहीं रहे। लेकिन, जैसे तुम अभी हो अगर ऐसे ही रहे, तो तुम्हारे मन में पशु से भी ईर्ष्या पैदा होगी। क्योंकि पुराना घर छूट गया, नया घर मिला नहीं। पशुता का सुख था वह खो गया, और परमात्मा का सुख मिला नहीं। बीच में लटके रह गये। ये तो अच्छा ही हुआ कि पिछला घर छूट गया। अब नये को बनाओ। और पुराने में लौटने की कल्पना मत करो। उसमें कभी कोई सफल नहीं हो पाया है।

अधार्मिक आदमी असफल आदमी है। वह कभी सफल हो ही नहीं सकता। उसकी प्रक्रिया धर्म के अनुकूल नहीं है, नियम के अनुकूल नहीं है। वह विपरीत चलने की कोशिश कर रहा है। वह बूढ़ा है तो जवान होने की कोशिश कर रहा है। जवान है तो बच्चा होने की कोशिश कर रहा है। पर उलटा जा रहा है। वह कहीं जा न पाएगा। वह इस जाने की चेष्टा में ही नष्ट हो जाता है।

सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें सौंदर्य का बोध उठा। इस बोध को और बढ़ाओ। तब तुम भीतर सुंदर होने की चेष्टा करोगे—आभूषण से नहीं, अंतरतम से। वस्त्र न बदलोगे। वह जो भीतर का चैतन्य है, उसे बदलोगे। कौन क्या कहता है, ये फिक्र भूल जाओगे तुम। तुम क्या हो उसका आनंद इतना गहन है, कौन चिंता करता है लोगों के मंतव्य की। तुम्हारे पाश होश है, तो कबीर कहते हैं—'हीरा पायो गाँठ गठियायो'—चुपचाप गाँठ बाँधी और भागे। फिर कौन फिकर करता है दिखाने की बाजार में।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जिस गाँव में रहता था—छोटा गाँव। गाँव का एक पुराना रिवाज था कि अगर किसीको किसीकी कोई चीज पड़ी हुई मिल जाए, तो वह बाजार में जाकर तीन बार जोर से चिल्लाकर ऐलान करे कि मुझे एक हीरा मिल गया है, या एक रुपया मिल गया है, या सौ का नोट मिल गया है।

किसीका हो तो वह ले ले। तीन बार घोषणा कर दे। अगर कोई न आए, तो फिर वह उसका मालिक। अगर कोई कह दे कि मेरा है, तो वह उसे दे दिया जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक हीरा मिल गया। नियम के अनुसार वह बाजार गया। उसने तीन बार घोषणा की कि मुझे हीरा मिल गया है। जिसका हो ले जाए। कोई भी न आया। हीरा रखकर घर आ गया। पत्नी ने पूछा 'आधी रात कहाँ गये थे?' उसने कहा, 'बाजार गया था।' आधी रात! जब बाजार में कोई था ही नहीं। जब सब सो चुके थे। तब वह बाजार पहुँचा। नियम का उसने पालन किया। और तीन बार धीरे-धीरे, कि उसको खुद भी सुनायी न पड़ता था क्या कह रहा है, कि मुझे हीरा मिला है। डर, कि कहीं कोई रात में भी, कोई भिखमंगा, कोई इधर-उधर पड़ा हो, सोया हो, कोई दुकानदार जग रहा हो—कहने लगे मेरा है। इतने धीमे उसने कहा कि उसको खुद ही मुश्किल से सुनायी पड़ा कि वह क्या कह रहा है। और घर आकर उसने कहा, अब हम मालिक हैं।

जब हीरा मिल जाए तो ऐसी ही दशा होती है। कौन फिकर करता है? किसको बताने जाता है? बताने में खतरा ही है।

इसलिए तो सहजो कहती है कि हृदय में ही जपना उसके नाम को। ओंठ से ओंठ को भी पता न चले। खुद को भी पता न चले। 'सहजो कै करतार'। ज्यादा से ज्यादा सहजो को पता चले और कर्ता को पता चले। अच्छा तो यह होगा... इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। 'सहजो कै करतार'—या तो सहजो, या करतार—बस दो। ठीक मतलब तो यह होगा कि 'सहजो कै करतार'—अच्छा तो यह होगा कि सहजो को भी पता न चले, बस करतार को ही पता चले।

पता ही किसीको न चले। क्या कहना है। घोषणाएँ वे ही करते हैं जिनके पास नहीं है। जिनके पास है, होना ही पर्याप्त घोषणा है। किसी और घोषणा की जरूरत नहीं रह जाती। जब तुम चिल्ला-चिल्ला कर किसी को समझाते हो कि तुम आचरणवान हो, तब तुम भी जानते हो कि तुम आचरणवान नहीं हो। अन्यथा चिल्ला कर घोषणा करने की जरूरत न होती।

अक्सर... बर्ट्रन्ड रसेल ने अपने एक लेख में लिखा, मुझे बात जमती है। उसने लिखा है कि अगर कहीं भीड़ हो और किसीकी चोरी हो जाए, जेब कट जाए, तो जेब जिसने काटा है उसको अगर अपने को बचाना हो, तो सबसे जरूरी काम है कि वह सबसे ज्यादा शोरगुल मचाए—कि जेब कट गया, किसने काटा है, पकड़ो चोर को! तो लोगों की उसपर नजर ही न जाएगी, कि ये भी बेचारा चोर हो सकता है! यह तो संत पुरुष मालूम होता है। चोर को पकड़ने के लिए दौड़ रहा है, भाग

रहा है। अक्सर ऐसा होता है, समाज में जो लोग दूसरों के चरित्र की बड़ी निंदा करते हैं, या किसी के चरित्र के ऊपर बड़ा शोरगुल मचाते हैं, वे वे ही लोग हैं जो इस शोरगुल में अपने चरित्र को छिपा लेना चाहते हैं। अगर एक वेश्या पकड़ी जाए तो जो लोग उसे पत्थर मारने पहुँच जाते हैं, अक्सर तो ये वे ही हैं जो उस वेश्या के ग्राहक थे। क्योंकि अब वे सोचते हैं, अगर पत्थर मारने न गये तो गाँव-पड़ोस के लोग क्या समझेंगे, कि तुम भी वेश्या के ग्राहकों में हो! तो जो बड़े से बड़ा ग्राहक है, तुम सबसे पहले पत्थर मारते हुए पाओगे।

ऐसा जीसस के जीवन में उल्लेख है।

एक वेश्या को लाया गया। और लोगों ने कहा कि हम इसे मार डालेंगे, क्योंकि यहूदी किताबों में लिखा है कि जो स्त्री दुराचरण करे उसे पत्थरों से मार डालना चाहिए। तो जीसस ने कहा कि ठीक लिखा है किताब में, तुम पत्थर से मार डालो। तुम सब पत्थर हाथ में उठा लो। नदी के किनारे जीसस बैठे थे। पत्थर बहुत पड़े थे। उन सबने पत्थर उठा लिए।

जीसस ने कहा, एक बात और सुन लो। पत्थर वही मारे जिसके मन में इस स्त्री के प्रति कामवासना कभी न उठी हो। धीरे-धीरे, पंच-प्रमुख जो आगे खड़े थे वो अपने पत्थर गिराकर पीछे भीड़ में सरकने लगे। क्योंकि वे ही तो असली ग्राहक थे। कहते हैं, वे लोग चुपचाप भाग गये वहाँ से। जीसस को अकेला छोड़ दिया उस वेश्या के पास। वह वेश्या रोने लगी। वह जीसस के पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, 'मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किया है।' जीसस ने कहा, 'मैं क्षमा करने वाला कौन हूँ? और मैं तुझे पापी कहनेवाला भी कौन हूँ? ये तेरे और परमात्मा के बीच की बात है। ये निपटारा तू अपने परमात्मा से करान।' निंदा तो वही करते हैं जिनका कुछ हाथ होता है। जीसस ने कहा, 'मैं तो निर्णय करने वाला भी कौन हूँ? मैं तो अपने ही को देख लूँ, इतना काफी है। तेरे जीवन में बाधा देने वाला मैं कौन? तू जो हो सकी है, जो तू हो सकती थी, वही है। परमात्मा ने शायद ऐसा ही चाहा हो। ये तेरे और तेरे परमात्मा के बीच की बात है। अगर तुझे लगता है कि गलत किया, तो अब मत करना। तुझे लगता है ठीक, जारी रखना। मैं निर्णय देने वाला कौन? मैं न्यायाधीश नहीं हूँ।' तुम अपने न्यायाधीशों को अक्सर ग्राहक पाओगे।

अभी मैं एक, अमरीका के एक नगर में घटी घटना पढ़ रहा था। कैलीफोर्निया के नगर सॅनफ्रांसिस्को में एक जज पर अभी मुकदमा चला, कुछ वर्ष पहले। वो मुकदमा था कि वह जज एक छोटे से क्लब में शराब पिलाने, और वेश्याओं को

लाने, और वेश्याओं के दलाल का काम करता था। और बड़ी हैरानी की तो बात ये हुई, कि वह सॅनफ्रांसिस्को का सबसे कठिन न्यायाधीश था, सबसे कठोर न्यायाधीश था। उसने न मालूम कितने वेश्याओं के दलालों को कठोर से कठोर सजाएँ दी थीं। और लोग उसकी अदालत में मुकदमा चला जाए तो घबड़ाते थे। वह खुद पकड़ा गया उसी धंधे में। तब बड़ी हैरानी हुई। कोई सोच भी नहीं सकता था कि वह जज, और पकड़ा जाएगा। ऐसे काम में कल्पना भी नहीं हो सकती थी। फिर उस पर मुकदमा चला, तो उसीके एक मित्र जज ने उसको कुछ साधारण सी सजा देकर छोड़ने की कोशिश की। बाद में पता चला कि वह भी उसी धंधे में सम्मिलित था।

जिंदगी बड़ी जटिल है। तुम जिनको न्यायाधीश कहते हो, अक्सर तो तुम उनको अपराधियों में श्रेष्ठतम पाओगे। जिनको तुम राजनेता कहते हो, अक्सर तो वे ही कारागृहों में होने चाहिए। लेकिन, वे काफी कुशल हैं। वे होशियार हैं। और, एक तरकीब वे जानते हैं, कि जो काम तुम्हें करना हो तुम उसकी गहरी निंदा करो, कोई शक भी न करेगा कि तुम ऐसा काम कर सकते हो। दूसरे को दिखावा, दूसरे के सामने घोषणा, छिपाने का उपाय है। तुम कुछ छिपाना चाहते हो, तभी तुम दूसरे के सामने घोषणा करते हो कि मैं चरित्रवान, कि मैं त्यागी, कि मैं ज्ञानी। तुम कुछ छिपाना चाहते हो।

जो ज्ञान की घोषणा करे, वह अज्ञान को छिपाना चाहता है। जो त्याग की घोषणा करे, वह भोग को छिपाना चाहता है। घोषणा का अर्थ ही है कि उससे विपरीत को तुम छिपाने में लगे हो। लेकिन परमात्मा से तो कुछ छिपेगा न। और, लोगों से छिपाने का सार क्या है? तुम भी कल मिट्टी में गिर जाओगे, जिनसे तुमने छिपाया वे भी मिट्टी में गिर जाएँगे। उनकी आँखों की कोई आखिरी मूल्यवत्ता नहीं है। उनके मतों का कोई अर्थ नहीं है। उनके निर्णय की कोई सार्थकता नहीं है। उन्होंने तुम्हें अच्छा कहा या बुरा कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे सामने तुम कैसे हो, यही बात असली है। इसलिए फरीद कहता है—'फरीदा जे तूँ अकल लतीफ।' अगर तू सच में होशियार है, होशियारी की घोषणाएँ मत करता फिर। अगर तू सच में होशियार है तो झाँक कर अपने गिरेबाँ में देख। दूसरों के खिलाफ काले अक्षर मत लिख। और दूसरे की निंदा-आलोचना में मत पड़। अपने में ही देख। वहाँ बुराई से, गहरी से गहरी बुराई तू पाएगा। शक्ति कम है, समय थोड़ा है। उसे मिटा। जाग।

पशु से आदमी जाग आया, ये तो शुभ है। अब आदमी से भी जागे। आदमी

तभी पूरा आदमी होता है जब आदमियत का भी अतिक्रमण हो जाता है। धन्य हैं वे मनुष्य, जीसस ने कहा है, जो मनुष्य के ऊपर उठ जाते हैं। नीत्से का वचन है, कि अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य का तीर मनुष्य के ऊपर उठने की आकांक्षा छोड़ देगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य की अभीप्सा की प्रत्यंचा पर अतिक्रमण का तीर न चढ़ेगा। जब आदमी आदमी होने से राजी हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन! परमात्मा होने से कम पर राजी होना ही मत। उससे कम पर राजी होना अपने ही हाथ से उस सब को गँवाना है जो तुम्हें मिलने को बिल्कुल तैयार था। जिसके लिए कुछ भी न करना था, सिर्फ आँख खोलनी थी। हाथ हिलाना था और जो तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता। श्वाँस लेनी थी और तुम उसकी सुगंध से भर जाते। कुछ भी न करना था—पलक उठानी थी और सूर्य सामने था। तुम उससे वंचित रह जाओगे। थोड़े पर राजी मत हो जाना। आदमी होने पर राजी मत हो जाना।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक, जो पशु होने के लिए उत्सुक हैं। दूसरे, जो ज्यादा से ज्यादा आदमी होने के लिए उत्सुक हैं। तीसरे, जो परमात्मा से कम के लिए राजी नहीं हैं। तुम तीसरे तरह के आदमी बनना। क्योंकि तभी जीवन अपनी पराकाष्ठा में खिलता है, जीवन का कमल अपनी परिपूर्ण सुगंध में आकाश में समर्पित होता है।

तीसरा प्रश्न : आपने बताया कि विज्ञान धर्म पर नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि विज्ञान सकारण खोज है। तो क्या धर्म की खोज अकारण की जाती है?

धर्म की खोज भी सकारण की जाती है। लेकिन धर्म की उपलब्धि तब होती हैं जब अकारण हो जाते हो तुम।

इसे समझने की कोशिश करो।

खोज तो सकारण होती है। नहीं तो खोज ही कैसे शुरू होगी। तुम संसार से ऊब जाते हो। या संसार की व्यर्थता दिखायी पड़ने लगती है; तो तुम सार्थकता की खोज में निकलते हो। संसार का झूठ साफ हो जाता है, तो तुम सत्य के प्रति उत्सुक होते हो; देह की वासनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, तो तुम आत्मा की तलाश करते हो। सोचते हो, शायद आनंद यहाँ नहीं मिला, वहाँ मिले। शांति यहाँ न पायी, वहाँ मिले। यहाँ सब क्षणभंगुर पाया, शायद शाश्वत से वहाँ संबंध हो जाए। सकारण ही तुम खोज पर निकलते हो। खोज पर तो सकारण ही निकलोगे।

खोज का अर्थ हीं सकारण होता है।

खोज का मतलब ही यह है, कुछ खोजने निकले हैं। कुछ खोजने निकले हैं, मतलब कुछ लोभ से निकले हैं, कुछ पाने की अभीप्सा है, प्यास है। लेकिन खोज की शुरुआत तो बिल्कुल ठीक है, सकारण है। लेकिन खोज का अंत अकारण होता है। खोजते-खोजते तुम एक दिन ऐसी घड़ी में पहुँच जाते हो, जहाँ तुम पाते हो कि अब खोज ही बाधा बन रही है। खोजते-खोजते तुम एक ऐसी जगह आते हो, जहाँ तुम पाते हो कि ये आनंद की खोज ही दुःख का कारण है। संसार में खोजते थे आनंद को, वहाँ न पाया। अब परमात्मा में खोज रहे हैं, वहाँ भी नहीं मिल रहा है। पर ये तो बड़े अनुभव से पता चलता है कि आनंद की खोज, आनंद की तृष्णा, आनंद की वासना ही दुःख का कारण है। जिस दिन ये बोध होता है, उस दिन खोज भी विदा हो जाती है। उस दिन तुम खोजने नहीं जाते। खोज भी गिर जाती है। संसार की पहले गिर गयी, अब परमात्मा की भी गिर जाती है। और जिस क्षण कोई खोज नहीं होती, अचानक तुम पाते हो स्वर उठ रहा है भीतर आनंद का। 'बिन घन परत फुहार'—अब कोई बादल भी नहीं हैं और वर्षा हो रही है। जो खोजेगा नहीं, वह तो कभी पहुँचेगा नहीं। जो खोजता ही रहेगा, वह भी कभी नहीं पहुँचता है। इस जटिलता को समझो। खोजनेवाला पहुँच सकता है। नहीं खोजनेवाला तो पहुँचेगा कैसे? लेकिन खोजने वाला भी अंततः खोज के कारण नहीं पहुँचता, खोज को भी खो देता है तब पहुँचता है। 'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ'। खोजने निकले थे। जिसको खोजने निकले थे वह तो मिला नहीं कबीर, उल्टे कबीर ही खो गये—'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ'; तब हुआ मिलन।

लाओत्से कहता है, खोजो और तुम भटक जाओगे। मगर ये आगे की बात है। ये उनके लिए नहीं है जिन्होंने खोज ही शुरू नहीं की। ये उनके लिए है जिन्होंने खोज खूब कर ली, अब खोज से भी थक गये। उनसे लाओत्से कह रहा है, खोजो और भटक जाओगे। पाना है, खोज भी छोड़ दो। मगर ध्यान रखना, खोज तुम तभी छोड़ पाओगे जब तुमने खोज की हो। ज्यादा अक्लमंदी मत दिखाना, कि जब खोज ही छोड़नी है, तो खोज करना ही क्या? फिर हम वैसे ही बैठे रहें। दूकान पर ही बैठे अपना काम कर रहे हैं। कहाँ पंचायत में पड़ो? और ये पंचायत तो बड़ी जाल मालूम पड़ती है। पहले खोजो, फिर खोज को भी छोड़ो।

बुद्ध ने छः वर्ष तक खोज की। बड़ी कठोर खोज की। फिर एक दिन पाया, कुछ मिलता नहीं। खोज से थक गये। न कहीं सत्य का कोई अनुभव, न कहीं कोई परमात्मा की झलक, न कहीं आत्मा का कोई स्मरण, कुछ भी नहीं मिलता। इतने थक गये—आत्यंतिक रूप से थक गये—कि खोज गिर गयी। उस साँझ वृक्ष

के तले सो गये। उस रात कोई स्वप्न भी न आया। क्योंकि स्वप्न भी जब तुम खोजते हो तभी आता है। धन खोजते हो, धन का स्वप्न आता है। कृष्ण को खोजने लगो, वो मुरली बजाते हुए खड़े हैं—उनका सपना आने लगता है। क्राइस्ट को खोजो, वो सूली पर लटके दिखायी देने लगते हैं। जो खोजो वह सपने में झलकने लगता है। सपना तुम्हारी वासना की खबर देता है। सपना थर्मामीटर है। वह बताता है तुम क्या खोज रहे हो।

इसलिए मनोविज्ञान तुम्हारे सपने की सबसे पहले फिकर करता है। वो तुमसे नहीं पूछता कि तुम्हारी क्या तकलीफ है। वह कहता है तुम्हारे सपने बताओ। क्योंकि तुम शायद धोखा भी दे दो। तुम तकलीफ बताने तक में धोखा दे देते हो। तुम इलाज करवाने जाते हो और चिकित्सक को भी धोखा देते हो। उसको भी तुम तकलीफ असली नहीं बताते, नकली तकलीफें बताते हो।

मेरे पास लोग आते हैं, उनकी तकलीफ कुछ है, बताते कुछ हैं। उनको भी शायद पता नहीं है, कि वे यह क्या कर रहे हैं? किसको धोखा दे रहे हैं? अगर मुझे अपनी तकलीफ ही नहीं बतानी है, तो समय क्यों खराब करना? लेकिन वे तकलीफ भी कुछ दूसरी बताते हैं। वे तकलीफ भी कुछ ऐसी बताते हैं, जो जँचे। वे तकलीफ कुछ ऐसी बताते हैं जिससे प्रतिष्ठा बढ़े। हो सकता है कामवासना सता रही हो। लेकिन वो तकलीफ नहीं बताते। वो तकलीफ बताने में घबड़ाहट है। कोई क्या कहेगा? कोई सुन लेगा कि कामवासना सता रही है। उम्र सत्तर साल हो गयी, अब कामवासना सता रही है? वो अहंकार के विपरीत पड़ती है। वो तकलीफ नहीं बताते, वे तकलीफ कुछ और बताते हैं। वे कहते हैं, परमात्मा को कैसे पाएँ? मन में शांति नहीं है, शांति कैसे आए? मैं उनसे पूछता हूँ, पहले अशांति तो बताओ, कि अशांति क्या है? शांति की पीछे बात करेंगे। अशांति किस बात की है? वो कहते हैं, सभी तरह की अशांति है; आप तो शांति का उपाय बता दें। अशांति को नहीं छूने देना चाहते। क्योंकि अशांति पता भी चल जाए दूसरों को, तो एक प्रतिष्ठा होगी वह टूट न जाए। बीमारी तक बताने में आदमी डरता है। खुद भी जानने में डरता है। फिर तो इलाज कैसे होगा?

मनोवैज्ञानिक तुम क्या कहते हो इस पर भरोसा नहीं करते। इससे ज्यादा आदमी पर गैर-भरोसा और क्या होगा? आदमी की विकृति और क्या होगी? वे कहते हैं, तुम अपने सपने बताओ। हम सपने में से छान-छान कर हिसाब लगाएँगे कि तकलीफ कहाँ है? तुम भला दिन में कह रहे हो कि हम राम-राम जपते रहते हैं। रात में तुम एक सुंदर स्त्री का सपना देखते हो। वो सपना ज्यादा सही

है। वह ज्यादा खबर दे रहा है, कि राम-राम जप रहे हो वह तो ठीक है, लेकिन माला के मनकों के बीच से कामना के छेद हैं। माला के मनके भला कुछ हों, उनके भीतर पिरोया हुआ धागा कामना का है। वह ढँका है। ऐसे राम-राम जपते रहते हो, लेकिन राम-नाम से कुछ लेना-देना नहीं है। शायद वह भीतर के काम को दबाने का एक उपाय है, कि जपते रहो रामराम ताकि भीतर का कुछ पता न चले। शोरगुल मचाए रहो भीतर, ताकि भीतर का पता न चले। लेकिन भीतर कामवासना कँप रही है, अपने पूरे रोग के साथ। रात सपने में तो प्रगट हो जाएगी। उस वक्त तो तुम न दबा सकोगे। उस वक्त तो मंत्र छूट चुका होगा। उस वक्त तो काम प्रगट हो जाएगा।

तुम चकित होओगे। तुम जिनको साधु कहते हो अगर उनके तुम सपने देखो, तभी तुम समझ पाओगे कि वे साधु हैं या नहीं। साधुओं के सपने बड़े असाधु होते हैं। असाधुओं के सपने शायद कभी-कभी साधु के भी हों, लेकिन साधु के कभी नहीं होते। जेलखाने में पड़ा हुआ अपराधी शायद कभी-कभी सपना भी देखता है कि संन्यस्त हो जाऊँ, कि छोड़ दूँ सब, बहुत भोग लिया कष्ट। भिक्षा का एक पात्र ले लूँ, निकल जाऊँ। बुद्ध के मार्ग पर चल पडूँ, कि महावीर के? लेकिन जिनको तुम बुद्ध-महावीर के मार्ग पर चलता हुआ पा रहे हो—साधु-संन्यासियों को—उनके पास जाओ, उनसे पूछो कि तुम अपने सपनों की कथा कहो। तो रात वे सपने संसार के देख रहे हैं। दिन में उपवास किया है, रात सम्राट के महल में भोजन के लिए बुलाए गये हैं। सपना भोजन का देख रहे हैं। उपवास करो, तुमको पता चल जाएगा। उस रात सपना तुम भोजन का देखोगे। जब भरे पेट हो, तो कभी-कभी हो भी सकता है कि उवपास का सपना देख लो, कभी-कभी। लेकिन खाली पेट तो भोजन का ही सपना होगा। सपना खबर देता है तुम्हारी असलियत की।

उस रात बुद्ध को कोई सपने न आए। कोई दौड़ ही न बची। संसार तो पहले ही व्यर्थ हो गया था, अब मोक्ष भी व्यर्थ हो गया। संसार तो छोड़ ही चुके थे, निर्वाण भी छूटा आज। अब कुछ पाने को न रहा। इतने थक गये, कि दिखायी पड़ा कि कुछ है ही नहीं पाने को यहाँ। सब दौड़ व्यर्थ—आध्यात्म की दौड़ भी। उस रात जो परम शांति उपलब्ध हुई...खोज ही बंद हो गयी, दौड़ ही बंद हो गयी—'हेरत हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराइ।' सुबह आँख खुली, भोर का आखिरी तारा डूबता था। कहते हैं उसे देखते-देखते वे परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये। वह आँख बड़ी निर्मल रही होगी। सब सपने छूट गये थे; सब विचार, आकांक्षा, भविष्य, तृष्णा, कुछ पाने का खयाल, कुछ भी न बचा था। निर्विकार

था मन। कहीं जाने को न था, कुछ होने को न था, कुछ पाने को न था। रुक गया समय। ठहर गयी धारा। उसी क्षण सब पा लिया।

तो खोज तो शुरू करनी पड़ती है, और छोड़नी भी पड़ती है। ऐसा ही समझो, कि सीढ़ी पर चढ़ना भी पड़ता है, और सीढ़ी को छोड़ना भी पड़ता है। तभी तुम एक दूसरे आयाम में प्रवेश करते हो। धर्म की खोज तो सकारण होती है, लेकिन धर्म की उपलब्धि अकारण होती है।

चौथा प्रश्न : आपने कहा, अगर मेरे पास आने का कारण बता सको, तो समझो कि मेरे पास आए ही नहीं। और यदि उत्तर में कंधा उचका दो, तो समझो कि आए हो। मैं न तो ठीक से कारण बताने की स्थिति में हूँ, और न ये कहने की स्थिति में ही कि अकारण आ गया हूँ। तब कृपया बताएँ कि मैं कहाँ हूँ?

ये आनंद मैत्रेय जी ने पूछा। यही तो कंधा उचकाना है। न पता, कि कारण से आए। न पता है, कि अकारण आए। कंधा उचकाने का और मतलब क्या होता है? पता नहीं है। सुंदर है ये दशा। क्योंकि तुम्हें जो भी पता होगा, वह गलत ही पता होगा। तुम्हारा ज्ञान अज्ञान से ही भरा हुआ होगा। तुम्हारे निर्णय तुम्हारे संदेह पर ही खड़े होंगे। तुम्हारी खोज, तुम्हारी खोज की आकांक्षा तुमसे ही तो उठेगी। और तुम ही गलत हो। तो तुम्हारी खोज सही नहीं हो सकती। ये उचित है कि कोई उत्तर नहीं। ये शुभ है। तब तुम्हारे भीतर जगह खाली है, और उत्तर उतर सकता है।

जो बहुत स्पष्ट हैं कि किसलिए आए हैं, उनकी स्पष्टता ही मुझसे मिलन में बाधा हो जाएगी। क्योंकि तुम स्पष्ट हो ही नहीं सकते। अगर तुम स्पष्ट ही होते तो मेरे पास आने की जरूरत नहीं थी। तुम्हारी स्पष्टता भ्रांत है। लेकिन अगर तुम बहुत स्पष्ट हो, तो वही स्पष्टता बाधा बनेगी। तुम थोड़े तरल हो जाओ, इतने ठोस, इतने स्पष्ट नहीं। तुम कहो, हमें कुछ पता नहीं है। किसी तरह आ गये हैं, टटोलते। साफ नहीं था कहाँ जा रहे हैं? साफ नहीं था क्यों आ गये हैं? हमें ये भी पता नहीं है कि क्यों यहाँ रुक गये हैं, क्यों आगे नहीं बढ़ गये? हमें कुछ भी पता नहीं, क्योंकि हम बेहोश हैं।

ये बड़ी शुभ दशा है। इस दशा में कुछ घट सकता है। क्योंकि इस दशा में तुम्हारा अहंकार झूठी बातें तुमसे नहीं कह रहा है। अहंकार असलियत की बात कह रहा है, कि बस यहाँ पाया है कि हम आ गये हैं। जरूर आए होंगे किसी गलत कारण से ही, क्योंकि ठीक कारण अगर हमारे पास होता तो कहीं जाने की कोई जरूरत न थी। अब तो वह भी पक्का नहीं कि वो कारण क्या था! वो भी डाँवा-

डोल हो गया है। तुम अगर मेरे पास ऐसी दशा में हो, जिसको मैं अराजक कहता हूँ, 'केऑटिक' कहता हूँ, बड़ा शुभ है; क्योंकि अराजकता के बाहर ही सृष्टि होती है। तुम अगर बिलकुल अराजक अवस्था में मेरे पास हो, तुम्हें खुद ही पता नहीं, एक बादल की तरह हो जिसका कोई रूप-आकार नहीं, तो तुम उसी रूप में ढल जाओगे जो रूप तुम्हारे स्वभाव का है। अगर तुम कोई रूप-आकार लेकर आए हो, तो तुम जिद में रहोगे। तुम्हारा आकार ही तुम्हें तरल न होने देगा, तुम्हें बहने न देगा।

मेरे पास कुछ लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, हमें राम का दर्शन करना है। अब उनका राम का दर्शन ही बाधा है। मैं उनसे कहता हूँ, तुम राम पर कृपा करो! क्यों उन्हें कष्ट देते हो? नहीं, वो कहते हैं, हमें तो राम का दर्शन करना है। हमें तो धनुर्धारी राम का दर्शन....। तुम्हारे पागलपन की वजह से राम धनुर्धर बने खड़े हैं। कब तक खड़े रखोगे उनको? थक गये होंगे। तुम उनको क्षमा करो! और राम बीच में खड़े हैं मेरे और तुम्हारे। मुश्किल है मामला। तुम मुझे सुन ही न पाओगे। तुम ऐसी बातें सुन लोगे, जो मैंने कही नहीं। तुम ऐसी बातें समझ लोगे, जो मेरे प्रयोजन में न थीं। राम को हटाओ। तुम लक्ष्य लेकर मेरे पास मत खड़े रहो। नहीं, तुम्हारा लक्ष्य ही उपद्रव होगा। तुम कहो, हमें कुछ पता ही नहीं है। हमें पता ही नहीं कि राम को मिलना है, कि बुद्ध को, कि कृष्ण को। तुम कहो, हमें कुछ पता नहीं है। जो कह सकता है कि मुझे कुछ पता नहीं है, उसने पहला कदम उठा लिया उस तरफ जहाँ सब पता हो जाएगा। अज्ञान की स्वीकृति ज्ञान की पहली किरण है। बालवत्, छोटे बच्चे की भाँति, जिसे कुछ पता नहीं है। कोई उत्सुकता ले आयी, कोई कुतूहल ले आया, कोई जिज्ञासा ले आयी। वो ले आने का काम हो गया उससे, लेकिन वह कोई अंत नहीं है। आ गये यहाँ उससे। एक लहर ले आयी। इस किनारे लग गये, अब तुम मुझ पर छोड़ दो। अब तुम कोई भी आकांक्षा रख कर यहाँ मत बैठे रहो, कि ऐसा होना चाहिए। तब, जो होना चाहिए वह हो जाएगा। इसको ही मैं कंधा बिचकाना कहता हूँ।

आखिरी सवाल : जहाँ सहजोबाई की भक्ति-भावना की परिणति अद्वैत में होती है, वहाँ गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति में द्वैत बना रहता है। इस भेद पर प्रकाश डालें।

थोड़ी कठिनाई आएगी तुम्हें समझने में।

धर्म के दो रूप हैं। एक रूप तो है पुराणपंथी धर्म का, सांप्रदायिक धर्म का, जरा-जीर्ण धर्म का, खंडहर हुए धर्म का। और, एक रूप है सदा नितनूतन पैदा

होने वाले धर्म का । पहले धर्म को मैं कहता हूँ पुरातन । दूसरे धर्म को मैं कहता हूँ सनातन । सनातन से मेरा अर्थ प्राचीन नहीं है । सनातन से मेरा अर्थ नित नवीन है । जो प्रतिपल ओस की तरह ताजा है, खंडहर नहीं है । सुबह के सूरज की भाँति नया है । पुराना धर्म स्थिति-स्थापक हो जाता है । वह संप्रदाय बन जाता है । नया धर्म बगावती होता है, विद्रोही होता है । वह स्थिति-स्थापक नहीं होता, अराजक होता है । पुराना धर्म एक तरह की गुलामी बन जाता है, नया धर्म एक तरह की स्वतंत्रता की घोषणा है । और मजा ये है कि सब नये धर्म धीरे-धीरे पुराने बन जाते हैं । और सब पुराने धर्म कभी नये थे । इसलिए जटिलता और बढ़ जाती है ।

तुलसीदास पुराने धर्म--पुरातन धर्म--के प्रतीक हैं । उस धर्म के, जो कभी नया रहा होगा । कभी राम के साथ नया रहा होगा । वह बात बड़ी पुरानी हो गयी । तुलसीदास ज्ञानी हैं, प्रज्ञावान नहीं । पंडित हैं, बुद्ध नहीं । महाकवि हैं । हजार सहजोबाई भी जोड़ दो तो तुलसीदास जैसा कवि पैदा नहीं हो सकता । अनूठे हैं उनका साहित्य, उनके शब्द, उनकी रचना । पर जाग्रत पुरुष नहीं हैं । करोड़ तुलसीदास जोड़ दो तो भी सहजो के एक वचन की ताज़गी नहीं है ।

सहजो की बात और । ये खुद जान के आ रही है । ये खुद मूलस्रोत से उठ रही है । तुलसीदास उधार हैं । इसलिए मैंने तुलसीदास की कभी चर्चा नहीं की । जान कर नहीं की । कई बार मेरे पास मित्र आते हैं, वे कहते हैं, आप कबीर, नानक, दादू और जिनके कभी नाम नहीं सुने--सहजोबाई, दयाबाई--इनकी तक चर्चा करते हैं; गोस्वामी तुलसीदास को क्यों छोड़ देते हैं जो कि भारत के हृदय-हृदय में बसे हैं ? जान कर छोड़ देता हूँ । यह मुझे पता है कि वे भारत के हृदय-हृदय में बसे हैं । मगर वे बसे गलत कारणों से हैं । वे बसे ही इसलिए हैं कि भारत का जरा-जीर्ण मन, प्राचीन सड़ा हुआ मन उनको बसाए है ।

तुलसीदास मृत धर्म के पोषक हैं । वे पंडित हैं, क्रांतिकारी नहीं हैं । अंगार नहीं है उनके भीतर कबीर, सहजो, फरीद की; राख है । कभी अंगारा रहा होगा भीतर; वह राम के समय में रहा होगा । तुलसीदास तो केवल लकीर के फकीर हैं । वे उसको पीट रहे हैं लकीर को । भारत के हृदय में उनकी जगह बन गयी, क्योंकि मृत धर्म की जगह अधिक लोगों के मन में बन जाती है । लोग मुर्दा हैं । मुर्दे से मुर्दे का मेल हो जाता है । कबीर की जगह न बन पायी । सहजो की लकीर ही न खिंची । क्योंकि इनकी लकीर खींचनी हो तो तुम्हें भी जीवित होना पड़ेगा । इन्हें अपने हृदय में बसाना हो तो तुम्हें अपने हृदय को ही बदलना पड़ेगा । इनकी शर्त बड़ी महँगी है । तुलसीदास के पद दोहराने में कोई शर्त नहीं है । वह तुम्हारे मन

को ठीक ढंग से दोहरा रहे हैं । वह तुम्हारी ही अभिव्यक्ति है । तुमसे भिन्न वे कुछ भी नहीं कह रहे हैं । जो तुम मानते हो पहले से, वे उसी को और सुंदर वस्त्रों में प्रस्तुत कर रहे हैं । वे तुम्हें जँचते हैं । उन्होंने तुम्हारी ही बात कह दी ।

इसलिए तुलसीदास की रामायण घर-घर में बैठ गयी । क्योंकि घर-घर की प्रतिनिधि है वह । भीड़ की प्रतिनिधि है । अंधी भीड़ है । समूह बड़ा है । खुद कुछ पता नहीं है । तुम्हारी जो सनातन से चली आयी धारणाएँ, मान्यताएँ हैं--सदा से चली आती धारणाएँ, मान्यताएँ हैं--उनको उन्होंने बड़े सुंदर ढंग से प्रतिपादित कर दिया । उन्होंने तुम्हारे मन को मोह लिया । वे कुछ नयी बात नहीं कह रहे हैं । वे तुम्हीं को दोहरा रहे हैं ।

अगर ठीक से समझो, तो जब तुम्हें तुलसीदास जँचते हैं तो तुम क्रांति से बचने की कोशिश कर रहे हो । वह धर्म की लाश है जिसमें से प्राण का पखेरू कभी का उड़ चुका । इसलिए तुलसीदास को हिंदू-संप्रदाय ने बड़े स्वीकार-भाव से, अहोभाव से अंगीकार किया । लेकिन कबीर उपद्रव हैं । सहजो उपद्रव है । नयी खबर लाते हैं परमात्मा के घर से । सुबह ताजा-ताजा उनका व्यक्तित्व उठता है । उन्हें तो बहुत थोड़े से लोग ही पहचान पाएँगे । वे ही लोग पहचान पाएँगे जो नये होने की तत्परता और क्षमता रखते हैं । जो उनके साथ आग से गुजरने को राजी हैं । थोड़े से लोग उनके स्तर को पहचान पाएँगे । उनकी बाँसुरी के गीत करोड़ों लोगों को नहीं लुभाएँगे । चुने लोग उनके राह पर चलेंगे । हाँ, ऐसा हो सकता है कभी कि उनकी लकीर भी पुरानी पड़ जाए । और उसको भी पंडित मिल जाएँ, और पंडित उनकी लकीर को पीटने लगें, तो फिर करोड़ों लोग भी उनके साथ हो लेंगे ।

अगर धर्म मुर्दा हो जाए तो लोग साथ हो जाते हैं, क्योंकि मुर्दा धर्म से तुम्हें बदलने की जरूरत नहीं होती । बल्कि मुर्दा धर्म तुम्हें बचाता है; बदलता नहीं, बचाता है । तुम्हारी सुरक्षा करता है । जैसे नानक के साथ हुआ । नानक का स्वर क्रांति का स्वर था । लेकिन सिक्ख धर्म का स्वर अब कोई क्रांति का स्वर नहीं है । अब वह एक पिटा-पिटाया धर्म है । नानक ने तो आग जलायी । अब सिक्ख तो वैसे ही हैं जैसे हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, बात खतम हो गयी । नानक ने जब क्रांति जगायी तब बहुत थोड़े से लोग—बहुत थोड़े से लोग, उँगलियों पर गिने जा सकें--उसमें आंदोलित हुए । सिक्ख शब्द का जन्म ही शिष्य से हुआ । थोड़े से शिष्य मिल गये जो सीखने को राजी थे । जो तैयार थे नानक के साथ जहाँ ले जाएँ जाने को । गहन अंधकार में या प्रकाश में, रात्रि में या दिन में, कोई भी परिणाम हो उनके साथ राजी थे । उन थोड़े से शिष्यों से सिक्ख-धर्म का सूत्र-

पात हुआ। लेकिन समय बीतता है। चीजें संगठित होती हैं, संप्रदाय बनता है, पंडित इकट्ठे होते हैं, व्याख्या चलती है, मंदिर-गुरुद्वारे-गिरजे बनते हैं, चीजें थिर हो जाती हैं, जड़ हो जाती हैं। क्रांति की अंगार तो बुझ जाती है, पांडित्य की राख चढ़ जाती है। ध्यान की तो फिक्र भूल जाती है, शास्त्र महत्त्वपूर्ण हो जाता है। नानक जब थे तो नानक महत्त्वपूर्ण थे, अब गुरुग्रंथ साहब महत्त्वपूर्ण है। मूल, निर्विचार, निर्विकार--वह तो खो गया, शब्दों पर जोर है अब। अब लोग बैठे हैं, ग्रंथी बैठे हैं, वो पढ़ रहे हैं। कुशल होंगे पढ़ने में, व्याख्या करने में। गाने में कुशल होंगे। पर नानक की आवाज कहाँ? अब एक किताब है। किताब तुम पर निर्भर है। तुम जो अर्थ करना चाहो, कर लो। नानक तुम पर निर्भर नहीं हैं। तुम उनका अर्थ वो न कर सकोगे जो चाहोगे। नानक जीवित हैं।

तो गुरु तो खो गया गुरुग्रंथ हाथ में रह जाता है। सभी धर्मों के साथ यही होता है। महावीर के साथ जो चलते हैं उनकी हिम्मत, उनका साहस और! नग्न चलना पड़ेगा। भीड़ के पत्थर खाने पड़ेंगे। अब जैन हैं। अपने मंदिर में बैठ कर पूजा-पाठ कर लेता है, महावीर की वाणी सुन लेता है। कोई फर्क उसकी जिंदगी में इससे नहीं पड़ता। उसने महावीर को मार डाला है। वह महावीर के साथ मरके स्वयं नया नहीं हुआ। उसने महावीर को ही मार डाला, अपने साथ पुराना कर लिया है।

तुलसीदास स्थिति-स्थापक-धर्म के प्रतिपोषक हैं। वह जो मरा-मराया धर्म है। तुलसीदास एक पंडित हैं, और बड़े पंडित हैं। पांडित्य की उनकी महिमा है। लेकिन अनुभव, स्वयं का बोध नहीं। इसलिए तुलसीदास को मैं छोड़ता रहा हूँ। जानकर छोड़ता रहा हूँ। जिस कारण से लोग तुलसीदास में उत्सुक होते हैं वही कारण मेरा उन्हें छोड़ देने का है। उत्सुक होते हैं कि करोड़ों के हृदयों के सिरताज हैं वे। गाँव-गाँव में बेपढ़ा-लिखा आदमी भी उनकी चौपाई दोहराता है। इस कारण लोग उनमें उत्सुक होते हैं। उनका नाम है। दुनिया भर की भाषाओं में रामचरित मानस के अनुवाद होते हैं। तुम चकित होओगे जानकर कि रूस जैसे मुल्क में भी अनुवाद हुआ है। तो रूस को तो धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। लेकिन तुलसीदास के राम-चरित मानस का उसने भी अनुवाद किया है। कबीर को अनुवाद करने में थोड़ा डर लगेगा। रूस के क्रांतिकारियों के लिए भी कबीर बहुत क्रांतिकारी हैं, और रूस के तथाकथित क्रांतिकारियों के लिए भी रामचरित मानस में कोई डर नहीं है। स्थिति-स्थापक बातें हैं। जो है, जैसा चला रहा है, ठीक है। उसे स्वीकार कर लेना है। रूपांतर नहीं।

तुलसीदास हिंदू हैं। सहजोबाई हिंदू नहीं है। कबीर, नानक न हिंदू हैं, न मुसल-

मान हैं, न ईसाई हैं। ज्ञानी कभी हिंदू, मुसलमान, ईसाई नहीं हुआ। और भीड़ सदा हिंदू, मुसलमान, ईसाई की है।

भीड़ तो लकीर पर चलती है--राजपथ पर चलती है। संत पगडंडियों पर चलते है--घने जंगलों में। खुद ही चलते हैं और रास्ता बनाते हैं। किसी के पिटे-पिटाये रास्ते पर नहीं चलते। 'संतों के नहिं लेहड़े'--संतों की भीड़ नहीं होती। 'सिंहों के नहिं लेहड़े'--सिंहों की भी भीड़ नहीं होती। संत तो अकेला है। अपने अकेलेपन को उपलब्ध हुआ है। अकेलेपन का नाजुक फूल उसके भीतर खिला है। बहुत थोड़े से लोग जो इतने ऊपर आँखें उठाने को राजी होंगे, वही उस फूल को देख पाएँगे। भीड़ तो संत को इनकार करेगी। क्योंकि भीड़ को तो सदा संत उपद्रव का कारण मालूम पड़ेगा; कि सब ठीक चल रहा है, ये गड़बड़ किये देता है। सब सुविधा बनायी थी, फिर यह एक आदमी खड़ा हो गया, कहने लगा शास्त्रों में क्या रखा है? मंदिरों में क्या रखा है? पूजा-प्रार्थना में क्या रखा है? फिर इसने कुछ नया स्वर उठा दिया। हम किसी तरह व्यवस्था जमा पाते हैं, संत आ जाता है; गड़बड़ कर देता है।

तो संतों में, तुम ध्यान रखना, सभी संत नहीं होते। सरकारी संत संत नहीं होते। सरकारी संत, जैसे विनोबा भावे। उनको मैं सरकारी संत कहता हूँ। संत नहीं हैं। शुद्ध राजनीतिज्ञ हैं। हिसाब से चलते हैं। और क्या हवा कैसी बह रही है, उसी तरफ पाल तान देते हैं। लोग जो चाहते हैं, लोग जिसको स्वीकार करेंगे, वही कहते हैं। ऐसे संत को मान्यता मिलेगी। सरकार भी मान्यता देगी। बीमार होंगे तो प्रधानमंत्री भी भागे हुए जाएँगे। क्योंकि ऐसा संत राजनीति का हिस्सा है। उसके साथ समाज की आधारशिला मजबूत बनी रहती है, हिलती नहीं। लेकिन कबीर, दादू, फरीद, सहजोबाई, ये तो कँपा देते हैं। ये तो सब आधारशिला मिटा देते हैं। ये तो तुमने जिसे ठीक समझा है उसे गलत कर देते हैं, और जिसको तुमने कभी ठीक नहीं समझा उसकी तुम्हारे भीतर अभीप्सा जगाते हैं। ये तुम्हें तुम्हारे पार ले जाना चाहते हैं। इनका व्यवहार तो सर्जन का होगा। ये तुम्हारे बहुत से अंग काटेंगे। ये मलहम-पट्टी नहीं कर सकते। सरकारी संत मलहम-पट्टी करते हैं। 'फॅर्स्ट एड' उनका काम है। तुम गिर पड़े, उठाकर मलहम-पट्टी बाँध दी। वास्तविक संत तो सर्जन हैं। वे तो शल्य-चिकित्सक हैं। वे तो जो भी गलत पाते हैं उस अंग को काट देंगे। उसके लिए तैयारी चाहिए।

सहजो अद्वैत पर पहुँच जाती है, क्योंकि सहजो का कोई सिद्धांत नहीं है जिसे सिद्ध करना है। सहजो सत्य की खोज में निकली है। अगर सत्य अद्वैत है, तो

वही सिद्ध होगा। अगर सत्य एक है, तो वही सिद्ध होगा। लेकिन तुलसीदास सत्य की खोज में नहीं निकले हैं।

तुलसीदास के जीवन में एक घटना है—पता नहीं कहाँ तक सच हो। लगती है कि सच होगी। कहते हैं मथुरा गये तो कृष्ण के मंदिर में ले जाए गये। तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि तब तक न झुकूँगा जब तक धनुष-बाण हाथ में न लोगे। क्योंकि कृष्ण वहाँ बाँसुरी लिए खड़े हैं, वह तो राम के भक्त हैं। कृष्ण के सामने कैसे झुक सकते हैं? भक्ति भी इतनी दीन! भक्ति भी इतनी दरिद्र! भक्ति भी इतनी ओछी, संकीर्ण कि वे कृष्ण के सामने नहीं झुक सकते, क्योंकि वह तो राम के भक्त हैं! और कहानी भी बड़ी मजेदार है। जिन्होंने गढ़ी होगी, या जिन्होंने बढ़ाई-चढ़ाई होगी, वे भी पागल रहे होंगे। कहानी कहती है, कि कृष्ण ने उनको राजी करने के लिए धनुष-बाण हाथ लिया। मूर्ति बदली। बाँसुरी खो गयी, धनुष-बाण हाथ में आ गया। राम बन गये कृष्ण, तब वे झुके।

ये तो बड़ा अजीब मामला हुआ। ये तो भगवान के सामने खुद को झुकाना न हुआ, भगवान को अपने सामने झुकाना हुआ। यह तो ये हुआ कि हमारी शर्त पूरी करो, हमारे रंग-रूप में, हमारे सिद्धांत के अनुसार बैठो, तो हम झुकेंगे। यह कोई झुकना हुआ? सशर्त कोई समर्पण होता है? और भगवान ने यह रूप लिया। तो तुलसीदास तो संकीर्ण मालूम पड़े ही इस कथा में, भगवान भी बिलकुल दूकानदार मालूम पड़े। इतनी भी क्या उत्सुकता थी? न झुकते तुलसीदास तो कुछ हर्जा था? बड़े लोलुप मालूम पड़े। किसीको झुकाने में अति रस मालूम पड़ा, कि कोई भी सिर ... तो कोई हर्जा नहीं ... चाहे झुकाने के लिए हमको इतना क्यों न झुकना पड़े कि हम धनुषबाण हाथ लेके खड़े हों; मगर तुम्हारे झुकने में बड़ा रस है।

न तो इसमें परमात्मा परमात्मा मालूम पड़ते और न भक्त भक्त मालूम पड़ता। यह कहानी मनुष्य के अहंकार की कहानी है। इसमें भक्त भी अहंकारी है, परमात्मा भी अहंकारी है।

तुलसीदास द्वैत को मानकर चल रहे हैं। वह एक सिद्धांतवादी हैं। पंडित सदा सिद्धांत के अनुसार चलता है। उसका सिद्धांत तो उसने पहले ही मान रखा है। इसी सिद्धांत को सिद्ध करना है। राम का रूप तो उसने तय कर रखा है कि धनुष-बाण होना चाहिए। बस। उसने सिद्ध कर दिया पहले से ही। अब इसी की खोज करनी है। वह सत्य की शुद्ध खोज में नहीं निकला है। सत्य का तो उसे पता ही है। उसने अपने सिद्धांत में तो सत्य को मान ही लिया है। अब इसी मान्यता को उसे सत्य पर आरोपित कर देना है।

एक मनोवैज्ञानिक हैं राजस्थान विश्वविद्यालय में। वह पुनर्जन्म की खोज करते हैं। कोई उन्हें मेरे पास मिलने लिवा लाया। तो उन्होंने कहा-- मैं, पुनर्जन्म है इस बात को मनोवैज्ञानिक खोज से सिद्ध करने की कोशिश कर रहा हूँ। मैंने उनसे पूछा, सहजता से पूछा तो वे समझ नहीं पाए। मैंने उनसे पूछा, सिद्ध होगा तब होगा, आप मानते हैं कि पुनर्जन्म है? उन्होंने कहा, निश्चित! मैं मानता हूँ कि पुनर्जन्म है; और अब मैं सिद्ध करने की कोशिश कर रहा हूँ। तो मैंने कहा, अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया आप की बात सुनकर। बिना सिद्ध किये आपने मान कैसे लिया कि पुनर्जन्म है? मान तो लिया है पहले। अब सिद्ध कर रहे हैं! तो सिद्ध करना झूठ ही होगा। अब तो आप वही-वही चुन लेंगे जिससे सिद्ध होगा, और वो-वो छोड़ देंगे जिससे सिद्ध न होगा। ये कोई वैज्ञानिक-बुद्धि थोड़े ही हुई। ये तो बड़ी पक्षपातग्रस्त बुद्धि है। ये तो एक जज ने मान लिया कि तुम चोर हो, और अब सिद्ध करने बैठा है कि तुम चोर हो। तो जितने प्रमाण आएँगे तुम्हारे चोर होने के, उनको तो लिख लेगा, और जितने प्रमाण आएँगे तुम्हारे चोर न होने के, उनको टाल देगा। जो गवाह कहेगा तुम चोर हो, उसको गवाह मानेगा; और जो कहेगा तुम चोर नहीं हो, उसको विस्मृत कर देगा। ये कोई सिद्ध करने का ढंग हुआ? ये तो वैज्ञानिक-बुद्धि न हुई। वे थोड़े बेचैन हुए। क्योंकि उनका दावा है कि वे वैज्ञानिक हैं। पर बड़ी मुश्किल में पड़ गये।

दो तरह के लोग सत्य की खोज में जाते हैं। एक तो जिन्होंने मान लिया पहले से कि सत्य ऐसा है। ये बिना जाने मान लिया। अब सिर्फ सिद्ध करना है। दूसरे वे लोग हैं जो कहते हैं हमें सत्य का कोई पता नहीं। हम जानने निकले हैं: कैसा है पता होता, तो जानने की जरूरत ही क्या थी? हम अपने को खोलेंगे, उघाड़ेंगे, साफ करेंगे, शुद्ध करेंगे। हमारी आँख को निर्मल करेंगे, अपने दीये के प्रकाश को बढ़ाएँगे, और देखेंगे कि सत्य कैसा है। फिर जो दिखायी पड़ेगा उसीको मानेंगे।

वह दूसरा वर्ग शुद्ध खोजी है। सहजो शुद्ध खोजी है। तुलसीदास नहीं हैं। तुलसीदास हिंदू हैं। सहजो धार्मिक है। तुलसीदास मान्यता से घिरे हैं। सहजो मान्यतामुक्त है। इसलिए तुलसीदास द्वैत पर ही रह गये और सहजो अद्वैत पर पहुँच गयी।

जब मैं तुलसीदास, सहजो, या इस तरह के व्यक्तियों की कोई चर्चा करता हूँ तो ध्यान रखना, मेरा कोई प्रयोजन व्यक्तियों से नहीं है। मेरा प्रयोजन तुमसे है। जब मैं तुलसीदास और सहजो की व्याख्या कर रहा हूँ, तो मेरा कुल प्रयोजन इतना है-- कृपा करके गोस्वामी तुलसीदास मत बनना। बनना ही हो तो सहजो बनना।

मुझे किसीकी आलोचना में, समालोचना में कोई रस नहीं है। क्या लेना-देना है? अगर तुम्हें कुछ कह रहा हूँ तो तुम्हारे लिए कह रहा हूँ। क्योंकि तुम्हारे भीतर भी दोनों संभावनाएँ हैं। हो सकता है तुम मान्यता के साथ सत्य की खोज में निकलो। तब तुम्हारी खोज पहले से ही विषाक्त हो गयी। सब मान्यताएँ छोड़ दो। सत्य की तरफ केवल वे ही जा सकते हैं जो परम नग्नता में, सभी मान्यताओं के वस्त्रों से मुक्त उस तरफ जाते हैं। जो परमात्मा से कहते हैं, जो तू जैसा हो, वैसा ही प्रगट होना। हमारी कोई आकांक्षा नहीं है। तुझे तेरे स्वभाव में जानना चाहते हैं। तू जैसा है वैसा जानना चाहते हैं। हमारा कोई आरोपण नहीं, हमारा कोई आग्रह नहीं। हम कोई प्रतिमा तुझे नहीं देना चाहते, कि तू ऐसा प्रगट हो।

कठोर, कठिन होगा ये मार्ग। क्योंकि तुम्हारे अहंकार के लिए कोई स्थान न मिलेगा। तुम्हारे अहंकार के लिए कोई जमीन न मिलेगी। लेकिन जो सत्य की तरफ चला है, उसे अहंकार को छोड़ ही देना पड़ता है। 'हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हेराइ'। जहाँ तुम खो जाओगे, वहाँ तुम्हारी मान्यताएँ कैसे बचेंगी? तुम्हारा धर्म, संप्रदाय, तुम्हारा शास्त्र कहाँ बचेगा? हिंदू, मुसलमान, ईसाई कहाँ बचेगा? जब तुम खो जाओगे तभी तुम जानोगे परमात्मा क्या है। जब तक तुम हो, तब तक परमात्मा नहीं। जब परमात्मा है, तब तुम नहीं हो सकते हो। तुम्हारा न होना ही उसका होना है।

आज इतना ही।

★ ★ ★

सद्‌गुरु ने आँखें दयीं

प्रवचन ९, प्रातः, दिनांक ९-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

सहजो सुपने एक पल, बीतें बरस पचास ।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास ।।

जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं ।
जैसे मोती ओस की, पानी अंजुली माहिं ।।

धूआँ को सो गढ़ बन्यौ, मन में राज सँजोय ।
झाई माई सहजिया, कबहूँ साँच न होय ।।

निरगुन सरगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार ।
सद्‌गुरु ने आँखें दयीं, निस्चै कियो निहार ।।

सहजो हरि बहुरंग है, वही प्रगट वही गूप ।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप ।।

चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह ।
छूटे वाद-विवाद सब, भयी सहज गति तेह ।।

साधारणतः समझा जाता है कि नास्तिक संदेह करता है, आस्तिक श्रद्धा। लेकिन आस्तिक का भी संदेह होता है और नास्तिक की भी श्रद्धा होती है। आस्तिक परमात्मा पर श्रद्धा करता है, संसार पर संदेह; नास्तिक संसार पर श्रद्धा करता है, परमात्मा पर संदेह।

संदेह और श्रद्धा की मात्रा प्रत्येक में बराबर ही होती है। दिशा का भेद होता है। गलत दिशा में श्रद्धा लग जाए, तो आदमी भटक जाता है। और ठीक दिशा में संदेह भी लग जाए, तो भी आदमी पहुँच जाता है। न तो कोई श्रद्धा से पहुँचता है, न कोई संदेह से भटकता है। दिशा का सवाल है। सभी आस्तिक संसार पर संदेह करते हैं, सभी नास्तिक संसार पर श्रद्धा करते हैं। तो ऐसा मत सोचना कि श्रद्धा से कोई पहुँचता है, अन्यथा नास्तिक भी पहुँच जाते। और ऐसा मत समझना कि संदेह से कोई भटकता है, अन्यथा आस्तिक भी भटक जाते।

न तो संदेह रोकता है, न श्रद्धा पहुँचाती है। सम्यक् दिशा में संदेह भी पहुँचा देता है, असम्यक् दिशा में श्रद्धा भी भटका देती है। आत्यंतिक अर्थों में दिशा का मूल्य है।

नास्तिक और आस्तिक एक ही जैसे व्यक्ति हैं। नास्तिक सिर के बल खड़ा है, आस्तिक पैर के बल खड़ा हो गया। नास्तिक उल्टा खड़ा है—जहाँ संदेह चाहिए वहाँ श्रद्धा कर रहा है, जहाँ श्रद्धा चाहिए वहाँ संदेह कर रहा है। इसलिए कोई भी नास्तिक एक क्षण में आस्तिक हो सकता है, और कोई भी आस्तिक एक क्षण में नास्तिक हो सकता है—उल्टे खड़े होने से सीधे खड़े होने में देर कितनी लगती है? सीधे खड़े होने से उल्टे खड़े होने में कितनी असुविधा है?

एक छोटी सी घटना साँझ सागर में घटी। सूरज डूबा। एक मछली क्षण भर पहले तक सूरज की किरणों के जाल में, सागर के अनंत विस्तार में, बड़ी आनंदित थी, बड़ी प्रफुल्लित थी। नाचती थी, तैरती थी। कहीं कोई दुःख-ताप न था। मन में संदेह की कोई जरा सी रेखा न थी। बड़ी सरल, सहज। लेकिन, क्षण भर पहले

ही एक नास्तिक मछली से मिलना हो गया। उसने सब अस्त-व्यस्त कर दिया।

इस नास्तिक मछली से दूसरी मछलियाँ दूर-दूर ही रहती थीं। ये नयी मछली थी, इसे कुछ ज्यादा पता न था। नास्तिक मछली पास आयी, तो सज्जनतावश उसकी बात सुन ली। नास्तिक मछली ने कहा, किस बात पर इठला रही है? कौन सी खुशी में आ रही है? कौन सा उत्सव हो रहा है? प्रतीत होता है तू भी और साधारण मछलियों की तरह ही अंधविश्वासी है। कोई आनंद नहीं है। आनंद केवल भ्रांति है। और जिस सागर में--तू सोचती है--तू इठला रही है, तैर रही है, उछल रही है, प्रफुल्लित हो रही है, वो सागर भी कहीं नहीं है। कभी सागर देखा? युवा मछली डरी। सुना था, देखा तो उसने भी नहीं था।

जब कोई सागर में ही पैदा होता है, सागर में ही बड़ा होता है, सागर में ही जीता है और सागर से बाहर न गया हो, तो सागर को देखने का उपाय ही नहीं होता। देखने के लिए फासला चाहिए, दूरी चाहिए, भेद चाहिए।

मछली ने सुना था कि सागर है, देखा तो नहीं था। आँख भी सागर से ही बनी थी। आँख को जो छू रहा था वह भी सागर था। मछली में और सागर में भेद चाहिए, तब दिखायी पड़ सकता है। थोड़ा अंतराल चाहिए। इतना भी फासला कहाँ था।

मछली ने सुना था, सागर है। वो नास्तिक मछली हँसने लगी और उसने कहा, जैसे मनुष्य परमात्मा को मानते हैं, अंधविश्वासी, वैसे ही मछलियाँ सागर को मानती हैं। न तो परमात्मा है, न कोई सागर है। गौर से देख, आँख खोल के देख। अभी तो तू जवान है। अभी इतनी घबड़ाती क्यों है? चारों तरफ महाशून्य ने घेर रखा है। मौत के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है।

मछली ने अपने चारों तरफ देखा—नयी मछली ने, युवा मछली ने। निश्चय ही चारों तरफ एक शून्य घिरा है। सूरज तो ढलने के करीब है। सागर की नीलिमा चारों तरफ है—कोरा आकाश मालूम होता है। और दूर जैसे आँख जाती है वैसे नीला सागर भी अँधेरे में डूब गया है। सब तरफ घनी रात है।

कहाँ है सागर? उसके मन में भी प्रश्न उठा।

नीचे झाँक कर देखा, अटल शून्य। घबड़ा गयी, हाथ-पैर कँप गये। रोआँ-रोआँ चिंता से भर गया। अगर गिर गयी इस शून्य में तो कौन बचाएगा? भूल ही गयी ये बात—कि अब तक इसी शून्य में तैरती रही, कभी गिरी नहीं। भूल ही गयी ये बात, कि क्षण भर पहले तक खुश थी, प्रसन्न थी और ये शून्य कभी भी काटा न था। लेकिन, आज चारों तरफ गौर से देखा तो जैसे भयभीत आदमी के

हाथ-पैर में पक्षाघात लग जाए, ऐसे ही मछली ने चाहा भी कि तैरे तो न तैर सकी। भीतर से तैरने वाले प्राण ही शिथिल हो गये। डर बहुत भयंकर हुआ। चारों तरफ सन्नाटा है। रात घिरती जाती है। सब तरफ शून्य है, अगर गिर गयी तो क्या होगा? सहारा कहीं पकड़ना जरूरी है। गौर से देखा कि क्या करूँ, किसका सहारा लूँ? कोई भी तो नहीं है। तो सोचा, अपनी ही पूँछ को पकड़ के अपने को सँभालने की कोशिश कर लूँ। झुकी, मुड़ी—कोई हठयोगी तो थी नहीं--बहुत चेष्टा की पूँछ को पकड़ने की, पूँछ पकड़ में न आयी; तो और भी घबड़ा गयी।

कहानी कहती है, कि सागर ये सब चुपचाप देखता था। हँस भी रहा था, कि पागल मछली, तुझे सागर दिखायी नहीं पड़ता। तू भी सागर है! और दया से भी भर रहा था, कि बेचारी गरीब मछली कितनी मुसीबत में पड़ गयी है। क्षणभर पहले तक श्रद्धा का आनंद था। क्षण में धुएँ के बादल घिर गये, संदेह के बादल घिर गये। आकाश दब गया, ढँक गया।

आखिर सागर से न रहा गया। और सागर ने कहा, सुन पागल, अब तक तू नहीं गिरी, किसने तुझे सँभाला है? आज अचानक क्यों गिर जाएगी?

गिरने का ख्याल ही संदेह के साथ आता है। श्रद्धा सँभाले रखती है। उसके अनजाने हाथ सब तरफ से सँभाले रखते हैं। संदेह उठा, कि सब हाथ हटते मालूम होते हैं। अतल खाई खुल जाती है।

मछली डरी। उसने कहा, तुम कौन हो? क्योंकि सागर तो नहीं है। सिर्फ लोगों का अंधविश्वास है। सागर हँसा। उसने कहा—सागर ही है। मछलियाँ आती हैं, चली जाती हैं। विश्वासी, अंधविश्वासी, अविश्वासी आते हैं, खो जाते हैं। सागर सदा बना रहता है। जो क्षणभंगुर है उसे तो ख्याल है, कि हूँ। और जो शाश्वत है, उसपर संदेह! पागल, संदेह ही करना हो तो अपने पर कर। एक दिन तू न थी। और एक दिन तू फिर नहीं हो जाएगी। सागर तो सदा था और सदा होगा। क्षणभंगुर पर संदेह कर, शाश्वत पर श्रद्धा।

नास्तिकता का अर्थ है : क्षणभंगुर पर श्रद्धा।

शाश्वत पर अश्रद्धा, संदेह है।

जो उस मछली की दशा है वैसी ही मनुष्य की दशा है। और इस सदी में तो और भी ज्यादा। क्योंकि, न मालूम कितने लोगों ने तुम्हारे भीतर संदेह को तो बढ़ाया है, श्रद्धा देने वाला तुम्हें कोई मिला नहीं। और जिनको तुम श्रद्धा देने वाले समझते हो, उनके पास खुद ही नहीं है। तो या तो तुम्हें संदेह देने वाले लोग हैं—प्रगट रूप से, या अप्रगट रूप से तुम्हें संदेह देने वाले लोग हैं।

नास्तिकों ने तो तुम्हें संदेह दिया ही, जिनको तुम तथाकथित आस्तिक कहते हो---मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में बैठे---उनको देख के भी तुम्हारी श्रद्धा नहीं बढ़ी। उनके जीवन ने भी तुम्हें संदेह ही दिया। उनके व्यवहार से भी श्रद्धा का संगीत नहीं उठा। उनके होने के ढंग में भी श्रद्धा की सुगंध न मिली। उनके पास भी संदेह की ही दुर्गंध आयी। ऐसा न लगा कि वे भी श्रद्धा को उपलब्ध हुए। न तो उनके जीवन में, न उनके होने के ढंग में, न उनकी आँखों की झलक में, न उनके पैरों की चाल में, श्रद्धा का नृत्य कहीं भी न मिला। हो सकता है कि वे तुमसे ज्यादा चतुर हों। हो सकता है, तुमसे ज्यादा तर्क-कुशल हों। हो सकता है, परमात्मा को मानने में उन्होंने ज्यादा बुद्धिमत्ता का प्रयोग किया हो। लेकिन परमात्मा उन्हें मिला है, ऐसी प्रतीति उनके स्पर्श से नहीं हो रही है।

नास्तिक तो नास्तिक है ही, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद भी आस्तिक की बिनानी बजाते हैं। वहाँ से भी छिपे नास्तिकों का ही स्वर उठता हुआ मालूम पड़ता है।

सब तरफ से आदमी नास्तिकता से घिर गया है।

करना क्या है ?

शायद तुमसे निरंतर कहा गया है, संदेह छोड़ो, श्रद्धा बढ़ाओ। मैं तुमसे नहीं कहता। मैं कहता हूँ---संदेह भी शुभ है, ठीक दिशा में लगाओ। क्षणभंगुर पर संदेह करो। संदेह को व्यर्थ मत फेंको। वो भी बड़ी कीमती कीमिया है। परमात्मा ने जो भी दिया है वो सार्थक है। संदेह भी सार्थक है। इनकार भी सार्थक है। नहीं-नहीं कहने की भी कोई मूल्यवत्ता है।

पर उससे ही नहीं कहो, जो नहीं कहने योग्य है।

तुमसे मैं ये नहीं कहता कि तुम संदेह को काट के फेंक दो। क्योंकि, संदेह अगर काट के फेंक दिया गया तो तुम अपंग हो जाओगे। तुम अपने आधे प्राण काट दोगे। तब तुम्हारा एक ही पंख बचेगा, उससे तुम उड़ न पाओगे। उससे तुम पहुँच न पाओगे।

तो मैं तुमसे कहता हूँ---संदेह का भी उपयोग करो, श्रद्धा का भी। दोनों तुम्हारे पैर हैं। हाँ, ठीक-ठीक दिशा में उपयोग कर लो। दिशा भर का भेद है; संयोजन बदलना है। जरा से फर्क से महत् फर्क पड़ जाता है।

इन सहजो के सूत्रों में इसी तरफ खबर है---

'सहजो सुपने एक पल, बीतें बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास॥'

यह संदेह का सम्यक् उपयोग है। संदेह करना है, परमात्मा तक जाने की

जरूरत नहीं। तुम्हारे चारों तरफ जो संसार घिरा है उससे ज्यादा योग्य विषय संदेह के लिए तुम दूसरा न पा सकोगे। पहले इस पर तो संदेह कर लो। '... सुपने एक पल, बीतें बरस पचास'। कभी तुमने खयाल किया। क्षण भर को झपकी लग गयी है, दफ्तर में बैठे काम कर रहे हो। या सुबह बैठकर अखबार पढ़ रहे हो---आँख बंद हो गयी, क्षण भर को झपकी लग गयी। झपकी लगते वक्त दीवार पे टँगी घड़ी देखी थी। फिर झपकी खुली तो देखा, एक मिनट बीता है मुश्किल से। लेकिन, झपकी में तुमने एक लंबा सपना देखा। सपना देखा इतना लंबा, कि अगर उतने सपने को घटना पड़े तो पचास वर्ष लग जाएँ... कि तुम छोटे थे... कि तुम बूढ़े हो गये सपने में... कि तुमने विवाह कर लिया... कि तुम्हारे बच्चे हो गये... कि शहनाई बजती थी... और शहनाई की ही आवाज से नींद टूट गयी। घड़ी में देखा, क्षण बीता है। इतना लंबा सपना देख लिया, इतने से क्षण में! वैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि समय सापेक्ष है, और तुम्हारे समय की प्रतीति रोज बदलती है। जब तुम प्रसन्न होते हो, समय जल्दी बीत जाता है। जब तुम दुःखी होते हो, समय मुश्किल से बीतता है। तुम आनंदित होते हो, पता नहीं चलता कहाँ बीत गये घंटे---क्षण-पल मालूम होते हैं। जब तुम दुःखी होते हो, जीवन बोझ से दबा होता है, उदास होते हो, क्षण-पल घंटों जैसे लगते हैं, बीतते नहीं लगते। ... कि बीतेगी ये रात या नहीं बीतेगी---इतनी लंबा जाती है।

समय तुम्हारे मन के ऊपर निर्भर है। तुम जितने मूर्छित होते हो, उसी मात्रा में सपने तुम्हारे मन को पकड़ते हैं। तुम जितने जाग्रत होते हो, उसी मात्रा में सपने कम पकड़ते हैं। मूर्छा गहरी हो, तो एक क्षण में वर्षों का सपना हो सकता है। होश गहरा हो---परिपूर्ण हो---तो समय मिट ही जाता है। वर्षों का तो सवाल ही नहीं, समय ही समाप्त हो जाता है। पूछो महावीर से, बुद्ध से, जीसस से; वो कहते हैं जब समाधि फलित होती है तो समय विलीन हो जाता है। परिपूर्ण समाधान की अवस्था में समय होता ही नहीं। परिपूर्ण मूर्छा की अवस्था में समय होता है---खूब लंबा होता है। और हम बीच में भटकते हैं---कभी मूर्छित, कभी होश; कभी सुखी, कभी दुःखी। दुःख में समय बहुत लंबा हो जाता है।

ईसाई कहते हैं कि नर्क शाश्वत है। एक बार गिर गये तो फिर छूटोगे नहीं। बर्ट्रेंड रसेल ने बड़ा वैज्ञानिक तर्क उठाया है। ईसाइयत के खिलाफ एक किताब लिखी है---'व्हॉय आय ऍम नाट अ क्रिश्चियन'---कि मैं ईसाई क्यों नहीं हूँ। उसमें बहुत तर्क दिये हैं। उसमें एक तर्क ये भी है---और तर्क बड़ा काम का मालूम

पड़ता है। रसेल कहता है, कि मैंने अपनी जिंदगी में जो भी पाप किये--और ईसाई तो एक ही जिंदगी मानते हैं, इसलिए ज्यादा झंझट नहीं है--इस जिंदगी में मैंने जितने पाप किये और जितने पाप सोचे--किये नहीं सिर्फ सोचे--किये और सोचे सभी पाप अगर मैं कठोर से कठोर अदालत के सामने भी व्यक्त कर दूं, तो रसेल कहता है, मुझे पाँच साल से ज्यादा की सजा नहीं मिल सकती। वो भी किये और सोचे--अगर सोचे वाले पापों पर भी दंड मिलता हो--तो पाँच साल से ज्यादा मुझे कोई कठोर से कठोर न्यायाधीश भी सजा नहीं दे सकता। लेकिन ये ईसाइयत तो बिल्कुल ही व्यर्थ की बकवास मालूम होती है। इतने से पापों के लिए अनंत काल तक मुझे नर्क में डाल दिया जाएगा, ये बात समझ में नहीं आती। ये तो दंड जरूरत से ज्यादा मालूम पड़ता है। फँस भर जाओ! पाप ही क्या किये हैं तुमने?

तुम भी सोचो तो रसेल की बात ठीक लगेगी। कुछ थोड़ा बहुत पैसा चुरा लिया होगा, कहीं किसी की जेब काट ली होगी, कहीं मौका पा के नोट पड़ा होगा तो नहीं बताया होगा—रख लिया होगा, किसी की पत्नी की तरफ वासना से देख लिया होगा, किसी के मकान की तरफ ईर्ष्या से देख लिया होगा, किसी को गाली दे दी होगी, किसी से लड़ लिए होगे, यही पाप है। बड़े छोटे-मोटे हैं। दो कौड़ी के हैं। इन पापों के लिए अनंतकाल तक नर्क में सड़ना पड़ेगा! रसेल को कोई ईसाई जवाब नहीं दे सका, क्योंकि बात बिल्कुल साफ है। रसेल कहता है, कितने ही पाप किये हों, दंड की एक सीमा है। दंड अनंत, सीमित पापों के लिए!

लेकिन मेरे पास कुछ और कारण हैं। रसेल तो मर चुका, जीवित होता तो उससे मैं कहता, कि सवाल तुम समझे ही नहीं। जीसस का वचन चूक गये। जीसस जब कहते है अनंत हैं नर्क, तो वो यह कहते हैं कि दुःख वहाँ इतना है कि एक क्षण अनंत मालूम पड़ेगा। दुःख की मात्रा से लंबाई मालूम पड़ती है। अनंत से मतलब अनंत नहीं है। वो तो केवल प्रतीक है। दुःख इतना गहन है, कि रात काटे न कटेगी। अनंत मालूम पड़ेगी। ये दुःख की घनता को बताने के लिए अनंत शब्द का प्रयोग है। अनंत शब्द का समय की लंबाई से कोई मतलब नहीं है। अनंत शब्द का अर्थ समय के भीतर दुःख की गहराई से है। एक क्षण को भी नर्क में रहोगे, तो ऐसा लगेगा ये क्षण अब समाप्त होनेवाला नहीं है। इतना ही प्रयोजन है। दुःख के क्षण अनंत हो जाते हैं। सुख के क्षण छोटे हो जाते हैं। आनंद के क्षण में समय बचता ही नहीं। इसलिए जिन्होंने आनंद जाना है, उन्होंने कहा --कालातीत, वो समय के पार है। वहाँ समय समाप्त हो जाता है।

जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे प्रभु के राज्य के संबंध में कोई एकाध ऐसी बात बताओ, जो इस पृथ्वी के राज्य से बिलकुल अलग हो। तो जीसस ने जो बात बतायी वो यह है--'देयॅर शेल बि टाइम नो लांगर'—उस परमात्मा के राज्य में समय न होगा। ये एक बुनियादी भेद होगा, पृथ्वी के राज्य से और परमात्मा के राज्य में। समय उतना ही होगा जितना तुम्हारा दुःख है। समय की मात्रा तुम्हारे दुःख से फैलती है, तुम्हारे सुख से सिकुड़ती है। महादुःख में अनंत हो जाती है। महासुख में शून्य हो जाती है।

सहजो कहती है—'सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास।' स्वप्न के एक क्षण में पचास वर्ष बीत जाते हैं। इससे तुम्हें कभी खयाल न आया, कि जिनको तुम जीवन के पचास वर्ष कह रहे हो, कौन जाने वो सपने का एक क्षण ही हो! ये संदह को ठीक दिशा देनी है।

चीन में एक बड़ी पुरानी कथा है। एक सम्राट का बेटा मरता था। वो इकलौता बेटा था। आखिरी घड़ी करीब थी; चिकित्सकों ने कहा, बच न सकेगा अब। तो तीन दिन से सम्राट सोया ही नहीं, उसके पास बैठा है। आखिरी साँस घिसटती है। कभी भी टूट सकती है। बड़ा प्यारा बेटा है। इकलौता है। इसके ऊपर सारी आशाएँ थीं, सारे सपने थे। यही भविष्य था। बूढ़ा सम्राट रोता है। लेकिन कुछ करने का उपाय नहीं। सब किया जा चुका है। कोई दवा काम नहीं आती, कोई चिकित्सक जीत नहीं पाता। बीमारी असाध्य है। मृत्यु होगी ही।

चौथी रात सम्राट बैठा है। तीन रात सोया नहीं—झपकी आ गयी। सपना देखा एक बड़ा.... कि बड़े स्वर्ण-महल हैं.... सारी पृथ्वी पर चक्रवर्ती राज्य है उसका.... एकछत्र राज्य है.... बारह सुंदर, स्वस्थ, युवा उसके बेटे हैं.... उनके शरीर का सौष्ठव, उनकी बुद्धि की प्रतिभा की कोई तुलना नहीं है.... हीरे-जवाहरात उसके महल की सीढ़ियों पर जड़े हैं.... अपार संपदा है.... वह बड़े सुख में.... गहन सुख में....कोई दुःख नहीं है.... जब वो ऐसा सपना देख रहा है, तभी पत्नी छाती पीट के रोयी। लड़का मर चुका है। नींद टूट गयी। सामने पड़ी लाश देखी। अभी-अभी सपने में जाते, विदा होते महल--स्वर्ण के, चमकते हुए; वे बारह पुत्र--उनका सुंदर सौष्ठव, देह, उनकी प्रतिभा; आनंद की वो आखिरी झलक जो अभी सपने ने पैदा की थी, वो भी अभी मौजूद थी। और इधर बेटा मर गया। इधर चीख-पुकार मची। सम्राट किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। कुछ सोच न पाया। एक क्षण को ठगा सा रह गया। पत्नी समझी कि कहीं पागल तो नहीं हो गया--आँख से आँसू न गिरा, ओंठ से चीख न निकली, दुःख का एक शब्द न

उठा, एक आह न प्रगट हुई। पत्नी घबड़ायी। उसने पति को हिलाया, कि तुम्हें क्या हो गया? पता था कि बेटे का दुःख भारी होगा। कहीं विक्षिप्त तो नहीं हो गया! कहीं पागल तो नहीं हो गया! ऐसा सुन्न क्यों हो गये हो? बोलो कुछ। पति हँसने लगा। उसने कहा, मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया हूँ। किसके लिए रोऊँ? अभी बारह सुंदर युवक मेरे बेटे थे, स्वर्ण के महल थे, सब सुख था, वह अचानक टूट गया। उन बारह के लिए रोऊँ जो मर गये, या इस एक के लिए रोऊँ जो मर गया? क्योंकि जब मैं उन बारह के साथ था, इस एक को भूल ही गया था। पता ही न था कि मेरा कोई बेटा है। अब इस एक के पास हूँ, उन बारह को भूल गया हूँ। सच कौन है?

'सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास'—स्वप्न में एक क्षण में पचास वर्ष जीवन के बीत जाते हैं। तुम्हारे जीवन के पचास वर्ष भी सुपने के एक पल से ज्यादा नहीं हैं। कितने लोग इस जीवन में रहे हैं। कितने अनंत लोग इस पृथ्वी पर हुए हैं। उन्होंने भी ऐसे ही सपने देखे थे, जैसा तुम देखते हो। उन्होंने भी ऐसी ही महत्त्वाकांक्षाएँ पाली थीं, जैसी तुम पालते हो। उन्होंने भी पद और प्रतिष्ठा के लिए ऐसी ही दौड़ साधी थी। वे भी लड़े थे, मरे थे। उन्होंने भी सुख-दुःख पाए थे, मित्र-शत्रु बनाए थे, अपने-पराये माने थे। फिर सब विदा हो गये। वैज्ञानिक कहते हैं, जिस जगह पर तुम बैठे हो, जिस जगह पर एक आदमी खड़ा है, उस पे कम से कम दस लोगों की लाशें दबी हैं। उस जमीन में कोई दस लोग मर के मिट्टी हो चुके हैं। तुम भी उन्हीं दस लोगों की धूल में आज नहीं कल समाविष्ट हो जाओगे। धूल रह जाती है अखीर में, सब सपने उड़ जाते हैं। मिट्टी-मिट्टी में गिर जाती है। दो मिट्टियों के बीच ये जो थोड़ी देर के लिए सपने का संसार है, संदेह करना हो इस पर करो। और आश्चर्य है कि लोग इस पर तो संदेह नहीं करते, शाश्वत पर संदेह करते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वो कहते हैं कि हम अंधविश्वासी नहीं हैं। हम विचारवान हैं, सुशिक्षित हैं। हमने तर्क सीखा है। और हमें ईश्वर पर श्रद्धा नहीं आती। मैं उनसे कहता हूँ, छोड़ो ईश्वर को। अगर तुम सचमुच में ही सुशिक्षित हो, तुमने तर्क सीखा है और तुम विचारवान हो, तो संसार के संबंध में तुम्हारा क्या खयाल है? वो कहते हैं, संसार है। ये कौन सा तर्क हुआ! ये तो बिलकुल आँख अंधी है।

अगर संदेह ही सीख गये हो, तो जरा अपने जीवन पर संदेह करके देखो; और तुम पाओगे कि सपने में और इस जीवन में कोई भेद नहीं है। सपना तुम किसे

कहते हो? जब होता है तब तो सही मालूम पड़ता है। रात जब तुम सपना देखते हो तब थोड़े ही झूठ मालूम पड़ता है। सुबह जब जागते हो तब पता चलता है, जाग के पता चलता है, कि सपना था। जो भी आज तक इस पृथ्वी पर जागे हैं, उन सबका एक वक्तव्य समान है, कि ये जगत एक सपना है। बुद्ध जागे, कि सहजो जागे, कि कबीर जागे, कि फरीद, जागते ही ये जगत सपना हो जाता है। जागते ही पता चलता कि धन की, पद की दौड़ मन का एक जाल है। 'सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास। आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास॥' जब आँख खुलती है, तो पता चलता है सब झूठ था। 'ऐसे ही घट-बास'—ऐसा ही इस शरीर में रहना है। इस शरीर में रहना तभी तक सच मालूम पड़ता है जब तक आँख बंद है। जब आँख खुल जाती है तब पता चलता है, कैसे-कैसे सपने देखे, कैसी-कैसी भ्रांतियाँ पालीं, कैसे-कैसे मन के जाल को यथार्थ समझ लिया। केवल लहरें थीं विचार की, तरंगें थीं विचार की—आयीं और गयीं। उनकी कोई रेखा भी नहीं छूट जाती। जैसे पानी पर किसी ने लिखा हो, हस्ताक्षर किये हों—कर भी नहीं पाता और मिट जाते हैं।

'आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास'—तुम्हें शरीर सच मालूम हो रहा है तो संसार सच मालूम होगा। तुम्हें संसार सच मालूम हो रहा है तो शरीर सच मालूम होगा। ये दोनों सचाइयाँ एक साथ जुड़ी हैं। अगर तुम्हें संसार पर संदेह आ जाए, शरीर पर संदेह आ जाएगा। क्योंकि शरीर तुम्हारा संसार का हिस्सा है। अगर तुम्हें शरीर पर संदेह आ जाए, संसार पर संदेह आ जाएगा। क्योंकि संसार तुम्हारे शरीर का ही फैला हुआ रूप है। ये शरीर एक दिन नहीं था, इतना तय है। ये शरीर एक दिन नहीं हो जाएगा, इतना भी तय है। बस थोड़ी सी बीच में, दो शून्यों के बीच में थोड़ी सी लहर....। इस लहर को तुम सच मान लेते हो। कभी संदेह नहीं करते। और सब लहरों के पीछे छिपा हुआ जो अस्तित्व है—परमात्मा कहो, आत्मा कहो, मोक्ष कहो—उस पर तुम्हें संदेह आता है। नहीं, नास्तिक को मैं बहुत तर्कनिष्ठ नहीं कहता। बहुत जो तर्कनिष्ठ है वो तो आस्तिक हो ही जाएगा। नास्तिक तो बाराखड़ी सीख रहा है। अभी अ ब स सीख रहा है। जब और थोड़ा तर्क में गहरा उतरेगा, संदेह प्रगाढ़ होगा और संदेह में धार आएगी, तो जो सहजो कहती है वही दिखायी पड़ेगा—'आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास।'

'जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।' ये प्रतीक बड़ा प्यारा है। 'जगत तरैयाँ भोर की'—सुबह की आखिरी तरैया है जगत। सुबह कभी उठ कर देखा

है ? सब तारे डूब गये हैं, बस आखिरी तरैया रह गयी है । अब गयी, अब गयी । एक क्षण है, और एक क्षण बाद तुम खोजते रह जाओगे और पता न चलेगी कहाँ खो गयी । अभी थी, अभी दिखायी पड़ती थी, अब दिखायी नहीं पड़ती है । 'जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं'––ये जगत ऐसे ही सुबह के आखिरी डूबते हुए तारे की भाँति है । ये ठहरता नहीं । अब गया, तब गया । होश भी नहीं सँभल पाता और चला जाता है । आ भी नहीं पाते कि विदा का क्षण आ जाता है । हो भी कहाँ पाते हो और मौत पकड़ लेती है ।

'जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं । जैसे मोती ओस की, पानी अंजुली माहिं ।।' जैसे सुबह ओस का कण घास के पत्ते पर, बिलकुल मोती लगता है । मोती भी फीके मालूम पड़ते हैं । सुबह का सूरज उगता है । घास के पत्तों पर चमकते ओस-कण मोतियों को मात कर देते हैं––झेंपा देते हैं । 'जैसे मोती ओस की'––है तो मोती, दिखायी पड़ने मात्र को । वस्तुतः है ओस-कण । और कितनी देर टिकता है ? हवा का एक झोंका––ओस मिट्टी में खो जाती है । सूरज की किरण––ओस भाप बन जाती है । 'जैसे मोती ओस की, पानी अंजुलि माहिं'–– या जैसे पानी को कोई अपनी अंजुलि में भरता है । लगता है कि भर गया...और गिरना शुरू हो गया है––अँगुलियों से बहा जा रहा है । क्षण भी न बीतेगा अंजुली खाली हो जाएगी । ऐसे ही लगता ही है कि सब पा लिया, पा भी नहीं पाते और अंजुली खाली होनी शुरू हो जाती है ।

'जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं । जैसे मोती ओस की, पानी अंजुली माहि ।।' क्षणभंगुरता को गौर से देखो । वही पहला कदम है शाश्वत को देखने की तरफ । जिसने क्षणभंगुर को पहचान लिया, उसके पास शाश्वत को परखने की कसौटी आ गयी । जिसने क्षणभंगुर न पहचाना, वो कभी शाश्वत को न पहचान पाएगा ।

शिक्षण क्षणभंगुर का लेना होगा ।

गौर से देखो उस सब को जो आता है, और चला जाता है । होता है, और नहीं हो जाता है । बनता है, और मिटता है । फूल खिलता है सुबह, साँझ मुरझा जाता है । गौर से देखो क्षणभंगुर को । सौंदर्य अभी है, कल नहीं होगा । जवानी अभी थी, जा चुकी । गौर से जिसने देखा क्षणभंगुर को उसे धीरे-धीरे एक बात साफ हो जाएगी कि क्षणभंगुर में सत्य को खोजना पागलपन है । जो टिकता ही नहीं उसमें सत्य कैसे हो सकता है ? सत्य की परिभाषा है, जो सदा है । सत्य की परिभाषा है, जो अबाध है । जिसका कभी खंडन नहीं होता । किसी भी क्षण में

जिससे विपरीत घटित नहीं होता । जो सदा वैसा ही है जैसा था––एकरस । जिसमें कोई भंग नहीं आता । पर इसे जानने के लिए पहले तो क्षणभंगुर को गौर से देख लेना पड़े । क्षणभंगुर को पहचानते-पहचानते ही शाश्वत की पहचान उभरने लगती है । असार को देखते-देखते ही सार की भनक पड़ने लगती है । गलत को देखते-देखते ही ठीक की पहचान हो जाती है । और कोई उपाय नहीं है । और एक बात ध्यान रखना, क्योंकि वो भूल अक्सर होती है । अगर मैं कहता हूँ––संसार क्षण-भंगुर है, जल्दी मत मान लेना । या सहजो कहती है––'सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास । आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास'––जल्दी मत मान लेना । क्योंकि जल्दी जो मान लेगा वो अपने अनुभव से वंचित रह जाता है । ये तुम्हारा अनुभव होगा तो ही तुम्हें सत्य तक ले जाएगा । उधार अनुभव से कुछ भी न होगा ।

ऐसे तो तुमने भी सुना है कि संसार क्षणभंगुर है । लेकिन तुम्हें सत्य की शाश्वतता का इससे कुछ पता नहीं चला । क्षणभंगुरता तुमने देखी नहीं है, सुनी है । पहचानी नहीं है, मान ली है । कोई और कहता है । उधार, बासी । शास्त्र कहते हैं, संत कहते हैं । लेकिन तुम्हारे अनुभव से नहीं प्रगटी । परिपक्व नहीं है । तुमने पककर नहीं जानी है, तुमने मान ली है । मानने से कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता । जानने से ज्ञान बनता है । मानने से ज्यादा से ज्यादा अज्ञान ढँकता है, मिटता नहीं । 'जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं । जैसे मोती ओस की, पानी अंजुली माहिं ।।'

'धूआँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय । झाईं माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय ।।'

ये जो मन का सारा खेल है, 'धूआँ कोसो गढ़ बन्यो'––जैसे कोई धुएँ का गढ़ बना ले । कभी-कभी आकाश में बादलों को तुमने देखा हो । कितने रूप-रंग लेते हैं, कितने आकार लेते हैं । कभी लगता है, बादल का एक टुकड़ा हाथी बन गया । मगर जरा गौर से देखते रहना––तुम देख भी न पाओगे थोड़ी देर कि हाथी बिखर गया । धुएँ का हाथी कितनी देर टिक सकता है ? कभी बादलों में लग सकता है कि गढ़ बना है, बड़ा महल बना है । लेकिन जब तुम्हें लग रहा है तब भी वो महल बिखर रहा है ।

'धूआँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय' । ये जो मन के सारे राज्य हैं, सपने हैं; मन की कल्पनाएँ-आकांक्षाएँ हैं, वासनाएँ हैं, तृष्णाएँ हैं––धुएँ के गढ़ हैं ।

बड़े अछूते प्रतीक सहजो ने लिए हैं । कुँवारे प्रतीक हैं । पिटे-पिटाये नहीं हैं । उसने अपने जानने से ही लिए होंगे । वो कोई कवि नहीं है, रहस्यवादिनी है । वो

कोई कविता नहीं कर रही है, वो स्वयं कविता है। शब्दों से उसे कुछ लेना नहीं है। वो जो मौन में और शून्य में जाना है, उसे शब्दों के सहारे थोड़ा तैरा देना है ताकि तुम तक पहुँच जाए। शब्द तो कागज की नाव हैं। उसने उसमें शून्य के अनुभव को रख के भेजा है तुम तक। शब्द तो संदेशवाहक हैं, डाकिया हैं। उनको बहुत सजाने का सवाल नहीं है। बड़े कुँवारे प्रतीक हैं।

'धूआँ कोसो गढ़ बन्यो'। ये जो मन का जाल; जिसने गौर से देखा, पाया धुएं का जाल है। कितने खेल रचता है। जो नहीं है, उसको मान लेता है। जो है, उसे भूल जाता है। और हर बार हारता है, फिर भी जागता नहीं। तुमने जितनी कामनाएँ कीं सभी में तुम हारे हो, फिर भी जागे नहीं। आश्चर्यजनक है! जाग नहीं पाते कि मन दूसरा गढ़ बना देता है। वो कहता है, पुराना गलत हो गया, कोई फिकिर नहीं। लोगों ने सच न होने दिया; दुश्मन ज्यादा थे; परिस्थिति अनुकूल न मिली; भाग्य ने साथ न दिया; चेष्टा पूरी न हो पायी इसलिए बिखर गया। मन सदा ये कहता है कि तुम्हारी वासना में तुम असफल हुए उसका कारण--वासना का स्वभाव ही असफल होना है--ऐसा नहीं है। और कारण बताता है मन। इन कारणों से असफल हुए। अगर पूरी ताकत लगायी होती तो जीत जाते। ताकत कम लगायी; श्रम पूरा न उठाया; दूसरा जो तुम्हारी प्रतिस्पर्धा में था चालबाज था, चालाक था। तुम सीधे-साधे आदमी थे; तुम्हें भी षड्यंत्र रचना था, तुम्हें भी दुनियादारी में पड़ना था, तो जीतते। हजार बहाने मन खोज देता है--क्यों तुम हारे। एक बात नहीं देखने देता, कि वासना का स्वभाव ही हार जाना है, वासना कभी पूरी होती ही नहीं। वो तुम्हें बहाने बता देता है--कहता है, अगली बार ऐसी भूल मत करना, अब दुबारा जब संघर्ष में उतरो तो तैयारी से उतरना। लेकिन कोई कभी जीतता नहीं। सिकंदर और नेपोलियन भी खाली हाथ विदा होते हैं। धनपति भी निर्धन ही मरते हैं। पदों पर, सिंहासनों पर बैठे हुए लोग भी भीतर भिखारी ही रह जाते हैं। बड़े पंडित हो जाते हैं, बहुत जान लेते हैं, फिर भी भीतर का अँधेरा नहीं मिटता और दिया तले अँधेरा बना रहता है।

'धूआँ कोसो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय। झाईं माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय॥'

जैसे कि कोई चाँद को देखे झील में। चाँद तो सच है, लेकिन झील का चाँद सच नहीं है। जैसे कोई देखे अपनी ही छबि को दर्पण में। तो दर्पण की छबि कितनी ही सुंदर मालूम पड़े, सच नहीं है। 'झाईं माईं सहजिया'--परछाई में; 'कबहूँ

साँच न होय'--परछाईं में कभी सत्य नहीं होता। संसार परमात्मा की परछाईं है। जहाँ तुम पाओ सत्य नहीं है लेकिन सत्य भासता है, उसका अर्थ यही हुआ कि परछाईं है। तुम भागे जा रहे हो, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे भागी जा रही है। मैं तुम्हारी छाया को पकड़ने में लग जाऊँ तो तुम्हें न पकड़ पाऊँगा। यद्यपि विपरीत सच है। तुम्हें पकड़ लूँ, तुम्हारी छाया पकड़ में आ जाएगी।

मैंने सुना है कि एक छोटा बच्चा एक आँगन में खेल रहा है। वो अपनी छाया को पकड़ने की कोशिश कर रहा है। सुबह की धूप होगी, सर्दी के दिन होंगे, वो सरक-सरक कर अपनी छाया को पकड़ने की कोशिश कर रहा है। एक फकीर द्वार पर भीख माँगने खड़ा है। वो गौर से देखने लगा। वो बच्चा पकड़ने की कोशिश करता है लेकिन पकड़ नहीं पाता। क्योंकि जब वो आगे बढ़ता है, छाया आगे बढ़ जाती है। फिर आगे बढ़ता है और भी ताकत से, फिर छाया आगे बढ़ जाती है। वो बच्चा रोने लगा है। उसकी आँख से आँसू गिर रहे हैं। वो हार गया है। उसकी माँ उसे समझाने की कोशिश कर रही है, कि छाया पकड़ी नहीं जा सकती। लेकिन बच्चे को क्या छाया, क्या माया? बच्चा कहता है, मैं पकड़ कर रहूँगा। अगर मुझसे नहीं पकड़ी जाती, तुम पकड़ दो। लेकिन मुझे पकड़नी है। बच्चा हारने को राजी नहीं है। वो फकीर द्वार पर खड़ा देखता है, वो भीतर आया। उसने माँ से कहा कि रुको। उसने बच्चे का हाथ माथे पर रखवा दिया और कहा, देख। हाथ माथे पर पड़ा, छाया पर भी हाथ पड़ गया। बच्चा खिलखिलाकर हँसने लगा है। छाया उसने पकड़ ली।

छाया को पकड़ने का और कोई उपाय नहीं। छाया को पकड़ना हो तो छाया में ही पकड़ा जा सकता है। तुम्हारे राजनेता, धनपति, प्रतिष्ठित लोग--जो लगते हैं कि जिन्होंने कुछ पकड़ लिया संसार में--अपने माथे पर हाथ रखे हैं। छाया पकड़ी हुई मालूम पड़ रही है। तुम्हारी दिल्ली, तुम्हारे लंदन, तुम्हारे पेरिस और वाशिंग्टन में अपने-अपने माथे पर हाथ रखे लोग बैठे हैं। छाया पकड़ी हुई मालूम पड़ रही है। जो नहीं पकड़ पाते वो रो रहे हैं। वो छाया को सीधा पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं। बाकी दोनों ही बातें मूढ़ता हैं। बच्चे का रोना भी मूढ़ता थी। अब बच्चा प्रफुल्लित है, हँस रहा है, कि पकड़ ली उसने, जीत गया, वो भी उतनी ही मूढ़ता है। शायद दूसरी मूढ़ता पहले से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि पहली असफलता में तो एक सचाई थी, दूसरी सफलता में बिलकुल ही सचाई नहीं है। 'झाईं-माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय।' परछाईं कभी सच नहीं है। परछाईं का भी एक सच है: कि वो है। पर परछाईं की तरह ही है, सत्य की तरह

नहीं है। तुम उसे पकड़ने में मत पड़ जाना।

मैंने सुना है कि रमजान के दिन थे और मुल्ला नसरुद्दीन एक एकांत रास्ते से गुजर रहा था। चाँद देखने को मुसलमान बड़े पीड़ित और परेशान थे। दिख जाए चाँद तो उपवास पूरा हो। वो एक कुएँ पर पानी पीने को रुका। उसने बाल्टी अंदर डाली। कुएँ में चाँद था। अरे! उसने कहा, कि यही झंझट हो रही है। वो लोग आकाश में देख रहे हैं और चाँद यहाँ उलझा है। अब इसको कोई न निकालेगा अगर, तो मर जाएँगे लाखों लोग भूखे। तो उसने पानी-वानी पीने की तो फिकिर छोड़ दी, उसने बाल्टी में चाँद को भरने की कोशिश की। बड़ा मुश्किल काम था। क्योंकि पानी हिलने लगा, तो चाँद छितरने लगा। संसार की यही मुसीबत है। वहाँ चीजों को पकड़ने जाओ, तो वो छितरती हैं। मुट्ठी बाँधो, तो पारा सिद्ध होती हैं। छूट-छूट जाती हैं। बड़ी उसने मेहनत की, बड़ा हिलाया-डुलाया, बड़ा सँभाल के बाल्टी रखी, आखिर एक ऐसी घड़ी आ गयी कि ठीक बाल्टी में वो पानी भर गया जिसमें चाँद की छाया पड़ रही थी। उसने कहा कि हो गया निपटारा। एक पुण्य का कृत्य हो गया। अब इसको खींच लें।

उसने बड़ी खींचने की कोशिश की। इस उपद्रव में चाँद को पकड़ने की, उसकी रस्सी कुएँ के भीतर की एक चट्टान से उलझ गयी। बड़ी ताकत लगायी, वो निकले न। उसने कहा, मरे! वजनी है बहुत! अकेले से न होगा! मगर इधर कोई आसपास दिखायी भी नहीं पड़ता (कोई)। खुद पर ही करना पड़ेगा। ये तो ताकत और लगानी पड़ेगी। बड़ी ताकत लगायी। जब बहुत ही लगा दी, तो रस्सी टूट गयी––जो कि होता है सदा। रस्सी टूट गयी तो वो भड़ाम से जाके कुएँ के बाहर पाट पर गिरा। खोपड़ी में चोट भी लगी, आँख भी खुली, चाँद ऊपर दिखा। उसने कहा, चलो चोट लग गयी कोई हर्जा नहीं, तुम तो छूटे। लाखों लोगों के प्राण बचे।

मगर ऐसा सौभाग्य भी कम लोगों को मिलता है कि चोट लग जाए––रस्सी उलझ जाए, गिर पड़ें, खोपड़ी तिलमिला जाए, और आकाश की तरफ आँख उठ जाए और असली चाँद दिख जाए। जीवन की हार जब पूरी होती है तभी परमात्मा की सुध आनी शुरू होती है। जब जीवन पूरी तरह पराजित होता है, तुम चारों खाने चित्त गिर गये होते हो, तब तुम्हारी आँख आकाश की तरफ उठती है। अन्यथा आदमी कुएँ के चाँद को पकड़ने में लगा रहता है। नहीं पकड़ पाता तो सोचता है और थोड़ी कुशलता चाहिए।

लेकिन परछाईं के चाँद सत्य नहीं हैं। दिखायी पड़ते हैं। इसलिए ज्ञानियों ने

संसार को माया कहा है। परमात्मा है सत्य। संसार है उसकी परछाईं। सत्य की छाया का नाम माया है।

'धूआँ कोसो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय। झाईं माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय॥'

'निरगुन सरगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।
सद्गुरु ने आँखें दयीं, निस्चै कियो निहार॥'

'निरगुन सरगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।' लेकिन परमात्मा की तरफ की यात्रा का पहला कदम जब तक पूरा न हो जाए, तब तक परमात्मा एक शाब्दिक बातचीत रहता है। जब तक संसार व्यर्थ न हो, तब तक परमात्मा सार्थक नहीं हो सकता।

दो दिन पहले एक मित्र मेरे पास थे। अपने बेटे को लेके आये थे। कहने लगे बेटा होशियार है बहुत। और उसने संन्यास ले लिया ये भी अच्छा किया। लेकिन दोनों सँभालने चाहिए––संसार भी और संन्यास भी। इस जगत में भी सफलता पानी चाहिए और उस जगत में भी। ऊपर से देखने पर बात बिलकुल ठीक लगती है, कि इस जगत में भी सफलता मिलनी चाहिए, उस जगत में भी। लेकिन जब तक तुम्हें इस जगत की सफलता सफलता दिखायी पड़ती है तब तक उस जगत की सफलता की तरफ तो तुम चेष्टा ही न करोगे।

इस बात से मैं राजी हूँ कि संसार छोड़ के भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। संसार में तुम परिपूर्ण रहते हुए संन्यस्त हो सकते हो। लेकिन, संसार में रहते हुए एक बात के प्रति तो तुम्हें जाग ही जाना होगा, कि संसार की सफलता सफलता नहीं है। वो चाँद कुएँ का है। वो छाया है। संसार में रहते हुए ही संन्यस्त हुआ जा सकता है। और कोई उपाय नहीं। जाओगे भी कहाँ? सभी तरफ संसार है। जो है, सभी तरफ संसार फैला है। भागोगे कहाँ? भागने को कोई जगह नहीं है। जागने को जगह है। जागने का अर्थ इतना होता है, कि तुम ये देख लेना कि ये जो दौड़ संसार की है वहाँ चाँद असली नहीं है। अगर कामचलाऊ चलना भी पड़े, तो चलते रहना। अगर भीड़ वहाँ जाती हो, तो भीड़ के साथ खड़े रहना। कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि भीड़ को नाहक नाराज करने से भी क्या सार। और उनको तो वहाँ सफलता दिखायी पड़ रही है। यही तो उस फकीर ने उस बच्चे के सिर पर हाथ रख के किया। बच्चा है, नाहक रुलाने से भी क्या फायदा है। इतने से तो खुश हो जाता है, कि छाया पकड़ ली। तो एक तरकीब कर दी कि सिर पर हाथ रख दिया। छाया पकड़ में आ गयी।

लेकिन तुम्हें तो जाग ही जाना चाहिए कि संसार की कोई सफलता सफलता नहीं है। सब सफलता गँवाया गया श्रम है। सब सफलता खोया गया समय है। सब सफलता अपने को बेचना है और कूड़ा-करकट को खरीद लाना है। एक दिन तुम पाओगे बाजार तो सब खरीद के घर में आ गया, तुम बाजार में कहीं खो गये। तुम तो न बचे, और सब बच गया।

'निरगुन सरगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।' संसार की क्षणभंगुरता स्पष्ट हो जाए तो फिर परमात्मा की तरफ आँख उठती है, आँख खुलती है। और वैसी जो आँख है--उसको 'निरगुन सरगुन एक प्रभु'--उसको तो निर्गुण और सगुण एक ही दिखायी पड़ता है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई का परमात्मा एक ही दिखायी पड़ता है। जिनको ये परमात्मा अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं, समझ लेना कि उनकी अभी आँख परमात्मा की तरफ नहीं उठी। क्योंकि परमात्मा तो एक है। चाँद तो एक है, कुएँ हजार हैं। और हजार कुओं में हजार प्रतिबिंब बनते हैं। कोई मुसलमान का कुआँ है, उसमें मुसलमान का प्रतिबिंब है। कोई हिंदू का कुआँ है, उसमें हिंदू का प्रतिबिंब है। किसी में गंदा पानी भरा है, किसी में स्वच्छ पानी भरा है। तो प्रतिबिंब में थोड़ा फर्क भी पड़ता है। कोई कुआँ संगमरमर से बना है। कोई कुआँ साधारण मिट्टी का ही है; कुछ भी उसमें पत्थर नहीं लगे हैं। तो भी प्रतिबिंब में थोड़ा फर्क पड़ता है। लेकिन जिसका प्रतिबिंब है, वो एक है। प्रतिबिंब अनेक हो सकते हैं, लेकिन सत्य एक है।

'निरगुन सरगुन एक प्रभु'—तुम उसे सगुण कहो तो ठीक, क्योंकि सभी गुण उसके हैं। तुम उसे निर्गुण कहो तो ठीक, क्योंकि (जो) सभी गुण जिसके हैं कोई गुण उसका नहीं है। जिसके सभी गुण हैं वो गुणों के पार है। तुम उसके हाथ पूरे भरे कहो, तो ठीक है। तुम उसके हाथ पूरे शून्य कहो, तो ठीक है। क्योंकि शून्य और पूर्ण एक ही अवस्था के दो नाम हैं। तुम चाहो तो हर हरियाली में उसे देखो, हर फूल में उसे पहचानो, हर तारे में उसकी झलक पाओ। और तुम चाहो तो हर हरियाली के पीछे, चाँद-तारों के पीछे, पहाड़ों के पीछे, जो छिपा हुआ निराकार अस्तित्व है उसमें उसे खोजो। चाहो, उसकी अभिव्यक्ति में पकड़ो, और चाहे उसकी आत्मा में। आत्मा देखोगे तो निर्गुण है। अभिव्यक्ति देखोगे तो सगुण है। उसके वस्त्र देखोगे तो बड़े प्यारे, बड़े रंग-बिरंगे हैं। उसके भीतर जाओगे, सब रंग खो जाते हैं। विराट शून्य मिलता है।

'निरगुन सरगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।' लेकिन देखने से मिलता है ये अनुभव। ये अगर अकेले विचार करने से मिलता, तो विचारक इसे पा लेते। ये

अकेले विचार करने से नहीं मिलता। बहुत लोग विचार करते रहते हैं परमात्मा के संबंध में। उनका विचार कहीं भी नहीं ले जाता। क्योंकि विचार तो मन का ही जाल है। मन से ही तो जो पकड़ में आता है वो संसार है। विचार से पकड़ने की कोशिश परमात्मा को ऐसे ही है जैसे कोई छाया को पकड़ रहा हो, पकड़ में न आती हो। विचार खुद ही छाया है। उस छाया में तुम क्या पकड़ने जाओगे सत्य को? मन चाहिए शून्य, निर्विचार। यही अर्थ है ध्यान का। विचार से कोई कभी परमात्मा को नहीं पाता। ध्यान से पाता है। ध्यान निर्विचार दशा है। जब तुम्हारे मन में सब तरंगें समाप्त हो गयीं, कोई विचार नहीं उठता, झील परिपूर्ण मौन है, सन्नाटा है गहन, तब तुम्हारे संबंध जुड़ते हैं।

'देख्यो समझ विचार'। तीन शब्द सहजो प्रयोग कर रही है: दृष्टि, समझ और विचार। कुछ लोग विचार से पाने की कोशिश करते हैं। वे उपलब्ध नहीं हो पाते। दार्शनिक बन जाते हैं। फिलासफी पैदा हो जाती है। बड़ा तत्त्व का ऊहापोह करते हैं। उनसे अगर तुम विचार की बात करो तो वे विचार का बड़ा फैलाव खड़ा कर देते हैं। लेकिन उनके विचार के जाल में परमात्मा की मछली कभी फँसती नहीं। जाल उनका कितना ही बड़ा हो मछली कभी पकड़ में नहीं आती।

फिर कुछ लोग हैं जो समझदारी से उसे पाने की कोशिश करते हैं। समझ आती है जीवन के अनुभव से। जीवन के अनंत अनुभव हैं। उन सारे अनुभवों का जो निचोड़ है उसका नाम समझ है। जवान आदमी परमात्मा को विचार से पाना चाहता है। बूढ़े समझदारी से। वो कहते हैं, हमने जीवन देखा है। मगर जीवन तो छाया है। छाया का अनुभव भी सत्य तक कैसे ले जाएगा? विचार से तो मुक्त होना ही है, समझ से भी मुक्त होना है। विचार पढ़ने-लिखने से आ जाते हैं। इसलिए विश्वविद्यालय से जब कोई लौटता है तो बड़े विचारों से भरा होता है। बूढ़े उस पर हँसते हैं। वो कहते हैं—थोड़ा ठहरो, जरा जीवन को देखो, तब [illegible] चलेगा!

मैंने सुना है कि दिल्ली से कृषिशास्त्र में एक व्यक्ति को डॉक्ट्रेट की उपाधि मिली। उपाधि के अंतिम परीक्षण के लिए उसे देहात भेजा गया--एक किसान के खेत का पूरा विवरण बनाने के लिए, ताकि पता चल जाए कि व्यावहारिक भी है उसका ज्ञान या नहीं। तो उसने और सब विवरण तो बना लिया। कितने झाड़ हैं, कितनी पैदावार है, कितनी जमीन एकड़ है, कितने एकड़ पर कितनी पैदावार होती है, कितना बीज बोया जाता है, कितनी फसल आती है, सब आँकड़े बिठा

लिए। एक चीज उसकी समझ में नहीं आ रही थी। और किसान उसके ढंग से हँस रहा था, और वो उसको कोई सहायता भी नहीं दे रहा था। वो कह रहा था कि तुम खुद ही जानकार हो। झाड़ को उसने देखकर कहा, कि इस झाड़ की हालत ऐसी है कि मुझे लगता है इसमें इस साल सेव लगेंगे नहीं। किसान ने कहा कि ये तो मुझे भी पक्का है कि सेव इसमें नहीं लगेंगे। क्योंकि ये झाड़ सेव का है ही नहीं। ऐसा उसकी चीजों पर वो हँस रहा था। झोंपड़े में एक बकरा था––बूढ़ा बकरा, जिसको दाढ़ी भी उग आयी थी। ये युवक कभी विश्वविद्यालय को छोड़ के बाहर तो गया नहीं था। कृषिशास्त्र भी किताब से सीखा था। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ही जिंदगी गँवायी थी। इसमें ये जानवर इसकी कुछ पहचान में न आया। और दाढ़ी .... और .... तो इसने कहा कि ये कौन है? तो उस किसान ने कहा, अब आप ही बताओ कि ये कौन है! आप जानकार हो! हम तो गरीब किसान, हम क्या जानें!

उसने तार किया विश्वविद्यालय को। विवरण लिखा कि बूढ़ा है, दाढ़ी है; कौन है, खबर करो। तो उधर से खबर आयी कि मूरख, वो किसान है। उसको भी नहीं पहचान पा रहा था। दाढ़ी है .... बूढ़ा है .... तो वहाँ से जो खबर रजिस्ट्रार ने दी, उसने सोचा कि अब ये किसान को ही नहीं समझ पा रहा है, हद हो गयी!

एक जिंदगी है किताब की। एक जिंदगी है जीवन के अनुभव की। किताब से विचार मिल सकते हैं, समझ नहीं मिलती। समझ तो जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव से मिलती है। वही नॉलेज और विज़डम का फर्क है। विचार और समझ। लेकिन सहजो कहती है, अकेली समझ से अगर वो मिलता होता तो सभी बूढ़ों को मिल जाता। अगर विचार से मिलता होता तो सभी विचारकों को मिल गया होता। लेकिन न तो विचारकों को मिलता दिखता है––जवानों को मिलता दिखता है, न बूढ़ों को मिलता दिखता है। तब फिर कोई एक और तीसरी चीज चाहिए।... 'देख्यो, समझ विचार।' विचार का भी उपयोग किया, समझ का भी उपयोग किया, लेकिन दोनों का उपयोग देखने के लिए किया।

.... 'देख्यो समझ विचार। सद्‌गुरु ने आँखें दयीं, निस्चै कियो निहार।' तो सद्‌गुरु न तो विचार देता; या अगर विचार देता है, तो इसीलिए देता है कि तुम्हारी बंद आँखें खुलें। न सतगुरु समझ देता; अगर समझ भी देता है, तो इसी सहारे के लिए देता है कि तुम्हारी आँखें खुलें। लेकिन मौलिक बात है, आँख खुले।

संसार को देखने की एक आँख है, परमात्मा को देखने की दूसरी आँख है। तो तुम कितने ही कुशल हो जाओ संसार को समझने और जानने में, उसी आँख से

तुम परमात्मा को न जान सकोगे। वो आयाम अलग है। और आँख खुले तो ही कुछ हो सकता है। आँख कैसे खुलेगी? संसार से नकारात्मक सहारा मिल सकता है। संसार से असफलता मिल सकती है, विषाद मिल सकता है, दुःख मिल सकता है। दुःख, विषाद, असफलता के कारण तुम्हारे मन में एक आकांक्षा पैदा हो सकती है, कि संसार के पार जो है उसे मैं खोजूँ। बस इतना ही संसार से मिल सकता है। विचार से तुम्हें संसार के प्रति संदेह मिल सकता है, परमात्मा के प्रति श्रद्धा न मिलेगी। लेकिन संसार के प्रति संदेह आ जाए तो परमात्मा की तरफ श्रद्धा में जाने में सुगमता हो जाएगी, सुविधा हो जाएगी। कम से कम व्यर्थ से छुटकारा हुआ, तो सार्थक के लिए जगह बन जाती है। जैसे किसीको नया बगीचा लगाना है तो पहले वो घास-पात उखाड़ता है। व्यर्थ के झाड़-झंखाड़ को उखाड़ता है। दो-चार फीट जमीन खोद के व्यर्थ की जड़ें जो हैं उनको निकाल फेंकता है। इसको फेंक देने से कोई बगीचा नहीं लग जाता है। लेकिन बगीचे लगने की सुविधा बन जाती है। अगर इसको ही तुम लगाए रखो, तो तुम बगीचा बो भी दो तो भी नष्ट हो जाएगा, क्योंकि गलत को बढ़ने की बड़ी क्षमता होती है। सही को गलत हमेशा दबा लेता है। अगर तुमने घास-पात छोड़ दिया और बीज तुमने बो दिये फूलों के, तो फूलों के बीज कहाँ खो जाएँगे पता न चलेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक आदमी ने मकान लिया। नसरुद्दीन का बगीचा बड़ा सुंदर था। उस आदमी को भी मन में हुआ, वो भी बगीचा लगाए। उसने पूछा नसरुद्दीन से कि मैंने बीज बो दिये हैं, अब बीज में से अंकुर भी आ गये हैं और घास-पात भी उग आया है। तो मैं कैसे पहचानूँ कि कौन कौन है? घास-पात क्या है, और बीज क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, सरल तरकीब है। दोनों को उखाड़ लो, जो फिर से उग आए वो घास-पात, जो फिर न उगे समझ लेना कि असली था, बीज था। घास-पात को बोना नहीं पड़ता, वो अपने आप उगता है। दोनों उखाड़ लो। तुम्हें पक्का पता चल जाएगा, कौन कौन है? बगीचा तैयार करना हो तो नकारात्मक तैयारी है––घास-पात उखाड़ दो, जड़ें निकाल दो, मिट्टी साफ कर लो। पर यही बगीचा तैयार नहीं हो गया। ये बगीचा तैयार होने की शुरुआत है। बीज बोने पड़ेंगे।

संसार के प्रति संदेह आ जाए इतना विचार और समझ से हो सकता है, बस। इतना हो जाए तो भी सौभाग्य है। क्योंकि सौ में निन्यानबे को तो इतना भी नहीं हो पाता। कई बार तो ऐसा दिखायी पड़ता है कि समझ लोगों को और भटका देती है। जवान तो जवान, बूढ़े और भी संसार में ग्रस्त हो जाते हैं। जवान में तो

थोड़ा सा संन्यास का भाव भी होता है, बूढ़े में वो भी नहीं बचता। क्योंकि मौत इतनी जोर से करीब आती है, वो सोचता है : दो दिन और बचे हैं, भोग लूं; चार दिन और बचे हैं... अब कहाँ परमात्मा...? देखेंगे फिर... जिंदगी तो गयी... इतने दिन और थोड़ा सुख मिलता है, वो और भोग लें। समझदारों की नासमझी का हिसाब नहीं। कभी-कभी जवान तो हिम्मत करके निकल जाता है संन्यास के पथ पर, बूढ़े नहीं हिम्मत कर पाते।

इसलिए तुम चकित होओगे कि संसार में जो बड़े संन्यासी हुए वो सब जवान घरों... जब निकले थे तो जवान थे। बुद्ध, महावीर जवान थे। तुमने बुद्ध और महावीर के मुकाबले कोई बूढ़ों को कभी संन्यासी होते देखा? तुम एक नाम न गिना सकोगे। बूढ़े तो इतने ज्यादा संसार में अनुभवी हो जाते हैं कि उनका अनुभव ही उन्हें डुबा देता है। तो न तो विचार से कोई पहुँचता, न कोई अनुभव से पहुँचता। संसार का अनुभव और विचार दोनों ही व्यर्थ हैं। हाँ, इतना ही उपयोग हो सकता है कि दोनों से तुम्हें पता चल जाए कि कोई आँख तुम्हारे भीतर बंद पड़ी है, कोई तीसरा नेत्र बंद पड़ा है, वो खुले तो शायद परमात्मा की छबि का कोई अनुभव हो सके, तो शायद सत्य से कोई संबंध-सेतु बन जाए।

'सतगुरु ने आँखें दयीं' : सतगुरु विचार नहीं देता। न समझ देता है। सतगुरु देखने की क्षमता देता है, दृष्टि देता है। सतगुरु आँख देता है। कैसे देता है आँख? ये थोड़ा सूक्ष्म, नाजुक है। सतगुरु तुम्हें कैसे आँख देता है? सतगुरु पहले तो तुम्हें अपनी आँख से देखने की सुविधाएँ देता है। जैसे कोई छोटे बच्चे को अपने कंधे पर बिठा ले और कहे, कि देख। कंधे पर बैठ के बच्चा दूर तक देख पाता है। नीचे खड़ा हो जाता है, उसे कुछ दिखायी नहीं पड़ता। कंधे पर बैठ जाता है तो दूर तक देख लेता है। सतगुरु पहले तो तुम्हें कंधे पर बिठा के अपनी आँख से देखने के कुछ मौके देता है। वो अपनी आँख तुम्हारे सामने रख देता है, कि जरा इससे भी झाँको। जैसे मैं तुमसे जो बातें कर रहा हूँ, वो तुम्हें कोई विचार देने को नहीं कर रहा हूँ। विचार देने से क्या होगा? तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा पहले ही हैं। जो मैं तुमसे कह रहा हूँ, वो इसलिए कह रहा हूँ ताकि तुम जरा मेरी आँख से भी देखो। ये भी एक आँख है। ऐसे भी देखा जा सकता है। तुम्हें झलक मेरी आँख से मिल जाए तो तुम्हारी अपनी आँख में एक स्फुरणा शुरू हो जाएगी। एक बार तुम किसी की आँख से देख लो--तो दूसरे की आँख तुम्हारी नहीं हो सकती--लेकिन दूसरे की आँख की प्रतीति में तुम्हारी अपनी आँख खुलने का शुभारंभ हो जाता है।

ऐसा ही समझो कि बिजली चमक गयी। अँधेरी रात थी। एक क्षण को चमकी बिजली, लेकिन उस क्षण में तुम्हें सब दिखायी पड़ गया है--रास्ता, वृक्ष, पहाड़-पर्वत। अँधेरा घनघोर हो गया फिर। लेकिन अब तुम्हें पता है, कि रास्ता है। टटोलना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा, गिरने का भय है, लेकिन रास्ता कम से कम है। गुरु की आँख से देखने से एक श्रद्धा उमगती है, कि रास्ता है। गुरु के पास होने से धीरे-धीरे उसकी सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भरती है और तुम्हें अहसास होना शुरू होता है : जो इसको हुआ वो हमें भी हो सकता है। जो एक व्यक्ति के लिए संभव हुआ, वह सबके लिए संभव है।

बुद्ध या महावीर या कृष्ण या सहजो के पास उनके जीवन का आनंद संक्रामक हो जाएगा। कभी-कभी अनजाने भी वो तुम्हें हिला देंगे, जगा देंगे। तुम जरा सी पलक खोल के देख लोगे, तुम्हें भरोसा आने लगेगा। छोटा बच्चा चलता है। माँ उसे हाथ का सहारा दे देती है। चलना तो छोटे बच्चे को पड़ता है। लेकिन सहारे की वजह से आश्वासन आ जाता है। सोचता है, अब गिरने वाला नहीं हूँ, माँ साथ है। फिर भी गिरेगा, कई बार गिरेगा। लेकिन हर बार गिरने के बाद जब उठेगा तो उसकी गिरने की संभावना कम होती जाएगी। और माँ उसे आश्वासन दिये जा रही है कि चलो, घबड़ाओ मत। जैसे मैं चलती हूँ, तुम भी चल सकोगे। गुरु ऐसे हाथ को सहारा देता है। जानता है कि क्षमता तुम्हारे भीतर छिपी है, थोड़े से प्रयोग की जरूरत है। तुम शायद घबड़ा गये हो। जन्मों-जन्मों से तुमने वो आँख खोल के नहीं देखी जिससे परमात्मा दिखता है। तुम शायद भूल ही गये हो। शायद आज अचानक कोई तुम्हें याद भी दिलाए तो तुम्हें याद नहीं आता। लेकिन किसी के सान्निध्य में, सत्संग में, कभी न कभी तुम्हारे भीतर भी उस केंद्र पर चोट पड़ने लगती है। सतत चोट की जरूरत है। इसलिए सत्संग एक सतत प्रक्रिया है।

'सतगुरु ने आँखें दयीं, निस्चै कियो निहार।'

मन से तो सदा संदेह ही जाने जाते हैं। विचार... विचार... विचार... निश्चित कुछ भी नहीं होता। जिनको तुम निश्चित विचार कहते हो, उनमें भी तुम पीछे संदेह को छिपा पाओगे। अक्सर तो तुम इसीलिए कहते हो कि मेरा विचार बिलकुल दृढ़ है, जब तुम ये कहते हो तब तुमको भी पता है कि दृढ़ तुम इसीलिए कह रहे हो कि तुम्हें खुद ही शक है। तुम मरने-मारने को उतारू हो जाते हो अपने विचार के लिए। वो भी इसी की खबर है कि तुम भीतर से डाँवाडोल हो। निश्चय बड़ी और बात है। निश्चय का मतलब है, जहाँ संदेह है ही नहीं। और संदेह वहीं मिटता है जहाँ विचार भी मिट जाते हैं। 'निस्चै कियो निहार'--वहाँ विचार

नहीं होता। वहाँ निहार। वहाँ दिखायी पड़ता है। 'दर्शन' होता है। सोचते थोड़े ही हो। एक अंधा आदमी सोचता है कि प्रकाश है। आँखवाला निहारता है। 'सतगुरु ने आँखें दयीं, निस्चै कियो निहार।' और जहाँ निहार है, वहाँ निश्चय है। जहाँ विचार है, वहां विभ्रम है। विचार के पीछे ही चलती रहती है अनिश्चय की धारा। निहार चाहिए। परमात्मा को कोई सोचता नहीं। या तो तुम परमात्मा को देख लेते हो, या नहीं देखते। मान्यता का सवाल नहीं है। 'दर्शन' की बात है—साक्षात्कार!

'सहजो हरि बहुरंग है, वही प्रगट वहि गूप।' वही तो प्रगट है, वही गुप्त है। 'सहजो हरि बहुरंग है'—सभी रंग उसी के हैं। और फिर भी कोई रंग उसका नहीं है। 'जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप।' बड़े प्यारे वचन हैं। 'जल पाले में भेद ना'—जल में और ओस में क्या कोई भेद है? जल में और पाला छा जाए उसमें, कोई भेद है? कोई भी भेद नहीं। 'ज्यों सूरज अरु धूप'— जैसे सूरज में और सूरज की धूप में कोई भेद है! ऐसे परमात्मा में और परमात्मा की सृष्टि में क्या कोई भेद है? 'ज्यों सूरज अरु धूप।' वही है। वही फैला है। सूरज में वही संग्रहीभूत है, केंद्रित है। धूप में वही फैला है, विस्तीर्ण है। ये धूप का जो चँदोवा है उसी का फैलाव है। ये जो विराट अस्तित्व दिखायी पड़ रहा है, ये उसीका फैलाव है। स्रष्टा और सृष्टि में क्या कोई भेद है? नर्तक और नृत्य में क्या कोई भेद है? गायक और गीत में क्या कोई भेद है? एक प्रगट है, एक गुप्त। गीत प्रगट है, गायक गुप्त है। नृत्य प्रगट है, नर्तक गुप्त है। सृष्टि प्रगट है, स्रष्टा गुप्त है। पर छिपा है कण-कण में। 'सहजो हरि बहुरंग है, वही प्रगट वहि गूप। जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप॥'

'चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।
छूटे वाद-विवाद सब, भयी सहज गति तेह॥'

'चरनदास गुरु की दया।' जिन्होंने कि जाना है, उन्होंने सदा यही कहा है कि वो अपने प्रयास से नहीं जाना, प्रसाद से जाना है। जानने वालों को जानते ही ये पता चलता है कि हमारा प्रयास तो कितना छोटा है—बूँद सागर होने चली है! हमारे प्रयास से ही अगर होता हो, तो कभी हो ही न सकेगा।

एक बात ठीक से समझ लेना।

अगर तुम्हारे प्रयास से ही परमात्मा मिलता हो, तो कभी न मिल सकेगा। तुम तो प्रयास भी करोगे तो गलत करोगे। तुम गलत हो। तुम जाओगे भी तो गलत राह में जाओगे। तुम्हारे भीतर गलत वासना भरी है। तुम जो भी करोगे वो गलत होगा, क्योंकि तुम अभी गलत हो। गलत से सही तो होगा भी कैसे? अगर

गलत से सही हो जाए, तब तो फिर सही होने की कोई जरूरत ही न रही। तो मनुष्य जो भी करेगा उससे तो पा न सकेगा। तो दो उपाय हैं। या तो परमात्मा की अनुकंपा हो। लेकिन हमें परमात्मा का भी पता नहीं है। हमें उसकी अनुकंपा भी बरस रही हो, तो उसका हम कैसे उपयोग करें इसका भी पता नहीं है। वो दिया भी जला दे हमारे पास, तो भी हम ऐसे मूढ़ हैं कि हम आँख बंद किये खड़े रहेंगे। वो हमारे द्वार पर दस्तक दे, तो हम कहेंगे होगा हवा का झोंका। हम उसे पहचान भी न सकेंगे।

परमात्मा की अनुकंपा तो हम पर बरस ही रही है। पर हम पहचान नहीं पाते, हम पकड़ नहीं पाते। जैसे मछली सागर को नहीं देख पायी, ऐसा हम उसे नहीं देख पाते। इसलिए गुरु महत्त्वपूर्ण हो गया धर्म की खोज में। क्योंकि गुरु का अर्थ है, जिसे हम देख पाते हैं। गुरु चमत्कार है एक अर्थ में। चमत्कार इस अर्थ में है कि वो तुम्हारे जैसा है, और तुम्हारे जैसा नहीं है। परमात्मा तुमसे बिलकुल अन्यथा है, सेतु नहीं बनता। वो अप्रगट है, तुम प्रगट हो। वो असीम है, तुम सीमित हो। वो निर्विचार है, तुम विचार हो। वो सब कहीं है, तुम कहीं-कहीं हो। ताल-मेल नहीं बैठता। वो इतना विराट, तुम इतने अणु, कैसे संबंध जुड़े? बूँद कैसे सागर से मिले? गुरु के साथ एक चमत्कार घटता है। वो तुम जैसा है, और तुम जैसा नहीं है। एक तरफ से गुरु बूँद है और एक तरफ से सागर। इसलिए गुरु इस जगत में सबसे अनूठी घटना है। एक तरफ से मनुष्य है, एक तरफ से मनुष्य नहीं है। एक तरफ से उसकी दीवालें हैं, ठीक तुम जैसी, और दूसरी तरफ से उसके द्वार-दरवाजे बिल्कुल खुले हैं—खुला आकाश है।

गुरु से संबंध बन सकता है। और गुरु के सहारे धीरे-धीरे परमात्मा से संबंध बन सकता है। इसलिए सहजो कहती है कि हरि को चाहे भुला भी दूं, गुरु को न भुला सकूँगी। क्योंकि उसके बिना हरि से कोई संबंध ही न होता। 'चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।' संदेह जाता भी नहीं अपने सोचने से; तुम सोच-सोच के कितनी ही कोशिश करो! तुम्हारा सोचना ऐसा ही है जैसे अपने ही जूते के बंद को पकड़ कर खुद को उठाना। चेष्टा कितनी करो, थोड़ा उछल-कूद भी कर ले सकते हो, लेकिन फिर पाओगे जमीन पर ही खड़े हो। कोई और हाथ चाहिए सहारे के लिए जो तुम्हें उठा ले। और कोई ऐसा हाथ चाहिए जो तुम जैसा हो, जिसे तुम पहचान भी सको—और फिर भी विराट का हो, जिसे तुम पहचान भी लो लेकिन पूरा न पहचान पाओ। थोड़ा सा पहचान पाओ, थोड़ा सा न पहचान पाओ।

गुरु एक रहस्य है। उसे तुम समझते भी हो और समझ भी नहीं पाते। इसलिए जो सोचते हैं उन्होंने गुरु को समझ लिया, वो भी गलती में हैं; और जो सोचते हैं वो गुरु को बिल्कुल नहीं समझ पाए, वो भी गलती में हैं। संबंध तो उनका बनेगा गुरु से जिन्हें लगता है, थोड़ा सा समझ में आता है और थोड़ा सा समझ के बाहर रह जाता है। वो जो थोड़ा सा समझ में आता है, तुम्हें आश्वस्त करेगा। वो जो थोड़ा समझ में नहीं आता, वो तुम्हें तुम्हारे पार ले जाएगा, उससे अतिक्रमण होगा।

'चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।' दृष्टि मिली। आँखें खुलीं। गुरु की आँख से पहचाना। संसार खो गया, सत्य दिखायी पड़ा। फिर तो अपनी ही आँख काम आने लगती है। एक दफा शुरू हो जाए। एक बार कोई पहचान करवा दे। 'छूटे वाद-विवाद सब'--फिर न कोई वाद रहा, न कोई बिवाद रहा। न कोई नास्तिकता, न कोई आस्तिकता। न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान। 'भयी सहज गति तेह'--और उस दिन से गति सहज हो गयी। उसके पहले सब उलटा-सुलटा था, उससे पहले सब उलझा-उलझा था। अब गति सहज हो गयी। अब कुछ करना नहीं पड़ता। अब जो भी हो रहा है वही पूजा है, वही प्रार्थना है। 'जो बोलूँ सो हरि कथा', कबीर ने कहा है, 'खाऊँ-पिऊँ सो सेवा'--मैं खाता-पीता हूँ, वो भी परमात्मा की ही सेवा है अब। अब वही है भीतर, वही बाहर है--'चलूँ-फिरूँ परिकरमा'--अब कोई मंदिर-मस्जिद नहीं जाता उसका चक्कर लगाने। अब तो ऐसे ही चलता-फिरता हूँ, वो भी उसीकी परिक्रमा है।

'छूटे वाद-विवाद सब, भयी सहज गति तेह'।

सहज गति को ठीक से समझ लो, क्योंकि सहजता धर्म का आखिरी फूल है। सहज समाधि। तुम संसार में हो, वहाँ भी सहज नहीं हो। वहाँ भी बड़े जटिल हो। कुछ हो, कुछ दिखलाते हो। कुछ हो, कुछ समझाते हो। मंदिर में जाते हो, वहाँ भी सहज नहीं हो। वहाँ भी झूठे आँसू बहाते हो। वहाँ भी दिखावा साथ ले जाते हो। वहाँ भी पूजा-प्रार्थना करते हो, उसमें भी कोई सचाई नहीं है, सहजता नहीं है। सब तरफ पाखंड है। सब तरफ धोखा-धड़ी। सब तरफ तुम कोशिश कर रहे हो कुछ बतलाने की, जो तुम नहीं हो। सहजता का अर्थ है, तुम जैसे हो वैसे हो। तुम अपने होने से परिपूर्ण राजी हो गये। अब तो न तुम कुछ छिपाते, न कुछ तुम दिखावा करते। अच्छे हो अच्छे, बुरे हो बुरे। सुंदर हो सुंदर, असुंदर हो असुंदर। जैसे हो उसके साथ एक तारतम्य बैठ गया। क्योंकि तुमने जान लिया कि सहज होना ही परमात्मा के संग होना है। जितने असहज होओगे उतने ही उससे दूर पड़ जाओगे। जितनी चेष्टा करोगे कुछ होने की, उतने ही वास्तविक

होने से भटक जाओगे। लाओत्से कहता है, 'जो अतिसाधारण हैं उनसे असाधारण और कोई भी नहीं है।' जो इतने साधारण हैं कि उन्हें पता ही नहीं कि साधारण हैं कि असाधारण हैं।

जेन फकीर बोकूजू से कोई पूछता है कि अब ज्ञान उपलब्ध हो जाने के बाद तुम्हारी साधना क्या है? तो बोकूजू ने कहा, जंगल से लकड़ियाँ काट के लाता हूँ, कुएँ से पानी भरता हूँ। भूख लगती है तब भोजन करता हूँ। नींद आती है तब सो जाता हूँ। बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। पर इतना काफी है। ये है सहज गति। तुम्हें कठिन होगा। तुम्हें अड़चन होगी। क्योंकि तुम्हारे अहंकार के कारण तुमने अपने महात्माओं के आसपास भी बड़ी महिमा के जाल रच रखे हैं। वो तुम्हारे अहंकार के कारण है। उनके हाथ से चमत्कार होने चाहिए, तावीज निक-लने चाहिए। तुम अपने महात्माओं को भी मदारी बनाये बिना नहीं मानते। और उन्हें अगर महात्मा बनना है तुम्हारा, तो मदारी बनने को राजी होना पड़ता है। एक साँठ-गाँठ है। तुम कहते हो जब तक मदारी न होओगे तब तक हम महात्मा न मानेंगे। अगर उनको अपने को मनवाना है तो मदारी बनना पड़ता है। तब तुम दोनों के बीच एक तारतम्य बैठ जाता है। तुम तो झूठे हो, तुम्हारे गुरु जिनको बनना हो उन्हें भी तुम्हारी शर्तें मनवाने को तुम राजी कर लेते हो। तुम तो पाखंडी हो, तुम्हारे गुरु भी तुम पाखंडी कर लेते हो। इस जगत में एक बड़ा अचंभा ये है कि गुरु के पीछे तो कभी-कभी शिष्य चलते हैं, अधिकतर तो गुरु शिष्य के पीछे चलते हैं। तुम नियम निर्धारण करते हो कि गुरु कौन व्यवहार करे, कैसा आचरण करे, कब उठे, कब सोए, क्या खाए, क्या पिये! तुम निर्धारण करते हो। श्रावक तय करते हैं मुनि का आचरण।

एक मुनि--जैन मुनि--मुझसे मिलने आना चाहते थे। उन्होंने पत्र भेजा कि बड़ी आकांक्षा है, लेकिन श्रावक नहीं आने देते। श्रावक तुम्हें नहीं आने देते? हद हो गयी! तुम गुरु हो? वो शिष्य हैं? शिष्य नहीं आने देते गुरु को! क्या कारण होगा? मैंने उन्हें पुछवाया कि गौर से खोजना, शिष्य तुम्हें नहीं रोक सकते, कारण कुछ और होगा। शर्त है एक। और शर्त वो है कि तुम हमारी मान के चलोगे तो हम तुम्हारी मान के चलेंगे। तुम जब तक हमारा अनुसरण करोगे, हम तुम्हारे श्रावक हैं। जिस दिन तुमने हमारा अनुसरण छोड़ा, बात खतम हुई। और तुम कमजोर हो। इतने सस्ते पर गुरु बने बैठे हो। तुम ध्यान सीखने मेरे पास आना चाहते हो। ध्यान की खोज के लिए भी तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है? तुम्हारे शिष्य कहते हैं, नहीं। क्योंकि शिष्यों को लगता है--हमारा गुरु और कहीं

ध्यान सीखने जाए, तो फिर हम इस गुरु को गुरु मान के क्या कर रहे हैं ? तो शिष्यों के सामने गुरु को बताना पड़ता है कि मैं ध्यानी हूँ; तुम्हें ध्यान सिखाऊँगा। और उसे ध्यान का कुछ पता नहीं है। और इतना भी साहस नहीं है, इतनी भी निष्ठा नहीं है जीवन की, कि ध्यान की खोज में जाए और जरूरत पड़े तो ध्यान की खोज के लिए 'गुरुडॅम' भी छोड़ दे। संसार को तुम सिखाते हो, त्याग करो-- धन का, दौलत का। तुम क्या पकड़े हो ?

मैंने उनको कहा कि छोड़ दो। ध्यान बड़ा है। अनुयायी फिर मिल जाएँगे। और न मिले तो हर्ज क्या है ? खबर आयी कि आप को पता नहीं है कि मैं बचपन से संन्यासी हो गया हूँ। न तो पढ़ा-लिखा हूँ। न रोटी-रोजी कमा सकता हूँ। न चालीस साल से कोई काम किया है। अगर आज छोड़ दूं तो फिर मैं मुश्किल में पड़ जाऊँगा। तो फिर ये मामला खाने-पीने, व्यवस्था-आयोजन का हुआ। न तुम गुरु हो, न वो शिष्य हैं। वो जानते हैं कि तुम्हारी रोटी वो दे रहे हैं, इसलिए तुम्हारे मालिक हैं। और तुम भी जानते हो कि वो तुम्हें रोटी दे रहे हैं, इसलिए तुम चाहे ऊपर बैठे रहो, वो दिखावा है। दूसरों को तुम समझा रहे हो—संसार छोड़ दो। तुम इतना साहस नहीं कर सकते कि इतनी सुरक्षा छोड़ दो! ठीक है, गड्ढे खोदने पड़ेंगे सड़क पर, रोटी तो कमा ही लोगे। इतने लोग कमा रहे हैं। लेकिन वो भी हिम्मत नहीं रही है। तुम्हारे गुरु नपुंसक हो जाते हैं। कोई बल नहीं रह जाता। इतने निर्बल हो जाते हैं। तुम उनको ऊपर बिठाए हो, लेकिन वो सिर्फ गुड्डियाँ हैं। धागे तुम्हारे हाथ में हैं। तुम जैसा नचाओ वैसे नाचते हैं। तुम जो बुलवाओ वैसा बोलते हैं।

सहज गति का अर्थ है, किसी के सामने अब कोई दिखावा न रहा। हम जो हैं उससे हम राजी हैं। और जिस दिन तुम अपने होने से राजी हो, और अपने स्वभाव में लीन हो गये, उस दिन तुम परमात्मा में लीन हो गये। उस दिन मिल गया मछली को सागर। सागर तो पास ही था, बस लीन होने की बात थी। मछली अपने को जान ले तो सागर को जान लिया। क्योंकि मछली वस्तुतः सागर है। तुम जितने सहज हो जाओ उतने ही सिद्ध होने लगते हो। सहजता सिद्धि है। लेकिन तुम महिमामंडित करते हो। चमत्कार होना चाहिए! मेरे पास आ जाते हैं लोग, वो कहते हैं, अगर आप चमत्कार करें तो लाखों लोग आ जाएँ! उनको मैं करूँगा क्या, लाखों लोगों को ? मैं कोई मदारी नहीं हूँ। नहीं, वो कहते हैं, हम तो इस-लिए कहते हैं कि उससे लाखों लोगों को लाभ होगा। लाखों लोगों को लाभ होगा होगा तब, हानि तो पहले मुझे हो जाएगी। और अगर मुझे हानि हो गयी तो

उनको मुझसे लाभ कैसे होगा ?

स्वाभाविक है कि अगर तुम सहजता को उपलब्ध हो जाओ तो तुमसे पागल लोग प्रभावित न होंगे। तुमसे केवल वे ही लोग प्रभावित होंगे जो स्वयं भी सहजता की ओर गतिमान हो रहे हैं। पागलों के प्रभावित होने के अपने ढंग हैं। उनके पागल मन को तृप्ति मिलनी चाहिए तब वो प्रभावित होते हैं।

ऐसा बहुत बार हुआ। मैं मुल्क में यात्रा करता रहता था तो रोज ऐसे पागलों से मिलना हो जाता। मैं भी उनको इनकार करूँ तो भी वो मानने को राजी नहीं। एक आदमी ने मेरे पैर पकड़ लिए, उसने कहा, आप एक गिलास पानी अपने हाथ से मुझे दे दें। मुझे पक्का भरोसा है कि आपके पानी से मेरा पेट-दर्द, आज कोई सात साल-आठ साल से चलता है, वो ठीक हो जाएगा। मैंने कहा, पहले तुम समझ लो, मुझे पेट-दर्द होता है! मैं भी (पानी) हाथ से पानी पीता हूँ, उससे ठीक नहीं होता। तुम्हारा कैसे ठीक होगा ? मुझे भी जरूरत पड़ती है तो डॉक्टर को बुलाना पड़ता है। इसलिए तुम ये फिकिर छोड़ो। पर जितना मैंने इनकार किया उतना ही उसे लगा कि मैं आशीर्वाद देना नहीं चाहता। उसने तो और पैर पकड़ लिए। उसने कहा, प्राण जाएँ लेकिन अब मैं यहाँ से हट नहीं सकता। मुझे पक्का है, आप जितना इनकार कर रहे हैं उतना मुझे भरोसा आ रहा है, कि जरूर कोई बात है।

मैंने देखा कि ये तो उल्टा ही हुआ जा रहा है। इनका भरोसा और बढ़ता जा रहा है। और भरोसे में खतरा है। कहीं पानी पीने से ठीक हो गया, तो खतरा है! न हो तो कोई हर्जा नहीं है, बात खतम हो गयी। तुम्हारा दर्द तुम लिए, हम अपने घर गये। लेकिन अगर कहीं ठीक हो गया, जिसका डर है। तो मैंने कहा, अब इसको दे ही देना उचित है। उसको मैंने पानी दिया। जैसा डर था वैसा हुआ। पानी पीते ही वो बोला, अरे! दर्द गया!

अब ये आदमी पागल है। इसका दर्द झूठ है। ये मैं नहीं कह रहा हूँ कि ये तकलीफ नहीं पा रहा। ये आठ साल से तकलीफ पा रहा है। लेकिन तकलीफ इसकी काल्पनिक है।

फिर तो दो साल बाद जब उस गाँव में मैं गया तो पता चला, उसने तो गजब कर दिया है। वो तो जिस गिलास में मैंने उसको पानी पीने दिया था, वो गिलास उसने सँभाल के रख लिया। वो दूसरों को उसी गिलास से पानी देने लगा। और उसने मुझे बताया कि आपकी कृपा से न मालूम कितनों को लाभ हो गया।

अब ये जो पागल मन है, पहले बीमारी पैदा करता है, फिर उसी पागलपन से इलाज भी पैदा कर लेता है। इसे कुछ का कुछ दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है।

अहंकार भीतर सारे रोग की जड़ है। मेरे पास लोग आते हैं, वो कहते हैं कि हमें आपके पास प्रकाश का मंडल दिखायी पड़ गया। तुम्हें कोई आँख की खराबी होगी! कोई धोखा-धड़ी हो गयी होगी! या तुम बहुत ज्यादा कलेंडर वगैरह में संतों की तस्वीरें देखते रहे होगे, जिनमें मंडल बना होता है। वो जरूरत से ज्यादा तुम्हारे मन में बैठ गया होगा। उसका प्रक्षेपण कर लिया होगा, मुझे क्षमा करो! वो कहते हैं, हम कैसे मानें? अपनी आँख से देखा है! तुम्हारी आँख अंधी है। तुम्हारे देखने का क्या भरोसा? लेकिन मैं उनको इनकार करूँ तो वो मानने को राजी नहीं होते। क्योंकि वे मेरे चरणों में तभी झुक सकते हैं जब उन्हें वो मंडल दिखायी पड़ जाए। वो उनके अहंकार की शर्त है। अगर मंडल दिखायी न पड़े, फिर चरणों में झुकने का क्या मतलब? वे मेरे शिष्य भी तभी हो सकते हैं जब उन्हें सिद्ध हो जाए कि मैं कोई साधारण गुरु नहीं हूँ--हाथ से राख झड़ती है, ताबीज निकलते हैं, स्विसमेड घड़ियाँ निकलती हैं—तब। तब उनके अहंकार को तृप्ति मिलेगी

पागलों की एक जमात है। ये पागलों की जमात अपने पागलपन को अपने गुरुओं पर भी आरोपित करती रहती है। उसको ही मैं गुरु कहता हूँ जो इस तरह के आरोपण न होने दे। तो ही तुम्हारा साथ दे पाएगा, तो ही तुम्हें संदेह के पार ले जा सकेगा। हालाँकि सुगम यही है, गुरु के लिए सुविधापूर्ण और कम्फर्टेबिल यही है कि तुम जो कहो, वह कहे बिलकुल ठीक। क्योंकि न उसे झंझट होती, न तुम्हें झंझट में पड़ना पड़ता है। दोनों एक झूठे सपने में सम्मिलित हो जाते हैं। तुम्हारा संसार तो झूठा है ही, तुमने सांसारिक मन से झूठे गुरु भी खड़े कर लिए हैं। और तुम इन्हीं झूठे गुरुओं से चाहते हो कि सत्य तक पहुँच जाओगे!

सहज को खोजना। परमात्मा सहज में छिपा है। वह बिलकुल सहज है। पौधों, पक्षियों, पशुओं, चाँद-तारों, पहाड़ों, झरनों जैसा सहज है। अगर तुम किसी सहज व्यक्ति को कहीं पा जाओ, तो उसका सत्संग मत छोड़ना। आभामंडल देखने की चिंता मत करना। न ही चमत्कारों की आकांक्षा करना।

'चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह। छूटे वाद-विवाद सब भयी सहज गति तेह।।' और सहज में गति हो गयी। तुम सहज हो जाओ, तुम सुंदर हो जाओगे। तुम सहज हो जाओ, तुम सत्य हो जाओगे। सहज शब्द को तुम परमात्मा का पर्यायवाची समझो। तुम्हारी असहजता कट जाए, सब रोग कटा, सब जाल कटे, संसार कटा। जिस दिन तुम सहज होओ उस दिन तुम्हारे जीवन में वो अमृत की वर्षा हो जाएगी: 'बिन घन परत फुहार'। 'मगन भयो मनवा तहाँ, दया निहार निहार।'

बस तुम सहज हो जाओ, फिर देर नहीं है। इधर तुम सहज हुए, उधर 'बिन दामिनि उजिआर अति'। फिर बिजली भी नहीं चमकती और प्रकाश ही प्रकाश है। स्रोतरहित प्रकाश है। कहीं से आता नहीं, सदा से है, ऐसा प्रकाश है। 'बिन घन परत फुहार'--आकाश में मेघ नहीं दिखायी पड़ते, और वर्षा होती है। अमृत झरता है। क्योंकि वह अमृत इस अस्तित्व का स्वभाव है। 'मगन भयो मनवा तहाँ'--और तब तुम नाच उठते हो मगन होकर, क्योंकि कोई दुःख शेष नहीं रह गया। दुःख था तुम्हारे अंधेपन में। दुःख था तुम्हारे अहंकार में, तुम्हारी असहजता में। गया। 'मगन भयो मनवा तहाँ, दया निहार निहार।' और अब अनुकंपा को देख-देखकर, निहार-निहारकर, सत्य को चारों तरफ देखकर नाचते हो। मगन हुए।

बिन घन परत फुहार।

आज इतना ही।

★ ★ ★

निस्चै कियो निहार

प्रवचन १०, प्रातः, दिनांक १०-१०-१९७५ : श्री रजनीश आश्रम, पूना

पहला प्रश्न : साधना की गति बेबूझ मालूम होती है। किसी क्षण में सब दौड़ व्यर्थ लगती है, साथ ही एक अपूर्व हल्कापन भी अनुभव होता है। लेकिन किसी अन्य क्षण में, उसी तीव्रता के साथ एहसास होता है कि मंजिल तो दूर अभी यात्रा भी शुरू नहीं हुई। क्या साधना ऐसे ही चलती है?

सत्य निकट भी है, निकट से भी निकटतम। और दूर भी है, दूर से भी दूरतम। पास है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव है। दूर है, क्योंकि पूरे अस्तित्व का स्वभाव है। बूंद सागर भी है, नहीं भी है। बूंद सागर है, क्योंकि जो बूंद में है वही विस्तीर्ण हो कर सागर में है। बूंद सागर नहीं भी है, क्योंकि बूंद की सीमा है, सागर की क्या सीमा?

साधना एक न एक दिन ऐसी जगह ले आती है, जहां लगता है सब मिल गया, और जहां साथ ही लगता है कुछ भी नहीं मिला। अपनी तरफ देखोगे, लगेगा सब पा लिया। सत्य की तरफ देखोगे, लगेगा अभी तो यात्रा शुरू भी नहीं हुई। और यह प्रतीति शुभ है। द्योतक है एक बहुत कीमती बिंदु पर पहुंच जाने की। जिन्हें लगे सब पा लिया, और दूसरी बात एहसास न हो कि कुछ भी नहीं पाया, उनका पाना अहंकार की ही पुष्टि है। जिन्हें लगे कुछ भी नहीं पाया, और साथ ही ऐसा न लगे कि सब कुछ पा लिया, उनकी यह प्रतीति अहंकार की विफलता ही है। अहंकार सफल होता है तो कहता है, सब पा लिया। विफल होता है तो कहता है, सब खो दिया। लेकिन अहंकार की भाषा या तो पाने की होती है, या खोने की होती है। दो में से एक को चुनता है अहंकार। निरअहंकार के क्षण में, जहां तुम शून्यवत् हो, पाना और खोना समानअर्थी हो जाते हैं। वहीं जीवन की सबसे बड़ी पहेली का अनुभव होता है।

ऐसी प्रतीति जब आए तो भयभीत मत होना। सौभाग्य का क्षण मानना। नाचना, अहोभाव से भरना। यात्रा शुरू भी नहीं हुई, ऐसा भी लगेगा। सुंदर है ऐसा लगना। क्योंकि परमात्मा की यात्रा शुरू कैसे हो सकती है? जिसकी भी शुरुआत है उसका तो अंत आ जाता है। परमात्मा की यात्रा की शुरुआत का तो अर्थ होगा कि तुम उसका अंत करने को उत्सुक हो। उसकी तो शुरुआत का अर्थ होगा कि तुमने उसकी सीमा बना दी। एक छोर मिल गया, दूसरा कभी मिल जाएगा। देर-अबेर की बात होगी। लेकिन परमात्मा को भी तुम माप डालोगे।

अगर ऐसा लगे कि पा ही लिया, तो तुमने कुछ पा लिया होगा जो परमात्मा नहीं हो सकता। जो तुम्हारी मुट्ठी में समा जाए, वो आकाश नहीं। जो तुम्हारी मुट्ठी में बंद हो जाए, तुम्हारे शब्द, तुम्हारे मन की सीमा में आ जाए, जो तुम्हारा अनुभव बन जाए, वो परमात्मा नहीं। वो तुम्हारी मन की ही कोई कल्पना और धारणा होगी। होंगे तुम्हारे मन की कल्पना के कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर। होंगे तुम्हारे सिद्धांतों की, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म की तत्त्वचर्चा, लेकिन वास्तविक परमात्मा नहीं। वास्तविक परमात्मा तो सदा ही मिला हुआ है। और कभी भी ऐसा नहीं होता कि प्रतीत हो कि पूरा मिल गया। उसका स्वाद तो मिलता है, क्षुधा कभी मिटती नहीं। और जैसे-जैसे क्षुधा भरती है वैसे-वैसे बढ़ती है। जैसे कोई आग में घी को डालता चला जाए। प्यास बुझती भी लगती है एक तरफ से, दूसरी तरफ से बढ़ती भी लगती है। इसीलिए तो परमात्मा का प्रेमी बड़ा पागल मालूम होता है। एक तरफ कहता है वो मिला ही हुआ है, और दूसरी तरफ कितना श्रम करता है उसे पाने का। सांसारिक व्यक्ति को लगता है कि यह बात तो अतर्क्य है। अगर मिला ही हुआ है, तो पाने की बातचीत बंद करो। और अगर मिला ही नहीं है, तो मिल न सकेगा। क्योंकि जो स्वभाव में नहीं है, उसे तुम कैसे पा सकोगे?

धार्मिक व्यक्ति सदा ही संसारियों को बावला मालूम पड़ा है। उसको पाने चलता है जिसको कहता है मिला है। उसको पाने चलता है जिसको कभी पूरा पाने का उपाय नहीं है। उस यात्रा पर निकलता है जो शुरू तो होती लगती है, लेकिन अंत कभी नहीं होती। ऐसा क्षण जब तुम्हें प्रतीत होने लगे और तुम्हारे चारों तरफ ऐसी भनक आने लगे, तब तुम दोनों बातों के साथ राजी हो जाना। चुनना मत। तुम कहना कि तू मिला भी हुआ है, और तुझे खोजना भी है।

अमरीका के बहुत बड़े विचारक अॅल्फ्रेड व्हाइटहेड ने कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण वचन लिखे हैं। उनमें से कुछ वचन मैं तुम्हें कहूँ। पहला वचन : कि धर्म ऐसी खोज है जो कभी पूरी नहीं होती। शुरू होती लगती है, पूरी होती नहीं लगती। धर्म एक ऐसी आशा है जो ध्रुवतारे की तरह आकाश में दूर टँगी रहती है। बुलाती है, लेकिन कभी हम उसके पास नहीं पहुँच पाते। धर्म समझ में आता मालूम पड़ता है, लेकिन जिनकी भी समझ में आ जाता है उन्हें ही लगता है कि समझना असंभव है। रहस्यमय! यही धर्म के रहस्य होने का अर्थ है। तुम उसे सुलझाने चलोगे, तुम सुलझ जाओगे उसे न सुलझा पाओगे। तुम हलके हो जाओगे। तुम बिलकुल निर्भार हो जाओगे। तुम परम आनंद में मगन हो नाच उठोगे। लेकिन, रहस्य रहस्य ही बना रहेगा।

और अगर तुम परेशान न हो तो मुझे कहने दो, कि जब तुमने यात्रा शुरू की थी रहस्य जितना था, उससे ज्यादा रहस्य उस दिन होगा जिस दिन तुम तो मिट जाओगे और खोजने वाला कोई न बचेगा; उस दिन रहस्य परिपूर्ण होकर प्रगट होगा। उस दिन रहस्य सब तरफ से बरस उठेगा। विज्ञान तो रहस्य को नष्ट करता है। जिस बात को हम जान लेते हैं--जान लिया, उसकी जिज्ञासा समाप्त हो गयी। धर्म, जिस बात को हम जान लेते हैं उसमें नये द्वार खोल देता है। जानने को एक द्वार सुलझा पाते हैं, दस नये द्वार खड़े हो जाते हैं। धर्म का वृक्ष, उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैलती ही चली जाती हैं--अनंत तक। मनुष्य प्रवेश तो करता है धर्म की पहेली में, बाहर लौटकर कभी नहीं आ पाता।

यह शुभ हो रहा है। ऐसी प्रतीति हो, उसे भी परमात्मा का प्रसाद मानना। और साधना ऐसे ही चलती है।

दूसरा प्रश्न : आपने कहा कि दर्शन में विचार बाधा है; और समझ भी बाधा हो सकती है। क्या दर्शन के लिए विचार और समझ का कोई भी उपयोग नहीं हो सकता?

विचार का इतना ही उपयोग है कि विचार की व्यर्थता समझ में आ जाए। समझ की इतनी ही समझदारी है कि समझ आ जाए कि समझ पर्याप्त नहीं। जैसे काँटे को हम काँटे से निकाल देते हैं ऐसे विचार को हम विचार से निकाल पाएँ, बस इतना पर्याप्त है। विचार से कोई सत्य तक नहीं पहुँचता। विचार से सत्य तक पहुँचने में बाधा पड़ती है। इसलिए अगर हम बाधा को हटा दें, तो कह सकते हैं एक अर्थ में कि विचार ने भी सहारा दिया। बाधा न रही, हट गया, उतना सहारा दिया।

जो साधारण विचारक हैं, वो विचार में ही उलझे रह जाते हैं। जो महाविचारक हैं, वो विचार से मुक्त हो जाते हैं। विचार जब गहरा प्रवेश करता है, तब जल्दी ही इस बात की प्रतीति होनी शुरू हो जाती है कि विचार से पहुँचना न हो सकेगा। सोचो, परमात्मा का तुम्हें कोई पता नहीं है। सत्य का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। जीवन क्या है, उसकी कोई प्रतीति नहीं है। सोचकर तुम करोगे क्या? सोचोगे कैसे? जिस सत्य का कोई पता नहीं है, उसे तुम सोचोगे कैसे? उधार शास्त्र, किन्हीं के कहे हुए वचन, उन्हीं को दोहराओगे। यह सोचना कहाँ होगा? यह तो पुनरुक्ति होगी। उसमें भी तुम नया कैसे जोड़ सकोगे? विचार तो मौलिक कभी होता नहीं। विचार तो सदा बासा और पुराना है। विचार नया होता ही नहीं। हो ही नहीं सकता। तुमसे अगर मैं कहूँ कि कोई एक ऐसी बात सोचकर

बताओ जो तुम जानते ही नहीं हो। तुम कैसे सोचोगे? सोचने के लिए जानना जरूरी है। पहले से जाना हो तो ही सोचना चल सकता है। और जब पहले से ही जाना हो, तो सोचने की जरूरत क्या है? जाने को सोचने का क्या प्रयोजन? अनजान सोचा नहीं जा सकता। तो विचार तो ऐसे हैं जैसे भैंस जुगाली करती है। किये हुए भोजन को बार-बार मुंह में लाकर चबाती है। विचार जुगाली है। पढ़ा किसी किताब से, सुना किसी व्यक्ति से, अब उसकी जुगाली कर रहे हैं। लेकिन नया कुछ उससे पैदा नहीं होता। विचार मृत हैं। उसमें जीवन के अंकुर नहीं आते।

परमात्मा अज्ञात है। तो विचार से तुम न जान सकोगे। निर्विचार उसका मार्ग है। छोड़ दो विचार को। जो सीखा है उसे हटा दो, जो सुना है उसे भुला दो। समझ है, उससे मन की पट्टी को साफ कर लो। दर्पण की तरह कोरे, बिना किसी विचार की तरंग के जगत का साक्षात्कार करो। उस निस्तरंग दर्पण में ही जो छबि बनती है, जो प्रतिबिंब बनते हैं, वही परमात्मा का प्रतिबिंब है। विचार इतना सहारा दे सकता है कि तुम्हें और विचार काटने में सहयोगी हो जाए।

मैं तुमसे बोलता हूँ। जो बोल रहा हूँ, वो तुम्हारे लिए तो विचार ही होगा। मुझे चाहे अनुभव हो। मुझे चाहे साक्षात्कार हो। जब मैं तुमसे कहूँगा, तुम्हारे लिए तो विचार ही होगा। तुम तो सुनोगे। अगर विचार से बाधा बनती है, तो बोल-बोल कर मैं तुम्हारी बाधा को बढ़ा रहा हूँ। लेकिन इसी आशा में, कि तुम समझोगे तो विचार का काँटा तुम्हारे भीतर लगे विचार के दूसरे काँटों को निकाल के बाहर ले आएगा।

कभी-कभी ज़हर से ज़हर मारा जाता है। तुम्हारे शरीर में एक बीमारी होती है। चिकित्सक के पास जाते हो। वो उसी बीमारी के कीटाणुओं का एक इंजेक्शन तुम्हें दे देता है। और उसके शुभ परिणाम होते हैं। जब तुम्हारे भीतर कोई बीमारी का इंजेक्शन दिया जाता है तो तुम्हारा पूरा शरीर झंझावात में आ जाता है; और तुम्हारा शरीर उस बीमारी से लड़ने के लिए तत्पर हो जाता है। संघर्ष-रत हो जाता है। उस संघर्ष करने की चेष्टा में ही तुम बीमारी के पार आ जाते हो। काँटे का तो तुम्हें अनुभव ही है। पैर में लग जाए तो दूसरे काँटे से तुम उसे निकाल लेते हो। एलोपैथी की अधिकतम दवाएँ ज़हर से बनी हैं। बीमारी ज़हर है। उसे मिटाने को और बड़ा ज़हर हम दे देते हैं।

विचार बाधा है। उसे हटाने को मैं तुम्हें कुछ विचार देता हूँ। इन कांटों का उपयोग कर लो। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे विचार फेंक देना और मेरे विचार सम्हाल कर रख लेना। तब तो तुमने पागलपन किया। एक काँटा निकाल

दिया। जिस काँटे से निकाला, उसको घाव में सम्हालकर रख लिया। दोनों काँटे फेंक देने योग्य हैं। जो तुम्हारे विचार हैं वो भी, और जो मैं तुम्हें देता हूँ—दोनों एक साथ ही फेंक देना, ताकि तुम निर्विचार हो जाओ।

विचार का इतना उपयोग है। इससे ज्यादा कोई उपयोग नहीं। नकारात्मक उपयोग है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने विचार का नकारात्मक उपयोग करता है। बुद्धू, बुद्धिहीन अपने विचार का विधायक उपयोग करता है। विधायक—'पाजि-टिव'—उपयोग करने से उलझ जाता है। नकारात्मक उपयोग करने से पार हो जाता है।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि संसार के अनुभवों से गुजरना आवश्यक है। मेरे जैसे लोग तो जीवन की धूप-छाँव से गुजरे बगैर ही संन्यस्त हो गये। कृपया बताएँ कि हमारा क्या होगा?

पहली तो बात, मेरे संन्यास की धारणा संसार के विरोध में नहीं है। इसलिए मेरे संन्यास में सम्मिलित होकर तुम जीवन की धूप-छाँव से बाहर नहीं जा रहे हो। विपरीत, संसार सिर्फ धूप ही धूप होती, अब तुम छाँव में भी सम्मिलित हो गये हो। मेरे संन्यास में सम्मिलित होकर तुमने संसार तो छोड़ा नहीं है, संन्यास पा लिया है।

इसको ठीक से समझ लो।

संसार की धूप ही धूप थी, अब मैंने तुम्हें संन्यास की छाया भी दे दी। जब सामर्थ्य हो तब धूप में चल लेना, जब थक जाओ तब छाया में विश्राम कर लेना। मैंने तुम्हें ध्यान दिया है, तुम्हारा संसार नहीं छुड़वाया। मैंने तुम्हें कुछ दिया है, तुमसे कुछ छीना नहीं है। इसलिए तुम्हें और ज्यादा अनुभव की संभावना बढ़ गयी। अगर तुम संसार में ही रहते तो संसार का ही अनुभव होता, अब संन्यास का भी अनुभव होगा। और तुम दोनों से जब मुक्त हो जाओगे तब ही वास्तविक संन्यासी हो पाओगे। अभी तो तुम्हारा संन्यास—मैं लाख समझाऊँ तुम्हें—तुम्हारे संसार का विरोध ही है तुम्हारे मन में। अभी तो तुम्हें समझना कठिन है कि धूप और छाँव एक ही सूरज का खेल है। छाँव प्रीतिकर लगती है, धूप अप्रीतिकर लगती है। या कभी-कभी छाँव अप्रीतिकर लगती है—सर्दी के दिनों में—और धूप प्रीतिकर लगती है। यह तो तुम्हें समझ में आता है कि धूप और छाँव दो चीजें हैं। लेकिन यह तुम्हें समझ में न आएगा कि एक ही सूरज का खेल है। धूप भी उसीसे पैदा होती है, छाँव भी उसीसे पैदा होती है। ध्यान रखना, जिस दिन दुनिया से धूप विदा हो जाएगी उसी दिन छाँव भी विदा हो जाएगी। छाँव धूप

के बिना नहीं हो सकती। दिन के बिना रात नहीं हो सकती। सुबह के बिना साँझ नहीं हो सकती। जन्म के बिना मृत्यु नहीं हो सकती। जवानी के बिना कैसे होगा बुढ़ापा? दोनों जुड़े हैं। कोई एक ही ऊर्जा दोनों में गतिमान है। तो पहली तो बात यह समझ लेना कि संसार धूप ही धूप है, चिंता ही चिंता है, तनाव ही तनाव है। इतनी चिंता, इतना तनाव कि धीरे-धीरे लगने लगता है, वही तुम्हारा स्वभाव हो गया है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपना फोटो निकलवाने एक स्टूडिओ में गया था। वह जब चित्र उतरवाने बैठा तो फोटोग्राफर ने कहा, महानुभाव, एक क्षण को तनाव, चिंता, बेचैनी, यह मुर्दा सा भाव, उदासी, ये मरा-मरापन एक क्षण को कृपा करके छोड़ दें, फिर आप अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आ सकते हैं। फोटो उतर जाने दें, फिर अपनी स्वाभाविक मुद्रा आप वापिस ग्रहण कर लेना।

जो अस्वाभाविक है वह स्वाभाविक हो गया है। चिंता अस्वाभाविक घटना होनी चाहिए, शांति स्वाभाविक। बेचैनी कभी किसी प्रसंग में घट जाए, समझ में आ सकती है। लेकिन बेचैनी तुम्हारे जीवन की शैली नहीं बन जाना चाहिए। पर जो संसार में ही रहता है—चिंता, तनाव, विचार, समस्याएँ, उलझनें, भविष्य, योजनाएँ, असफलताएँ, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, जलन, ईर्ष्या, मोह, लोभ, क्रोध, इन सब में जो जीता है, धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि छाँव के क्षण भी हैं।

तो मैंने तुमसे तुम्हारी धूप छीनकर अगर छाँव दी होती, तो वह छाँव अधकचरी होती। क्योंकि छाँव का भी गहरा अनुभव तभी होता है जब तुम धूप से थके-माँदे (तुम) लौटते हो। छाँव में ही बैठे रहो तो छाँव भी छाँव न मालूम पड़ेगी। जब थके-माँदे तुम लौटते हो घर की छाँव में, तब झोपड़ा भी महल मालूम होता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, संसार से भागना मत। हाँ, ध्यान की छाँव को बनाने की कोशिश करना। जब थक जाओ तो ध्यान में डूब सको। जब बेचैन और परेशान लौटो, तो ध्यान के छप्पर के नीचे विश्राम कर सको।

पहली बात, मैंने तुमसे संसार नहीं छीना। तुम्हें कुछ दिया है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूँ कि ज्ञानियों ने तुम्हें त्याग नहीं सिखाया, महाभोग सिखाया है। और किसी की फिक्र भी छोड़ दो। मैं तो निश्चित ही तुम्हें महाभोग सिखाता हूँ। मैं तो कहता हूँ परमात्मा को भी भोगना है। संसार को ही भोगते रहे तो तुम कुछ भी न भोगे। तुम कूड़ा-करकट से उलझे रहे। तुम कंकड़-पत्थर बीनते रहे, जबकि हीरे-जवाहरात पास ही उपलब्ध थे। तुम गंदी नदी का पानी पीते रहे, जबकि स्वच्छ पहाड़ों से बहते हुए झरने पास ही प्रवाहित थे। जरा आँख खोलने की, हाथ बढ़ाने

की, उठकर जरा सा जाने की जरूरत थी कि स्फटिक-मणि जैसे स्वच्छ जल के स्रोत मिल जाते। तुम गंदी नालियों के पास बैठे पानी पीते रहे।

संसार गंदी नाली है, जहाँ बड़ी भीड़-भड़क्का है। जहाँ बहुत लोग स्नान कर रहे हैं, बहुत लोगों की गंदगी बह रही है। और ध्यान, दूर हिमालय के शिखरों में बहता हुआ झरना है। मैंने तुमसे गंदी नाली नहीं छीनी, क्योंकि उसे छीनने से कोई सार नहीं है। अगर तुम्हारी गंदी करने की आदत न हट जाए तो तुम हिमालय के स्वच्छ झरने को भी गंदा कर लोगे। तुम जब तक गंदा न करोगे तब तक तुमको पानी पीने योग्य ही न मालूम पड़ेगा।

एक आदमी राह से गुजरता था। गिर पड़ा। बेहोश हो गया। धूप थी, घना दोपहर का सूरज था। भीड़ इकट्ठी हो गयी। जिस राह से गुजरता था वह गंधियों की राह थी, जहाँ गंध बेचने वाले लोगों की बड़ी बहुमूल्य दूकानें थीं। एक गंधी दया करके भागा हुआ आया, उसके पास जो सबसे कीमती इत्र था वो लाया। क्योंकि आयुर्वेद कहता है कि अगर बहुत गहरी मूर्छा हो, हिलाने से भी न टूटती हो, जगाने से भी न खुलती हो, तो गहरी कोई तीव्र गंध भीतर चली जाए नासापुटों में तो जगा देती है। उसने बड़ी गहरी गंध—बड़ी बहुमूल्य—जिसका एक बूँद हजारों रुपये का होता उसे सुँघाई, तो आदमी अपनी नींद में तड़फड़ाने लगा। लेकिन जागा नहीं; उल्टा बेचैन मालूम पड़ा। भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। एक आदमी ने कहा, रुको, तुम उसे मार मत डालना। मैं उसे जानता हूँ। ठहरो! यह कीमती गंध उसके काम न आएगी। वो जो आदमी गिर पड़ा था उसीके पास उसकी टोकरी और एक गंदा सा फट्टा का टुकड़ा पड़ा था, जिसको वो अपने साथ ले जा रहा था। इस दूसरे आदमी ने पानी बुलवाया, उस गंदी टोकरी पर पानी छिड़का, और उस आदमी के मुँह पर रख दी। उसने एक गहरी श्वाँस ली और वो होश में आ गया। वो मछुआमार था। और उस टोकरी में मछलियाँ बेचकर घर लौट रहा था। उस टोकरी में मछलियों की गंध थी। पर वही एकमात्र गंध थी जिसको उसने जीवन भर सुगंध की तरह जाना था। वही उसकी आत्मीय और परिचित थी। वो आदमी उठकर बैठ गया और उसने कहा कि मेरे भाई, अगर आज तुम न होते तो ये मुझे मार डालते। मैं भी कहाँ दुष्टों के चक्कर में पड़ गया! ऐसी-ऐसी दुर्गंध मुझे सुँघा रहे थे कि मेरे प्राण तड़फ रहे थे। मैं चिल्लाना भी चाहता था लेकिन चिल्ला नहीं पाता था, चीख नहीं पाता था। हाथ हिलाना चाहता था, हिला नहीं पाता था, एक बड़ी गहरी तंद्रा ने पकड़ लिया था। और यह दुष्ट न मालूम क्या-क्या मेरी नाक पर डाल रहे थे। तुम भले आ गये जो

मछलियों की सुगंध तुमने मेरे पास ला दी, तो मैं जाग आया।

तुम अगर संसार से अधपके भाग जाओगे तो तुम हिमालय में बहते झरने को भी जब तक गंदा न कर लोगे तब तक तुम उसे पीने योग्य न पाओगे। मैं तुम्हें संसार से नहीं छीना हूँ, तुम्हें अलग नहीं किया हूँ। उलटी मेरी चेष्टा है। मैं चाहता हूँ कि हिमालय का झरना तुम जहाँ संसार में हो वहाँ बहता हुआ तुम्हारे पास आ जाए। और तुम दोनों को आमने-सामने अनुभव कर सको--यह गंदी नाली, और यह झरना। और चुनाव किसी लोभ के कारण न हो, समझ के कारण हो, बोध के कारण हो। और धीरे-धीरे तुम्हें स्वच्छ जल का स्वाद लग जाए। सुगंध तुम्हें पकड़ने लगे। दुर्गंध तुम्हें पहचान में आ जाए। इसलिए यह तो तुम कहो ही मत, मेरे जैसे लोग जीवन की धूप-छाँव से गुजरे बगैर संन्यास में सम्मिलित हो गये हैं, हमारा क्या होगा? ऐसा पूछो तो ठीक होगा, कि हम अगर संन्यास में सम्मिलित न होते तो हमारा क्या होता?

मैं तो अनुभव के पक्ष में हूँ। इस सीमा तक अनुभव के पक्ष में हूँ कि अगर बुराई की भी मन में बहुत आकांक्षा उठती हो तो उसे भी कर लेना। फल पाना पड़ेगा। उससे मैं तुम्हें नहीं बचा सकता। क्रोध करना हो, क्रोध कर लेना। काम करना हो, काम कर लेना। लोभ करना हो, लोभ कर लेना। फल तुम्हें पाना पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता कि तुम फल से बचोगे। दुःख तुम्हें भोगना पड़ेगा। लेकिन अगर भोगने की आकांक्षा हो तो भोग ही लेना। क्योंकि बिना भोगे वो बीज तुम्हारे भीतर पड़ा रहेगा, और बार-बार आकर्षित करेगा। अनभोगी वासनाएँ भोगी वासनाओं से बदतर हैं। जो नहीं भोगा है उसकी पकड़ तुमपे ज्यादा होती है, बजाय उसके जो भोग लिया गया है। जिसे तुम भोग लेते हो, जान लेते हो, पहचान लेते हो, उससे तुम मुक्त ही हो गये।

तो संसार को ठीक से जान ही लो। जल्दी कोई भी नहीं है। बजार को ठीक से पहचान ही लो। जिस दिन तुम बजार से मुड़के चलो पीठ कर के, उस दिन फिर उसकी तुम्हें याद भी न आए। पीछे लौटने का मन भी न हो। एक बार देखने की भी इच्छा न हो कि पीछे लौटकर देख लें, इस तरह समाप्त हो जाए। इस तरह की समाप्ति निर्णय से नहीं होती; संकल्प से नहीं होती। इस तरह की समाप्ति गहन अनुभव से होती है। बोध से होती है। तुम जियोगे तो ही ऐसी समझ पैदा होगी। क्योंकि एक दिन तुम पाओगे, इन ठीकरों में क्या रखा है? मैं कहता हूँ इसलिए नहीं, कबीर-सहजो कहते हैं इसलिए नहीं, वेद-उपनिषद् कहते हैं इसलिए नहीं। तुम पाओगे। यह उपनिषद् तुम्हारे भीतर जगेगा। यह वेद

तुम्हारा अपना वेद होगा। तुम पाओगे कि व्यर्थ है। देख लिया, सब तरफ से स्वाद चख लिया, सिवाय पीड़ा के कुछ भी न पाया। जहर है। हाथ से छूट जाएगा उस दिन।

उस दिन तुम्हारा संन्यास संसार के त्याग से नहीं संसार के अनुभव से उठेगा। संसार के ज्ञान से उठेगा। उस दिन तुम्हारा संन्यास संसार के विपरीत नहीं होगा। अभी मैं कितना ही कहूँ, तुम्हारा संन्यास संसार से थोड़ा विपरीत है। तुम्हें लगता है कि तुम कुछ भिन्न कर रहे हो। उस दिन तुम जानोगे, संन्यास भी गया संसार भी गया। जिस दिन द्वंद्व चला जाए, द्वैत चला जाए, उस दिन असली संन्यास घटित होता है। उस दिन तुम दोनों के पार हो गये। उस दिन तुमने जानी धूप और छाँव एक ही सूरज की है। उस दिन तुमने जाना कि संसार और संन्यास एक ही मन का खेल है, एक ही अहंकार का खेल है। उस दिन दोनों से तुम मुक्त हो गये।

संसार से जो मुक्त हुआ वो संन्यास से भी मुक्त हो जाता है। यह बात तुम्हें जरा कठिन लगेगी। क्योंकि यह गणित और तर्क में नहीं बैठती। तुम तो सोचते हो जो संसार छोड़ता है वह संन्यासी है। अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं कहता हूँ, जिसका संसार छूट गया उसका तो संन्यास भी छूट गया। यह तो ऐसे ही, जैसे जिस दिन बीमारी छूट गयी उस दिन औषधि भी छूट गयी। बीमारी छूट गयी, औषधि की बोतल लिए बाजार में घूम रहे हो। कोई भी तुम्हें पागल कहेगा। तुम कहोगे बीमारी तो मिट गयी, अब टी. बी. के शिकार न रहे, मगर अब यह बोतलें लिए फिरते हैं। यह प्रेस्क्रिप्शन सब इकट्ठे कर लिए, इनका शास्त्र बना लिया, जिल्द बनवा ली मखमल की, सोने का धागा बाँध लिया, अब इसको बगल में दबाए रहते हैं। बोतल रखे हैं। जितने एक्स-रे निकले हैं वो सब सम्हाले हुए हैं। बीमारी तो चली गयी; संसार तो छूटा, अब संन्यास को लिए घूम रहे हैं। सोचो, पागल हो? और अगर ऐसा कोई तुम्हें पागल रास्ते पर मिल जाए तो क्या तुम कह सकोगे इसकी बीमारी छूट गयी? यह तो और महाबीमारी का शिकार हो गया। इससे तो टी. बी. बेहतर थी। उसका कम से कम इलाज हो सकता था। अब जो बीमारी है उसका इलाज कौन करेगा? ये एक्स-रे, और यह प्रेस्क्रिप्शन, और यह जो शास्त्र पकड़ा है, और यह जो बोतलें सम्हाले है--खाली, अधूरी, भरी, पुरानी--इनको अब कौन छुड़ाएगा? इसका तो कोई किसी चिकित्साशास्त्र में इलाज नहीं है।

नहीं, लेकिन सौभाग्य से ऐसा होता नहीं। बीमारी जाती है, औषधि भी तुम फेंक देते हो। जिस दिन बीमारी गयी उसी दिन तुमने औषधि भी खिड़की के

बाहर फेंकी। संन्यास औषधि है संसार की। संसार ही चला जाएगा, संन्यास को कौन पागल बचाता फिरता है! वो भी गया उसीके साथ। वो एक ही सिक्के का दूसरा पहलू था। जिस दिन दोनों चले जाएँगे उस दिन तुम मुझसे अगर पूछो तो मैं कहूँगा, संन्यास हुआ। संन्यास के भी पार है संन्यास। उसका भी अतिक्रमण कर जाता है।

और तुम पूछते हो, कृपापूर्वक बताएँ कि हमारा क्या होगा? अगर संन्यास में डूबते ही रहे तो डूब जाओगे, मिट जाओगे, खो जाओगे। परमात्मा बचेगा, तुम न बचोगे। अगर समय के पहले भाग गये, तो तुम बच जाओगे, परमात्मा न मिलेगा। तो यह तो सारा हिसाब ही डुबाने का है। मेरे साथ दोस्ती बाँधी तो उसका मतलब कि डूबोगे, मिटोगे। बचने न देंगे। सब उपाय करेंगे कि मझधार में नाव डूब जाए। क्योंकि तुम्हारा बचना ही बाधा है। तुम्हें किनारा मिला तो तुम फिर संसार बसा लोगे। तुम कुछ और जानते नहीं। तुम्हें तो मझधार में ही डूबना हो जाए, तो ही समझो ऐसा किनारा मिलेगा जहाँ तुम संसार न बसा सकोगे।

तो मेरे साथ तो डूबने वालों का जोड़ बन सकता है। जो अपने को बचाने चले हैं उन्हें मुझसे बहुत खतरा मालूम पड़ेगा। उनके लिए दूसरी जगह हैं, दूसरे लोग हैं, जो उन्हें बचाने की व्यवस्था देते हैं। मैं तुम्हें मिटने की व्यवस्था देता हूँ। मैं तुम्हें मृत्यु सिखाता हूँ। क्योंकि मैंने जाना कि जब तुम मरोगे, मिटोगे, तभी तुम्हारे जीवन में महाजीवन का अवतरण होगा। तभी तुम्हारी बूँद में सागर उतरेगा। तो क्या होगा? मिटोगे। बच न पाओगे।

अगर मेरी चली तो मिटोगे। अगर तुम बीच में भाग खड़े हुए, तो तुम्हारा दुर्भाग्य!

चौथा प्रश्न : सहजो कहती है कि धर्म की साधना गोपनीय ढंग से की जाए—'जाने ना संसार'। आप भी यही कहते हैं। लेकिन हम तो संन्यास के वस्त्र और माला पहन कर उसकी खबर दिये रहते हैं। इस पहलू पर कुछ प्रकाश डालें।

मनुष्य एक ऐसी बीमारी है, एक तरफ से सम्हालो दूसरी तरफ से बिगड़ जाती है; दूसरी तरफ से सम्हालो पहली तरफ से बिगड़ जाती है। सहजो ने जब कहा—'जाने ना संसार', तब बीमारी एक तरफ से सम्हाली गयी थी और दूसरी तरफ से बिगड़ गयी थी।

समझ लें दोनों पहलू।

मनुष्य साधना करना नहीं चाहता, दिखाना चाहता है। यह मनुष्य के अहंकार का हिस्सा है। बिना किये अगर दिखावे की सुविधा हो तो बड़ी सस्ती है। ध्यान

करना तो कठिन है, माला फेरना आसान है। माला फेरने से ध्यान का क्या लेना-देना है? माला तो फेरी जा सकती है बड़ी आसानी से। ध्यान में तो सारा जीवन रूपांतरित करना होगा। फिर ध्यान तो भीतर होगा, किसीको पता भी न चलेगा। तो जो मजा अहंकार को मिलना चाहिए कि लोग समझें कि बड़े ध्यानी हैं, वो मजा भी नहीं मिलेगा। ध्यान तो मिलना कठिन है, ध्यानी हैं ऐसा लोगों को पता चल जाए——इससे जो थोड़ा सा मजा मिलता, वो भी नहीं मिलेगा।

माला में दोनों सुविधाएँ हैं। ध्यान करने की कोई झंझट भी नहीं है—हाथ उठाया, माला फेरते चले गये——और मुहल्ले-पड़ोस में, गाँव-परगाँव में खबर हो जाती है कि आदमी बड़ा ध्यानी है। लोग थैली बना लेते हैं। थैली के भीतर हाथ डाले रहते हैं, उसमें माला चलाते रहते हैं। थैली और भी सुविधा की है। कभी न भी चलायी तो भी कोई खास पता नहीं चलता। और लोगों को लगता है, चला ही रहे होंगे तब तो थैली में माला लिए बैठे हैं। जब चलायी जब चला ली। और पता नहीं माला के मनकों पर रुपये गिन रहे हैं, कि क्या गिन रहे हैं? कुछ पक्का नहीं। राम-राम गिन रहे हों इसका कुछ पक्का नहीं है। थैली में माला भी छिपी है हाथ भी छिपा है। चल रहा है। न भी गिन रहे हों, सिर्फ हिला रहे हों हाथ, तो भी लोगों को वहम होता है कि बड़े ध्यानी हैं।

हजारों-लाखों लोग बिना साधना में उत्सुक हुए साधना दिखाने में उत्सुक हो गये। तब सहजो जैसे संतों ने कहा—'जाने ना संसार'; कुछ ऐसा करो कि किसी को पता न चले। क्योंकि तुम तो सिर्फ पता ही करवा रहे हो, भीतर तो कुछ हो नहीं रहा। तुम जानो, जाने तुम्हारा करतार—उतना काफी है। तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच मामला है। इसको बीच बाजार में खड़े होकर घोषणा करने की, डुंडी पीटने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें राम-राम जपना तो रामनाम जपो। लेकिन माइक लगाकर और अखंड उपद्रव मचाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि चौबीस घंटे मोहल्ले भर की जान ले डालो। हालाँकि कोई भी आदमी जब चौबीस घंटे का पाठ करता है तो वो माइक लगवाकर करता है। ऐसे रामनाम के बहाने पड़ोसियों को सताने का भी मजा आ जाता है। और कोई कुछ कह भी नहीं सकता—धर्म के खिलाफ तो बोलना ही मुश्किल है। कोई यह भी नहीं कह सकता कि हमारे बच्चों की परीक्षा हो रही है, यह उपद्रव न करो। परीक्षा वगैरह तो सांसारिक चीजें हैं, यह रामनाम तो....। इससे तो लाभ ही होगा बच्चों को। उत्तीर्ण हो जाएँगे। शोरगुल कर के अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है।

तो सहजो ने कहा, नहीं। यह तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच है, और

परमात्मा बहरा नहीं है, माइक लगाने की कोई जरूरत नहीं है। ओंठ भी न हिलें। ओंठ भी क्या हिलाने? हृदय से ही बात हो जाए।

मगर, तब दूसरी बीमारी आदमी में पकड़ती है। जो कुछ भी नहीं करते, आलसी हैं, काहिल हैं, सुस्त हैं, अगर तुम उनसे भी कहो तो वो कहते हैं, हम तो ओंठ भी नहीं हिलाते। हम तो हृदय से हृदय में करते हैं। किसीको बताना थोड़ी' है--ना जाने संसार। छिपाना है। इतना ही भर बता देते हैं कि हम छिपाते हैं। इससे ज्यादा नहीं बताते। इसलिए हम गेरुआ-वस्त्र नहीं पहनते, किसीको बताना थोड़े ही है। माला हाथ में नहीं लेते, किसी को बताना थोड़े ही है। मंदिर नहीं जाते, किसी को बताना थोड़े ही है। दुकान पर ही रहते हैं, धन ही कमाते हैं, लेकिन भीतर ही भीतर हृदय की हृदय से वार्ता चलती रहती है। यह दूसरी चालबाजी है।

या तो तुम बताओगे बिना कुछ किये। या तुम बिना कुछ किये दावा करोगे कि भीतर ही भीतर कर रहे हो, इसलिए किसीको पता नहीं चल रहा है। वह जो पहले वर्ग का आदमी है, वो दूसरों की निंदा करेगा कि मंदिर नहीं जाते, पूजा नहीं करते; अधार्मिक हो, नर्क में सड़ोगे। यह जो दूसरी तरह का आदमी है, यह भी निंदा करेगा उनकी--अच्छा! तो गेरुआ-वस्त्र पहन कर चल रहे हो! माला!! दिखावा कर रहे हो! नर्क में पड़ोगे।

ये दोनों ही बीमार स्थितियाँ हैं।

अब मेरे सामने सवाल है, क्या करूँ? अगर तुमसे कहूँ कि चुपचाप करो, तुम बिलकुल राजी हो। क्योंकि उसमें कोई झंझट ही नहीं है, करने का ही सवाल नहीं है। इतना चुपचाप तुम करते हो कि करते ही नहीं हो। बात ही नहीं, कोई पता किसको चलेगा? वहाँ बेईमानी की सुविधा है। अगर तुमसे कहूँ कि जरा जोर से, होंठ से पता चले कि क्या जप रहे हो भीतर। रुपया-रुपया-रुपया कह रहे हो, कि राम-राम-राम, इतना तो कम से कम पता चलने दो! तो तुम कहते हो, इससे तो लोगों को पता चल जाएगा। फिर यह संतपुरुष जो कहते रहे। तो फिर मैंने सोचा कुछ ऐसा करो, आधा बाहर, आधा भीतर। गेरुआ-वस्त्र बाहर पहन लो, माला गले में लटका लो; ध्यान, संन्यास भीतर चलने दो। दोनों तरफ से तुम्हें बचाने की जरूरत है।

तुम इतने बेईमान हो, ऐसे चालबाज हो कि तुम हर जगह से अपनी बेईमानी का कोई उपाय खोज लेते हो। तो मैंने कहा कि थोड़ा सा दिखावा, ठीक, कोई हर्जा नहीं। जब जरूरत होगी उसको छुड़ा देंगे। उसमें कितनी देर लगेगी?

गेरुआ-वस्त्र छोड़ने में कितनी देर लग सकती है? एक क्षण का सवाल नहीं है। जिस दिन तबीयत होगी, छुड़ा देंगे। माला समन्दर में डाल देने में, कुएँ में डाल देने में कितनी देर लगती है? उसमें कोई बड़ी अड़चन नहीं है। उससे कोई तुम बँध नहीं गये हो। लेकिन थोड़ा सा बाहर....। ताकि सुस्त होने का मौका न आए, आलस्य न पकड़े।

एक मित्र हैं। संन्यास लिया। कहने लगे कि मैं शराबी हूँ, आप सोचकर मुझे संन्यास दें। मैंने कहा, अगर मैं सोचकर दूँ तो फिर किसीको दे ही न पाऊँगा। फिर मेरी दशा मेरे एक अध्यापक जैसी हो जाएगी—

मेरे एक शिक्षक थे दर्शनशास्त्र के। वो परीक्षा-पत्र कोई जाँचते नहीं थे। वो कहते थे, अगर जाँचूँ तो कोई पास न हो पाएगा। और बात सच थी। अगर जाँचो ही ठीक से, और दर्शनशास्त्र का मामला हो, तो पास होना बहुत मुश्किल! तो वो बिना जाँचे अंक दे देते थे--आँख बंद कर के--दस, पंद्रह, बीस.... जोड़-जाड़ लगा के वो....। मैं उनका विद्यार्थी था, वो मुझे दे देते थे कि तुम यह.... मैं विद्यार्थी एम.ए. की पूर्वार्ध का, और एम.ए. के उत्तरार्ध के मैंने परीक्षा-पत्र जाँचे। वो मुझे दे देते कि तुम्हीं रख दो, एक ही बात है। क्योंकि मैं अगर जाँचूँगा, तो कोई पास न हो पाएगा। पास करना हो तो बिना ही जाँचे उपाय है।

तो मैंने उनसे कहा कि अगर मैं बहुत जाँच-पड़ताल करूँ तो किसी को संन्यास न दे पाऊँगा। फिर मैंने सोचा, छोड़ो यह फिकिर। जो आए, दे दो। शराब पीते हो! कोई फिकिर नहीं, पियो। चिंता तुम्हारी होनी चाहिए। मुझे क्या चिंता? एक शराबी ने संन्यास लिया, इसमें क्या हर्जा है? आखिर बीमार ही तो अस्पताल आता है। बीमार ही तो औषधि खोजता है। बुरा ही तो भले होने की आकांक्षा करता है। अगर मैं बुराई को ही शर्त बना लूँ कि तुम पहले बुराई छोड़ो तब संन्यास दूँगा, तब तो इसका अर्थ हुआ कि औषधि तभी दी जाएगी जब तुम स्वस्थ हो जाओगे। यह तो शर्त जरा ज्यादा हो जाएगी। तुम शराब पीते हो, यह तुम्हारी फिकर है। मैं तुम्हें संन्यास देता हूँ। अब चिंता तुम्हारी है कि संन्यासी होकर शराब पीना कि नहीं। शराब पीते हुए को संन्यास देना कि नहीं, यह मेरी चिंता नहीं। मैं तो देता हूँ। क्योंकि मैंने देखा, सभी शराबी हैं। कोई साधारण शराब पी रहे हैं, कोई पद की पी रहे हैं, कोई धन की पी रहे हैं, कोई कुछ और ढंग की पी रहे हैं। नशे में सभी हैं। क्योंकि सभी के पैर लड़खड़ा रहे हैं। तो मैं तो तुम्हें देता हूँ। चिंता तुम कर लेना।

वो आठ दिन बाद आया और उसने कहा कि झंझट में डाल दिया। अब शराब

की दुकान पर जाने में डर लगता है। क्योंकि लोग देखने लगते हैं—गेरुआ-वस्त्र पहने! स्वामीजी!! आप यहाँ कैसे? तो कल तो, उन्होंने कहा, कि मुझे झूठ बोलना पड़ा। मैंने कहा कि मैं जरा यहाँ देखने आया हूँ कि कौन-कौन लोग मोहल्ले में शराब पीते हैं। मैं कोई खरीदने नहीं आया। और बिना ही... खाली हाथ वापस लौट आया। गेरुआ-वस्त्र पहन के, माला डाले, सिनेमा की 'क्यू' में टिकट खरीदने खड़े होकर देखना। कोई 'जयरामजी' कर लेगा। कोई पैर छू लेगा। भागे! निकले वहाँ से, कि यहाँ तो झंझट है!

बाहर का वेश तो तुम्हें आलस्य के थोड़े बाहर लाएगा। और तुम्हें थोड़ी स्मृति रखने की क्षमता बनाएगा। एक रिमेंबरेंस, एक स्मरण रहेगा कि मैं संन्यस्त हूँ। तुम चूक-चूक जाते हो, भूल-भूल जाते हो। दूसरे याद दिला देंगे। कोई नमस्कार कर लेगा। कोई सिर झुका देगा। और भारत तो बड़ा अनूठा देश है। यह फिकर ही नहीं करता। अगर तुम्हारा गेरुआ-वस्त्र है तो पैर छूता है। कोई... यह बड़ी कारगर बात है। यह भारत ने समझ लिया कि संन्यासी को भी याद दिलाने की जरूरत है कि तुम आदर योग्य हो। यह बड़ी कीमिया है गहरी। उसके भीतर राज़ है। राज़ यह है कि हम तुम्हें आदर दे रहे हैं; तुम आदर योग्य हो। अब आदर योग्य होने की चेष्टा करना। वो तुम्हें जगा रहा है। जहाँ जाओगे वहीं कोई तुम्हें जगाने वाला मिल जाएगा। खुद भी आइने के सामने खड़े होओगे तो अपना गेरुआ-वस्त्र, माला एक स्मृति देगी। अभी तुम गहरी मूर्छा में हो। यहाँ छोटी-छोटी स्मृति के साधन भी कारगर होंगे। और छुड़ाने में क्या दिक्कत है? किसी भी दिन कह देंगे कि बस अब छोड़ दो। संसार पहले छोड़ दिया, अब संन्यास भी छोड़ दो। अब दोनों झंझट के बाहर हो जाओ। बाहर थोड़ा सा और भीतर थोड़ा सा। ध्यान भीतर, वस्त्र बाहर। वस्त्र बाहर के लिए है ही। ध्यान भीतर के लिए है। प्रेम भीतर, माला बाहर। नाम बाहर, अनाम भीतर। और जैसा मैं जानता हूँ, बाहर भीतर अगर दो होते तो हम विभाजन भी कर लेते, वो दो नहीं हैं। वो दोनों इकट्ठे हैं। कहाँ से भीतर शुरू होता है? कहाँ से बाहर अंत होता है? सब जुड़ा है। संयुक्त है। बाहर भी तो तुम्हारा भीतर ही आया हुआ है। भीतर भी तुम्हारा बाहर ही गया हुआ है। तो दोनों को एक ही रंग में रंग डालो। भीतर भी ध्यान की अग्नि जले, बाहर भी अग्निवेश हो। अच्छा होगा।

इसलिए सहजो से मैं राजी हूँ कि—'जाने ना संसार'। अपने ध्यान की बात किसी को क्या कहनी। उसे तो सम्हाल कर रखना। लेकिन वस्त्र ध्यान थोड़ी' है। वस्त्र तो संसार के ही हैं। कोई तो वस्त्र पहनोगे ही। सांसारिक के पहनोगे। मैंने

तुम्हें कहा, संन्यासी के पहनो। वस्त्र ही चुनने हैं, तो संन्यासी के बेहतर। वस्त्र तो चुनोगे ही। अगर निर्वस्त्र होने की तैयारी हो, तो मैं कहूँगा ठीक है, संन्यासी का वस्त्र भी छोड़ दो। कुछ तो पहनोगे? कोई रंग तो चुनोगे? कोई ढंग तो चुनोगे? मंदिर में रहोगे। मकान में रहोगे। कहीं तो रहोगे? जब रहना ही है, तो मैं कहता हूँ मंदिर में ही रहो। फिर मकान में क्या रहना! अगर मकान को भी मंदिर के ढंग से बना लो, शुभ है। इसलिए एक सेतु बनाया।

बाहर और भीतर को अलग-अलग करने की कोई जरूरत नहीं है। जो भीतर का है उसे छिपाना। जो बाहर का है उसे दिखाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम गैरिक-वस्त्र पहन कर हाथ में एक घंटा लेकर मत बजाना, कि देखो भाई, आ गये हम! उतनी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन कोई देख ले तो छिपने की भी कोई जरूरत नहीं है, कि दीवाल के पीछे छिप गये कि कोई देख न ले। सहज होना। उतना पर्याप्त है।

पाँचवाँ प्रश्न: कृपापूर्वक प्रसाद और पात्रता के अंतर्सम्बंध पर प्रकाश डालें।

पात्रता पर्याप्त नहीं है। बिना पात्रता के भी प्रसाद नहीं मिलेगा। पर पात्रता के कारण ही नहीं मिलता है प्रसाद। यह जटिलता है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। पात्रता का अर्थ है तुम योग्य हो। लेकिन जैसे ही योग्यता का खयाल आता है वैसे ही अहंकार निर्मित हो जाता है कि मैं योग्य हूँ, मैं पात्र हूँ। जैसे ही तुम्हें यह लगता है, मैं पात्र हूँ, वैसे ही एक माँग खड़ी हो जाती है कि अब मुझे मिलना चाहिए। न मिले तो शिकायत होगी। और मिल जाए तो धन्यवाद पैदा नहीं होता, क्योंकि मैं पात्र था ही।

कबीर ने कहा है मरने के वक्त कि मैं अब काशी में न मरूँगा। मुझे मगहर ले चलो। कहावत थी कि काशी में तो अगर गधा भी मरे तो मोक्ष—वैकुंठ—पहुँच जाता है, और मगहर में अगर ज्ञानी भी मरे तो अगले जन्म में गधा हो जाता है। तो कबीर ने कहा, मैं मगहर मरूँगा।

क्यों?

तो कबीर ने कहा, अगर काशी में मरने से मोक्ष मिला तो इसमें प्रभु की अनुकंपा क्या? यह तो काशी की पात्रता थी कि मोक्ष मिला। मिलना ही चाहिए था। मगहर में मरेंगे। अगर गधा हो गया अगले जन्म में, तो अपने कारण। और मोक्ष मिला, तो उसकी अनुकंपा से। यह बड़ी गहरी बात है। मरे मगहर जाकर। जीवनभर काशी में बिताया। तो सूचना है एक। एक खबर, एक इशारा किया। इशारा किया कि अपनी पात्रता से अगर मोक्ष भी मिलता हो तो भी अहं-

कार ही है। उसकी अनुकंपा से मिले !

तो जिसको भी पात्रता होगी उसको एक सूक्ष्म अहंकार आना शुरू हो जाएगा कि मैं योग्य हूँ। मुझे मिलना चाहिए। मिले तो धन्यवाद पैदा न होगा। न मिले तो शिकायत पैदा होगी। और जहाँ धन्यवाद का भाव न हो वहाँ परमात्मा नहीं बरसता। जहाँ अहोभाव न हो, जहाँ अहंकार हो, वहाँ तो पर्दा पड़ा है आँखों पर। वहाँ तो आँखें अभी अंधी हैं। वहाँ तो हृदय अभी जागा नहीं, सोया है। इसलिए पात्रता जरूरी तो है, काफी नहीं है।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम अपात्र होने की कोशिश करना। कोई परमात्मा की परीक्षा लेने की भी जरूरत नहीं है। पात्रता को तुम सहजता से स्वीकार करना। उससे, मेरी तरफ से मैं तैयार हूँ। लेकिन इससे कोई शिकायत नहीं है। अगर नहीं मिल रहा है परमात्मा, तो जरूर कोई भूल-चूक मेरी ही होगी। पात्रता में कोई कमी होगी। अगर मिल जाए परमात्मा, तो परमात्मा इतनी बड़ी घटना है और मेरा पात्र इतना छोटा और मेरी पात्रता इतनी छोटी, कि मेरी पात्रता के कारण मिला होगा यह तो मानने का कोई उपाय नहीं है। मिला तो वो अपनी करुणा से ही है। प्रसाद-रूप बरसा है। तो जिन्होंने भी उसे पाया है उन्होंने यही कहा कि पात्रता का यहाँ कुछ हिसाब नहीं है।

जीसस की कहानी मैं निरंतर कहा हूँ—

एक धनपति ने अपने बगीचे में काम करने को मजदूर बुलाए सुबह। कोई मजदूर आए कुछ। लेकिन काम ज्यादा था, और चुकेगा नहीं। दोपहर उसने फिर मजदूर बुलाए। कुछ मजदूर सूरज जब आकाश में आधा आ गया तब आए। फिर भी लगा इतने से भी काम पूरा न होगा। काम ज्यादा था और आज ही साँझ पूरा करना था। उसने फिर आदमी भेजे। कुछ मजदूर आए जब कि सूरज ढलने के ही करीब था। फिर साँझ हो गयी। फिर सबको उसने उनकी मजदूरी के पैसे दिये। उसने सुबह जो आए थे उनको भी उतने ही पैसे दिये जितने उनको जो दोपहर आए थे। और उतने ही पैसे उसने उनको भी दिये जो अभी-अभी आए थे, जिन्होंने काम छुआ भी नहीं था, न के बराबर कुछ किया था। सुबह के मजदूर नाराज हो गये। उन्होंने कहा, यह अन्याय है। हमने दिन भर काम किया हमें भी उतना पुरस्कार, और ये अभी-अभी आए हैं इनको भी उतना। यह अन्याय है। स्वभावतः, उन्होंने दिनभर मेहनत की थी। पात्रता अर्जित हो गयी थी। उस अमीर ने कहा, तुम्हें जो हमने दिया वो तुम्हारे काम के योग्य पर्याप्त नहीं है? जितना वायदा किया था उतना तुम्हें दिया है। उन्होंने कहा, वो तो ठीक है।

हमने जितना काम किया उतना तो हमें मिल गया है। लेकिन इन्होंने तो कुछ भी काम नहीं किया है। हमें कोई शिकायत नहीं है। हमारे .... हमें जो मिला है वह पर्याप्त है। लेकिन, इन्होंने कुछ भी नहीं किया। तो उसने कहा, इनकी तुम फिकिर छोड़ो। पैसे मेरे हैं। मैं उन्हें मुफ्त भी लुटाऊँ तो तुम्हें चिंता का कोई कारण नहीं होना चाहिए। इन्हें मैं इनके काम के कारण नहीं देता, मेरे पास बहुत ज्यादा है इसलिए देता हूँ। इतना तो मुझे हक है।

जीसस कहते हैं, जब परमात्मा के सामने भक्त और ज्ञानी खड़े होंगे तो ज्ञानियों को सदा ऐसा लगेगा कि हम तो सुबह से मेहनत कर रहे थे। दिन भर भरसक मेहनत की। और हमें भी वही मिला। और ये भक्त कुछ मेहनत भी नहीं किये, गीत गाते रहे, गुनगुनाते रहे या मस्ती में झूमते रहे, या नाचते रहे, इनको भी उतना मिला। तो जीसस कहते हैं परमात्मा उनसे कहेगा : तुमने जो किया उतना तो तुम्हें मिल गया न? तुम इनकी फिकिर छोड़ो। इन्हें मैं अपने आधिक्य से देता हूँ। मेरे पास है। इसका करूँ क्या?

जिन्होंने परमात्मा को पाया उसमें दो तरह के लोग हैं। ज्ञानी हैं और भक्त हैं। ज्ञानी कहते हैं, हमने अपनी पात्रता से पाया। भक्त कहते हैं, हमने उसके प्रसाद से पाया। यह भक्त का हृदय है जो प्रसाद की धारणा करता है। ज्ञानी का मस्तिष्क है जो प्रयास की बात करता है। ज्ञानी हिसाबी-किताबी है। भक्त कोई हिसाब-किताब नहीं रखता। भक्त कहता है, मेरी योग्यता कुछ भी नहीं है और तुम बरसे जा रहे हो—'बिन घन परत फुहार' .... 'बिन दामिनि उजियार अति'!

ज्ञानी को अगर तुम गौर से जाँच करोगे तो उसने पहले प्रसाद को इनकार किया, फिर परमात्मा को भी इनकार कर दिया। महावीर परमात्मा को स्वीकार नहीं करते। क्योंकि, वो कहते हैं, जो मिला है वो अपने कृत्य का फल है। इसमें परमात्मा को बीच में लेने की कोई जरूरत नहीं है। जिसने शुभ किया उसे पुण्य मिला। जिसने अशुभ किया उसे पाप मिला। जिसने ठीक किया, ठीक पाया। गलत किया, गलत पाया। जो बोया वही काटा। इसमें बीच में परमात्मा को लाने का कहाँ प्रयोजन है? और महावीर की बात में भी एक यथार्थ है। वह यथार्थ यह है कि परमात्मा को अगर बीच में लाओगे तो कुछ गड़बड़ होगी। गड़बड़ यह हो जाएगी कि कभी वह उनको भी दे देगा जिनकी पात्रता न थी। समझो कि जीसस की कहानी में धनपति की जगह एक कॅम्प्यूटर होता और कॅम्प्यूटर हिसाब लगाता। कॅम्प्यूटर न होता एक मुनीम होता—मालिक न होता—वो हिसाब लगाता। तो वो देखता, जिसने छः घंटे काम किया उसको छः रुपये।

जिसने चार घंटे काम किया उसको चार रुपये। जिसने घंटे भर काम किया उसको एक रुपया। ठीक है, मुनीम मुनीम के ढंग से सोचता।

अगर परमात्मा लोगों के कर्मों का हिसाब लगा-लगा कर देता है कि कितना किसने किया तो, महावीर कहते हैं, इस आदमी को बीच में लेने की जरूरत क्या है? नियम पर्याप्त है। जो आग में हाथ डालता है वो जल जाता है। कोई परमात्मा थोड़े ही बैठा है जो देखता है कि तुम आग में हाथ डाल रहे हो, इसलिए जलाओ। जो हाथ खींच लेता है वह बच जाता है। कोई परमात्मा थोड़े.ही बैठा जो कहता है तुमने हाथ खींचा, इसलिए हम तुमको बचाते हैं। जलाओ; हाथ डालो, जलता है। खींच लो, बच जाता है।

तो कर्म का सिद्धांत, महावीर कहते हैं, पर्याप्त है। किसी परमात्मा को बीच में लेने की जरूरत नहीं। और बीच में लेने से झंझट होगी। झंझट यह होगी कि एक सोच-विचार, हृदय वाली शक्ति बीच में आ गयी। तो कभी किसीपर दया भी आ जाएगी, अनुकंपा भी हो जाएगी। परमात्मा कोई मशीन तो नहीं है, मुनीम तो नहीं है। मालिक होगा। और मालिक अपने आधिक्य से दे सकता है, फिर क्या करोगे? तब तो खतरे हो सकते हैं। पहला खतरा तो यह है कि जिन्होंने कुछ नहीं किया उनको मिल जाए। और दूसरा बड़ा खतरा यह कि जिन्होंने किया शायद उनको न मिल पाए। जीसस की कहानी में जिन्होंने किया उनको तो मिला, जिन्होंने नहीं किया उनको भी मिल गया। लेकिन कहानी थोड़ी आगे भी जा सकती है कि जिन्होंने नहीं किया उनको ज्यादा मिल गया, और जिन्होंने किया उनको उनके करने से कम मिला। क्योंकि हो सकता है यह मालिक आज नाराज हो। इसका मन प्रसन्न न हो। बीच में किसी को लेने में खतरा है। महावीर ने कहा, परमात्मा को हटा दो। परमात्मा के रहते जगत में व्यवस्था नहीं रह सकती। परमात्मा रहेगा तो अराजकता रहेगी।

तुम चकित होओगे कि हिंदू कहते हैं, परमात्मा के बिना अराजकता होगी। परमात्मा नहीं होगा तो कौन व्यवस्था सम्हालेगा? महावीर कहते हैं, परमात्मा होगा तो व्यवस्था सम्हालनी ही मुश्किल हो जाएगी। बिना परमात्मा के व्यवस्था नियम से चल रही है। कोई हृदय बीच में नहीं है जो हिसाब-किताब लगाए, किसी पर दया खाए, किसी पर क्रोध करे, किसी से नाराज हो जाए, किसीके प्रेम में पड़ जाए, किसी भक्त को उबार ले और किसी दुष्ट को डुबा दे, ऐसा कोई बीच में नहीं है। सीधे नियम से बात चल रही है। साफ-सुथरा गणित है।

इसलिए महावीर के शास्त्रों में काव्य को कोई जगह नहीं है। शुद्ध गणित है।

महावीर की किताबें पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि जैसे कोई इंजीनियरिंग या मेडिकल, गणित, तर्क इनके शास्त्र पढ़ रहा हो। शुद्ध गणित—वैज्ञानिक। हिसाब की बात है। कभी-कभी मुझे लगता है कि महावीर के गणित के कारण ही शायद जैन सभी हिसाबी-किताबी दुकानदार हो गये। हिसाब इतना गहरा है कि मानने वाले सभी दुकानदार और वणिक् हो गये। और सब चीजें खो गयीं, सिर्फ हिसाब की ही क्षमता रह गयी।

ज्ञानी अपनी पात्रता से, कहता है, हम पहुँचते हैं। इसलिए ज्ञानी आखिर में कहेगा, मैं ही हूँ, परमात्मा नहीं है। महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। मतलब मैं ही हूँ, कोई परमात्मा नहीं है। यह ज्ञान की शुद्धतम अभिव्यक्ति होगी। भक्त प्रसाद से पहुँचता है। वह कहता है, मेरी योग्यता क्या? उसका बड़ा काव्य का मार्ग है। वो कहता है अपने से अगर हमको उबरना है तो उबर न पाएँगे, डूब सकते हैं। उबरे अगर, तो तुमने उबारा। डूबे अगर, तो हम डूबे। दोष अपना मानता है, गुण उसके मानता है। इसलिए एक ऐसी घड़ी आती है—प्रसाद से बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते परमात्मा रह जाता है, खुद मिट जाता है। ज्ञानी कहता है, मैं ही हूँ, तू नहीं है। दोनों एक पर पहुँच जाते हैं। अद्वैत बचता है। लेकिन दोनों की अभिव्यक्ति अलग है।

इसी संबंध में एक प्रश्न और भी है। उसे भी इसीके साथ समझ लेना उचित होगा।

आपने कहा कि परमात्मा प्रयास से नहीं प्रसाद से मिलता है, और सहजो गुरु चरनदास की कृपा का तथा कबीर गुरु रामानंद की कृपा का अहोभाव से गुणगान करते हैं। आप पर किस गुरु की कृपा हुई? क्या आप बिना गुरु-कृपा के परम-सम्बोधि को उपलब्ध हुए? इस संबंध में कुछ कहें।

दो बातें मैंने तुम्हें समझायीं, ज्ञानी और भक्त। ज्ञानी अपनी पात्रता से उपलब्ध होता है। भक्त अपनी प्रार्थना से। ज्ञानी तपश्चर्या से अर्जित करता है परमात्मा को। वो उसका अर्जन है। ज्ञानी दावेदार है। पाया है, तो अपने श्रम से पाया है। इसलिए महावीर ने जिस धर्म को जन्म दिया और जिस संस्कृति... उसका नाम है: श्रमण-संस्कृति। श्रमण-संस्कृति का अर्थ होता है: प्रसाद से नहीं, श्रम से। इसलिए महावीर का नाम ही श्रमण भगवान महावीर—श्रम से जिन्होंने पाया परम सत्ता को।

ज्ञानी कहता है, तपश्चर्या से, त्याग से, पुण्य से परमात्मा को पाया है, मुफ्त में नहीं। किसी कृपा के कारण नहीं। अर्जित किया है। ज्ञानी का दावा है।

भक्त कहता है, प्रार्थना से, पूजा से, नाच के, रिझा के, समझा-बुझा के। अपनी तो कोई पात्रता न थी। नाचे, प्रसन्न किया तुम्हें। तुम्हारे गीत गाए, तुम्हारा गुण-गान किया, तुम्हें राजी किया। तुम प्रफुल्लित हो गये। किसी प्रेम के गहन क्षण में तुमने सब दे डाला। हम पात्र न थे; प्रसाद से मिला।

ये दो सीधे-सीधे मार्ग हैं। इन दोनों के बीच बड़ा छिपा हुआ एक तीसरा मार्ग है, जिसमें दोनों का सार है। साधारणतया उसकी बात नहीं की जाती, क्योंकि उसकी बात करनी कठिन है। लेकिन चूँकि तुमने मुझसे पूछा मेरे संबंध में, इसलिए वो तुम्हें कह देना जरूरी है। इन दोनों के बीच में ध्यान का मार्ग है। वो अति सूक्ष्म है, महासूक्ष्म है। ध्यान की धारणा को समझना बड़ा कठिन है; फिर भी कोशिश करो--

ज्ञानी कहता है, हमने अपनी पात्रता से पाया। भक्त कहता है, प्रसाद से पाया। लेकिन दोनों में एक बात सहमति है, कि पाया। ध्यानी कहता है, हमने कभी खोया नहीं। ध्यानी कहता है, पाने का सवाल कहाँ है? वो तो पाया ही हुआ है। वह तो स्वभाव है। खोने की तो केवल भ्रांति है। धारणा है कि खोया है। जैसे मछली भूल गयी कि सागर में है। बस ऐसे। है तो सागर में ही। तुम परमात्मा में जीते, श्वाँस लेते, जागते, सोते, उठते, बैठते, जन्मते, मरते। तुम उससे क्षण भर को विदा नहीं हो सकते। क्योंकि परमात्मा यानी पूर्ण अस्तित्व। परमात्मा यानी यह सारी विराट ऊर्जा। यह सब कुछ।

ध्यानी कहता है, परमात्मा को कभी खोया ही नहीं। तो दोनों ही बातें व्यर्थ हैं कि प्रयास से पाया, कि प्रसाद से पाया। खोया ही नहीं। जागकर पाया। सोए में लगा कि खो गया। जागने पर लगा कि है, नहीं खोया। सोए में जब लगता था खो गया, तब भी खोया न था। हम ही सो गये थे। जैसे दिया जल रहा था और तुम्हें झपकी लग गयी। दीया तो जलता ही रहा। नींद ने दीये को न बुझा दिया। तुम्हारे आँखों में सपने घिर गये। तुम्हारे सपनों ने दीये पर अंधेरा न कर दिया। तुम खो गये। तुम दूर हट गये। तुम भूल गये कि दीया है। फिर आँख खुली, दीये को उपलब्ध कर लिया। तुम कहोगे दीये को फिर पा लिया? खोया ही न था, तो फिर पाने की बात ठीक नहीं। दीया तो सदा था। जो सदा है, वही परमात्मा है। ध्यानी कहता है, अपनी ही झपकी लग गयी। खोया नहीं। क्योंकि एक बार खो जाए तो पाना असंभव है। क्योंकि जो खो जाए वो हमारा स्वभाव न रहा। वो ऐसे रहा जैसे हाथ में कोई चीज थी, खो गयी। मिल जाए, फिर भी खो सकती है। लेकिन तुम्हारे हृदय की धड़कन तो न खो जाएगी? फिर हृदय

की धड़कन भी बंद हो सकती है, तुम्हारा चैतन्य का गुण तो न खो जाएगा? तुम जब सो जाते हो तब भी तुम होते हो। हालाँकि तुम्हें बिलकुल पता नहीं चलता कि तुम हो। जागते हो तब पता चलता है। सोने में जो छिप जाता है जागने में उभर आता है। सोने में जो भूल जाता है जागने में स्मरण आ जाता है। ध्यानी कहता है, परमात्मा को खोया नहीं सिर्फ विस्मृति हो गयी है। स्मरण पर्याप्त है। ध्यान पर्याप्त है।

तो ध्यानी की दृष्टि से तो, न तो वो पात्रता से मिलता है--क्योंकि वो तुम्हें मिला ही हुआ है। तुम कितने ही अपात्र हो, तो भी तुम्हारे भीतर वही धड़क रहा है। तो इसलिए पात्रता से पाने का कोई सवाल नहीं है। और न वो प्रसाद रूप मिलता है, क्योंकि वहाँ कोई दूसरा थोड़ी' है जो तुम्हें दे दे प्रसाद। तुम ही हो। लेने वाले, देने वाले दोनों तुम ही हो। जाने वाले, पहुँचने वाले दोनों तुम ही हो। मार्ग और मंजिल दोनों तुम ही हो। ध्यानी गहनतम बात कह रहा है। मगर उसे कहने की बड़ी कठिनाई है। और भक्त भी जब पहुँच जाता है तब ध्यानी की बात को समझ लेगा, कि बात तो ठीक है, यह तो मिला ही हुआ था। और ज्ञानी भी समझ लेगा, कि इसको उघाड़ा है, आविष्कृत किया है, निर्मित नहीं किया। जैसे कि एक पत्थर पड़ा है और कारीगर आए, छेनी को उठाकर एक मूर्ति को उघाड़ दे। मूर्ति तो पड़ी ही थी।

माइकल एंजिलो से किसीने पूछा..... । एक अनगढ़ पत्थर बहुत दिन से पड़ा था, शिल्पियों ने फेंक दिया था बेकार समझ कर, उसपर माइकल एंजिलो ने जीसस की एक प्रतिमा बनायी। जब प्रतिमा बन गयी तो किसी ने पूछा कि तुम अनूठे कलाकार हो! पत्थर तिरस्कृत था, फेंक दिया गया था, शिल्पियों ने काम का न समझा था, आड़ा-तिरछा था, लेकिन तुमने बहुमूल्य प्रतिमा बना दी। माइकल एंजिलो ने कहा, मैंने बनायी नहीं। प्रतिमा तो सोयी पड़ी थी पत्थर में। सिर्फ बेकार पत्थर जो प्रतिमा के आसपास चिपका था, उसको मैंने अलग कर दिया। उघाड़ी, बनायी नहीं। छिपी थी, आवृत थी, अनावृत की। आच्छादित थी, अनाच्छादित की। बस इतना ही किया। मैं कोई कर्ता नहीं हूँ। उघाड़ा, जरा पर्दा खींचा।

ध्यानी कहता है तुम जो हो, उससे अन्यथा तुम कभी भी नहीं हो सकते। तुम जो हो, वही तुम सदा रहे हो, वही तुम सदा रहोगे। वो तुम्हारा होना ही परमात्मा है। इसलिए न कोई प्रसाद का सवाल है, न कोई प्रयास का। तब तुम बड़ी उलझन में पड़ोगे। तब तुम्हें और अड़चन होगी, कि अब क्या करें?

अगर तुम मेरी बात ठीक से समझ सको तो मैं कहता हूँ, ध्यानी ही शुद्धतम बात कह रहा है। भक्त उसी बात को प्रेम की भाषा में कहता है। तब प्रसाद बन जाता है। ज्ञानी उसी बात को साधना की भाषा में कहता है। तब पात्रता, योग्यता, कर्म, पुण्य, श्रम इस तरह के शब्द बन जाते हैं। बात तो वही है जो ध्यानी कह रहा है। लेकिन ध्यानी की बात तो ध्यानी ही समझ पाएगा। क्योंकि तुम्हें यह समझना बिलकुल कठिन होगा कि उसको खोया ही नहीं। मेरे पास लोग आ जाते हैं। वो कहते हैं, आप कहते हैं कभी खोया ही नहीं, फिर खोजें क्यों? मैं उनसे पूछता हूँ, यह सवाल भी कैसे उठता है कि खोजें क्यों? ये मैं कहता हूँ कि उसे कभी खोया नहीं। ऐसा तुम्हारा अनुभव हो, बात ठीक हो गयी, खतम हो गयी। अब कुछ खोजना नहीं। लेकिन तुम्हें तो लग रहा है कि कुछ अभी मिला तो है नहीं, तुम खोज भी छोड़ रहे हो। तब तो मिलने का उपाय भी बंद हो जाएगा।

ध्यान धर्म की शुद्धतम अभिव्यक्ति है। फिर ज्ञान उसी की मस्तिष्क के द्वारा अभिव्यक्ति है। और भक्ति उसीको हृदय द्वारा अभिव्यक्ति है। और ध्यान न तो हृदय का है, और न मस्तिष्क का। ज्ञान मस्तिष्क का है, प्रेम हृदय का है: ध्यान दोनों के पार है। ध्यान अतिक्रमण है।

इसलिए तुम मुझसे मत पूछो कि मुझे कैसे मिला। न प्रसाद से, न प्रयास से। जागकर मैंने पाया कि उसे कभी खोया ही नहीं। इसलिए मेरा कोई गुरु नहीं है। क्योंकि गुरु तो तभी हो, जब खोजने में किसीका सहारा लेना पड़े। और मेरी कोई साधना नहीं है। क्योंकि साधना तो तभी हो, जब खोजने के लिए कोई श्रम करना पड़े। न मैंने श्रम किया और न मैंने प्रार्थना की। न मैंने पूजा की किसी मंदिर में, और न किसी परमात्मा को आकाश में हाथ जोड़कर याद किया। न किसी गुरु को पकड़ा। किया क्या? इतना ही किया कि चेष्टा की अपने को समझने की। जानने की कोशिश की, कि मैं कौन हूँ? अपने ही हाथों से टटोलने की कोशिश की अपने भीतर, कि कहाँ हूँ? टटोलते-टटोलते, खोजते-खोजते अंधेरा थोड़ा क्षीण हुआ; अपनी प्रतीति होने लगी, एहसास होने लगा, कि हूँ। एहसास बढ़ने लगा। पहले तो बड़ी धीमी सी ज्योति थी एक दीये की। फिर ज्योति बढ़ती गयी। सूर्य का महाप्रकाश हो गया। लेकिन न तो प्रसाद से पाया, न प्रयास से। अपने भीतर जाकर पाया कि पाया ही हुआ है। उसे कभी खोया ही न था। मंजिल पर ही बैठे थे और झपकी लग गयी।

मैं निरंतर एक कहानी कहता रहा हूँ। एक शराबी घर लौटा। ज्यादा पी गया

था। अपने घर के सामने आ गया, आदतवश। जैसे रोज चलकर आ जाता था, आ गया। उसके लिए कोई कुछ होश की जरूरत नहीं रहती, तुम्हें भी नहीं रहती। तुम हजार विचार करते घर की तरफ चले आते हो। पैर बाएँ मुड़ जाते हैं, साइकिल घूम जाती है, तुम अपने गेरेज में पहुँच जाते हो। कुछ इसके लिए सोचना नहीं पड़ता। यंत्रवत्। तो शराबी नशे में था, वो डोलता-डँवालता पहुँच गया। अपने घर के सामने जाकर उसने गौर से देखा, ये घर अपना है या नहीं? रात का अँधेरा, शराब में डूबी आँखें, सब कँपता हुआ, डँवाडोल, वो घबड़ा गया। यह तो घर अपना नहीं मालूम होता। ऐसा तो देखा नहीं था कभी। देखनेवाली आँख अलग हो तो दृश्य बदल जाता है। नशे में हो, तो दृश्य बदल जाता है।

उसने दरवाजे पर दस्तक दी डरते हुए। उसकी माँ ने दरवाजा खोला। लेकिन वो अपनी माँ को ही नहीं पहचान पाया। नशे में पहचान कैसी? उसने उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि माई, इतना कर, मुझे मेरे घर पहुँचा दे। उसकी माँ ने कहा, बेटा, तू बिल्कुल पागल हो गया है? हजार बार कहा कि शराब पीना बंद कर। अब ये तो हद हो गयी। मुझको ही नहीं पहचानता—अपनी माँ को! अपना घर नहीं पहचानता। भीड़ इकट्ठी हो गयी, पड़ोस के लोग आ गये, समझाने लगे। मगर शराबी को समझाने का कोई उपाय होता है? समझ ही सकता तो खुद ही समझ लेता। तुम्हें समझाना पड़ता? तुम समझाओ कुछ, शराबी समझता कुछ! तुम कहो कुछ, वो सुनता कुछ! कुछ और अर्थ निकालता है।

वो बहुत घबड़ा गया और उसने कहा, तुम सब मुझे मार डालोगे। मेरी माँ मेरे घर मेरी राह देख रही होगी। तुम मुझे क्या उल्टी-सीधी बातें समझा रहे हो! क्या मुझे अपनी माँ की पहचान नहीं? क्या मुझे अपना घर मालूम नहीं? कितनी ही शराब मैंने पी ली हो, मैं कोई नशे में थोड़ी' हूँ? सभी शराबी यही कहते हैं। शराबी को पक्का करवाना कि तुम नशे में हो, बहुत मुश्किल है। वो मानता ही नहीं। और जो शराबी मान जाए कि मैं नशे में हूँ, समझो कि नशा टूट गया। नहीं तो मान ही नहीं सकता था। शराब में कैसे कोई मानेगा? पागल अगर मान जाए कि मैं पागल हूँ, समझो वह ठीक हो गया। घर भेजो। पागलखाने में रखने की जरूरत नहीं। पागल कभी मानता ही नहीं कि मैं पागल हूँ। सारी दुनिया को पागल कहेगा, खुद को नहीं मान सकता। उसने सब को कहा कि तुम सब शराब पी गये मालूम होते हो। मेरा घर मुझे मालूम नहीं? मुझे अपने घर पहुँचाओ, भाई! वो रोने लगा। छाती पीटने लगा। एक पड़ोसी जो शराबघर से लौट रहा था, वो अपनी बैलगाड़ी जोत कर आ गया। उसने कहा, बैठ। मैं तुझे तेरे घर पहुँचा

देता हूँ। उसकी माँ चिल्लाने लगी कि इसकी गाड़ी में मत बैठ, ये भी पिये हुए है। नहीं तो कोई तुझे कहाँ ले जाएगा? तेरा घर कहीं और नहीं है। लेकिन इसकी बात उसे जँची। ये गुरु मालूम पड़ा। ये पहुँचाने वाला एक आदमी, तारण हार! बाकी सब दुष्ट, यहीं उलझा देंगे। वो उसकी बैलगाड़ी में बैठने को तैयार है।

ऐसी तुम्हारी दशा है।

तुम घर के सामने ही खड़े हो। तुम्हारी आँख के सामने जो है, वही परमात्मा है। तुम पूछ रहे हो, कहाँ जाएँ? कैसे खोजें? क्या उपाय करें? किसकी प्रार्थना करें? कोई न कोई तुम्हें मिल जाएगा बैलगाड़ी जोत के तैयार। वो कहेगा, आ जाओ, बैठ जाओ, हम वहीं जा रहे हैं। बल्कि हम पहले ही से वहीं जाने का काम ही करते हैं। ये ट्रान्सपोर्ट का ही काम करते हैं! भटकों को पहुँचाते हैं! कोई न कोई गुरु तुम्हें मिल जाएगा। कोई भी सवाल नहीं है। तुम्हारा गुरु तुम्हारे भीतर है। और बाहर अगर किसी को कभी गुरु स्वीकार करो तो उसको ही स्वीकार करना जो तुम्हारे भीतर के गुरु को जगाने की बात कह रहा हो, तुम्हें कहीं ले जाने की नहीं।

अच्छा होता कि वो शराबी अपनी माँ को स्वीकार कर लेता, जो कह रही थी यही तेरा घर है, मैं तेरी माँ हूँ। सुबह होश में आकर वो भी पाता कि यही बात सच है। लेकिन तुमसे जो कोई कहेगा कि तुम वहीं हो जहाँ तुम्हें होना है, उसकी बात तुम्हें न जँचेगी। तुम कहोगे, यह बात तो कुछ जँचती नहीं। बहुत बदलाहट करनी है। क्रांति करनी है। रूपांतरण करना है। और ये आदमी कहता है तुम वहीं हो। कहीं और चलो। कोई गुरु खोजो।

मेरे पास लोग आते हैं। अगर मैं उनसे कहता हूँ, तुम सिर्फ अपने को स्वीकार कर लो। तुम जैसे हो शुभ हो, सुंदर हो, सत्य हो। तुम जैसे हो पर्याप्त हो। तुम जैसे हो इसमें ही अहोभाव समझो। कुछ करना नहीं है। अपने होने से राजी हो जाना है। वो इधर-उधर देखने लगते हैं। वो कहते हैं, तो फिर कुछ भी करने का नहीं है! ये बात उनको जँचती नहीं। वो किसी और गुरु के पास जाएँगे जो उनको कुछ करने को बताए। कहे कि शीर्षासन कर के खड़े हो जाओ। वो जँचेगा। जैसे कि कोई सिर पर खड़े होने से परमात्मा का कोई मिलने का संबंध हो। पैर पर ही भले लग रहे हो। सिर पर खड़े होकर कुछ सौंदर्य बढ़ न जाएगा। सिर्फ मूढ़ मालूम पड़ोगे। मूढ़ता छिपानी हो तो उसको 'शीर्षासन' कहोगे। उल्टी-सीधी कवायत करोगे। हाथ-पैर मोड़ोगे। सर्कस में भरती होना हो, ठीक है। परमात्मा तक जाने का उससे क्या लेना-देना?

तुम जैसे हो शुभ हो, सुंदर हो। अभी तुम वहीं हो, जहाँ तुम जाने का खयाल कर रहे हो। जाने का खयाल छूट जाए और तुम तृप्त हो जाओ इसी क्षण में, तुम पहुँच गये। और जाने का खयाल पकड़े रहे, तो तुम दौड़ते रहोगे अनंत-काल तक। वही तुम्हारे अनंत जीवन की कथा है, व्यथा है। दौड़ो, कहीं भविष्य में कोई लक्ष्य है, उसे पाना है। जब तक वो न मिलेगा, तब तक बेचैनी है। वो कभी मिलेगा नहीं। क्योंकि तुम जहाँ भी पहुँचोगे, वहीं से भविष्य का लक्ष्य दूर दिखायी पड़ेगा। वो क्षितिज की भाँति है। मृगमरीचिका है।

न तो मैंने प्रसाद से पाया किसी के, न किसी प्रयास से पाया। मैंने तो जागकर देखा कि खोया ही नहीं था। इसको ही मैं सहजयोग कहता हूँ। इसीको सहजो ने कहा है सहजगति। चरणदास ने उसे नाम ही सहजो दे दिया। सहजो का अर्थ है, जो सहज है। कुछ न पाने को, न कुछ खोजने को। मगर सहजो की भाषा भक्त की है। इसलिए उसने प्रसाद की चर्चा की। महावीर की भाषा ज्ञानी की है। इसलिए उन्होंने तपश्चर्या, श्रम, साधना की बात की। मेरी बात अगर तुम्हें समझनी हो, तो मेरी सारी चर्चा ध्यान की है। और ध्यान भक्ति और ज्ञान दोनों के पार है। या, ध्यान ही भक्ति का प्राण है, और ध्यान ही ज्ञान का प्राण है। भक्ति एक काया है। ज्ञान दूसरी काया है। लेकिन आत्मा दोनों के भीतर ध्यान की है। भक्त भी प्रार्थना करते-करते ध्यानलीन होता है। ज्ञानी भी तपश्चरण करते-करते ध्यानलीन होता है।

जो भी पहुँचे कभी उनसे अगर पूछोगे, सभी की बात एक है। और वो बात है, ध्यान। पर अभिव्यक्तियाँ अलग हैं। सहजो प्रेम का गीत गाती है। महावीर ज्ञान का उच्चार करते हैं।

मैं तुम्हें खालिश सोना देना चाहता हूँ। आभूषण नहीं। महावीर ने भी सोने का उपयोग किया है, लेकिन ज्ञान के आभूषण बनाए। सहजो ने भी उसी सोने का उपयोग किया है, लेकिन प्रेम के, भक्ति के आभूषण बनाए हैं। मैं तुम्हें आभूषण नहीं देना चाहता। मैं तुम्हें खालिश सोने की डिग्री ही देना चाहता हूँ। उसका नाम ध्यान है।

छठवाँ प्रश्न : 'ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग।' पर सहजो जैसे संत ही संग, सत्संग का महिमापूर्ण गुणगान भी करते हैं। ऐसा विरोधाभास क्यों है?

विरोधाभास जरा भी नहीं है। लगता होगा। है नहीं। 'ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग।' सहजो कहती है, न तो कोई साथ है अपने, न मैं किसी के साथ हूँ। निश्चित ही सहजो सत्संग का भी वर्णन करती हैं, महिमा करती है—

खोजो संत को, खोजो सत्संग। तो तुम्हें अड़चन होती है, कि जब कोई संग-साथ ही नहीं है तो किसको खोजना? पर तुम सत्संग का अर्थ नहीं समझे, इसलिए गड़बड़ हो गयी।

सत्संग का अर्थ है, ऐसे व्यक्ति का सत्संग जिसके साथ तुम्हें पता चलेगा--'ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग।' सत्संग का कुल इतना ही अर्थ है, ऐसे किसी व्यक्ति के सान्निध्य को पा लेना जहाँ तुम्हें अपने अकेलेपन का बोध होगा। भीड़ सत्संग नहीं है। क्लबघर में बैठकर तुम ताश खेल रहे हो, वो सत्संग नहीं है। वहाँ तुम अपने को भुला रहे हो। वो नशा है, मादक है। सिनेमाघर में बैठे हो, वो सत्संग नहीं है। भीड़ तो बहुत है। लेकिन अपने को डुबाने के लिए, भुलाने के लिए है। अपने से तुम परेशान हो, अपना अकेलापन काटता है। ऊब मालूम पड़ती है। भागो, डूबो किसी के साथ, भूल जाओ।

सत्संग तब है जब तुम किसी ऐसे के पास बैठे हो जिसके पास तुम अपने को भूल न पाओ, तुम्हें अपना स्मरण आ जाए। जो नशा न हो, जागरण हो। सत्संग का अर्थ है, जहाँ तुम्हें अपने एकांत का, शुद्ध कैवल्य का बोध हो। हजार लोग बैठे हों सत्संग में तो भी भीड़ नहीं है वहाँ। एक-एक आदमी अलग-अलग बैठा है। एक-एक आदमी अपने अकेलेपन में बैठा है।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक नगर के बाहर रुके। अजातशत्रु मालिक था उस राज्य का। जैसे कि सम्राट होते हैं--सदा भयभीत, शंकित। वजीरों ने कहा, आप चलें, भगवान का आना हुआ है, वो गाँव के बाहर रुके हैं। ये क्षण बहुमूल्य हैं। शोभा-योग्य है कि आप वहाँ चलें। अजातशत्रु ने कहा, कितने लोग हैं? कौन-कौन आया है? क्या प्रयोजन है? सब जैसा राजनीतिज्ञ पूछे, हजार सब हिसाब लगा ले। उन्होंने कहा, दस हजार भिक्षु साथ हैं। खैर, सब बातें पता लगाकर अजातशत्रु चला।

जब वो पहुँचा उस आम्रवन के पास जहाँ आमों की छाया में बुद्ध अपने दस हजार भिक्षुओं के साथ ठहरे थे, तो बाहर ही वो ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने झटके से अपनी तलवार म्यान के बाहर निकाल ली। उसने अपने वजीरों से कहा, मुझे कुछ षड्यंत्र की गंध आती है। तुमने कहा था दस हजार लोग ठहरे हैं वहाँ। यहाँ एक आदमी की भी आवाज नहीं है। ये आमों का झुरमुट ऐसा लगता है बिल्कुल सूना है। यहाँ कोई भी नहीं है। और दस हजार तो निश्चित ही नहीं हैं। दस हजार आदमी जहाँ हों, वहाँ तो पूरी एक बस्ती और बाजार हो जाएगा।

वे वजीर हँसने लगे। उन्होंने कहा, आप तलवार म्यान के भीतर रख लें।

आपको बुद्ध और उनके भिक्षुओं का पता नहीं है। दस हजार हैं, लेकिन सभी अकेले-अकेले। यहाँ भीड़ नहीं। आप अंदर चलें। घबड़ाएँ न। सहमा हुआ, डरा हुआ अजातशत्रु भीतर गया। और जब उसने दस हजार लोग देखे वहाँ--वृक्षों के नीचे बैठे हैं, झुंड के झुंड हैं, पर सब अकेले हैं! वो बुद्ध के पास गया। उसने कहा, ऐसा मैंने कभी देखा नहीं। यह लोग यहाँ क्या कर रहे हैं? ये दस हजार आदमी चुप क्यों हैं? ये बोलते क्यों नहीं? बुद्ध ने कहा, ये मेरे पास आए ही हैं मौन सीखने, बोलना सीखने नहीं। ये मेरे पास आए हैं अकेले होने।

सतसंग का अर्थ है, जहाँ तुम अकेले हो जाओ; उसके साथ को खोजो, जो तुम्हें जगा दे और अकेला कर दे।

'ना काहू के संग है, सहजो ना कोई संग'--जहाँ ऐसा पता चले वही सत्संग है।

आज इतना ही।

★ ★ ★

भगवान श्री रजनीश : प्रेम के, करुणा के मूर्तिमान रूप।

समस्त सीमाओं की सीमा से पार वही केवल बचता है, जो हैं। वही हैं—भगवान श्री रजनीश।

अस्तित्व : एक परम नियम।

उस परम नियम के प्रवाह में रजनीश, शंकर; बुद्ध, क्राइस्ट; लाओत्से व कृष्ण जैसी परम घटनाएँ घटती हैं—चेतना-जगत के परम रहस्यों के पुनरुद्घाटन हेतु, समग्र चेतना के ऊर्ध्वगमन में निमित्त रूप।

इन परम बुद्धों की ओर से तैयारी पूरी होती है चेतनाओं को स्वरूप में, परम ऊर्ध्वावस्था में, परम मुक्ति में प्रतिष्ठित करा देने की, हम यदि अवरोध खड़े न करें—हम यदि अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देने को राजी हों।

अस्तित्व का यही परम खेल रजनीश के इर्दगिर्द घटित हो रहा है।

सब दिशाओं से हजारों-हजार चेतनाएँ अपने द्वार-दरवाजे—अवरोध—खुले छोड़ देने के प्रयास में रत हैं, ताकि परम चैतन्य बोध में उनका प्रवेश घटित हो सके, ताकि वह विराट, वह परम चैतन्य, वह परमात्मा उनके आर-पार बह सके जो सदा से आतुर है प्रत्येक से मिलने को।

क्या आप भी चाहते हैं परम सत्य का—स्वयं का—साक्षात्कार? जीवन की परम धन्यता में प्रवेश?

तो क्यों न इस अप्रतिम घटना का लाभ लें, जो भगवान श्री रजनीश के रूप में घटित हुई है अस्तित्व में!

उस करुणा-पुंज को हम सब के कोटि-कोटि, अगणित नमन्!

भगवान श्री रजनीश : प्रेम के, करुणा के मूर्तिमान रूप।

समस्त सीमाओं की सीमा से पार वही केवल बचता है, जो है। वही हैं—भगवान श्री रजनीश।

अस्तित्व : एक परम नियम।

उस परम नियम के प्रवाह में रजनीश, शंकर; बुद्ध, क्राइस्ट; लाओत्से व कृष्ण जैसी परम घटनाएँ घटती हैं—चेतना-जगत के परम रहस्यों के पुनरुद्घाटन हेतु, समग्र चेतना के ऊर्ध्वगमन में निमित्त रूप।

इन परम बुद्धों की ओर से तैयारी पूरी होती है चेतनाओं को स्वरूप में, परम ऊर्ध्वावस्था में, परम मुक्ति में प्रतिष्ठित करा देने की, हम यदि अवरोध खड़े न करें—हम यदि अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देने को राजी हों।

अस्तित्व का यही परम खेल रजनीश के इर्दगिर्द घटित हो रहा है।

सब दिशाओं से हजारों-हजार चेतनाएँ अपने द्वार-दरवाजे—अवरोध—खुले छोड़ देने के प्रयास में रत हैं, ताकि परम चैतन्य बोध में उनका प्रवेश घटित हो सके, ताकि वह विराट, वह परम चैतन्य, वह परमात्मा उनके आर-पार बह सके जो सदा से आतुर है प्रत्येक से मिलने को।

क्या आप भी चाहते हैं परम सत्य का—स्वयं का—साक्षात्कार? जीवन की परम धन्यता में प्रवेश?

तो क्यों न इस अप्रतिम घटना का लाभ लें, जो भगवान श्री रजनीश के रूप में घटित हुई है अस्तित्व में!

उस करुणा-पुंज को हम सब के कोटि-कोटि, अगणित नमन्!